जातकपारिजातः

गोपेश कुमार ओझा

ज्योतिष के संहिता, होरा और सिद्धान्त—इन तीन विषयों में जातकपारिजात का स्थान होरा के अन्तर्गत है ।

जातकपारिजात के प्रारम्भिक आठ अध्याय प्रथम भाग में अलग जिल्द में छपे हैं । प्रस्तुत कृति जातकपारिजात का द्वितीय भाग है । इसमें नौवें अध्याय से लेकर अठारहवें अध्याय तक के दस अध्याय आ गये हैं और ग्रन्थ पूर्ण हो गया है ।

इस भाग के अध्यायों का विवरण इस प्रकार है— नवम अध्याय में मान्दिफल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । दशम अध्याय में अष्टकवर्ग का निरूपण है । जिस अष्टक वर्ग के निरूपण में ज्योतिर्विदों ने पुस्तकें भर दी हैं उसी का सार इसमें मिलेगा । किस जातक का कौनसा वर्ष कैसा जायेगा—इसमें विवेचन किया गया है । ग्यारह से पन्द्रह अध्यायों में भावफल पूर्णरूपेण कहे गये हैं । सोलहवें अध्याय में स्त्रियों की जन्मकुण्डली का स्पष्ट विवरण है । सत्रहवें अध्याय में कालचक्रदशा समझाई गई है और अठारहवें अध्याय में दशाफल का विचार और अन्तर्दशा का विस्तृत विवरण किया गया है ।

विषयविन्यास सरल एवं सुगम है । संस्कृत में मूल पद्य, हिन्दी में सौरभ भाष्य और स्थान-स्थान पर चक्र, कोष्ठक, कुण्डलियां और तालिकाएं भी दी हैं ।

द्वितीय भाग

मूल्य : रु० ८५ (सजिल्द)
६५ (अजिल्द)

श्रीदैवज्ञवैद्यनाथविरचितः

जातकपारिजातः

श्रीदैवज्ञवैद्यनाथविरचितः

जातकपारिजातः

सौरभभाष्यसहितः

द्वितीयो भागः

भाष्यकारः

ज्योतिषकलानिधिः दैवज्ञशिरोमणिः

पण्डित गोपेश कुमार ओझा

एम. ए. एल. एल. बी.

सुगमज्योतिषप्रवेशिका, अंकविद्या (ज्योतिष) भावार्थबोधिनी फलदीपिका, हस्तरेखा-विज्ञान, जातकादेशमार्ग (चन्द्रिका), त्रिफला (ज्योतिष), भारतीयलग्नसारिणी, Predictive Astrology of the Hindus, 1,000 Aphorisms on Love and Marriage [Part I—Western Astrology, Part II Hindu Astrology], Your Stars and Love Life, How to Interpret your Horscope आदि पुस्तकों के रचयिता ।

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली :: वाराणसी :: पटना

भूमिका

वन्दे वन्दारुमन्दारमिन्दुभूषणनन्दनम् ।
अमन्दानन्दसन्दोहबन्धुरं सिन्धुराननम् ।।

अत्यन्त हर्ष का अवसर है कि हम पाठकों के सम्मुख जातकपारिजात (सौरभ) का द्वितीय भाग रख रहे हैं। नवम अध्याय में मान्दि वर्ष आदि का फल दिया गया है । मान्दि का उपयोग विशेषतः दक्षिण भारत की पुस्तकों में दिया गया है । मान्दि यदि सूर्य के साथ हो तो जातक पिता से द्वेष करता है। चन्द्रमा के साथ हो तो माता के लिए क्लेशप्रद है। मंगल से युक्त हो तो छोटे भाई नहीं रहते । बुध के साथ हो तो सोन्माद होता है। गुरु के साथ हो तो पत्नी बीमार रहती है व नीच स्त्रियों से प्रेम करता है। शनि से युक्त हो तो सुखी होता है । यदि राहु के साथ हो तो औरों को विष देने वाला हो। केतु से युक्त हो तो आग लगाने वाला होता है। मान्दि से और भी बहुत सी बातें विचार करनी बताई हैं।

बहुत से ग्रन्थों में सप्त वर्ग के प्रत्येक वर्ग का फल नहीं दिया है पर इसमें प्रत्येक वर्ग का विस्तृत फल है। दशम अध्याय में अष्टक वर्ग का विस्तृत विवेचन है। और फलादेश भी विस्तार से समझाया गया है। प्रत्येक राशि में किस ग्रह के कितने बिंदु हैं, उनमें जब ग्रह गोचरवश जाता है तो क्या फल करता है इसका फलित शास्त्रियों के लिए विशेष महत्त्व है । अष्टक वर्ग से यह भी मालूम हो जाता है कि जीवन का कौन सा वर्ष कैसा जाएगा । जिस भाव में अधिक बिंदु पड़ें वह अच्छा, जिसमें कम बिंदु पड़ें वह खराब जाता है। प्रथम भाव से प्रथम वर्ष, द्वितीय भाव से दूसरा वर्ष, और बारहवें भाव से बारहवाँ वर्ष, फिर प्रथम भाव से तेरहवाँ वर्ष, यही क्रम चलता है।

ग्यारहवाँ अध्याय इसका बहुत मुख्य व उपयोगी है। किसी भाव का विचार करना हो तो उसके विषय में किन-किन बातों का विचार करना चाहिए यह सब इसमें विस्तार पूर्वक समझाया गया है। भावपति यदि दुःस्थान में हो तो या सूर्य सान्निध्य से अस्त हो या अष्टम में हो तो उसका नाश होता है। भावेश को क्या बल देगा और भाव को क्या बल देगा इस बात को विस्तारपूर्वक समझाया गया है। इसमें लग्न भाव की विशेष चर्चा है। कीर्ति स्थान के विषय में

विशेष रूप से समझाया है। किन बातों से जातक यशस्वी, विद्वान् होता है आदि बातों का विशेष वर्णन है। इसमें नेत्र विचार भी है। विद्या विचार, कुटुंब विचार आदि द्वितीय भाव में दिए गए हैं। इसी में सब सिद्धांत दिए गए हैं।

बारहवें अध्याय में भाइयों का विचार किया गया है। किस योग से भाई होते हैं, किन योगों से वे नष्ट होते हैं, कब भाई बहन का जन्म होता है आदि। इसी भाव में पराक्रम विचार है, श्रुतिभूषणविचार, वस्त्र विचार और धैर्य विचार है। आगे जातक के विद्या जननी सुख आदि का विचार है। उत्तर भारत में प्रायः विद्या का विचार पंचम भाव से किया जाता है परन्तु दक्षिण भारत में चतुर्थ भाव से विद्या का विचार करते हैं।

चतुर्थ भाव में मन का विचार, मान का विचार एवं राज्य प्राप्ति का विचार किया गया है। गृह विचार व क्षेत्र विचार भी इसी भाव में किए गए हैं।

तेरहवें अध्याय में देवता, राजा, पुत्र, पिता, बुद्धि का विचार किया गया है। किस देवता की आराधना से शीघ्र सिद्धि होगी इसका विचार विस्तारपूर्वक समझाया गया है। पुत्र विचार में भी नाना प्रकार के योग समझाए हैं। दत्तक पुत्र किस योग में होता है, यह भी बताया है। यद्यपि इस भाव में पिता का विचार भी है, यह मुख्यतः दशम स्थान से किया जाता है किन्तु जातक पारिजात में नवें भाग में दिया गया है। चौथे व पाँचवें भाव में भी यह विचार किया गया है। पत्नी कब शत्रुता करती है यह भी छठे भाव के अंतर्गत विचार किया गया है। जातक के शरीर के कौन से भाव पर किसका अधिकार है जिससे वह कष्ट पाता है इसका भी विचार किया गया है।

यात्रा, पुत्र, स्त्री सुख आदि का विचार सप्तम भाव में है। किन योगों में मनुष्य जार होता है, किन योगों में सौभाग्य युक्त पत्नी प्राप्त होती है इसका उल्लेख है। इसमें कई स्त्रियों से विवाह का भी योग है। अब बहु-विवाह समाप्त हो गया है किन्तु अनेक जातियों में शेष है अतः इस भाव की भी उपयोगिता है।

सप्तमेश और शुक्र के गृह में जब बृहस्पति आता है तब विवाह होता है। इसी भाव के वर्णन में स्त्रियों के अंगों का भी वर्णन करते हैं। आगे आयुर्दाय का विचार करते हैं। किन योगों में अल्पायु, मध्यायु व दीर्घायु होती है।

अब मृत्यु का विचार करते हैं। किस समय, कैसे स्थान में, किस बीमारी से मृत्यु होगी इसका वर्णन है।

अब नवम भाव फल का विचार करते हैं। नवम भाव पर बृहस्पति की दृष्टि का क्या फल होता है। नवम भाव में दो ग्रह बैठें तो क्या फल होगा। तीन ग्रहों का योग हो तो क्या फल होगा। बृहस्पति को छोड़ कर अन्य ग्रह क्या फल करते हैं किन योगों से भक्ति होती है और किस योग का पिता का सुख अल्प होता है यह बताया गया है।

दशम भाव में आज्ञा, (हुकूमत) सम्मान, भूषण, वस्त्र, व्यापार, निद्रा, खेती-बारी, प्रव्रज्या (संन्यास लेना) आगम (शास्त्र), कर्म या कार्य जीवन निर्वाह, यश, विज्ञान, विद्या इन सबका क्रम से विचार किया गया है। दशमेश से, फिर सूर्य से और फिर बृहस्पति से और अंत में शनि से विचार बताया गया है। दशम भाव के कारक चार ग्रह हैं। इन चारों का विचार इसमें किया गया है। दसवें भाव में पाप-ग्रह हो तो वह मनुष्य समाज में सम्मान खो बैठता है। किन योगों से मनुष्य यज्ञ करता है यह भी बताया गया है। इसी अध्याय में प्रव्रज्या योग भी है। अर्थात् किन योगों के होने से मनुष्य संन्यास ले लेता है। प्रव्रज्या के अनेक योग बताए गए हैं। इसी अध्याय में ग्रह के अनुसार किस प्रकार की जीविका मिलने का योग है, इसका निर्देश है। उदय, लग्न, तथा चन्द्रमा से जो दशम होता है वह दशमेश किस नवांश में है उस नवांश के अनुसार जातक धन उपार्जन करता है। अनेक मार्ग दिए गए हैं। जैसा ग्रह हो उसके मार्गों में से जो जातक की परिस्थितियों के अनुसार हो उससे धनउपार्जन करता है। इसी में आगे आज्ञा विचार भी है कि मनुष्य आज्ञा देगा या नहीं अर्थात् ऐसे पद पर होगा या नहीं जिस पर से उसे आज्ञा देने का अधिकार हो। आगे कीर्ति विचार है कि कैसी स्थिति में मनुष्य को कीर्ति मिलेगी या अपकीर्ति इसी भाव में कृषि, व्यापार का भी विवेचन किया गया है। इसमें लाभ, भाव का विचार बहुत विस्तृत रूप से किया गया है कि किस स्थिति में लाभ होगा। एकादश भाव में जैसे ग्रह पड़ेंगे उसके अनुसार लाभ होगा। आगे व्यय विचार है। व्यय भाव से, व्यय भाव के स्वामी से और शनि से दूर देश का भ्रमण कहना चाहिए। अर्थात् लम्बी यात्रा और प्रवास का विचार इन तीनों से करना। इसी भाव से यातना अर्थात् कष्ट, दुर्गति, दानकर्म और शय्या का विचार करना चाहिए। शय्या विचार का शयन सुख विचार से तात्पर्य है। स्त्री भोग इससे और भोगों का भी विचार किया जाता है। धन का व्यय कैसे होगा, अपव्यय सद्व्यय इसका विचार भी इसी भाव से करना।

यदि दुष्ट ग्रह व्यय भाव में बैठें तो कुमार्ग से धन का व्यय होता है। यदि शुभ ग्रह बैठें तो सद् मार्ग से व्यय होता है। इसी में मरने के बाद मनुष्य की क्या गति होती है यह बताया गया है।

सोलहवाँ अध्याय स्त्रीजातकाध्याय है। इसमें कहते हैं स्त्री के लग्न से, अष्टम स्थान में वैधव्य का विचार करें। तेज, यश, संपत्ति, का विचार लग्न से, पुत्र का विचार अर्थात् संतति का विचार पंचम से, कोई कोई कहते हैं कि पति सुख का विचार सप्तम स्थान से, प्रव्रज्या का विचार अर्थात् संन्यास का योग का विचार नवम भाव से। नवम भाव में चार ग्रह होने से प्रव्रज्या कारक होता है। वाकी जितने योग वताए गए हैं स्त्री की कुंडली में और पुरुष की कुंडली में समान हैं अर्थात् जैसा फल उनका पुरुषों की कुंडली से वताया गया है वैसा ही फल स्त्रियों की कुंडली में भी समझें। इसमें त्रिशांश फल से स्त्री का चरित्र कैसा होगा इसका विशेष विवेचन है। कैसा पति मिलेगा इसका विचार भी किया गया है।

सत्रहवाँ अध्याय कालचक्रदशाध्याय है। प्रायः ज्योतिषी लोग विंशोत्तरी दशा लगाते हैं। कालचक्रदशा में प्रत्येक ग्रह की दशा न हो कर राशि की दशा होती है। जैसे मेष मंगल के चार वर्ष, वृष शुक्र के सोलह वर्ष, मिथुन बुध के नौ वर्ष, सिंह सूर्य के पाँच वर्ष, कन्या वुध के नौ वर्ष, वृष शुक्र के सोलह वर्ष वृश्चिक मंगल के सात वर्ष, धनु वृहस्पति के दस वर्ष, मकर शनि के चार वर्ष, कुंभ शनि के चार वर्ष एवं मीन-वृहस्पति के दश वर्ष। कौन सी दशा किस क्रम से होगी यह प्रत्येक कुंडली में लगाना वताया है।

अठारहवाँ अध्याय वहुत मुख्य है। इसमें विंशोत्तरी दशा कौन सी कैसे आएगी इसका निर्देश है। ग्रह प्रारंभ में भाव का फल दिखाता है। अर्थात् जैसे भाव में पड़े वैसा फल देता है। मध्य में राशिफल देता है। अच्छा राशि में पड़े तो अच्छा, खराव में पड़े तो खराव फल देता है और अंत में दृष्टि फल देता है अर्थात् शुभ ग्रह दृष्टि हो तो शुभ फल, क्रूर ग्रह दृष्टि हो तो क्रूर फल।

प्रत्येक ग्रह का नैसर्गिक फल क्या है, भावाधीश फल लग्नेश दशा का फल, द्वितीयेश का फल, इस प्रकार से वारह भावों के मालिकों का फल भिन्न-भिन्न होता है इसमें नवांश फल विशेष है।

स्वोच्चे नीचनवांशगस्य तरणेर्दयेऽपवादभयं
पुत्रस्त्रीपितृवर्गबन्धुमरणं कृष्णादिवित्तक्षयम्।
नीचे तुङ्गनवांशगस्य च रवेः पाके नृपालश्रियं
सौख्यं याति दशावसानसमये वित्तक्षयं वा मृतिम्॥

अर्थात् यदि उच्च राशि गत किन्तु नीच नवांश में सूर्य हो तो सब प्रकार का अपवाद व भय हो। पुत्र स्त्री पितृवर्ग व बंधुओं का मरण हो। कृषि आदि में धन क्षय हो। यदि सूर्य नीच राशि में, किन्तु उच्च नवांश में हो तो उसकी दशा में राजा से धन प्राप्ति व सुख प्राप्ति हो। दशा के अंत में धननाश व मृत्यु-भय होता है।

आशा है विद्वान् इसको पसंद करेंगे और मेरा यह प्रयत्न सफल होगा।

विनीत
गोपेश कुमार ओझा

विषय-सूची

अध्याय ६

मान्दि, वर्ष आदि का फल

इस अध्याय में मान्दि (गुलिक), वर्ष (प्रभव, विभव आदि साठ वर्ष), अयन (उत्तरायण तथा दक्षिणायन), ऋतु (वसन्त आदि), मास (चैत्र आदि), पक्ष (शुक्ल, कृष्ण), तिथि, वार, (रवि, सोम आदि), नक्षत्र, गण्डान्ततारा, गण्डकाल, तिथिदोष, योगदोष, जन्मतारा, गण्डदोषापवाद, नक्षत्र फल, राशि फल, राश्यंशफल, योगफल (विष्कुंभ आदि में जन्म होने का फल) करण (बव, बालव आदि का) फल, लग्न फल, होरा फल, द्रेष्काण फल, नवांश फल, द्वादशांश फल, त्रिशांश फल, वेला फल, कालहोरा फल, आदि विविध फलों का निर्देश किया है।

ज्योतिषियों तथा जातक के मन में स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि अमुक योग, करण, तिथि, वार या नक्षत्र में जन्म होने का क्या फल। उसी जिज्ञासा की पूर्ति के लिये ग्रंथकार ने इस अध्याय की रचना की है। अब जब आप किसी जातक के जन्म समय क्या तिथि, वार, करण, नक्षत्र आदि थे उसके अनुसार फलादेश करेंगे तो कुछ का फल उत्तम, कुछ का मध्यम, कुछ का अधम फल पायेंगे। ऐसी स्थिति में जन्म कुण्डली के ग्रहों से सामञ्जस्य कर फल कहना चाहिये।

मान्दि

मान्द्यब्दादिफलानि वच्मि गुलिके लग्नस्थिते मन्दधी
रोगी पापयुते तु वञ्चनपरः कामी दुराचारवान्।
वित्तस्थे विषयातुरोऽटनपरः क्रोधी दुरालापवान्
पापव्योमचरान्विते गतधनो विद्याविहीनोऽथवा ॥१॥

विरहगर्वमदादिगुणैर्युतः प्रचुरकोपधनार्जनसम्भ्रमः।
विगतशोकभयश्च विसोदरः सहजधामनि मन्दसुते यदा ॥२॥

हिबुकभवनसंस्थे मन्दजे वीतविद्या-
धनगृहसुखबन्धुक्षेत्रयातोऽटनः स्यात् ।
तनयभवनयाते मन्दसूनौ विशील-
श्चलमतिरघबुद्धिः स्वल्पपुत्रोऽल्पजीवी ॥३॥

बहुरिपुगणहन्ता भूतविद्याविनोदी
यदि रिपुगृहयाते मन्दपुत्रे तु शूरः ।
कलहकृदिनपौत्रे कामयाते कुदारः
सकलजनविरोधी मन्दबुद्धिः कृतघ्नः ॥४॥

विकलनयनवक्त्रः स्वल्पदेहोऽष्टमस्थे
गुरुजनपितृहन्ता नीचकृत्यो गुरुस्थे ।
अशुभशतसमेतः कर्मगे मन्दसूनौ
निजकुलहितकर्माचारहीनो विमानः ॥५॥

अतिसुखधनतेजोरूपवान् लाभयाते
दिनकरसुतपुत्रे चाग्रजं हन्ति जातः ।
विषयरहितवेषो दीनवाक्यः प्रवीणो
निखिलधनहरः स्यान्मन्दजे रिःफयाते ॥६॥

मान्दि को गुलिक भी कहते हैं। मान्दि कहिये, गुलिक कहिये एक ही बात है। मान्दि स्पष्ट कैसे करना यह द्वितीय अध्याय में बताया जा चुका है। मान्दि का अर्थ होता है मन्द का पुत्र। मन्द शनि को कहते हैं। मान्दि लग्न में हो तो मन्द बुद्धि और रोगी होता है। यदि मान्दि लग्न में पाप ग्रह के साथ हो तो दूसरों को ठगने वाला क्रोधी और दुराचारी हो। प्रश्न मार्ग के अनुसार यदि लग्न में मान्दि हो तो रोगी और क्षतांग (जिसके किसी अंग में क्षत, चोट या विकलता हो)। फलदीपिका के अनुसार लग्न में गुलिक होने से जातक चोर, क्रूर, विनय रहित, वेदशास्त्रहीन, बहुत पुष्ट नहीं, विकृत नेत्र वाला, अल्प बुद्धि, थोड़े पुत्र वाला, अधिक भोजन करने वाला, लम्पट, सुख विरहित तथा क्रोधी होता है। शूर नहीं होता, न दीर्घजीवी होता है।

यदि दूसरे घर में मान्दि हो तो विषयातुर, व्यर्थ घूमने वाला, क्रोधी, दुर्वचन बोलने वाला होता है। यदि द्वितीय में पाप ग्रह के साथ हो तो

गतधन (जिसका धन नष्ट हो जाये) या विद्याविहीन होता है । प्रश्न मार्ग के मत से यदि धन भाव में मान्दि हो तो दूसरों की निन्दा करने वाला और भद्दे वेष, भद्दे वस्त्र पहिनने वाला असंस्कृत शरीर होता है । फलदीपिका के अनुसार ऐसा जातक प्रियवचन नहीं बोलता, कलह करता है, धन्य धान्य से रहित होता है, परदेश-वासी हो और वाग्मिता का अभाव होता है। उसकी बुद्धि सूक्ष्म नहीं होती ॥१॥

यदि तीसरे घर में मन्द सुत (मान्दि) हो तो सबसे अलग अलग रहे, उस में गर्व, मद आदि गुण हों (गुण शब्द साधारणतया अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होता है। कहीं-कहीं गर्व आदि भी गुण हो जाते हैं। अथवा गुण का केवल लक्षण के अर्थ में प्रयोग किया हो), प्रचुर कोप हो, धनार्जन में व्यस्त और व्यग्र रहे। ऐसे जातक को शोक नहीं होता, भय नहीं होता (सत्त्व और साहस के कारण)। उसे भाइयों का सुख नहीं होता । प्रश्न मार्ग के अनुसार भाइयों से द्वेष करता है लेकिन शूरवीर होता है । फलदीपिका ने जो तृतीय भाव स्थित मान्दि का फल लिखा है वह वही श्लोक है जो जातक पारिजात में दिया गया है ॥२॥

यदि चतुर्थ में मान्दि हो तो विद्या, धन, गृह, सुख, बन्धु, क्षेत्र (खेत, जमीन) सवारी से हीन हो । वृथा घूमे । प्रश्न मार्ग ने संक्षेप में लिख दिया है कि सुख आदि (जिनका अर्थ चतुर्थ भाव से विचार किया जाता है) से हीन हो और शत्रुओं से भयभीत रहे। यदि पाँचवें घर में मान्दि हो तो दुःशील (सुशील का उलटा) तथा चलमति (जिसकी बुद्धि स्थिर न हो) हो। थोड़े पुत्र हों। स्वयं दीर्घायु न हो । प्रश्न मार्ग के अनुसार जातक के पुत्र न हों, उदर में शूल (दर्द या अन्य व्याधि) हो और गुरु आदि की निन्दा करे। फलदीपिका के अनुसार बुद्धिहीन या कुत्सित बुद्धि वाला होता है ॥३॥

यदि छठे घर में मान्दि हो तो बहुत से शत्रुओं को परास्त करे। भूतविद्या (भूत, प्रेत सम्बन्धी) का शौकीन हो और शूरवीर हो । प्रश्न मार्ग के अनुसार ऐसा जातक स्वयं अपना शत्रु होता है। फलदीपिका के अनुसार ऐसे जातक का पुत्र श्रेष्ठ होता है ।

यदि सप्तम में मान्दि हो तो कलह करने वाला हो और सब आदमियों का विरोध करे । उसकी कुत्सित (अच्छी नहीं) स्त्री हो। ऐसा व्यक्ति मन्द बुद्धि और कृतघ्न होता है । प्रश्नमार्ग के अनुसार ऐसा व्यक्ति अति कामी (काम वासना प्रधान) होता है, उसकी स्त्री मर जाती है। मूल में कलत्र हन्ता शब्द आया है जिसका अर्थ होता है अपनी स्त्री का घातक । ऐसा व्यक्ति अपने वंश को दूषण लगाता है अर्थात् अपने कुल की अपकीर्ति का कारण होता है। जातक विपेक्षण होता है। विषेक्षण का अर्थ है जिसकी दृष्टि में विष हो—जिसे देखे वह नष्ट हो जाय । लोक में विश्वास है कि कुछ व्यक्ति यदि

किसी को भोजन करते देख लें तो वह भोजन अपकार करता है। फलदीपिका के अनुसार जातक थोड़ी बुद्धि वाला, थोड़ा क्रोध युक्त होता है और उसकी अनेक भार्या होती हैं (यह पूर्व पत्नी के मरण और कामवासना प्रधान होने का लक्षण है) ॥४॥

यदि अष्टम में मान्दि हो तो उसके नेत्र तथा वक्त्र (चेहरा) में विकलता (रोग) हो तथा शरीर पुष्ट न हो। प्रश्न मार्ग के अनुसार जातक बुद्धिमान हो किन्तु शरीर में बहुत व्याधियाँ हों। दीर्घायु न हो। विष, अग्नि या शस्त्रसे मृत्यु हो। यदि नवम में मान्दि हो तो उसके गुरु, पिता या अन्य पितृतुल्य किसी की मृत्यु(समय से पूर्व) हो। ऐसा जातक नीच कर्म करता है। फलितार्थ यह है कि नवम भाव को बिगाड़ता है। प्रश्न मार्ग के अनुसार नवमस्थ मान्दि धर्म, तपस्या आदि से रहित करता है। फलदीपिका के अनुसार पुत्रभाव को भी हानि पहुँचती है। यदि दशम में मान्दि हो तो जातक का मान भंग होता है। उसे अनेक अशुभ (कष्टप्रद) बातों का सामना करना पड़ता है। वह अपने कुलोचित कर्म और आचार से हीन होता है और इससे उसका अहित होता है। प्रश्न मार्ग दशमस्थ मान्दि का फल अशुभ नहीं है। संभवतः इसलिये कि दशम उपचय स्थान है। उपचय में पापग्रह या पापग्रहों के उपग्रह खराब नहीं होते। प्रश्न मार्ग के अनुसार दशमस्थ मान्दि हो तो दूसरे का कार्य करे (नौकरी आदि करे) और उसको अच्छा यश प्राप्त हो। फलदीपिका के अनुसार दशमस्थ मान्दि होने से जातक ऐसे कार्य नहीं करता जिनका शुभफल हो। जातक अन्य लोगों को देने में कृपण होता है ॥५॥

यदि ग्यारहवें घर में गुलिक हो तो जातक अतिसुखी, धनाढ्य तेजस्वी और रूपवान् होता है किन्तु जातक का बड़ा भाई अल्पायु होता है। प्रश्नमार्ग के अनुसार जातक बहुत पुरुषार्थी होता है। वह धन, सवारी, सुख के पदार्थों से युक्त ऐश्वर्यवान् होता है। उसके बहुत से नौकर होते हैं। फलदीपिका के मत से भी बहुत शुभ फल है। पुत्रभाव के लिये भी एकादश स्थित मान्दि शुभ फलकारक है। यदि बारहवें घर में मान्दि हो तो जातक विषयविरहित वेष होता है। विषय से रहित वेष से क्या तात्पर्य? अर्थात् शौकीनी के वस्त्रादि धारण न करे। दीनवाणी बोले। मूल में निखिलधनहृरः शब्द आया है जिसका अर्थ कुछ टीका-कारों ने किया है कि जातक और लोगों का धन हरण करता है। परन्तु फल दीपिका में लिखा है कि व्यय भाव में मान्दि हो तो विषय विरहित हो (सांसारिक विषयों–भोगों से वंचित हो), दीन हो और बहुत व्यय करे। बारहवाँ घर जातक का व्यय स्थान है। मान्दि पाप है। तब व्यय में पाप होने से जातक अन्य लोगों का धन कैसे हरेगा? ऐसा करने से तो जातक को लाभ होगा। व्ययस्थ

मान्दि जातक को लाभ कैसे करायेगा। इस कारण "निखिलधनहरः" से आशय है कि जातक के धन का व्यय या हरण या नाश होता है। प्रश्न मार्ग के अनुसार द्वादश में गुलिक होने से नाखून भद्दे होते हैं, दुःस्वप्न (खराव स्वप्न) आते हैं और जातक विकल होता है। विकलता मानसिक भी हो सकती है; शारीरक भी (रोग आदि के कारण) ॥६॥

मान्दित्रिकोणोपगते विलग्ने तद्द्वादशांशे यदि वा नवांशे।
मान्द्यन्विता मान्दियुतर्क्षनाथाः सर्वे सदाऽनिष्टकरा भवन्ति ॥७॥

संयुक्ते यदि भास्करेण गुलिके जातः पितृद्वेषको
मातृक्लेशकरस्तु शीतरुचिना भौमेन वीतानुजः।
सोन्मादः शशिजेन देवगुरुणा पाखण्डको दूषकः
शुक्रेण प्रमदाकृतामयहतो नीचाङ्गनावल्लभः ॥८॥

जातः सौख्यरतस्तु मन्दतनये मन्देन युक्ते यदा
सर्पेणैव विषप्रदस्तु शिखिना वह्निप्रदो जायते।
भिक्षुः स्याद्विषनाडियुक्तगृहगे भूपालकोऽपि ध्रुवं
जातस्योपखगान्विता गगनगाः कुर्वन्त्यनिष्टं फलम् ॥९॥

ऊपर के श्लोकों में मान्दि का भाव फल वताया। अब मान्दि से सम्बन्धित कुछ अन्य योगों का विवेचन करते हैं। मान्दि का (३,६,१०, ११ स्थानों के अतिरिक्त अशुभ फल होता है यह ऊपर के श्लोकों से स्पष्ट है। मान्दि स्वयं तो दोषकारक है ही यह अपने सम्वन्ध, सम्पर्क आदि से अन्य ग्रहों को भी दूषित करता है यह बताते हैं। कौन कौन से मान्दि प्रभाव से अनिष्टकर होते हैं उनकी व्याख्या करते हुए कहते हैं :—

(i) जो ग्रह मान्दि से त्रिकोण में लग्न में हों। (ii) जो मान्दि के द्वादशांश में हो अर्थात् द्वादशांश कुण्डली में मान्दियुत हों। (iii) जो मान्दि के नवांश में हों अर्थात् नवांश कुण्डली में मान्दियुत हों। (iv) जो ग्रह मान्दियुत हो अर्थात् उसी राशि में हों जिसमें मान्दि हो (v) मान्दि जिस राशि में हो उसका स्वामी।

अव मान्दि किसी ग्रह से युक्त हो तो क्या प्रभाव उत्पन्न करता है यह कहते हैं। केवल शनि यदि मान्दि से युत हो तो शुभ फल है, अन्यथा किसी ग्रह

की मान्दि से युति दुष्प्रभाव ही उत्पन्न करती है। मान्दि यदि (i) सूर्य से युत हो तो जातक पिता से द्वेष करता है (ii) चन्द्रमा से युत हो तो जातक की माता के लिये क्लेशकारक है (iii) मंगल के साथ हो तो छोटे भाई से रहित हो (iv) बुध से युत हो तो उन्माद (पागलपन, बहम, दिमाग की बीमारी, मानसिक असंतुलन, अत्यन्त चिन्ता या उद्वेग आदि, क्योंकि बुध स्नायु मंडल का अधिष्ठाता है) (v) यदि बृहस्पति के साथ हो तो स्वयं पाखण्डी (स्वयं अधार्मिक किन्तु बाहर से धर्म की दुहाई देने वाला) तथा दूसरों को दोष लगाने वाला हो (vi) यदि शुक्र के साथ हो तो स्त्रियों के समागम से जो बीमारियां होती हैं (यथा सुजाक, आतशक) उनसे व्याधियुक्त तथा नीच स्त्रियों का प्यारा अर्थात् निम्न श्रेणी की स्त्रियों से सम्बन्ध करने वाला होता है। (vii) शनि से युत हो तो सौख्ययुक्त अर्थात् सुखी हो (viii) राहु के साथ हो तो औरों को विष देने वाला (जहर खिलाकर मारने वाला) (ix) और यदि केतु से युत हो तो आग लगाने वाला होता है।

गुलिक जिस ग्रह के साथ बैठ जाये (शनि के अतिरिक्त) या जिस भाव में बैठ जाये तत्सम्बन्धी अनिष्ट फल करता है। यदि मान्दि विषनाड़ी युक्त गृह में हो तो चाहे राजा हो वह भी भिक्षुक हो जाता है। कौन कौन सी विषनाड़ी हैं इनके लिये देखिये अध्याय ५, श्लोक ११२। मूल में विषनाड़ीयुक्तगृहगे यह शब्द आये हैं। इसमें 'गृहगे' शब्द विचारणीय है। प्रत्येक नक्षत्र में चार-चार विष घटी (१ घटी=२४ मिनिट) दी गई हैं। जन्मकालिक नक्षत्र की विष घटी में यदि मान्दि पड़े तो उपर्युक्त फल कहना चाहिये। बहुत से टीकाकारों ने विष-नाड़ीयुक्तगृहगे विषनाडी से युक्त गृह या विषनाड़ी से प्रभावित गृह यह लिखकर टीका कर दी है। परन्तु 'गृह' शब्द प्रयुक्त करने का क्या प्रयोजन है यह स्पष्ट नहीं किया है। एक मराठी टीकाकार ने सीधा अर्थ यह किया है कि विषनाड़ी युक्त यदि गुलिक हो। इसमें ग्रंथकार ने जो 'गृह' शब्द का प्रयोग किया उसकी सार्थकता नहीं होती। 'गृहगे' का तात्पर्य क्या है, इसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है। अश्विनीनक्षत्र में ५० घटी से ५४ घटी तक विषघटी का समय है। अब यदि मान्दि काल (जिस घटी पल को इष्ट मानकर आप मान्दि स्पष्ट करेगें वह ५० घड़ी से ५४ घड़ी तक अश्विनी नक्षत्र के जब हों तब आयें) विषघटी में पड़े तो उपर्युक्त फल होगा। मान लीजिये अश्विनी नक्षत्र कल ३० घटी बीत चुका और आज अश्विनी नक्षत्र ३० घटी शेष है तो ३० घटी कल बीत चुके इस कारण आज २० (५०–३०) घटी से २४ (५४–३०) घटी तक विष घटी हुई। अब यह देखिये कि २० घटी–श्री सूर्योदयादिष्टम् पर लग्न स्पष्ट क्या हुआ और २४ घटी श्री सूर्योदयादिष्टम् पर क्या लग्न आया। यह दोनों लग्न

(राशियां) विषनाड़ीयुक्त गृह हुए। चार घड़ी के समय के अन्तर से दो लग्न स्पष्ट किये हैं। हो सकता है एक ही राशि में पड़ें, हो सकता है दो राशियों में पड़ें। अब इन राशि या राशियों में यदि मान्दि हो तो विषनाडियुक्तगृहगे हुआ। यह गृहगे लिखने का प्रयोजन है।

फलदीपिका में 'गुलिकस्त्याज्ययुतश्चेत्' गुलिक त्याज्य घटी (विषघटी) में हो केवल यह लिखा है। जातकपारिजात में शनि युक्त मान्दि का फल अच्छा दिया है। किन्तु फलदीपिका के अनुसार मान्दि यदि शनि के साथ हो तो अल्पायु, कुष्ठ आदि व्याधियों से पीड़ित हो। गुलिक राहु के साथ तो जातक स्वयं विष रोगी हो (जिस रोग से शरीर में विष संचार हो जाये फोड़े, भोजन आदि से। यदि मान्दि केतु के साथ हो तो जातक स्वयं वह्निपीडित हो।

अन्य उपग्रहों का फल यहां नहीं दिया गया है। उनके लिये देखिये भावार्थ-बोधिनी फलदीपिका, पृ० ६११–६१६ तथा प्रश्नमार्ग, अध्याय १४ ।।७-९।।

अब्दफल

६० वर्ष के काल को—६० सवत्सरों में विभाजित किया गया है। किस संवत्सर का क्या नाम है यह प्रतिवर्ष के पंचांग में दिया गया है। इन संवत्सरों का नाम प्रभव से प्रारंभ होता है। ६०वाँ संवत्सर क्षय कहलाता है। ६१वें से पुनः प्रभव प्रारंभ होता है और यही क्रम चलता रहता है। प्रत्येक संवत्सर में जन्म होने का क्या फल होता है, यह बताते हैं। एक वर्ष में लाखों व्यक्ति जन्म लेते हैं—उनके फल में क्या समानता होगी यह शंका स्वाभाविक है। यही बात उत्तरायण में जन्म होने का यह फल, दक्षिणायन में यह आदि के विषय में कही जा सकती है। परन्तु शास्त्रकारों ने किसी विषय को छोड़ा नहीं है। अब प्रत्येक संवत्सर में जन्म होने का फल कहते हैं।

अथ संवत्सरफलम्।

प्रभवशरदि जातः साहसी सत्यवादी
सकलगुणसमेतः कालविद्धर्मशाली।
विभवशरदि कामी निर्मलो नित्यतुष्टः
प्रबलधनसमेतो बन्धुविद्यायशस्वी ।।१०।।

शुक्लाब्दे परदारको गतबलस्त्यागी मनस्वी भवे-
न्मन्त्री कार्यपरोऽतिभाषणपटुर्जातः प्रमोदाभिधे।
धर्मी दानपरायणः सुतधनः शान्तः प्रजोत्पत्तिजो
नीतिज्ञो निपुणः कृपालुरनिशं चाङ्गीरसाब्दे धनी ।।११।।

जातः श्रीमुखवत्सरे परवधूलोलः शुचिर्वित्तवान्
योगी राजकरो महाधनबलख्यातो भवाब्दे भवः ।
लुब्धश्चञ्चलधीः कृशामयतनुः क्रोधी युवाब्दे भिषक्
जातो धातृभवोऽन्यदारनिरतः कार्यार्थवादी शठः ॥१२॥

(१) प्रभव–साहसी, सत्यवादी, सब गुणों से युक्त, कालज्ञ, धार्मिक। (२) विभव, कामी, निर्मल, सदैव तुष्ट रहने वाला अर्थात् संतोषी, अत्यन्त धनी, विद्वान्, बन्धुओं से युक्त, यशस्वी (३) शुक्ल–परस्त्रीगामी गतबल (जिसके बल का क्षय हो जाये), त्यागी, मनस्वी। (४) प्रमोद–मंत्री (किसी उच्च पद पर आरूढ़), कार्य में संलग्न (अर्थात् निष्क्रिय या आलसी नहीं), भाषण में अत्यन्त प्रवीण, (५) प्रजापति—धार्मिक, दानपरायण, पुत्र और धन से युक्त, शान्त। (६) अंगिरा–नीतिज्ञ, निपुण, सदैव कृपालु, धनी। (७) श्रीमुख–दूसरे की स्त्रियों से भोग की अभिलाषा के कारण चंचल चित्त, पवित्र, धनी। (८)भाव–योगी, राजा या राज्य का कार्य करने वाला, अत्यन्त धनी, अत्यन्त बलशाली, विख्यात। (९) युवा–लोभी, चंचल बुद्धि वाला (जिसका मुस्तकिल मिज़ाज न हो) दुर्वल शरीर वाला, व्याधि युक्त, क्रोधी, वैद्यक का कार्य करने वाला। (१०) धाता–दूसरों की स्त्रियों में आसक्त, शठ और कार्यार्थवादी होता है। कार्यार्थवादी का क्या अर्थ ? किस बात को बढ़ा चढ़ाकर कहना अर्थवाद कहलाता है। परन्तु अर्थवाद का यह अर्थ यहाँ संगत नहीं होता। अतः कार्य और अर्थ के लिये या कार्यार्थ के लिये जो वाद-विवाद करे यही अर्थ संगत होगा। इस संवत्सर में जन्म होने का फल 'शठ' भी दिया है। शठ प्रायः विवाद करते हैं यह अनुभव सिद्ध है ॥१०-१२॥
यवनजातक में भी इन संवत्सरों में उत्पन्न होने का फल कहा है। कहीं कहीं जातकपारिजात तथा यवनजातक के फलादेश में महान् अन्तर है :—

प्रसूतिः सर्ववस्तूनां पुत्रसम्पत्तिरेव च ।
दीर्घायुर्भोगसम्पन्नः प्रभवे जायते नरः ॥
उत्पन्नयुक्तभोगी स्यात् कृष्णश्चारुणलोचनः ।
पण्डितो राजपूज्यश्च विभवाब्दे नरो भवेत् ॥
सुभगः शान्तिमान् भोगी पुत्रदारसमन्वितः ।
विद्वान् सर्वगुणोपेतः शुक्लसंवत्सरे भवेत् ॥

प्रभवादि संवत्सर बृहस्पति के राशि भोग की गणना पर आधारित हैं। जिज्ञासु पाठकों को सूर्यसिद्धांत तथा भास्कराचार्यनिर्मित ग्रंथों का अवलोकन करना चाहिये।

सदानन्दयिता सत्यवादी वै पश्चिमो नरः।
स्वर्णकान्तिः सुखी मानी प्रमोदे जायते शिशुः॥
प्रजानां पालको धर्मो कृपासत्यसमन्वितः।
देवब्राह्मणभक्तश्च प्रजापतिसमुद्भवः॥
कामी सुखी च मानी च भोगवान् प्रियवल्लभः।
दीर्घायुर्बहुपुत्रश्च त्वङ्गिरोवत्सरे भवेत्॥
श्रीमान् सुष्ठुमतिः शान्तः सोपरागः शुभप्रियः।
दीर्घायुर्बहुपुत्रश्च श्रीमुखेऽब्दे भवेन्नरः॥
भावसंवत्सरे जातो नरो भवति सौख्यभाक्।
यशस्वी दाननिरतः सर्वलक्षणसंयुतः॥
कीर्तिसर्वगुणोपेतो दीर्घायुर्दानतत्परः।
शान्तः शुभमतिः शौचो युवाब्दे पुरुषो भवेत्॥
दीर्घायुः सुभगो दक्षो वेदाध्ययनतत्परः।
सरूपो जायते मर्त्यो धातृसंवत्सरे यदि॥

देखिये धाता (या धातृ) संवत्सर का फल जातकपारिजात में कितना निकृष्ट और यवनजातक में कितना उत्कृष्ट दिया गया है॥१०-१२॥

श्रीमानीश्वरवत्सरे बलमतिर्जातो गुणग्राहकः
सत्कर्मा बहुधान्यवत्सरभवो भोगी वणिग्वृत्तिमान्।
क्रूरः पापरतः प्रमाथिशरदि क्रोधी विबन्धुः सुखी
जातो विक्रमवत्सरे यदि धनी सेनापतिः शौर्यवान्॥१३॥

वृषशरदि दरिद्रो वीतलज्जो विकर्मा
दिनकरसमतेजोरूपवान् चित्रभानौ।
यदि निजकुलविद्याचारधर्मःसुभानौ
बहुधनबलशाली तारणाब्दे विवेकी॥१४॥

जातः पार्थिववत्सरे नरपतिः श्रीमानतुल्यः सुखी
कामी भीरुरशीलवित्तगुणवान् पापी व्ययाब्दे यदि।
वाग्मी सर्वजिदब्दकेऽतिबलवान् शास्त्री गुणी तत्त्ववित्
सम्पन्नो यदि सर्वधारिजनितः शिल्पी नृपालप्रियः॥१५॥

जातः श्रीमुखवत्सरे परवधूलोलः शुचिर्वित्तवान्
योगी राजकरो महाधनबलख्यातो भवाब्दे भवः ।
लुब्धश्चञ्चलधीः कृशामयतनुः क्रोधी युवाब्दे भिषक्
जातो धातृभवोऽन्यदारनिरतः कार्यार्थवादी शठः ॥१२॥

(१) प्रभव–साहसी, सत्यवादी, सब गुणों से युक्त, कालज्ञ, धार्मिक । (२) विभव, कामी, निर्मल, सदैव तुष्ट रहने वाला अर्थात् संतोषी, अत्यन्त धनी, विद्वान्, बन्धुओं से युक्त, यशस्वी (३) शुक्ल–परस्त्रीगामी गतबल (जिसके बल का क्षय हो जाये), त्यागी, मनस्वी । (४) प्रमोद–मंत्री (किसी उच्च पद पर आरूढ़), कार्य में संलग्न (अर्थात् निष्क्रिय या आलसी नहीं), भाषण में अत्यन्त प्रवीण, (५) प्रजापति—धार्मिक, दानपरायण, पुत्र और धन से युक्त, शान्त । (६) अंगिरा–नीतिज्ञ, निपुण, सदैव कृपालु, धनी । (७) श्रीमुख–दूसरे की स्त्रियों से भोग की अभिलाषा के कारण चंचल चित्त, पवित्र, धनी । (८)भाव–योगी, राजा या राज्य का कार्य करने वाला, अत्यन्त धनी, अत्यन्त बलशाली, विख्यात । (९) युवा–लोभी, चंचल बुद्धि वाला (जिसका मुस्तकिल मिजाज न हो) दुर्बल शरीर वाला, व्याधि युक्त, क्रोधी, वैद्यक का कार्य करने वाला। (१०) धाता–दूसरों की स्त्रियों में आसक्त, शठ और कार्यार्थवादी होता है । कार्यार्थवादी का क्या अर्थ ? किस बात को बढ़ा चढ़ाकर कहना अर्थवाद कहलाता है । परन्तु अर्थवाद का यह अर्थ यहाँ संगत नहीं होता । अतः कार्य और अर्थ के लिये या कार्यार्थ के लिये जो वाद-विवाद करे यही अर्थ संगत होगा । इस संवत्सर में जन्म होने का फल 'शठ' भी दिया है । शठ प्रायः विवाद करते हैं यह अनुभव सिद्ध है ॥१०-१२॥ यवनजातक में भी इन संवत्सरों में उत्पन्न होने का फल कहा है । कहीं कहीं जातकपारिजात तथा यवनजातक के फलादेश में महान् अन्तर है :—

प्रसूतिः सर्ववस्तूनां पुत्रसम्पत्तिरेव च ।
दीर्घायुर्भोगसम्पन्नः प्रभवे जायते नरः ॥
उत्पन्नयुक्तभोगी स्यात् कृष्णश्चारुणलोचनः ।
पण्डितो राजपूज्यश्च विभवाब्दे नरो भवेत् ॥
सुभगः शान्तिमान् भोगी पुत्रदारसमन्वितः ।
विद्वान् सर्वगुणोपेतः शुक्लसंवत्सरे भवेत् ॥

प्रभवादि संवत्सर वृहस्पति के राशि भोग की गणना पर आधारित हैं। जिज्ञासु पाठकों को सूर्यसिद्धांत तथा भास्कराचार्यनिर्मित ग्रंथों का अवलोकन करना चाहिये ।

सदानन्दयिता सत्यवादी वै पश्चिमो नरः ।
स्वर्णकान्तिः सुखी मानी प्रमोदे जायते शिशुः ॥
प्रजानां पालको धर्मो कृपासत्यसमन्वितः ।
देवब्राह्मणभक्तश्च प्रजापतिसमुद्भवः ॥
कामी सुखी च मानी च भोगवान् प्रियवल्लभः ।
दीर्घायुर्बहुपुत्रश्च त्वङ्गिरोवत्सरे भवेत् ॥
श्रीमान् सुष्ठुमतिः शान्तः सोपरागः शुभप्रियः ।
दीर्घायुर्बहुपुत्रश्च श्रीमुखेऽब्दे भवेन्नरः ॥
भावसंवत्सरे जातो नरो भवति सौख्यभाक् ।
यशस्वी दाननिरतः सर्वलक्षणसंयुतः ॥
कीर्तिसर्वगुणोपेतो दीर्घायुर्दानतत्परः ।
शान्तः शुभमतिः शौचो युवाब्दे पुरुषो भवेत् ॥
दीर्घायुः सुभगो दक्षो वेदाध्ययनतत्परः ।
सरूपो जायते मर्त्यो धातृसंवत्सरे यदि ॥

देखिये धाता (या धातृ) संवत्सर का फल जातकपारिजात में कितना निकृष्ट और यवनजातक में कितना उत्कृष्ट दिया गया है ॥१०-१२॥

श्रीमानीश्वरवत्सरे बलमतिर्जातो गुणग्राहकः
सत्कर्मा बहुधान्यवत्सरभवो भोगी वणिग्वृत्तिमान् ।
क्रूरः पापरतः प्रमाथिशरदि क्रोधी विबन्धुः सुखी
जातो विक्रमवत्सरे यदि धनी सेनापतिः शौर्यवान् ॥१३॥

वृषशरदि दरिद्रो वीतलज्जो विकर्मा
दिनकरसमतेजोरूपवान् चित्रभानौ ।
यदि निजकुलविद्याचारधर्मःसुभानौ
बहुधनबलशाली तारणाब्दे विवेकी ॥१४॥

जातः पार्थिववत्सरे नरपतिः श्रीमानतुल्यः सुखी
कामी भीरुरशीलवित्तगुणवान् पापी व्ययाब्दे यदि ।
वाग्मी सर्वजिदब्दकेऽतिबलवान् शास्त्री गुणी तत्त्ववित्
सम्पन्नो यदि सर्वधारिजनितः शिल्पी नृपालप्रियः ॥१५॥

(११)ईश्वर–श्रीमान् (धनिक) बलवान्, बुद्धिमान्, गुणग्राहक। (१२) बहु-धान्य–सत्कर्म करने वाला, भोगी वणिक् वृत्ति (व्यापार करने) वाला। (१३) प्रमाथि–क्रूर, पार कार्यों में संलग्न क्रोधी, बन्धुरहित सुखी। (१४) विक्रम–धनी, सेनापति, शूरवीर(१५)। वृष–दरिद्र, निर्लज्ज, कर्महीन (निष्क्रिय, आलसी) (१६) चित्रभानु–सूर्य के समान तेजस्वी, रूपवान्। (१७) सुभानु–अपने कुल के अनुरूप विद्या, आचार और धर्म से युत। (१८) तारण–धनाढ्य, बलवान् विवेकी। (१९) पार्थिव–नरपति (अब राजा रहे नहीं, इस कारण उच्च पदारूढ, धनवान्, अतुल्यः (जिसकी बराबरी का दूसरा न हो), सुखी। (२०) व्यय–कामी, डरपोक, शील, धन और गुण से रहित। पापी एक पुस्तक में 'गुणवान्' के स्थान में पाठान्तर है 'पणवान्'। उसका अर्थ होगा जुआरी। (२१) सर्वजित्–वाग्मी, अत्यन्त बलवान्, शास्त्रज्ञ, गुणी, तत्त्ववेत्ता। (२२) सर्वधारी–सम्पन्न, शिल्पी, राजा का प्रिय।

यवनजातक के अनुसार

सर्वज्ञः सर्वकार्येषु गुरुभक्तोऽतिसुन्दरः।
ईश्वरे जायते मर्त्यः सदा क्रोधपरो भवेत्॥

वापीकूपतडागादिक्रतुधर्मसमन्वितः।
दाता बहुसमृद्धश्च बहुधान्ये प्रजायते॥

सेनानी नृपमंत्री च वरलब्धपिनाकधृक्।
शास्त्रज्ञः संग्रही चैव प्रमाथी वत्सरे भवेत्॥

उग्रप्रतापशीलश्च परराज्यविमर्दकः।
पापकर्मरतः शूरो विक्रमाब्दे भवेन्नरः॥

मन्दोलसो महामूर्खो भारवाही च केवलम्।
परकार्यरतो जातो वृषाब्दे बालको भवेत्॥

चित्रभानुसमुद्भूतो नरो विद्यानिधिर्भवेत्।
नीतिमान् धृतिमान् श्रीमान् स्वामिभक्तः प्रियंवदः॥

पिंगदृक् पिंगकेशश्च गौरः श्वेतो विभुर्नृपः।
शुभानुवत्सरे जातो कान्तिमानतिदुर्जनः॥

धूर्तो पापरतः शूरो दरिद्रो निष्ठुरः खलः।
चञ्चलश्चपलो धृष्टस्तारणाब्दे नरो भवेत्॥

मृदुभाषी राजमान्यो राजसः शुभलक्षणः।
प्रांशुर्धनसमृद्धश्च पार्थिवे वत्सरे नरः॥

द्यूतमद्यरतः स्त्रीणां व्यसने धनवर्जितः ।
व्ययसंवत्सरे जातश्चौरपापमतिर्भवेत् ॥
स्वकर्मनिरतः शास्त्रपापरोगविचक्षणः ।
ह्रस्वः स्थूलतनुः श्यामः सर्वजित्युद्भवो नरः ॥
बहुभृत्यो धनी कामी योगी मिष्टान्नभुक् प्रभुः ।
सर्वधारिणि ना जातः सर्वो धरपरो भवेत् ॥

विज्ञजन अवलोकन करेंगे कि किसी संवत्सर में जन्म होने का फल यवनजातक में अधिक विस्तृत रूप से दिया गया है । यद्यपि जन्मकुण्डली का फलादेश करते समय कोई भी दैवज्ञ जन्म के संवत्सर का विचार नहीं करता है परन्तु विद्या विनोद के लिये भिन्न भिन्न शास्त्रकार एक ही विषय में क्या कहते हैं यह जानना आवश्यक है ॥१३-१५॥

शोकी दुष्टपरोऽतिपापनिरतः क्रूरो विरोध्यब्दके
मायावी मदनातुरो विकृतिजो मन्त्रक्रियातन्त्रधीः ।
निर्मोही विगुणोऽतिदीनवचनः पापी खराब्दे खलः
सर्वानन्दकरो नृपप्रियनरो मन्त्रार्थविन्नन्दने ॥१६॥

विजयशरदि धर्मी सत्यसम्पन्नशाली
यदि जयशरदि स्याद्राजतुल्यो नृपो वा ।
मदनरतिविलोलो मन्मथाब्दे जितारि-
र्गुणधनरहितः स्याद्दुर्मखाब्दे विशीलः ॥१७॥

दुष्टात्मा यदि हेमलम्बिजनितः कृष्यादिकर्मोत्सुकः
श्रीमान्विप्रजनाश्रितः फलपरित्यागी विलम्ब्यब्दके ।
रोगी भीरुरवित्तवान् चलमतिर्नीचो विकार्यब्दके-
शार्वर्यामतिवित्तभोगसुमनाः सत्यव्रताचारवान् ॥१८॥

(२३) विरोधी, शोकग्रस्त, दुष्ट व्यक्तियों को आश्रय देने वाला, अत्यन्त पाप में निरत, क्रूर । एक पुस्तक में पाठान्तर है 'दुष्टरतः' । उसका अर्थ होगा दुष्ट जनों की संगति करने वाला । (२४) विकृत—मायावी, कामातुर (सदैव स्त्री संभोग की इच्छा रखने वाला) मांत्रिक (मंत्रशास्त्री) तथा तंत्रविद्या का प्रेमी। वैसे तन्त्र शब्द के अनेक अर्थ हैं । किन्तु यहाँ आशय है शास्त्रीय विधान द्वारा पूजा या क्रिया जिससे आराध्यदेव (या देवी) से सिद्धि (आंशिक या पूर्ण) प्राप्त

की जाती है। (२५) खर–निर्मोही, गुणहीन, दीन वचन बोलने वाला, पापी, खल। (२६) नन्दन--सब प्रकार के आनन्द करने वाला (या दूसरों को आनन्द देने वाला), राजा का प्रिय, मंत्र और अर्थ का ज्ञाता (या मंत्रों के अर्थ का ज्ञाता।) (२७) विजय--धार्मिक, सत्याभिलाषी, सम्पन्न। (२८)जय–राजा के तुल्य या राजा हो। (२९) मन्मथ–कामासक्त और जितारि (जीत लिया है जिसको शत्रुओं ने अथवा अपने शत्रुओं को जीतने वाला)। शत्रुओं को जीतने वाला यह अर्थ हमें विशेष संगत प्रतीत होता है। यवनजातक के मतानुसार मन्मथ संवत्सर में जन्म होने का निकृष्ट फल ही है। (३०) दुर्मुख–गुण, धन और शील से रहित। (अर्थात् सुशीलता आदि गुण उसमें नहीं होते)। (३१)हेमलम्ब--दुष्टात्मा, कृषि (खेती) आदि के कार्य के लिये उत्सुक (कृषि कार्य करने वाला या कृषि कार्य की इच्छा रखने वाला)। (३२)विलम्ब–श्रीमान् (धनसम्पन्न) विप्राश्रित फलपरित्यागी। विप्राश्रित शब्द के दो अर्थ होते है (i) ब्राह्मणों का आश्रित (ii) ब्राह्मण जिसके आश्रित हों। हमारे विचार से दूसरा अर्थ विशेष उपयुक्त है। फलपरित्यागी का क्या अर्थ? जो भगवान् ने गीता में कहा है कर्मण्ये-वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'। (३३) विकार्य–नीच, डरपोक, निर्धन, रोगी, चलमति। (जिसकी बुद्धि किसी एक बात पर स्थिर न रहे)। (३४) शार्वरी-अत्यन्त धनी, अत्यन्त भोग (सांसारिक सुखों का) करने वाला, अच्छे मन का (दुष्ट नहीं), सत्यव्रती, सदाचारी।

अब विद्याविनोद रसिकों के लिये यवनजातक का मत दिया जाता है।

कुटुम्बकलहं कर्ता परदाररतः सदा।
सर्वलोकविरोधी च विरोधी वर्षसम्भवः॥
कृष्णवर्णतनुः श्यामः कलालोलसुनिर्गुणः।
विकृष्टपर्वा रूक्षश्च नरो विकृतिवर्षजः॥
धूलिधूसरसर्वाङ्गो दीर्घायुः परसत्यकृत्।
कामेश्वरश्च निर्लज्जः खरसंवत्सरे नरः॥
सदानन्देन सन्तुष्टः प्रपाकूपतडागकृत्।
अन्नदानी सुशीलश्च नरो नन्दनवर्षजः॥
शूरः समरदुर्धर्षः ख्यातकीर्तिर्यशोन्वितः।
पृथ्वीपतिर्जयी भोगी विजयाब्दे नरो भवेत्॥
विद्वान्मानी लोकमानी सर्वशास्त्रविशारदः।
पूजां प्राप्नोति सर्वत्र सर्वशास्त्रविशारदः॥
उत्पन्नभोगभोक्ता च कामी च प्रियवादिनः।
सुखाभरणशोभाढ्योः मन्मथे वत्सरे भवेत्॥

शठः क्रूरमतिर्दुष्टो निर्लज्जो वृषलीपतिः ।
वक्त्रास्यबाहुचरणो दुर्मुखाब्दे भवेन्नरः ॥
सुवर्णधनधान्यादिपशुवस्त्रसमृद्धिमान् ।
कान्तापत्यसुखाढ्यश्च हेमलम्बसमुद्भवः ॥
मन्दो लुब्धोऽलसो दुःखी श्लेष्मलश्चापि वञ्चकः ।
स्वकार्याभिरतः पापी विलंबे वत्सरे शिशुः ॥
अविवेकी महागर्वी विशीलः कुशलः खलः ।
विकारिवत्सरे जातः प्राणी भवति वञ्चकः ॥
वणिक् शूरः सुहृद्द्वेषी दीर्घः कृशतनुस्तथा ।
निद्राघूर्णितनेत्रश्च शार्वर्यब्दसमुद्भवः ॥१६-१८॥

शान्तोदारकृपाकरः प्लवभवः शूरः स्वधर्माश्रितो
जातः स्त्रीजनवञ्चितः शुभकृतिः प्राज्ञः शुभाङ्गः सुधीः ।
ज्ञानी शोभकृतिः क्षितीशगुणवान् विद्याविनोदप्रियो
दुर्भोगी परदारकः शठमतिः क्रोध्यब्दजः क्रोधयुक् ॥१९॥

मानी हास्यरसप्रियो गुणधनश्लाघी च विश्वावसौ
दुष्टाचारपरः पराभवशरज्जातः कुलध्वंसकः ।
कामी बन्धुरतः प्लवङ्गजनितो बालप्रियो मन्दधी-
र्देवाराधनतत्परोऽतिसुभगः शौर्यान्वितः कीलके ॥२०॥

शान्तः सर्वजनप्रियोऽतिधनिकः सौम्याब्दजो धैर्यवान्
नानाशास्त्रविशारदो विकलधीः साधारणाब्दे नरः ।
आशालुश्च विरोधकृद्भवनरः क्रोधी दरिद्रोऽटनो
दुश्शीलः परिधाविवत्सरभवः पारुष्यवाग्वित्तवान् ॥२१॥

(३५) प्लव–शान्त, उदार, कृपा करने वाला, शूर, अपने धर्म का पालन करने वाला। (३६) शुभकृत्–स्त्री जन वंचित (स्त्रियाँ जिसको धोखा दें) प्राज्ञ, शुभांग (सुन्दर अंग वाला), विद्वान्। (३७) शुभकृति–ज्ञानी, भूपति, गुणवान्, विद्या विनोद प्रिय। (३८) क्रोधी–दुर्भोगी (अधम वस्तुओं का भोग करने वाला)। दूसरे की स्त्रियों में रत, क्रोधी, दुष्ट बुद्धि। (३९) विश्वावसु–मानी हास्य रस प्रिय (हँसी, मज़ाक पसन्द) गुण और धन की प्रशंसा करने वाला (अर्थात् अन्य जनों के गुण और धन की प्रशंसा करे, ईर्ष्यालु न हो)। (४०) पराभव–दुष्ट

आचरण वाला, कुलध्वंसक। (४१) प्लवंग–कामी, वन्धुरत (बन्धुओं का प्रेमी) मन्दबुद्धि, बच्चों का प्यारा (या बच्चे प्यारे हों जिसको) (४२) कीलक—देखने में सुन्दर शूरवीर। (४३) सौम्य–शान्त सर्वजनप्रिय, अत्यन्त धनिक। (४४) साधारण—अनेक शास्त्रों का पंडित, विकल बुद्धि वाला (४५) विरोधकृत्-क्रोधी, दरिद्री, इधर उधर घूमने वाला, सदैव आशा रखने वाला। (४६) परिधावी–दुःशील (सुशील का उलटा) धनी किन्तु कठोर (तीक्ष्ण) वचन बोलने वाला।

अब यवनजातक का मत दिया जाता है।

चंचलश्चपलः कामी परसेवारतः सदा।
हलत्राता ह्रस्वतनुर्जातो वर्षे प्लवाख्यके॥
शुभगः शुभकामी च विद्याधर्मपरायणः।
दीर्घायुर्धनपुत्रार्थी शुभकृतवर्षसंभवः॥
सर्वत्र विजयी कामी चारुरूपो गुणान्वितः।
कृपालुः शोभकृत् वर्षे जातो भवति मानवः॥
पिंगाक्षो राजकोशश्च मन्दगामी स्त्रीलोलुपः।
परकार्यविहन्ता च क्रोधी संवत्सरे नरः॥

(उपर्युक्त श्लोक के द्वितीय चरण में पंचम अक्षर लघु होना चाहिये किन्तु ऐसा नहीं है। यह दोष है।)

विश्वावसुसमुद्भूतः प्रज्ञावांश्च सुखी भवेत्।
शान्तः सर्वगुणोपेतो दाता मिष्टान्नभुक् शुचिः॥
परदाररतश्चैव शठः स्वपरबान्धवः।
पराभवसमुद्भूतः धनधान्यविवर्जितः॥
प्लवंगसंवत्सरे जातो नरो भवति किल्विषी।
खलः पापरतो दुष्टः स्वाचारहतकोऽशुचिः॥
मध्यरूपधरः कामी क्षुत्पिपासार्दितो नरः।
कीलको जनिते वर्षे स्थूलहृत्कूटमन्मथः॥
पंडितो धनभोगी च भूदेवातिथिपूजकः।
तापसः कृशकृद्देहो नरः सौम्ये प्रजायते॥
नीचवृत्तिः शुचिः कामरहितः परदेशगः।
देवावलोककः क्रोधी साधारणसमुद्भवः॥
विरोधी सर्वलोकानां पितृभक्तिविवर्जितः।
विरोधिकृज्जातनरो जातिसेवाकरो भवेत्॥

विद्वान्सर्वकलाभिज्ञो व्यापारकुशलः सुधीः ।
राजमानी दानशीलः परिधावी समुद्भवः ।।

पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जाता है कि परिधावी वर्ष में पैदा होने का फल दुःशील, पारुष्य वाक् आदि है । किन्तु यवनजातक के अनुसार कितना अच्छा फल है । अब जातक पारिजात के अनुसार अन्य वर्षों के फल का विचार कीजिये ।।१९-२१।।

जातो बन्धुविरागकृत् परवधूलोलः प्रमादीजनि-
र्मोदात्मा निखिलागमश्रुतिपरश्चानन्दजस्तत्त्ववित् ।
पापी राक्षसवत्सरे यदि वृथालापोऽपकारी सतां
दाता दानगुणान्वितोऽनलभवः शान्तः सदाचारवान् ।।२२।।

योगी पिङ्गलवत्सरे जितमना जातस्तपस्वी भवेत्
कालज्ञो यदि कालयुक्तशरदि श्रीभोगसत्कर्मवान् ।
सिद्धार्थो गुरुदेवभक्तिनिरतः सिद्धार्थिजातः सुधी-
र्जारो रौद्रसमुद्भवः कुटिलधीर्मानी दुराचारवान् ।।२३।।

कामी दुर्गतिवत्सरे जडमतिः शोकाभितप्तः खलः
स्थूलोरूदरबाहुमस्तकतनुः स्याद्दुन्दुभौ भोगवान् ।
प्राज्ञः सत्यरतः सुखी च रुधिरोद्गार्यब्दजो वित्तवान्
शान्तो बन्धुजनप्रियोऽतिसुभगो रक्ताक्षिजः शीलवान् ।।२४।।

(४७) प्रमादी--अपने बन्धुओं से विराग रखे (अर्थात् उनसे सौहार्द न हो) दूसरे की स्त्रियों से भोग के लिये चित्तवृत्ति हो । (४८) आनन्द–प्रसन्नात्मा (हर्षित), समस्त आगम और श्रुति (अर्थात् वेद आदि) से युक्त उनका ज्ञाता और पालन करने वाला, तत्त्ववेत्ता । (४९) राक्षस--पापी वृथा आलाप (बात) करने वाला (अप्रासंगिक, अतार्किक, अनर्गल–भाषी,) सज्जनों को हानि पहुँचाने वाला । (५०) अनल–दाता, दानगुणान्वित, शान्त, सदाचारी । (५१) पिंगल–योगी जिसने अपने मन को जीत लिया है अर्थात् संयमी, तपस्वी । (५२) कालयुक्त--कालज्ञ (कालज्ञ ज्योतिषी को भी कहते हैं; साधारण अर्थ में जो समय के रुख को पहिचाने), धनवान् भोगी, अच्छे कर्म करने वाला । (५३) सिद्धार्थ-गुरु और देवताओं की भक्ति में निरत, विद्वान् । (५४) रौद्र—जार (दूसरों की

स्त्रियों से भोग करने वाला), कुटिलबुद्धि (दुष्ट), अभिमानी, दुराचारी। (५५) दुर्मति–कामी (काम वासना प्रधान), जड़मति (मूर्ख) शोक से त्रस्त, खल। (५६) दुन्दुभि–जिसकी जांघें, पेट, वाहु, मस्तक शरीर स्थूल हों, योगी। (५७) रुधिरोद्गारी–इस वर्ष का नाम तो वड़ा भयंकर है-जो रुधिर का उद्गार करे (खून वाहर निकाले) किन्तु फल वड़ा अच्छा है। जो इस वर्ष में जन्म लेता है वह प्राज्ञ (वुद्धिमान्) सत्यरत, सुखी और धनी होता है। (५८) रक्ताक्षि-शान्त, बन्धुओं का प्रिय, अत्यन्त सुन्दर, शीलवान् (सौशील्यादि गुण युक्त)।

प्रभादिवत्सरे जातो नरो बन्धुविरोधकृत्।
कुटुम्बघाती लुब्धश्च पापकर्मरतः सुधीः॥
बहुभार्योऽतिचतुरः सर्वानन्दकरः क्षमी।
आनन्दवासरे जातः पुत्रमित्रसमन्वितः॥
सर्वभक्षी कृतघ्नश्च धर्माधर्मविवर्जितः।
हिंसको बहुसंतापी राक्षसोऽब्दे भवेन्नरः॥
वैश्यवृत्तिर्धनी चैव कुटुम्बबहुलः शुची।
जल सत्य (?) करो जातोऽनलसंवत्सरे नरः॥
कृशः कर्कशरोमाञ्चो महोद्यमकरो भवेत्।
फलकालपरित्यागी पिंगलाब्दे भवेन्नरः॥
लोकोपकारकः काले भक्ष्याभक्ष्यं न संत्यजेत्।
कालयुक्तसमुद्भूतो नरो भवति रोगकृत्॥
ऋद्धिसिद्धियुतो नित्यं भोगी गीतविशारदः।
मंत्री गीतपरो दाता सिद्धार्थी वर्षसम्भवः॥
भयंकरवधूः पापी पिशुनः पापकृद्भवेत्।
रौद्रसंवत्सरे जातो नरः स्वल्पायुषो भवेत्॥
मूर्खः क्रूरयुतः कामी स्वकीयवचनः प्रियः।
अदाता धनवांश्चैव दुर्मतौ वत्सरे नरः॥
नित्योत्साही क्षितिपतिर्गजाश्वबहुसैनिकः।
वादित्रधनसौख्याढ्यो दुन्दुभिवर्षसम्भवः॥
कामलोभी महादोषः शस्त्रपीडातिपीडितः।
दुष्कर्मा कुनखी जातो रुधिरोद्गारिवत्सरे॥
नेत्ररोगी सदामन्ददृष्टिर्दम्भकरः सदा।
दुर्जनः कामवहुलो रक्ताक्षो वर्षजो नरः॥

पाठकों का ध्यान विशेषकर-रुधिरोद्गारो और रक्ताक्षी वर्ष में जन्मे जातकों के लिये जो फल जातकपारिजात तथा यवनजातक में बताया गया है उस ओर

आर्कपित किया जाता है। जातकपारिजात के अनुसार कितना सुफल है। यवनजातक के अनुसार कितना निकृष्ट फल। तुलनात्मक विवेचन के लिये ही यवनजातक के उद्धरण दिये गये हैं। स्थानाभाव के कारण यवनजातक के श्लोकों का अनुवाद नहीं दिया गया है ॥२२-२४॥

जातो जारः क्रोधनाब्दे कुमार्गी बन्धुद्वेषी चोरनिष्ठारतः स्यात्।
शिष्टाचारः सुप्रसन्नः सुरूपो मानी वीतारातिरोगः क्षयाब्दे ॥२५॥

(५९) क्रोध—जार (परस्त्रीगामी), कुमार्ग पर चलने वाला (दुराचारी), बन्धु-द्वेषी, चौर्यप्रवृत्तिसहित (चोर)। (६०) क्षय—प्रसन्न चित्त, सुन्दर, ज्ञानी, शिष्ट (सज्जनोचित) आचार, व्यवहार वाला, मानी, रोगरहित हो; उसके शत्रु न हों।

यवनजातक के अनुसार

तापसो निर्गुणः क्रूरो धातुवादी भयङ्करः।
क्रोधनाब्दे नरो जातो वञ्चकः पापबुद्धिमान् ॥
उत्पन्नरोगरूपश्च परसेवारतः सदा।
क्षयसंवत्सरे जातो नरो धर्मविवर्जितः ॥

देखिये—क्षय संवत्सर में उत्पन्न जातकों के लिये दोनों ग्रन्थों के फलादेशों में कितना अन्तर है।

अयन फल

उत्तरायण और दक्षिणायन दो अयन होते हैं। २०-२१ मार्च से २१-२२ सितम्बर तक उत्तरायण होता है और २१-२२ सितम्बर से २०-२१ मार्च तक दक्षिणायन। सिद्धान्त यह है कि जब सूर्य सायन मेष राशि में प्रवेश करे तब उत्तरायण प्रारंभ होता है और जब तक सूर्य में सायन मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या में रहता है तब तक उत्तरायण होता है। जिस समय सायन कन्या को पार कर सूर्य सायन तुला में प्रवेश करता है तब दक्षिणायन प्रारम्भ होता है और जब तक सायन तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन में रहता है तब तक दक्षिणायन होता है। शास्त्रों में उत्तरायण की बहुत प्रशंसा की गयी है। भगवद् गीता में भी उत्तरायण की महिमा गायी गयी है। जातक पारिजात में उत्तरायण तथा दक्षिणायन में जन्म लेने वालों के लिये जो फलादेश किया गया है वह नीचे दिया जाता है ॥२५॥

अथायनफलम्

उत्तरायणसमुद्भवः पुमान् ज्ञानयोगनिरतश्च नैष्ठिकः।
दक्षिणायनभवः प्रगल्भवाग् भेदबुद्धिरभिमानतत्परः ॥२६॥

उत्तरायण में जन्म लेने वाला व्यक्ति ज्ञान और योग में निरत तथा नैष्ठिक होता है। किसी कार्य में दृढ़तापूर्वक लगे रहने या विश्वास को निष्ठा कहते हैं। दक्षिणायन में उत्पन्न व्यक्ति बातचीत करने में प्रगल्भ (साहसपूर्वक अधिक बोलना प्रगल्भता कहलाता है) अभिमानी तथा भेदबुद्धि (जिसकी समबुद्धि न हो) वाला होता है ॥२६॥

ऋतु फल

अथर्तुफलम्

दीर्घायुर्धनिको वसन्तसमये जातः सुगन्धप्रियो
ग्रीष्मर्त्तौ घनतोयसेव्यचतुरो भोगी कृशाङ्गः सुधीः।
क्षारक्षीरकटुप्रियः सुवचनो वर्षर्तुजः स्वच्छधीः
पुण्यात्मा सुमुखः सुखी यदि शरत्कालोद्भवः कामुकः ॥२७॥

योगी कृशाङ्गः कृषकश्च भोगी हेमन्तकालप्रभवः समर्थः।
स्नानक्रियादानरतः स्वधर्मी मानी यशस्वी शिशिरर्तुजः स्यात् ॥२८॥

वसन्त आदि छः ऋतु होती हैं। अयन चलन के कारण जिस ऋतु के जो लक्षण हैं वह सदैव उस ऋतु में नहीं पाये जाते। उदाहरण के लिये चैत्र, वैशाख वसन्त के अन्तर्गत आ जाते हैं परन्तु वैशाख में बहुत से स्थानों में काफी गरमी होती है। माघ, फाल्गुन शिशिर के अन्तर्गत आते हैं परन्तु फाल्गुन में बहुत से स्थानों में उतनी ठंड नहीं पड़ती। बम्बई आदि समुद्र तट के पास के प्रदेशों में कभी जाड़े का अनुभव नहीं होता। दिसम्बर और जनवरी में लोग बिजली का पंखा चलाते हैं। इसलिये इन मासों में उत्पन्न व्यक्तियों में वे फलादेश किस हद तक मिलने चाहिएँ, यह विचारणीय और विवादास्पद विषय है। अस्तु, उपर्युक्त श्लोकों में जो ऋतु के अनुसार फल बताया गया है, वह कहते हैं।

(i) वसन्त—दीर्घायु, धनिक, सुगन्धित वस्तुओं का प्रिय। (ii) ग्रीष्म-गंभीर जलाशय-तालाब, बावड़ी, नदी, समुद्र का सेवन प्रिय (आशय है जल

प्रिय), चतुर, भोगी, दुर्वल शरीर, विद्वान् (iii) वर्षा–क्षार (नमकीन खाद्य वस्तु), दूध, कटु, (कड़वा) पदार्थों का प्रिय, निर्मल चित्त, अच्छे वचन बोलने वाला (iv) शरद्–पुण्यात्मा, सुन्दर मुख, सुखी, कामी। (v) हेमन्त–योगी, दुर्वल शरीर वाला कृषक (खेती, वाड़ी का कार्य करने वाला), भोगी, समर्थ। (vi) शिशिर–स्नान, दान तथा क्रिया में लगा रहने वाला। (कर्मिष्ठ), अपने धर्म का पालन करे, मानी, यशस्वी। किसी किसी टीकाकार ने दान क्रिया का समास करके एक शब्द वना दिया है। उस हालत में अर्थ होगा दानक्रिया में रत॥२७, २८॥

मास फल

अथ मासफलम्।

चैत्रे सर्वकलागमश्रुतिपरो नित्योत्सवः श्रीरतो
वैशाखे यदि सर्वशास्त्रकुशलः स्वातन्त्रिको भूपतिः।
ज्येष्ठे मासि चिरायुरर्थतनयी मन्त्रक्रियाकोविद-
श्चाषाढेऽतिधनी कृपालुरनिशं भोगी परद्वेषकः॥२९॥

जातः श्रावणमासि देवधरणीदेवार्चने तत्परो
नानादेशरतश्च भाद्रपदजस्तन्त्री मनोराज्यवान्।
मासे चाश्वयुजि स्वकीयजनविद्वेषी दरिद्रश्चलः
पुष्टाङ्गः कृषको विशालनयनो वित्ताधिकः कार्त्तिके॥३०॥

सुरगुरुपितृभक्तो मार्गशीर्षे च धर्मी
धनगुणबलशाली तुङ्गनासस्तु पुष्ये।
खलमतिरतिधर्माचारवान् माघमासि
प्रतिदिनमुपकर्ता फाल्गुने गानलोलः॥३१॥

अव चैत्र आदि द्वादश मासों में उत्पन्न जातकों का फल वताते हैं। पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जाता है कि यह चैत्र आदि चान्द्र मासों का फल है। बंगाल, पंजाब आदि कतिपय प्रदेशों में सौर मासों को (सूर्य की एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक, एक सौर मास होता है) भी चैत्र, वैशाख आदि कहते हैं। यथा किसी का जन्म जब हुआ तो सूर्य के मकर में ७ अंश थे तो वह कहता है कि उसका जन्म ७ माघ को था। इस पद्धति में संख्या या सौर

मास व्यक्त करने की पद्धति निम्नलिखित है ।

वैशाख	१ मेष	(सूर्य)	कार्त्तिक	७ तुला	(सूर्य)
ज्येष्ठ	२ वृष	,,	मार्गशीर्ष	८ वृश्चिक	,,
आषाढ़	३ मिथुन	,,	पौष	९ धनु	,,
श्रावण	४ कर्क	,,	माघ	१० मकर	,,
भाद्र	५ सिंह	,,	फाल्गुन	११ कुम्भ	,,
आश्विन	६ कन्या	,,	चैत्र	१२ मीन	,,

लौकिक भाषा में बहुत से पंजाबी आषाढ़ को हाड़, मार्गशीर्ष को मग्गर इत्यादि कहते हैं, यह सब भी स्मरण रखना चाहिये क्योंकि ज्योतिषी के पास भिन्न-भिन्न प्रान्त के भिन्न-भिन्न वर्ग के लोग आते हैं ।

एक दूसरी बात जिसकी ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जाता है यह है कि गुजरात में संवत्सर का प्रारंभ चैत्र शुक्ल प्रतिपद् को प्रारंभ होकर सात मास बाद कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपद् (दीवाली के दूसरे दिन) प्रारंभ होता है । गुजरात, महाराष्ट्र तथा कतिपय दक्षिण भारत के प्रदेशों में चैत्र शुक्ल पक्ष के बाद के पक्ष को । (जिसे हम लोग उत्तर भारत में वैशाख कृष्ण कहते हैं वे लोग चैत्र कृष्ण कहते हैं) । हमारे और उनके शुक्ल पक्ष वाले मासार्धों का नाम तो एक ही है किन्तु कृष्ण पक्ष वाले मासार्धक महीने के नामों में अन्तर है । जो हमारा वैशाख कृष्ण वह उनका चैत्र कृष्ण, जो हमारा भाद्र कृष्ण वह उनका श्रावण कृष्ण । श्रीमद्भागवत भारत के दक्षिण भाग में लिखा गया क्योंकि इस प्रकार की गणना वहाँ मिलती है ।

श्रावण शुक्ल के बाद के पक्ष को, जिसे हम लोग भाद्र कृष्ण कहते हैं, बहुत से दाक्षिणात्य श्रावण कृष्ण कहते हैं, इसी कारण भगवान् कृष्ण का जन्म श्रावण कृष्ण कहा । हम लोगों के यहाँ भाद्र कृष्णाष्टमी जन्माष्टमी के नाम से प्रसिद्ध ही है । इन सब मास के भेदों तथा नामान्तरों को जान लेना चाहिये । अब ग्रंथकार ने प्रत्येक मास में जन्म होने का जो फल बताया है वह कहते हैं । (१) चैत्र–सब कला, आगम, तथा वेदों का ज्ञाता, नित्य भोज करने वाला, श्रीरत (द्रव्योपार्जन में रत, धनिक) । आगम शब्द के अनेक अर्थ हैं, यहाँ शास्त्र से तात्पर्य है । (२) वैशाख–सब शास्त्रों में कुशल, स्वतंत्र, भूपति हो । प्रत्येक व्यक्ति राजा तो हो नहीं सकता, इस कारण भूमि का स्वामी यह अर्थ लेना । (३) ज्येष्ठ–दीर्घायु, धनी, पुत्रवान्, मंत्रक्रिया में विद्वान् (४) आषाढ़—अत्यन्त धनी, कृपालु, नित्य सांसारिक पदार्थों का भोग करने वाला, दूसरों से द्वेष करे । (५) श्रावण–देवता तथा ब्राह्मणों की अर्चना (पूजा) करने वाला । (६) भाद्र–नाना देशों में यात्रा करने वाला या

उनसे सम्बन्धयुक्त, तंत्री। तंत्री शब्द के अनेक अर्थ हैं—ताने बाने का काम करने वाला, शास्त्र में निष्णात आदि, मन में बड़े-बड़े मनसूवे बाँधने वाला। (७) आश्विन—अपने आदमी (परिजन, वन्धु, सम्बन्धी) से द्वेष करने वाला-दरिद्र चल (इसके दो अर्थ हो सकते हैं—एक स्थान में स्थिर न रहे। दूसरा अर्थ—मुस्तकिल मिजाज न हो)। (८) कार्त्तिक—पुष्ट शरीर, वड़े नेत्र, खेती का काम करने वाला, अत्यन्त धनिक। (९) मार्गशीर्ष—धार्मिक देवताओं और पिता का भक्त। (१०) पौष—ऊँची नाक, धनी, गुणयुक्त, वलवान्। (११) माघ—दुष्टवुद्धि, अतिधार्मिक आचारवान्। (१२) गाने का शौकीन, प्रतिदिन अन्य लोगों का उपकार करने वाला ॥२६-३१॥

पक्षफलम्

वलक्षपक्षे यदि पुत्रपौत्रधनाधिको धर्मरतः कृपालुः।
स्वकार्यवादी निजमातृभक्तः स्वबन्धुवैरी यदि कृष्णपक्षे ॥३२॥

शुक्ल पक्ष में जन्म हो तो अत्यन्त धनी, पुत्र तथा पौत्रों से युत, धर्मरत, कृपालु। कृष्ण पक्ष में जन्म हो तो स्वयं के कार्य को आगे बढ़ाने वाला (या अपने कार्य के लिये विवाद करने वाला) अपनी माता का भक्त, अपने बन्धुओं का वैरी ॥३२॥

अथ कालफलम्

जातः प्रत्युषसि स्वधर्मनिरतः सत्कर्मजीवी सुखी
मध्याह्ने यदि राजतुल्यगुणवान् जातोऽपराह्णे धनी।
सायंकालभवः सुगन्धवनितालोलः खलात्माऽटनो
रात्रौ तत्फलमेव सौख्यबहुलः सूर्योदये जायते ॥३३॥

आज के सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक के समय को छः भागों में विभाजित किया (i) प्रातःकाल (ii) मध्याह्न (दोपहर) (iii) अपराह्ण—तीसरे पहर (iv) सायंकाल (v) रात्रि (vi) सूर्योदय के समय—रात्रिशेष इनमें जन्म होने का क्रमशः फल वतलाते हैं :—

(i) स्वधर्म में निरत, सत्कर्म से जीविका चलाने वाला, सुखी (ii) राजा के तुल्य गुणवान् (iii) धनी (iv) सुगन्धियुक्त पदार्थों तथा स्त्रियों के लिये चंचल चित्त (अर्थात् विलासी), घूमने फिरने (यात्रा करने) वाला।

(v) वही फल जो (vi) में बताया (vii) बहुत सौख्य (भोजन, वस्त्र, मकान, सवारी, भृत्य आदि) से युक्त।

इस प्रसंग में बृहत्पाराशर अध्याय २८ श्लोक १० का भाव दिया जाता है कि यदि जातक का जन्म ठीक मध्याह्न में (मध्याह्न के आधा घंटा पहिले से मध्याह्न के आधा घंटा बाद तक) या मध्यरात्रि में (मध्यरात्रि के आधा घंटा पहिले से मध्यरात्रि के आधा घंटा बाद तक) हो तो बड़ा राजयोग होता है।

निशार्द्धाच्च दिनार्धाच्च परं सार्द्धद्विनाडिका ।
शुभा तदुद्भवो राजा धनी वा तत्समोपि वा ॥

परं का अर्थ मध्याह्न या मध्यरात्रि के बाद एक घंटा तक भी हो सकता है ॥३३॥

तिथिफल

महोद्योगी जातः प्रतिपदि तिथौ पुण्यचरितो
द्वितीयायां तेजःपशुबलयशोवित्तविपुलः ।
तृतीयायां पुण्यप्रबलभयशीलश्च पटुवाक्
चतुर्थ्यामाशालुस्त्वटनचतुरो मन्त्रनिपुणः ॥३४॥

पञ्चम्यामखिलागमश्रुतिरतः कामी कृशाङ्गश्चलः
षष्ठ्यामल्पबलो महीपतिसमः प्राज्ञोऽतिकोपान्वितः ।
सप्तम्यां कठिनोरुवाग् जनपतिः श्लेष्मप्रधानो बली
चाष्टम्यामतिकामुकः सुतवधूलोलः कफात्मा भवेत् ॥३५॥

ख्यातो दिव्यतनुः कुदारतनयः कामी नवम्यां तिथौ
धर्मात्मा पटुवाक्कलत्रतनयः श्रीमान् दशम्यां धनी ।
देवब्राह्मणपूजको हरितिथौ दासान्वितो वित्तवान्
द्वादश्यामतिपुण्यकर्मनिरतस्त्यागी धनी पण्डितः ॥३६॥

त्रयोदश्यां लुब्धप्रकृतिरतिकामी च धनवान्
चतुर्द्दश्यां कोपी परधनवधूको गतमनाः ।
अमायामाशालुः पितृसुरसमाराधनपरो
धनी राकाचन्द्रे यदि कुलयशस्वी च सुमनाः ॥३७॥

प्रत्येक पक्ष में १५ तिथियां होती हैं । प्रतिपद् से चतुर्दशी तक तो दोनों पक्षों की तिथियों के एक ही नाम हैं। कृष्ण पक्ष की १५वीं तिथि अमावास्या कहलाती है, शुक्ल पक्ष की १५वीं तिथि को पूर्णिमा कहते हैं। तिथि कब से कब तक कौन सी रही इसका गणित प्रकार सुगम ज्योतिष प्रवेशिका के पृष्ठों में समझाया गया है, अवलोकन करें। अब प्रतिपद् से चतुर्दशी तक जन्मे बच्चे पर तिथि का क्या प्रभाव होता है यह क्रमशः बताते हैं। (१) से प्रतिपद् (२) से द्वितीया ... (१४) से चतुर्दशी समझना।

(१) बड़ा उद्योगी, पुण्यचरित। (२) तेजस्वी, धनी, यशस्वी, बलवान् जिसके पास अनेक पशु (गाय, भैंस, घोड़े आदि) हों। (३) पुण्यवान्, बलवान् बोलने में निपुण किन्तु भयशील (भीरु)। (४) मन्त्रों में निपुण, आशान्वित, घूमने फिरने वाला, चतुर।(५)आगम और वेदों का ज्ञाता कामी, दुर्बल शरीर, चल (जिसकी स्थिर मति न रहे, या जो एक स्थान में जम कर न रहे)। (६) अल्प बलवान्, बुद्धिमान्, क्रोधी, राजा के समान।(७)कठोर जाँघें, कठोर वाणी, बलवान्, मनुष्यों का स्वामी (बहुतों पर जो हुकूमत करे, कफ प्रधान प्रकृति हो। (८) अतिकामी, स्त्री, पुत्र में आसक्त, कफ प्रधान प्रकृति।(९)कामी, विख्यात, उत्तम शरीर, स्त्री तथा पुत्र अच्छे न हों।(१०) श्रीमान् (शारीरिक, आर्थिक वैभव युक्त) धनी, धर्मात्मा, जिसकी वाणी में चातुर्य हो, स्त्री तथा पुत्रों से युत। (११) धनी जिसके अनेक भृत्य हों, देवताओं और ब्राह्मणों का पूजक।(१२) अति पुण्य के कर्म करने वाला, त्यागी, धनी, विद्वान्।(१३)लोभी अति कामी, धनी।(१४)क्रोधी, अन्य पुरुष के धन और अन्य पुरुष की स्त्री में आसक्त।

जिसका जन्म अमावास्या को होता है वह आशालु(सदैव आशा रखने वाला) पितर (बाप, दादा आदि जो स्वर्गीय हो गये हों) की पूजा (श्राद्ध आदि में तत्पर) होता है। जिसका जन्म पूर्णिमा को हो वह अच्छे चित्त का, धनी और अपने कुल में यशस्वी होता है ।।३४-३७।।

वारफल

मानी पिङ्गलकेशलोचनतनुश्चादित्यवारे विभुः
कामी कान्तवपुर्दयालुरनिशं शीतांशुवारोद्भवः।
क्रूरः साहसवादकार्यनिरतो भूसूनुवारे सदा
देवब्राह्मणपूजकः सुवचनः सौम्यस्य वारोदये ।।३८।।

यज्वा भूपतिवल्लभश्च गुणवान् ख्यातो गुरोर्वासरे
धान्यक्षेत्रधनाश्रितः सितदिने सर्वप्रियः कामधीः ।
मन्दप्रायमतिः परान्नधनभुग् वादप्रवादान्वितो
द्वेषी बन्धुजनावरोधकुशलो मन्दस्य वारोद्भवः ॥३९॥

रविवार–मानी, पिंगल (कुछ भूरापन लिये हुए) केश, नेत्र तथा शरीर वाला, शक्तिशाली । सोमवार–कामी, मनोहर शरीर, सदैव दयालु । मंगलवार–क्रूर, साहसी, सदा वाद और कार्य में निरत । वाद के कई अर्थ हैं—वाद-विवाद झगड़ा, मुकदमा । बुधवार—अच्छे वचन वाला (सुन्दर और शिष्टवाणी से युक्त) देवता और ब्राह्मणों का पूजक । बृहस्पतिवार—यज्ञ करने वाला (आशय है धार्मिक, क्योंकि अब यज्ञ कितने लोग करते हैं । ईसाई, पारसी, मुसलमान, बौद्ध आदि भी तो बृहस्पति को पैदा होते हैं । इसलिये सदैव ग्रंथकार का आशय लेना चाहिये)। राजा का कृपापात्र, गुणवान्, विख्यात । शुक्रवार—कामी, सब का प्रिय (जिसे उर्दू में हरदिलअजीज कहते हैं), धन, धान्य, खेती की जमीन युक्त । शनिवार—मन्द बुद्धि, दूसरे के धन और अन्न का भोक्ता, वाद-विवाद करने वाला (झगड़ा, मुकदमा या बहस करने वाला), द्वेषी, बन्धुओं का अवरोध करने वाला—अर्थात् उनकी प्रगति में बाधक ।

नक्षत्र

अब जो २७ नक्षत्र हैं उनके पर्याय बतलाते हैं । जैसे—कृष्ण, गोविन्द, दामोदर, गोपाल आदि भगवान् कृष्ण के ही अनेक नाम हैं—एक ही नक्षत्र का शास्त्रकार विविध नामों से उल्लेख करते हैं । इस कारण नक्षत्रों के नामान्तर जान लेना शास्त्रीय दृष्टि से आवश्यक है । नीचे, पहिले नक्षत्र का प्रसिद्ध नाम और बाद में उसके पर्याय हिन्दी टीका में दिये गये हैं ॥३८-३९॥

तुरङ्गदस्राश्वियुगश्विनीहया यमः कृतान्तो भरणी च याम्यभम् ।
हुताशनोऽग्निर्बहुला च कृत्तिका विधिर्विरिञ्चिः शकटं च रोहिणी ॥४०॥

सौम्यश्चान्द्राग्रहायण्युडुपमृगशिरस्तारका रौद्रमार्द्रा
चादित्यं तत्पुनर्वस्विति सुरजननी तिष्यपुष्यामरेज्याः ।
आश्लेषाहिर्भुजङ्गः पितृजनकमघाः फल्गुनी भाग्यभं स्या-
दर्यम्णश्चोत्तराख्यं भगमिति कथितं भानुहस्तारुणार्काः ॥४१॥

त्वष्टा च चित्रासुरवर्द्धकी तु स्वाती मरुद्वातसमीरणाख्याः
वायुः समीरः परतो विशाखा द्विदैवतेन्द्राग्निकशूर्पभानि ॥४२॥

अनूराधा मैत्रं त्वथ कुलिशतारा: शतमख:
सुरस्वामी ज्येष्ठा परमसुरमूलक्रतुभुजः ।
पय:पूर्वाषाढा सलिलजलतोयानि च समु-
त्तराषाढा विश्वं परमभिजिदाहुर्मुनिगणाः ॥४३॥

श्रोणाविष्णुहरिश्रुतिश्रवणभान्याहुः श्रविष्ठा वसु
प्राचेताः शततारका वरुणभं चाजैकपादोऽजपात् ।
पूर्वप्रोष्ठपदक्षेकं परमहिर्बुध्न्योत्तरा प्रोष्ठपात्
पूषारेवतिपौष्णभानि मुनिभिः सङ्कीर्तितानि क्रमात् ॥४४॥

(१) अश्विनी—तुरंग, दस्र, अश्वियुक्, हय, (२) भरणी–यम, कृतान्त, याम्य । (३) कृत्तिका—हुताशन, अग्नि, बहुला ।(४)रोहिणी–विधि विरिञ्चि, शकट । (५) मृगाशिर—सौम्य, अग्रहायणी, चान्द्र, उडुप । (६) आर्द्रा—तारका, रौद्र । (७) पुनर्वसु—अदिति, सुरजननी । (८)पुष्य-तिष्य, अमरेज्य । आश्लेषा–अहि, भुजंग । (१०) मघा—पितृ—जनक । (११) पूर्वा-फाल्गुनी–फल्गुनी, भाग्य । (१२) उत्तराफाल्गुनी, अर्यमा, उत्तरभग । (१३) हस्त–भानु, अरुण, अर्क । (१४) चित्रा—त्वष्टा, सुखवर्द्धकि । (१५) स्वाती—मरुत्, वात, समीकरण वायु, समीर। (१६) विशाखा—द्विदैवत, इन्द्राग्निक, शूर्पभ । (१७) अनुराधा—मैत्र ।(१८)जेष्ठा–कुलिशतारा, शतमुख (१९) मूल–असुर, ऋतुभुज । (२०) पूर्वाषाढ़-सतिल जल, तोय । (२१)उत्तरापाढ़–विश्व । उत्तरापाढ़ का चतुर्थ चरण अभिजित् भी कहलाता है। (२२)श्रवण–श्रोणा, विष्णु, हरि, श्रुत ।(२३)धनिष्ठा–वसु । (२४)शतभिषा—प्रचेता, शततारका, वरुण । (२५) पूर्वाभाद्र–अजैकपाद, अजपात् पूर्वप्रोष्ठपद । (२६) उत्तराभाद्रपद–अहिर्बुध्न्य, उत्तराप्रोष्ठपात् । (२७)रेवती–पूषा, पौष्ण ।
मुनियों ने नक्षत्रों के ये नाम क्रम से कहे हैं ।।४०-४४।।

गण्डान्ततारा

मूलावासवयोर्मघाभुजगयोः पौष्णाश्वयोः सन्धिजं
गण्डान्तं प्रहरप्रमाणमधिकानिष्टप्रदं प्राणिनाम् ।
ज्येष्ठादानवतारसन्धिघटिका चाभुक्तसंज्ञा भवेत्
तन्नाडीप्रभवाङ्गनासुतपशुप्रेष्याः कुलध्वंसकाः ।।४५।।

इस श्लोक में गण्डान्ततारा में शिशु जन्म का फल बताते हैं ? गण्डान्त क्या ? वास्तव में शुद्ध शब्द है खण्डान्त । खण्डान्त का मतलब है–खण्ड का अन्त खण्डान्त । भचक्र को तीन खण्डों में विभाजित किया गया है क्योंकि जहां नक्षत्रान्त पर राशि पर्यवसित होती है–जैसे आश्लेषा के अन्त पर कर्क, ज्येष्ठा के अन्त पर वृश्चिक तथा रेवती का अन्त मीन–वहां ऋक्ष संधि मानी गयी है । ऋक्ष नक्षत्र को भी कहते हैं, राशि को भी । इन तीन राशियों के अतिरिक्त राशियों का अन्त एक-चरण, दो-चरण, या तीन चरण पर होता है ।

मेष से कर्क तक चार राशियाँ सृष्टि खण्ड कहलाती हैं । सिंह से वृश्चिक के अन्त तक स्थिति खण्ड तथा धनु से मीन तक संहार खंड । सारावली में लिखा है कि गण्डान्त (खण्डान्त) में जो पैदा होता है वह माता के लिये अशुभ होता है; स्वयं उसके जीवित रहने की संभावना कम होती है । किन्तु यदि जीता है तो बहुत धनी और प्रतापी होता है ।

नातो न जीवति नरो मातुरपथ्यो भवेत् स्वकुलहन्ता ।
यदि जीवति गण्डान्ते बहुगजतुरगो भवेद् भूपः ॥

कई दैवज्ञ कर्क के अन्त सिंह के प्रारम्भ, वृश्चिक के अन्त धनु के प्रारम्भ, मीन के अन्त मेष के प्रारम्भ लग्न को भी गण्डान्त मानते हैं । कोई विद्वान् अंत को अन्तिम अंश अर्थात् ३०वाँ अंश और प्रारम्भ को पहला अंश मानते हैं । अन्य विद्वानों के मतानुसार अन्तिम अंश को अन्त, तथा प्रथम नवांश को प्रारंभ मानना चाहिये । ३ नक्षत्रों के अन्त यथा आश्लेषा, ज्येष्ठा तथा रेवती का अन्त तथा ३ नक्षत्रों के प्रारम्भ यथा मघा मूल अश्विनी के प्रारम्भ को तो सभी गण्डान्त मानते हैं ।

जातकपारिजातकार के मत से (i) ज्येष्ठ-मूल (ii) आश्लेषा-मघा तथा (iii) रेवती-अश्विनी इन दो दो नक्षत्रों की संधियाँ गण्डान्त हैं । ज्येष्ठा का जब अन्त हो और मूल का अन्त तब कितना काल गण्डान्त माना जाये ? कहते हैं कि एक प्रहर अर्थात् ३ घंटा या साढ़े सात घड़ी तो इसी प्रकार पौने चार घड़ी का समय ज्येष्ठा के अन्त का और पौने चार घड़ी मूल के प्रारम्भ का गण्डान्त होने के कारण इस काल में जन्म होने का फल विशेष अनिष्टप्रद है । इसी प्रकार पौने चार घड़ी का काल आश्लेषा तथा रेवती के अन्त का, तथा पौने चार घड़ी का काल मघा तथा अश्विनी के प्रारम्भ का विशेष अनिष्टप्रद होता है ।

हमने ऊपर व्याख्या में सुविधा के लिये ज्येष्ठा—मूल ज्येष्ठा पहिले आता है इसलिये ज्येष्ठा लिखा है । परन्तु ग्रंथकार ने मूल में लिखा है :—मूल-ज्येष्ठा

मघा–आश्लेषा, रेवती–अश्विनी, इस क्रम से नक्षत्र नामों को क्यों लिखा ? क्योंकि मूल का सर्वाधिक अनिष्ट फल है, ज्येष्ठा का उससे कम.......... और अश्विनी का सबसे कम दोष ।

गण्डान्त में जन्म का अशुभ फल । गण्डान्त काल–इन छः नक्षत्रों का प्रत्येक का पौने चार घड़ी बतलाया । अब कहते हैं कि इन नक्षत्रों की संधि की एक घटी (२४ मिनट) अर्थात् आश्लेषा, ज्येष्ठा तथा रेवती की अन्तिम आधी घड़ी, और मघा, मूल तथा अश्विनी के प्रारंभ की आधी घड़ी–इस प्रकार तीन ऋक्ष संधियों की $\frac{1}{2}+\frac{1}{2}=१$ एक एक घटी, अभुक्त घटी कहलाता है। इस अभुक्त घटी में जिस कन्या पुत्र, पशु, प्रेष्य (नौकर, दास) का जन्म हो वह अपने कुल का नाश करता है । पुत्र, कन्या तथा पशु के जन्म से पिता के कुल का या स्वामी के कुल का नाश ठीक है, प्रेष्य (नौकर) के जन्म से स्वामी को क्यों हानि ? क्योंकि पहले दास प्रथा प्रचलित थी और दासों का स्वामित्व मालिक में होता था ।

इस सम्बन्ध में अभुक्त मूल कितनी घड़ी का समझावें—आचार्यों ने अलग अलग मत दिये हैं । श्रीपति का वचन है :

पौष्णाश्विन्योः सार्पपित्र्यर्क्षयोश्च यत्र ज्येष्ठामूलयोरन्तरालम् ।
तद्भं गण्डं स्याच्चतुर्नाडिकं हि यात्राजन्मोद्वाहकालेष्वनिष्टम् ॥

अभुक्त मूल की एक परिभाषा निम्नलिखित है :—

ज्येष्ठान्ते घटिका चैका मूलादौ घटिकाद्वयम् ।
अभुक्तमूलमित्याहुस्तत्र जातं त्यजेत् शिशुम् ॥

शौनक का वचन है :

अभुक्तमूलजातानां परित्यागो विधीयते
अदर्शने वापि पितुः स तु तिष्ठेत्समाष्टकम् ॥
नवमे वत्सरे शान्ति जन्मर्क्षे तस्य कारयेत् ।
शान्ति कृत्वा मुखं पश्येत् पिता पुत्रस्य निश्चयात् ॥

नारद कहते हैं :

अभुक्तमूलजं पुत्रं पुत्रीमपि परित्यजेत् ।
अथवाब्दावधि तातस्तन्मुखं न विलोकयेत् ॥

उत्तर भारत में मुहूर्तचिन्तामणि अध्याय २ श्लोक ५२-५३ में दिये गये मत का विशेष प्रचार है । यथा

अभुक्तमूलं घटिकाचतुष्टयं ज्येष्ठांत्यमूलादिभवं हि नारदः ।
वसिष्ठ एकद्विघटीमितं जगौ बृहस्पतिस्त्वेकघटीप्रमाणम् ॥

अथोचुरन्ये प्रथमाष्टघट्यो मूलस्य शाक्रान्तिमपञ्चनाड्यः ।
जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वा मुखं पितास्याष्टसमा न पश्येत् ॥

उपर्युक्त ग्रंथ की पीयूषधारा टीका में नारद, वसिष्ठ, बृहस्पति, कश्यप, च्यवन, आदि विद्वानों के मत, मतान्तरों का विवेचन है। वह विद्वानों के लिये द्रष्टव्य है।

कालप्रकाशिका अध्याय २ में नक्षत्र गंड (दो नक्षत्रों का संधिकाल), राशिगण्ड, तिथिगण्ड आदि का विवेचन किया गया है। जिज्ञासु पाठक उनका भी अवलोकन करें ॥४५॥

ज्येष्ठा फल

विभक्ता दशभिर्ज्येष्ठानक्षत्राखिलनाडिकाः ।
आद्यंशे जननीमाता द्वितीये जननीपिता ॥४६॥

तृतीये जननीभ्राता यदि माता चतुर्थके ।
पञ्चमे जाततनयः षष्ठे गोत्रविनाशकः ॥४७॥

सप्तमे चोभयकुलं त्वष्टमे वंशनाशनम् ।
नवमे श्वशुरं हन्ति सर्वं हन्ति दशांशके ॥४८॥

भौमवासरयोगेन ज्येष्ठाजा ज्येष्ठसोदरम् ।
भानुवासरयोगेन मूलजा श्वशुरं हरेत् ॥४९॥
ज्येष्ठाद्यपादेऽग्रजमाशु हन्याद् द्वितीयपादे यदि तत्कनिष्ठम् ।
तृतीयपादे पितरं निहन्ति स्वयं चतुर्थे मृतिमेति जातः ॥५०॥

ज्येष्ठा नक्षत्र के सम्पूर्ण मान को दस भागों में विभाजित करे। अब जिस विभाग में इष्ट घटी पड़े अर्थात् उपर्युक्त दस विभागों में से जिस विभाग में जन्म हो, उसका फल नीचे देखिये। (१), (२), (३) आदि से नीचे विभाग संख्या निर्दिष्ट की गयी है :—

(१) नानी की मृत्यु। (२) नाना की मृत्यु (३) मामा का नाश। (४) माता का नाश।(५) जातक की स्वयं की मृत्यु। (६) गोत्र विनाशक—अर्थात् आगे उसका वंश नहीं चलता। (७) अपनी माता का कुल तथा अपने पिता का कुल दोनों का नाश करता है। (८) जातक के स्वयं का वंश नाश। (९) अपने श्वशुर का नाश। (१०) सर्वस्व (धनादि ऐहिक) सम्पत्ति का नाश।

बहुत से आधुनिक विदेशी पंचांग यथा लन्दन से प्रकाशित रैफ़ेल का पंचांग व्यवहार में लाते हैं। इनमें सायन गणित रहता है। उसमें से अयनांश घटाकर निरयण चन्द्र स्पष्ट करते हैं। ज्येष्ठा के दस विभाग चन्द्र स्पष्ट द्वारा निम्न लिखित प्रकार से किये जा सकते हैं :—

वृश्चिक राशि स्थित चन्द्र

(१) १६°–४०' से १८° (२) १८°–१९°–२०' (३) १९°–२०'–२०°–४०' (४) २०°–४०'–२२° (५) २२°–२३°–२०' (६) २३°–२०'–२४°–४०' (७) २४°–४०–२६° (८) २६°–२७°–२०' (९) २७°–२०'–२८°–४०' (१०) २८°–४०'–३०°।

इस ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न चाहे पुत्र हो या कन्या समान फल कहा है।

भारद्वाज के मत से ज्येष्ठा के किस भाग में चन्द्रमा के रहने से क्या अशुभ फल होता है—इसमें कहीं कहीं विभिन्नता है। वह कहते हैं :—

ज्येष्ठादौ मातृजननीं मातामहं द्वितीयके।
तृतीये मातुलं हन्ति चतुर्थे जननीं तथा॥
आत्मानं पञ्चमे हन्ति षष्ठे गोत्रक्षयो भवेत्।
सप्तमे कुलनाशः स्यादष्टमे ज्येष्ठसोदरम्॥
नवमे श्वशुरं हन्ति सर्वस्वं दशमे तथा।
ज्येष्ठां विभज्य दशधा फलमेवं विचिन्तयेत्॥४६-४७॥

यदि जन्म समय ज्येष्ठा नक्षत्र हो और मंगलवार भी हो तो जातक के बड़े भाई का नाश होता है। यदि जन्म के समय रविवार और मूल नक्षत्र हो तो जातक के श्वशुर का नाश होता है। जन्म के समय तो बच्चे का श्वशुर होता नहीं है। श्वशुर तो विवाह के बाद ही होगा। इसलिये विवाह के बाद श्वशुर का नाश होगा। यह सामान्य बुद्धि से समझना चाहिये॥४८–४९॥

जहां बड़े भाई या छोटे भाई की मृत्यु कही है–वहां यदि कन्या की कुण्डली हो तो वह पति के बड़े भाई या पति के छोटे भाई (यथाक्रम, जहां बड़ा भाई कहा है वह पति का बड़ा भाई और जहां छोटा भाई कहा है वह पति का छोटा भाई) का नाश करती है—ऐसा कुछ आचार्यों का मत है :—

नारद कहते हैं।

मूलजा श्वशुरं हन्ति व्यालजा तु तदङ्गनाम्।
ऐन्द्री पत्यग्रजं हन्ति देवरं तु द्विदैवजा॥

अब ग्रंथकार ज्येष्ठा के चार चरणों में से प्रत्येक चरण में उत्पन्न होने का फल कहते हैं। सम्पूर्ण ज्येष्ठामान–घटी, पलों में चार का भाग देकर—किस चरण में जन्म है—यह निकाल लीजिये या चन्द्र स्पष्ट से एक ही बात है :

चन्द्र स्पष्ट द्वारा यदि वृश्चिक राशि में चन्द्रमा हो तो निम्नलिखित अंश, कला में चार चरण होंगे :—

(i) १६°–२०'—२०° (ii) २०°–२३°—२०' (iii) २३°–२०'—२६°–४०' (iv) २६°–४०'—३०°। इन चार चरणों में से किसी में जन्म होने से क्रमशः फल निम्नलिखित हैं :—

(i) बड़े भाई का नाश (ii) छोटे भाई का नाश (iii) पिता का नाश। (iv) स्वयं की मृत्यु ॥५०॥

मूल फल

मूलाद्यपादे पितरं निहन्याद् द्वितीयके मातरमाशु हन्ति ।
तृतीयजो वित्तविनाशकः स्याच्चतुर्थपादे समुपैति सौख्यम् ॥५१॥

मूलर्क्षनिखिला नाड्यस्तिथिसङ्ख्याविभाजिताः ।
आद्ये पिता पितृभ्राता तृतीये भगिनीपतिः ॥५२॥

पितामहश्चतुर्थे तु माता नश्यति पञ्चमे ।
षष्ठे तु मातृभगिनी सप्तमे मातुलस्तथा ॥५३॥

अष्टमांशे पितृव्यस्त्री निखिलं तु नवांशके ।
दशमे पशुसंघातो भृत्यस्त्वेकादशांशके ॥५४॥

द्वादशे तु स्वयं जातस्तज्ज्येष्ठस्तु त्रयोदशे ।
चतुर्दशे तद्भगिनी त्वन्ते मातामहस्तथा ॥५५॥

अब मूल नक्षत्र में उत्पन्न बच्चे (पुत्र या कन्या) का फल कहते हैं :—

यदि प्रथम चरण में जन्म हो तो पिता का नाश। द्वितीय चरण में पैदा हो तो माता का नाश। तृतीय चरण में उत्पन्न हो तो धन का नाश। बच्चे का जन्म लेने पर स्वयं का धन तो क्या होगा, इसलिये पिता या बाबा जो परिवार का अधिष्ठाता हो—उसके धन का नाश समझना चाहिये। चतुर्थ चरण में जन्म का अच्छा फल है। जातक को सुख प्राप्त होता है। सम्पूर्ण मूल नक्षत्र मान को चार से विभाजित कर देखना चाहिये कि किस चरण में जन्म है। चन्द्र स्पष्ट के अनुसार चार विभाग निम्नलिखित होते हैं :—यदि चन्द्रमा धनु में हो और अंश कला (i) ०°–३°—२०' (ii) ३°–२०'—६°–४०' (iii) ६°–४०'—१०° (iv) १०°–१३°–२०' हो।

मुहूर्तचिन्तामणि अध्याय २ (नक्षत्र प्रकरण) का श्लोक ५४ निम्नलिखित है।

आद्ये पिता नाशमपैति मूलपादे द्वितीये जननी तृतीये।
धनं चतुर्थेत्यशुभोऽथ शान्त्या सर्वत्र सत्स्यादहिभे विलोमम्।

प्रायः जो विभिन्न फल मूल के विभिन्न चरणों में उत्पन्न होने का जातक पारिजात में बताया गया है, वही इसमें कहा गया है। इतना विशेष कहा है कि शांति (पूजा, जप, हवन आदि कराने से) चतुर्थ चरण में जन्म का शुभ फल होता है। यह भी कहा है कि आश्लेषा नक्षत्र में—प्रत्येक चरण में जन्म होने का फल निम्नलिखित है। चरण (i) शांति कराने से शुभ (ii) धननाश (iii) माता का नाश (iv) पिता का नाश।

अब दूसरा प्रकार अनिष्ट देखने का बतलाते हैं। सम्पूर्ण मूल नक्षत्र मान (घड़ी पलों) को १५ से विभाजित कर देखिए कि जन्म के समय मूल नक्षत्र के कितने घड़ी पल व्यतीत हो चुके थे। जिस खण्ड में जन्म हो उसके अनुसार फल कहिये। पन्द्रह खण्डों में जन्म होने का फल क्रमशः नीचे बतलाते हैं कि किस खण्ड में किसका नाश होता है।

(१) पिता (२) पिता का भाई (३) बहनोई (४) पितामह (५) माता (६) मौसी (७) मामा (८) ताई या चाची (९) सर्वस्व (धन आदि) (१०) पशु (११) नौकर (१२) स्वयं जातक (१३) बड़ा भाई (१४) बहिन (१५) नाना।

जयार्णव ग्रंथ में लिखा है :—

मूलस्तंभस्त्वचा शाखा पत्रं पुष्पं फलं शिखा।
मुनयोऽष्टौ दिशो रुद्राः सूर्याः पंचांघ्रयोऽग्नयः॥
मूले तु मूलनाशस्स्यात्स्तंम्भे वंशविनाशनम्।
त्वचि मातुर्भवेत् क्लेशः शाखायां मातुलस्य च॥
पत्रे राज्यं विजानीयात् पुष्पे मंत्रिपदं स्मृतम्।
फले च विपुला लक्ष्मीः शिखायामल्पजीवितम्॥

मूल नक्षत्र का सम्पूर्ण मान ६० है। इसे ८ विभागों में बांटा है :—

(i) मूल–७ घड़ी मूलनाश। (ii) स्तंभ ८–घड़ी वंशविनाश। (iii) त्वचा-१० घड़ी माता को क्लेश। (iv) शाखा—११ घड़ी मामा को क्लेश। (v) पत्र-१२ घड़ी राज्य प्राप्ति अर्थात् उत्कर्ष। (vi) पुष्प—५ घड़ी मंत्रिपद (अर्थात् उच्च पद। (vii) फल—४ घड़ी बहुत अधिक लक्ष्मी (धन प्राप्ति)। (viii) शिखा–३ घड़ी–अल्पायु। इस प्रकार ७+८+१०+११+१२+५+४+३= ६० घड़ी सम्पूर्ण नक्षत्रमान को मान कर विभाग किया गया है। यदि नक्षत्र

मान अधिक या कम हो तो प्रत्येक विभाग को त्रैराशिक से अधिक या कम कर लेना चाहिये।

मुहूर्तचिन्तामणि के अध्याय २ की पीयूषधारा टीका में ज्येष्ठा, मूल एवं अन्य नक्षत्रों में जन्म का शुभाशुभ—किस महीने में मूल का फल कैसा होता है—नक्षत्र, तिथि, लग्न भेद से गण्डान्त, व्यतीपात, वैधृति, परिघ, व्याघात, गण्ड आदि योगों में उत्पत्ति का दुष्प्रभाव संक्रान्ति, सिनीवाली, कुहू, दर्श, (अमावास्या) कृष्णपक्ष की चतुर्दशी यमघट, दग्ध योग, भद्रा में जन्म एक नक्षत्र जनन (यदि पुत्र या कन्या का वही नक्षत्र हो जो माता, पिता, भाई या बहिन का हो) पिता के नक्षत्र पिता के जन्म से दसवें में नक्षत्र बच्चे (पुत्र या कन्या) का जन्म हो सूर्य या चन्द्र ग्रहण के समय जन्म हो आदि सारभूत, शास्त्रीय विषयों का विवेचन किया गया है तथा कश्यप, वसिष्ठ, बृहस्पति, नारद, च्यवन, गौतम, भास्कर, बादरायण, शौनक, भरद्वाज, देवकीर्ति आदि प्राचीन आचार्यों के मत तथा प्राचीन ग्रंथों— रत्नमाला, ब्रह्मपुराण, वसिष्ठसंहिता, जयार्णव, नारदसंहिता, भास्करव्यवहार, ज्योतिषार्णव, ज्योतिषरत्न, श्रीमानवसंहिता, वृद्धगार्ग्य संहिता, सूर्यसिद्धान्त, गर्गसंहिता से उद्धरण देकर इन विषयों पर विशेष प्रकाश डाला गया है। विस्तार भय से उनका यहां विवेचन नहीं किया जा रहा है। जिज्ञासु पाठक अवलोकन करें। ५१-५५।

आश्लेषा नक्षत्र गण्डान्त

आश्लेषाद्ये न गण्डं स्याद्धनगण्डं द्वितीयके।
तृतीये मातृगण्डं तु पितृगण्डं चतुर्थके ॥५६॥

यदि आश्लेषा के प्रथम चरण में जन्म हो तो कोई गण्ड (दोष, हानि नहीं) द्वितीय चरण में जन्म होने से धननाश। तृतीय चरण में बच्चा (पुत्र या कन्या) उत्पन्न हो तो माता को कष्ट। चतुर्थ चरण में पिता को कष्ट। जयार्णव के मत से नक्षत्रमान यदि ६० घटी हो तो—भिन्न भिन्न ७ विभागों का फल निम्नलिखित है: (i) १० घड़ी (फल) लक्ष्मी। (ii) ५ घड़ी (पुष्प) लक्ष्मी, (iii) ९ घड़ी (दल) राजभय। (iv) ७ घड़ी (शाखा) हानि। (v) १३ घड़ी (त्वक्) माता का क्षय। (vi) १२ घड़ी (लता) पिता का क्षय। (viii) ४ घड़ी (कन्द) जातक का क्षय। यह आश्लेषा वृक्ष का विचार सम्पूर्ण नक्षत्रमान ६० घड़ी मान कर किया गया है। यदि नक्षत्र मान कम या अधिक हो तो प्रत्येक विभाग को त्रैराशिक से कम या अधिक कर लेना चाहिये॥ ५६॥

मूल आदि छः नक्षत्रों का विचार

मूलामघाश्विचरणे प्रथमे पितुश्च
पौष्णेन्द्रयोश्च फणिनस्तु चतुर्थपादे ।
मातुः पितुः स्ववपुषोऽपि करोति नाशं
जातो यथा निशि दिनेऽप्यथ सन्ध्ययोश्च ॥५७॥

दिवा जातस्तु पितरं रात्रिजो जननीं तथा ।
आत्मानं सन्ध्ययोर्हन्ति नास्ति गण्डे विपर्ययः ॥५८॥

मूल, मघा या अश्विनी के प्रथम चरण में जन्म हो तो जातक के पिता का नाश होता है । यदि रेवती के चतुर्थ चरण में रात्रि के समय जन्म हो तो माता का नाश । यदि ज्येष्ठा के चतुर्थ चरण में दिन में जन्म हो तो पिता का नाश । यदि आश्लेषा के चतुर्थ चरण में संध्याओं (जब रात्रि का अन्त और दिन का प्रारम्भ हो तो प्रातः संध्या । जब दिन का अन्त और रात्रि का प्रारम्भ हो तो सायं संध्या—इसलिये संध्याओं कहा) में से किसी संध्या में जन्म हो तो जातक का स्वयं का नाश होता है ।

श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने इस श्लोक की टीका में लिखा है—चाहे दिन में, चाहे रात्रि में, चाहे संध्या में, जन्म हो (जन्म काल का कुछ भी प्रभाव नहीं) यदि रेवती के चतुर्थ चरण में जन्म हो तो माता का नाश, ज्येष्ठा के चतुर्थ चरण में पिता का नाश, तथा आश्लेषा के चतुर्थ चरण में जातक का स्वयं नाश होता है । यह अर्थ हमें सम्मत नहीं है ॥५७॥

दिन में जन्म हो तो पिता का, रात्रि के समय जन्म हो तो माता का, संध्या (प्रातः संध्या या सायं संध्या) में जन्म हो तो जातक का स्वयं नाश होता है । इस गण्ड का फल अवश्यम्भावी है, टलता नहीं है । (शान्ति विधान के लिये देखिये मुहूर्तचिन्तामणि की पीयूषधारा टीका) ॥ ५८ ॥

ऋक्षस्यान्ते भवेद्रात्रावादौ यदि दिने तथा ।
सन्ध्यासु ऋक्षसन्धौ तु तदेतद् गण्डलक्षणम् ॥५९॥

ऊपर श्लोक ५८ में 'गण्ड' शब्द का प्रयोग किया है—उसी गण्ड शब्द की परिभाषा करते हैं ।

यदि रात्रि में नक्षत्र (रेवती, आश्लेषा, ज्येष्ठा) के अन्त में जन्म हो तो गण्ड होता है । यदि दिन में अश्विनी, मघा, मूल नक्षत्र कहे गये हैं, उनके आदि

में जन्म हो तो गण्ड होता है। और यदि संध्या के समय कर्क का अन्त सिंह का प्रारम्भ, या वृश्चिक का अन्त धन का प्रारम्भ, या मीन का अन्त मेष का प्रारम्भ अर्थात् ऋक्ष संधि हो तो गण्ड कहलाता है ॥५९॥

पूर्वाषाढे धनुर्लग्ने जातः पितृविनाशकः ।
पुष्ये कर्कटके लग्ने पितृमृत्युकरो भवेत् ॥६०॥

पूर्वाषाढे तु पुष्ये च पितरं मातरं सुतम् ।
मातुलं च शिशुर्हन्यात्प्रथमांशकतः क्रमात् ॥६१॥

उत्तराफाल्गुनीताराप्रथमे चरणे यदि ।
तिष्यनक्षत्रमध्यस्थपादयोरुभयोर्यदि ॥६२॥

पादे तृतीये चित्रायाः पूर्वार्द्धे यमभस्य च ।
तृतीयांशेऽर्कतारायाश्चतुर्थांशेऽन्त्यभस्य च ॥६३॥
जातस्तु पितरं हन्ति जाता चेन्मातरन्तथा ।

इन चार श्लोकों में ९ योग बताये गये हैं।

(१) यदि पूर्वाषाढ़ नक्षत्र, धनु लग्न में जन्म हो तो पिता का नाश। (२) यदि कर्क लग्न, पुष्य नक्षत्र में जन्म हो तो पिता का नाश। (३) यदि पूर्वाषाढ़ या पुष्य के प्रथम चरण में जन्म हो तो पिता का, द्वितीय चरण में माता का, तृतीय चरण में बालक का, चतुर्थ चरण में मामा का नाश होता है। अब पिता के नाश के अन्य योग बताते हैं।(४) उत्तराफाल्गुनी के प्रथम चरण में (५) पुष्य के द्वितीय या तृतीय चरण में।(६) चित्रा के तृतीय चरण में।(७) भरणी नक्षत्र के प्रथम या द्वितीय चरण में। (८)हस्त के तृतीय चरण में। (९) या रेवती के चतुर्थ चरण में पुत्र का जन्म हो तो पिता का नाश, कन्या का जन्म हो तो माता का नाश।

ऊपर योग में बालक का नाश कहा है। मूल में 'सुतं, शब्द आया है। इसके दो अर्थ हो सकते हैं। जिसके बच्चा हुआ है उसके सुत को अर्थात (i) स्वयं जातक को (ii) जातक के पिता के सुत को—अर्थात् जातक के भाई को। एक मराठी टीकाकार तथा सुब्रह्मण्य शास्त्री ने द्वितीय (ii) अर्थ लिया है। हम (i) अर्थ विशेष उपयुक्त समझते हैं क्योंकि पिता, माता, मातुल शब्द जातक के पिता, माता, मातुल के लिये आये हैं—जातक के पिता के पिता, माता, मातुल के लिये

नहीं। ऐसी स्थिति में केवल 'सुतं' का अर्थ करने के लिये—जातक के पिता के सुत का नाश करता है यह 'पिता के' शब्दों को क्यों खींचा जाये ॥६०-६३॥

गण्डकाल

षोडशाब्दास्तुरङ्गाद्ये मघाद्ये चाष्टवत्सराः ॥६४॥

एकाब्दः शक्रतारायां चत्वारस्त्वाष्ट्रमूलयोः ।
सार्पे वर्षद्वयं चैव रेवत्यामेकवत्सरः ॥६५॥

द्वौ मासौ चोत्तरादोषः पुष्यर्क्षे तु त्रिमासकम् ।
नवमे मासि पितरं पूर्वाषाढोद्भवं हरेत् ॥६६॥

हस्तर्क्षे यदि जातस्तु पितरं द्वादशाब्दके ।
अभुक्तमूलजः पुत्रः पितरं हन्ति तत्क्षणात् ॥६७॥

अभुक्तमूलजनितो यदि जीवति मानवः ।
निजवंशकरः श्रीमान् बहुसेनाधिपोऽथवा ॥६८॥

ऊपर जो विभिन्न नक्षत्रों के चरणों में उत्पन्न होने के अनिष्ट फल कहे गये हैं उनका फल (अशुभ) कब होता है वह कहते हैं—

(१) अश्विनी के प्रथम चरण का-१६ वर्ष। (२) मघा का प्रथम चरण-८ वर्ष। (३) ज्येष्ठा-१ वर्ष। (४) चित्रा-४ वर्ष। (५) मूल-४ वर्ष। (६) आश्लेषा २ वर्ष। (७) रेवती-१ वर्ष। (८) उत्तराफाल्गुनी-२ मास। (९) पुष्य-३ मास (१०) पूर्वाषाढ़ में उत्पन्न हो तो ९ मास बाद पिता की मृत्यु। (११) हस्त-१२ वर्ष बाद पिता का नाश।

यदि अभुक्त मूल में उत्पन्न बालक जी जाये तो अपने वंश का कर्ता, धनवान् और सेना का अधिप होता है अर्थात् समृद्ध और उच्च पदासीन होता है ॥६४-६८॥

तिथिदोष

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां षडंशे प्रथमे शुभम् ।
द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये मातरं तथा ॥६९॥

चतुर्थे मातुलं हन्ति पञ्चमे भ्रातृनाशनम् ।
षष्ठे यदि शिशुं हन्ति गण्डदोष इतीरितः ॥७०॥

अमायां तु प्रजातानां गजानां वाजिनां तथा।
गवां च महिषादीनां मनुष्याणां विशेषतः ।।७१।।

सिनीवालीप्रजातानां त्याग एव हि सर्वदा ।
विशेषाच्च कुहूत्थानां शान्ति कुर्याद्विधानतः ।।७२।।
नारीं विनाऽवशेषाणां परित्यागो विधीयते ।।

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी (त्रयोदशी का अन्त और अमावास्या के प्रारंभ तक) के काल को ६ बराबर भागों में विभाजित कीजिये। प्रत्येक विभाग में जन्म होने का फल निम्नलिखित है :—

(१) शुभ। (२) पिता का नाश। (३) माता का नाश। (४) मामा का नाश। (५) भाई का नाश (६) स्वयं जातक का नाश। इसे गण्ड दोष कहते हैं।

अमावास्या में जिसका जन्म हो—हाथी, घोड़ा, गाय, भैंस, विशेषकर मनुष्य का—सिनीवाली में जिसका जन्म हो उनका सर्वदा त्याग ही श्रेयस्कर है। विशेषकर कुहू में जिसका जन्म हो। विधिपूर्वक इसकी शान्ति करे और 'नारी' के अतिरिक्त—अन्य योनि (गाय, भैंस, हाथी, घोड़ा आदि) का त्याग ही विहित है।

नारी का अर्थ है स्त्री, या कन्या। कुछ टीकाकारों ने नारी का अर्थ नर योनि किया है। किसी किसी टीकाकार ने कन्या अर्थ किया है। नारी शब्द से स्त्रीलिङ्ग हथिनी, घोड़ी, गाय, भैंस का अर्थ भी किया जाता है क्योंकि जो घोड़े, अख्ता अण्डकोष विरहित नहीं किये जाते उन्हें भी 'नर' कहते हैं।

यहाँ अमावास्या, सिनीवाली, कुहू आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। इनकी व्याख्या आवश्यक है।

प्रायः अमावास्या, सिनीवाली. कुहू, दर्श इन सबका स्थूल रूप से अमावास्या के अर्थ में ही उपयोग करते हैं। परन्तु सिनीवाली और कुहू के अन्तर को इस प्रकार समझाया गया है :—

अमावास्या त्वमावस्या दर्शः सूर्येन्दुसंगमः ।
स्या दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः ।।

सूर्य से पीछे जब १२ अंश पर चन्द्र रहता है तब अमावास्या प्रारम्भ होती है और जब चन्द्र की युति सूर्य से हो तब तक रहती है। अतः सिनीवाली में क्षीण चन्द्र कला भी कैसे दिखाई देगी ? इस सब विवेचन के लिये देखिये

सूर्य सिद्धान्त

अष्टादश शताभ्यस्ता दृश्यांशाः स्वोदयांशुभिः ।
विभज्य लब्धं क्षेत्रांशास्तै दृश्यादृश्यता मता ॥ ६९-७२॥

योगदोष

पितृजन्मर्क्षकर्मर्क्षजातः पितृविनाशकः ॥७३॥

जन्मर्क्षांशकतल्लग्नजातः सद्यो मृतिप्रदः ।
मुसले मुद्गरे योगे जातः शोभननाशकृत् ॥७४॥

विष्टयां दरिद्रमाचष्टे गुलिकेऽङ्गविहीनवान् ।
रिक्तायां षण्ढतां याति पङ्गुः स्याद्यमकण्टके ॥७५॥

ग्रहपीडितनक्षत्रे जातो रोगनिपीडितः ।
ग्रहमुक्ते काङ्क्षितर्क्षे दत्तपुत्रो भवेत्सुतः ॥७६॥

व्यतीपातेऽङ्गहीनः स्यात् परिघे मृत्युमाप्नुयात् ।
वैधृतौ पितरं हन्ति विष्कम्भे चार्थहानिकृत् ।
शूले तु शूलरोगी स्याद् गण्डे गण्डमवाप्नुयात् ॥७७॥

इन पांच श्लोकों में अनिष्ट योग बताये गये हैं । किसी बच्चे (पुत्र या कन्या) के समय इनमें से कोई हो तो उसकी शान्ति (पूजा, पाठ, जप, हवन, दान, आदि कराने से) दोष शमन होता है ।

(१) यदि जातक पिता के जन्मर्क्ष या कर्मक्ष में पैदा हो तो पिता का विनाश होता है । पिता का जन्म ऋक्ष (नक्षत्र) जन्मर्क्ष और उससे १०वां नक्षत्र पिता का कर्मक्ष (कर्मऋक्ष) कहलाता है । (२) पिता की जन्म राशि का जो नवांश– वह यदि जातक का जन्म लग्न हो तो भी पिता का सद्यः विनाश होता है । मूल में शब्द हैं "जन्मर्क्षांशक तल्लग्नजातः' इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि 'पिता का जो नक्षत्र अंश (चरण या नवांश) और जो लग्न' उनमें जो पैदा हो, उसके पिता का सद्यः मरण हो । अर्थात् दोनों-पिता का चन्द्र नक्षत्र नवांश जातक का चन्द्र नक्षत्र नवांश हो और जो पिता का लग्न वह जातक का लग्न—युगपत् घटित हों तो पिता की सद्यः मृत्यु होती है ।

वसिष्ठ ने कहा है।

पित्रोश्च जन्मनक्षत्रे जातस्तु पितृमातृहा ।
जन्मर्क्षांशे च तल्लग्नं जातः सद्योमृतिप्रदः ॥

(३) यदि मुसल या मुद्गर योग में जन्म हो तो 'शोभन' का नाश होता है शोभन क्या ? जो कुछ भी सुन्दर-वैभव आदि हो। (४) भद्रा में पैदा होने से दरिद्र होता है। (५) गुलिक काल में जन्म हो तो किसी अंग में दोष, पीड़ा या विकलता होती है। (६) रिक्ता में जन्म हो तो नपुंसक होता है (या शीघ्र नपुंसकता हो जाती है)। (७) यम कण्टक में जन्म हो तो लंगड़ा होता है। (८) यदि ऐसे नक्षत्र में जन्म हो जो पाप ग्रहों से पीड़ित हो तो रोगी होता है। नक्षत्र में पाप ग्रह हो, या पाप ग्रहों से विद्ध (वेध विचार से) तो ग्रह पीड़ित समझा जाता है। (९) 'ग्रहमुक्ते कांक्षितर्क्षे' में जन्म हो तो जातक दत्ताक रूप में अन्य पुरुष के यहाँ गोद जाता है। ग्रहमुक्ते कांक्षितर्क्षे का क्या अर्थ। एक महानुभाव टीकाकार ने इसका अर्थ स्पष्ट है यह लिखकर इसकी टीका नहीं की। एक अन्य टीकाकार ने 'ग्रहमुक्त और कांक्षितर्क्षभ में दत्तक पुत्र होता है ऐसा लिखते हुए संस्कृत के शब्दों की ही पुनरावृत्ति कर दी है। अतः इन दो शब्दों की व्याख्या आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि ऋक्ष शब्द का राशि तथा नक्षत्र— दोनों अर्थों में प्रयोग होता है किन्तु यदि नक्षत्र अर्थ लिया जाये तो चन्द्रमा उस नक्षत्र में रहेगा ही इसलिए चन्द्रग्रह से युक्त नक्षत्र ग्रहमुक्त नहीं कहा जा सकता। इसलिए यह अर्थ उपयुक्त होगा कि यदि ऐसे लग्न में जन्म हो जो ग्रह मुक्त हो—ग्रह जिसे छोड़ चुका हो और कांक्षितर्क्ष अन्य ग्रह उसकी आकांक्षा, इच्छा प्रवेश के लिये उत्सुक हो अर्थात् शीघ्र ही प्रवेश करने वाला हो तो वह लग्न ग्रहमुक्त (किसी ग्रह से मुक्त), कांक्षितर्क्ष (अन्य ग्रह के प्रवेश के लिये उद्यत) होगा। (१०) व्यतीपात योग में जन्म हो तो अंगहीन हो। (११) परिघ योग में जन्म हो तो मृत्यु को प्राप्त हो। यहाँ मृत्यु से शीघ्र मृत्यु का अर्थ समझना चाहिये। क्योंकि एक न एक दिन हरेक को मृत्यु के मुख में जाना है। 'मरणान्तं हि जीवितम्'। (१२) वैधृति योग में जन्म हो तो पिता की मृत्यु हो। (१३) विष्कुंभ योग में उत्पन्न होने का फल धनहानि है। (१४) शूल योग में जन्म हो तो शूल (दर्द—प्रायः पेट के दर्द के लिये शूल शब्द प्रयुक्त होता है) हो। (१५) गण्ड योग में जन्म होने से गण्ड रोग हो (कंठ में गिलटियों के रोग को गण्डमाला कहते हैं। गण्ड रोग से शरीर में गिलटियाँ हो जाती हैं) ॥७३-७७॥

दन्तोद्गम फल

सदन्तजातः कुलनाशकारी द्वितीयमासादिचतुष्टयान्ते ।
दन्तोद्भवो मृत्युकरः पितुः स्यात् षष्ठे शिशोस्तत्परतः शुभं स्यात् ।।७८।।

(१) यदि बच्चा जब पैदा हो तभी उसके मुँह में दाँत हो तो कुल का नाश होता है । (२) जन्म के बाद द्वितीय मास से चतुर्थ मास के अन्त तक बच्चे के मुँह में दाँत आ जायें तो पिता की मृत्यु हो । (३) यदि छठे मास में दाँत आयें तो स्वयं जातक की मृत्यु हो । (४) उसके बाद दाँत आना शुभ है ।

एक मराठी टीकाकार तथा श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने इस श्लोक का अर्थ किया है कि यदि बालक का दाँत सहित जन्म हो तो द्वितीय मास से चतुर्थ मास के भीतर कुल का नाश हो; छठे महीने में पिता का नाश हो । यह समय टल जाये तो बाद में शुभ है । यह अर्थ हमें सम्मत नहीं है ।

कतिपय आचार्यों ने छठे महीने में दन्तोद्भव को अशुभ नहीं माना है । चण्डेश्वर का वचन है:—

प्रथमे दन्तजननात् स्वयमेव विनश्यति ।
द्वितीये भ्रातरं हन्ति तृतीये भगिनीं तथा ।
चतुर्थे मातरं हन्ति पञ्चमेनात्मनोऽग्रजम् ।
षष्ठे च मंत्रजीवी स्यात् सप्तमे पितृसौख्यदः ।
अष्टमे पुष्टिजनको नवमे लभते धनम् ।
लभते दशमे मासि सौख्यमेकादशेऽपि वा ।
द्वादशे धनसम्पत्तिर्दन्तानां जनने फलम् ।।

मुहूर्तचिन्तामणि में संस्कार प्रकरण में श्लोक १३ हैं :—

मासे चेत्प्रथमे भवेत्सदशनो बालो विनश्येत् स्वयं
हन्यात्स क्रमतोऽनुजातभगिनी मात्रग्रजान् द्व्यादिके ।
षष्ठादौ लभते हि भोगमतुलं तातात्सुखं पुष्टतां
लक्ष्मीं सौख्यमनो जनौ सदशनो वोर्ध्वं स्वपित्रादिहा ।।

इस श्लोक की पीयूषधारा संस्कृत टीका में अनेक पुराणों (पद्मपुराण, विष्णुधर्मोत्तर) के वचन देकर इस विषय पर विशद प्रकाश डाला गया है । वह द्रष्टव्य है ।।७८।।

जन्म तारा आदि

जन्मर्क्षमाद्यं दशमन्तु कर्म साङ्घातिक षोडशभं वदन्ति ।
अष्टादशं स्यात् समुदायसंज्ञमाधानमेकोनितविंशतिः स्यात् ॥७६॥
त्रयोविंशतिनक्षत्रं वैनाशिकमिति स्मृतम् ।
जातिदेशाभिषेकाख्याः पञ्चविंशादितारकाः ॥८०॥
जन्मतारादयो यस्य विद्धाः पापवियच्चरैः ।
सद्यो मृत्युकरास्तस्य शुभैः शुभफलप्रदाः ॥८१॥

जन्म के समय जिस नक्षत्र में चन्द्रमा हो उसे जन्मर्क्ष कहते हैं। ऋक्ष नक्षत्र को भी कहते हैं । जन्म नक्षत्र से दसवां नक्षत्र कर्म (या कर्मक्ष) कहलाता है । जन्म नक्षत्र से सोलहवाँ सांघातिक, अठारहवाँ समुदाय, उन्नीसवाँ आधान, तेईसवाँ वैनाशिक, पच्चीसवाँ जाति, छब्बीसवाँ देश, सत्ताइसवाँ अभिषेक कहलाता है । जिसके जन्म नक्षत्र आदि पाप ग्रहों से विद्ध हों उसकी सद्यः मृत्यु हो जाती है; यदि शुभ ग्रहों से विद्ध हो तो शुभ फल होता है ।

पंचशलाका, सप्तशलाका, सर्वतोभद्र में वेध आदि कई प्रकार के वेधों का प्रतिपादन शास्त्रों में प्राप्त होता है। तब कौन सा वेध समझा जाये ? श्रीपति कहते हैं

वधूप्रवेशे दाने च वरणे पाणिपीडने ।
वेधः पञ्चशलाकाख्योऽन्यत्र सप्तशलाकके ॥

इस वचन से यहाँ सप्तशलाका वेध समझना । सप्तशलाका वेध चक्र नीचे दिया जाता है :

यहाँ ज्येष्ठा में कोई ग्रह हो तो वह ज्येष्ठा तथा पुष्य दोनों का वेध करेगा। पूर्वाषाढ़ या आर्द्रा में कोई नक्षत्र हो तो यह दोनों उससे विद्ध होंगे। इसी प्रकार अन्यत्र समझना। बहुत से आचार्य (यथा भोज) विवाह में भी सप्तशलाका में विद्ध है या नहीं यह देखने का विधान करते हैं। इस चक्रोद्धार के लिए व्यवहार समुच्चय का अवलोकन करें।

अब ऊपर जन्मर्क्ष आदि जितने नक्षत्र दिये गये हैं—वे युगपत् एक साथ क्रूर ग्रहों से विद्ध हों यह तो कम संभव है—इसलिए जन्म, कर्म, सांघातिक, वैनाशिक आदि जितने अधिक पापविद्ध हों उतना ही अधिक पाप फल समझना, और जितने अधिक शुभ विद्ध हों उतना अधिक शुभ फल समझना चाहिए ॥७९-८१॥

गण्डदोषापवाद

वैशाखे श्रावणे माघे फाल्गुन्यां व्योमसम्भवम्।
आषाढपुष्यसौम्येषु ज्येष्ठे मासि च मानुषम् ॥८२॥

अश्वयुक्चैत्रकार्त्तिक्यां भाद्रे च बिलसम्भवम्।
मर्त्ये मृत्युर्गण्डदोषः पाताले नास्ति पुष्करे ॥८३॥

जातमात्रे कुमारस्य सुखमालोकयेत्पिता।
पितृणात्स विमुच्येत पुत्रस्य मुखदर्शनात् ॥८४॥

अब गण्डदोष का अपवाद कहते हैं। जब कोई सामान्य नियम, विशेष नियम से बाधित हो—अर्थात् विशेष परिस्थितिवश जब सामान्य नियम लागू न हो तो वह अपवाद कहलाता है। यथा—यदि कोई पुरुष किसी स्त्री से बिना उसकी इच्छा और स्वीकृति के, बलात्कार पूर्वक संभोग करे तो भारतीयदण्ड विधान की शाखा ३७६ के अन्तर्गत अपराधी होता है और ७ वर्ष तक के कारावास से दण्डित किया जा सकता है। परन्तु इसका एक अपवाद है। यदि जातक अपनी विवाहिता स्त्री से—बिना उसकी इच्छा और स्वीकृति के, बलात्कार से संभोग करे तो कोई अपवाद नहीं। इस अपवाद का भी एक अपवाद है। यदि विवाहिता स्त्री भी हो किन्तु १४ वर्ष से कम वय की हो तो अपराध है और पुरुष दण्डित हो सकता है। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक सामान्य नियम के अपवाद होते हैं या हो सकते हैं। केवल ज्योतिष शास्त्र ही नहीं, धर्मशास्त्र भी इनसे भरा है। यथा "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति।"

कहते हैं कि वैशाख, श्रावण, माघ और फाल्गुन में गण्ड आकाश में रहता है। आषाढ़, पौष, मार्गशीर्ष और ज्येष्ठ में गण्ड मर्त्यलोक (पृथिवी में) रहता है। तथा अश्विनी, चैत्र, कार्त्तिक और भाद्रपद इन चार महीनों में पाताल में रहता है। जब गण्ड पृथ्वी पर रहता है तो मृत्यु करता है। आकाश या पाताल में रहे तो दोष नहीं होता।

जब बालक (पुत्र) पैदा हो तो पैदा होते ही पिता उसके मुख को देखे। पुत्र के मुख देखते ही वह (जातक का पिता) अपने पितरों के ऋण से उऋण हो जाता है। शास्त्र में कहा गया है :—

'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च'

पुत्र की परिभाषा है 'पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते इति पुत्रः ॥८२-८४॥

नक्षत्र फल

अश्विन्यामतिबुद्धिवित्तविनयप्रज्ञायशस्वी सुखी
याम्यर्क्षे विकलोऽन्यदारनिरतः क्रूरः कृतघ्नो धनी।
तेजस्वी बहुलोद्भवः प्रभुसमोऽमूर्खश्च विद्याधनी
रोहिण्यां पररन्ध्रवित्कृशतनुर्बोधी परस्त्रीरतः ॥८५॥

चान्द्रे सौम्यमनोऽटनः कुटिलदृक् कामातुरो रोगवान्
आर्द्रायामधनश्चलोऽधिकबलः क्षुद्रक्रियाशीलवान्।
मूढात्मा च पुनर्वसौ धनबलख्यातः कविः कामुक-
स्तिष्ये विप्रसुरप्रियः सधनधी राजप्रियो बन्धुमान् ॥८६॥

सार्पे मूढमतिः कृतघ्नवचनः कोपी दुराचारवान्
गर्वी पुण्यरतः कलत्रवशगो मानी मघायां धनी।
फल्गुन्यां चपलः कुकर्मचरितस्त्यागी दृढः कामुको
भोगी चोत्तरफल्गुनीभजनितो मानी कृतज्ञः सुधीः ॥८७॥

हस्तर्क्षे यदि कामधर्मनिरतः प्राज्ञोपकर्ता धनी
चित्रायामतिगुप्तशीलनिरतो मानी परस्त्रीरतः।
स्वात्यां देवमहीसुरप्रियकरो भोगी धनी मन्दधी-
र्गर्वी दारवशो जितारिरधिकक्रोधी विशाखोद्भवः ॥८८॥

मैत्रे सुप्रियवाग्धनी सुखरतः पूज्यो यशस्वी विभु-
र्ज्येष्ठायामतिकोपवान् परवधूसक्तो विभुर्धार्मिकः ।
मूलर्क्षे पटुवाग्विधूतकुशलो धूर्तः कृतघ्नो धनी ।
पूर्वाषाढभवो विकारचरितो मानी सुखी शान्तधीः ॥८९॥

मान्यः शान्तगुणः सुखी च धनवान् विश्वर्क्षजः पण्डितः
श्रोणायां द्विजदेवभक्तिनिरतो राजा धनी धर्मवान् ।
आशालुर्वसुमान् वसूडुजनितः पीनोरुकण्ठः सुखी
कालज्ञः शततारकोद्भवनरः शान्तोऽल्पभुक् साहसी ॥९०॥

पूर्वप्रोष्ठपदि प्रगल्भवचनो धूर्तो भयार्तो मृदु-
श्चाहिर्बुध्न्यजमानवो मृदुगुणस्त्यागी धनी पण्डितः ।
रेवत्यामुरुलाञ्छनोपगतनुः कामातुरः सुन्दरो
मन्त्री पुत्रकलत्रमित्रसहितो जातः स्थिरः श्रीरतः ॥९१॥

अब अश्विनी आदि प्रत्येक नक्षत्र में जन्म होने का शुभाशुभ फल कहते हैं :

(१) अश्विनी—अतिबुद्धिमान्, धनी, विनयान्वित, अतिप्रज्ञा वाला, यशस्वी और सुखी । अति प्रारंभ में आया है, इस कारण अति सब विशेषणों के पहिले (अतिधनी) भी जुड़ सकता है । मूल में प्रज्ञा यशस्वी शब्द आया है जिसके दो अर्थ हो सकते हैं (i) प्रज्ञावान् और यशस्वी तथा (ii) अपनी प्रज्ञा के कारण यशस्वी (और अर्थान्तर में सुखी भी) । बुद्धि और प्रज्ञा साधारणतः एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं परन्तु यहाँ ग्रंथकार ने बुद्धि और प्रज्ञा दोनों शब्दों का प्रयोग किया है । बुद्धि की परिभाषा है 'संकल्पविकल्पात्मकं मनः निश्चयात्मिका बुद्धिः' । प्रज्ञा का अर्थ होगा प्रकृष्ट ज्ञा । नीतिज्ञ में प्रज्ञा विशेष मात्रा में रहती है, इसी कारण कहा है ।

शस्त्रं निहन्ति पुरुषस्य शरीरमेकं
प्रज्ञा कुलं च विभवं च यशश्च हन्ति ॥

(२) भरणी—विकल, दूसरे की स्त्री में अनुरक्त, क्रूर, कृतघ्न, धनी । विकल शब्द शारीरिक व्याधि तथा मानसिक व्याधि दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है । (३) कृत्तिका—तेजस्वी, प्रभुसमः (उच्चाधिकार युक्त), अमूर्ख (विद्वान्), विद्या के कारण धनी या विद्या ही धन है जिसका । (४) रोहिणी—दूसरे के छिद्र (दोष जानने वाला), दुर्बल शरीर, ज्ञानयुक्त, परस्त्री में रत । (५) मृगशिर—सौम्यचित्त, अटन (घूमने, फिरने या यात्रा) करने वाला, कुटिल दृष्टि वाला,

कामातुर, रोगी। (६) आर्द्रा–धन रहित, चल (मानसिक चंचलता, या एक जगह स्थित न रहना) अत्यन्त बलवान्, क्षुद्र (छोटे) कार्य करने वाला, शीलवान् (अथवा क्षुद्र क्रिया ही जिसकी प्रकृति है तथा मूढात्मा। (७) पुनर्वसु—धन और बल (शारीरक बल किंवा सेना) से जो विख्यात हो, कवि, कामुक (कामवासना से विशेष युक्त)। मूल में मूढात्मा शब्द आया है वह आर्द्रा का फल है क्योंकि मूढ़ात्मा के वाद 'च' का प्रयोग है। दूसरे आर्द्रा और पुनर्वसु के जो अन्य फल दिये गये हैं, उनके अनुसार मूढात्मा आर्द्रा के फल में विशेष संगत होता है। एक महानुभाव टीकाकार ने मूढात्मा, पुनर्वसु के फल में जोड़ दिया है वह उचित नहीं। आर्द्रा का फल, 'मूढात्मा च' तक चलता है, उसके बाद पुनर्वसौ शब्द आया है। एक अन्य पुस्तक में मूढात्मा की जगह गूढात्मा पाठ है। (८) पुष्य–ब्राह्मणों और देवताओं का आदर और पूजा करने वाला। धनी बुद्धिमान्, राजा का प्रिय, वन्धुयुक्त। (९) आश्लेषा–मूढमति, कृतघ्नता के वचन बोलने वाला (नाशुक्रगुजार), क्रोधी, दुराचारी।

(१०) मघा–गर्व करने वाला, पुण्यरत, अपनी स्त्री के वश में, मानी, धनी। मान और गर्व में क्या अन्तर। मान अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होता है। यह गुण है। गर्व अच्छे अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता, यह अवगुण है। (११) पूर्वाफाल्गुनी–चपल, कुकर्म चरित्र वाला, त्यागी, दृढ़, कामुक (कामवासना प्रधान)। (१२) उत्तरा फाल्गुनी–भोगी, मानी, कृतज्ञ, विद्वान्। (१३) हस्त–काम (सांसारिक भोग्य पदार्थ) तथा धर्म (पारलौकिक शुभ कर्म) में निरत, प्राज्ञ, दूसरों का उपकार करने वाला, धनी। (१४) चित्रा–जो अपने मन की बात को अत्यन्त गुप्त रखे, किसी अन्य पर प्रकट न होने दे, ऐसा स्वभाव है जिसका–मानी, दूसरे की स्त्री में अनुरक्त, (१५) स्वाती–देवता और ब्राह्मणों का प्रिय करने वाला (अर्थात् धार्मिक), भोगी, धनी किन्तु मन्दबुद्धि। (१६) विशाखा–गर्वी, (घमण्डी) अपनी पत्नी के वश में, अपने शत्रुओं पर विजय पाने वाला (जितारि का यह अर्थ भी हो सकता है कि जिसके शत्रुओं ने उसे जीत लिया है) अत्यन्त क्रोधी। (१७) अनुराधा–वड़ी मीठी (प्रिय) तथा सुन्दर वाणी से युक्त, धनी, सुख में रत (सुख साधनों में लिप्त अर्थात् सुखी) पूज्य, यशस्वी, सामर्थ्यशाली। (१८) ज्येष्ठा–अति क्रोधी दूसरे की स्त्रियों में अनुरक्त, सामर्थ्यशाली, धार्मिक।

(१९) मूल–चतुर वाणी से युक्त, अप्रामाणिक, धूर्त, कृतघ्न, धनी। (२०) पूर्वाषाढ–सच्चरित्र, मानी, सुखी, शान्त बुद्धि। (२१) उत्तराषाढ़–मान्य, सात्त्विक गुणयुक्त, सुखी, धनवान्, पंडित। (२२) श्रवण–ब्राह्मणों और देवताओं की भक्ति में निरत, राजा, धनी, धार्मिक। (२३) धनिष्ठा–आशान्वित, धनी, मोटी जाँघ और कंठवाला, सुखी। (२४) कालज्ञ–(समय को जानने वाला,

ज्योतिषी), शान्त, साहसी, थोड़ा भोजन करने वाला। (२५) पूर्वाभाद्र–प्रगल्भ-वचन (जो साहस पूर्वक ओजस्विता से बात करे), धूर्त, भयत्रस्त (डरपोक), मृदु (सौम्य–कठोर नहीं) (२६) उत्तराभाद्र–मृदुगुण (सात्त्विक), त्यागी धनी, पंडित। (२७) रेवती–ऊरु (जाँघों) में चिह्न हों, कामातुर, सुन्दर, मंत्री (मंत्री पद प्राप्त करने वाला, मंत्रणा (सलाह) देने वाला या मंत्रशास्त्र में निपुण, दृढ़, धन में रत, स्त्री, पुत्र मित्रों से युत ॥८५-९१॥

बृहज्जातक का १६ वाँ अध्याय ऋक्षशीलाध्याय है जिसमें प्रत्येक नक्षत्र में जन्म होने का फल दिया है। उक्त अध्याय पर विशेषकर रुद्र और भट्टोत्पल की संस्कृत टीकायें द्रष्टव्य हैं।

राशिफल

अब राशिफल—जन्म में चन्द्रमा जिस राशि में हो, उस राशि के अनुसार फल बतलाते हैं :—

मेषस्थे यदि शीतगौ च लघुभुक् कामी सहोत्थाग्रजो
दाता कान्तयशोधनोरुचरणः कन्याप्रजो गोपतौ।
दीर्घायुः सुरतोपचारकुशलो हास्यप्रियो युग्मके
कामासक्तमनोऽटनः सुवचनश्चन्द्रे कुलीरस्थिते ॥९२॥

सिंहस्थे पृथुलोचनः सुवदनो गम्भीरदृष्टिः सुखी
कन्यास्थे विषयातुरो ललितवाग्विद्याधिको भोगवान्।
तौलिस्थेऽमरविप्रभक्तिनिरतो बन्धुप्रियो वित्तवान्
कीटस्थे शशिनि प्रमत्तहृदयो रोगी च लुब्धोऽटनः ॥९३॥

सौम्याङ्गो रुचिरेक्षणः कुलवरः शिल्पी धनुःस्थे विधौ
गीतज्ञः पृथुमस्तको मृगगते शास्त्री परस्त्रीरतः।
कुम्भस्थे गतशीलवान् बुधजनद्वेषी च विद्याधिको
मीनस्थे मृगलाञ्छने वरतनुर्विद्वान् बहुस्त्रीपतिः ॥९४॥

(१) मेष–थोड़ा भोजन करने वाला, कामी, अपने भाइयों में बड़ा हो। मूल में अग्रज शब्द आया है, जिसका अर्थ होता है पहिले उत्पन्न होने वाला। (२) वृष–दाता, सुन्दर, दृढ़, जाँघ और पैरों से युक्त और उसके कन्या सन्तति

अधिक । दो पुस्तकों में 'घनोरुचरणः' की जगह पाठान्तर है 'धनोरुचरणः'। उसका अर्थ हो जायेगा धनी और वरिष्ठ (श्रेष्ठ) आचरण वाला। (३) मिथुन–दीर्घायु–सुरतोपचारकुशल (काम कला प्रवीण), हास्य प्रिय। (४) कर्क–कामासक्त मन (अधिक कामवासना से युक्त), घूमने फिरने या यात्रा का शौकीन, अच्छे वचन बोलने वाला। (५) सिंह–बड़े नेत्र, अच्छा आनन (चेहरा) गंभीर दृष्टि, सुखी। (६) कन्या–विषयातुर, ललित वाणी–ललित क्या? मृदु, सुन्दर और मनोहर–अधिक विद्या से युक्त भोगी। (७) तुला–देवता और ब्राह्मणों की भक्ति में निरत, बन्धुप्रिय, धनी। (८) वृश्चिक–प्रमत्त हृदय, रोगी, लोभी, घूमने फिरने वाला (९) सौम्य (सुन्दर और सुशील) शरीर, सुन्दर नेत्र, कुल में श्रेष्ठ, शिल्पी (शिल्पशास्त्र में निपुण–ऐसा विद्यार्थी इंजीनियरिंग पढ़े तो अधिक सफल हो)। (१०) मकर–गीतज्ञ (गान विद्या का ज्ञाता, बड़ा मस्तक, शास्त्रों में निष्णात, दूसरों की स्त्रियों में अनुरक्त। (११) कुंभ—विद्वान् होता है परन्तु अन्य विद्वानों से द्वेष करता है। जातक का शील (स्वभाव) अच्छा नहीं होता—अर्थात् सौ-शील्यादि गुणों से रहित। (१२) मीन–श्रेष्ठ (सुन्दर) शरीर, विद्वान्, बहुत सी स्त्रियों का पति। अब हिन्दुओं में सन् १९५६ से एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह कोई पुरुष नहीं कर सकता। पाश्चात्य–बहुत से देशों में भी यही कानून है। ऐसी स्थिति में अनेक स्त्रियों का प्रेमी यही फल घटित होगा। मुसलमानों में अब भी बहुविवाह प्रचलित है ॥९२-९४॥

मन्त्रेश्वर ने फलदीपिका के नवें अध्याय में बहुत सुन्दर राशि फल दिया है जो बहुत ही ठीक बैठता है। हमारी बहुत इच्छा थी कि उसको यहाँ उद्धृत करें। परन्तु विस्तार भय से ऐसा नहीं किया जा सका। वह द्रष्टव्य है। देखिए भावार्थ-बोधिनी फलदीपिका के पृष्ठ २०६-२१६। पुस्तक मोतीलाल बनारसीदास पुस्तक प्रकाशक तथा विक्रेता चौक वाराणसी से प्राप्य है।

यहाँ जो राशि फल बतलाया गया है–उनका फल कहाँ तक ठीक होगा इसके लिए निम्न लिखित विचार आवश्यक है। (१) चन्द्रमा जितना अधिक बली होगा उतना ही शुभ फल अधिक–जितना अधिक दुर्बल होगा उतना ही अनिष्ट फल अधिक। (२) चन्द्रमा पर शुभ ग्रहों की दृष्टि या उनकी युति होने से शुभ फल में आधिक्य, अशुभ फल में न्यूनता। चन्द्रमा की पाप ग्रहों से युति या उनकी दृष्टि हो तो जो शुभ फल कहा गया है उसमें न्यूनता और कथित अशुभ फल की वृद्धि होती है। (३) चन्द्रमा या कोई भी ग्रह बलवान् है या निर्बल यह जाँच करने के अनेक दृष्टिकोण पिछले अध्यायों में बताये गये हैं। इनमें पक्षबल को सबसे अधिक महत्त्व देना चाहिए। (४) आगे चन्द्रमा किस नवांश में है, इस आधार पर फल बतलाया गया है। मान लीजिये धनु के तृतीय नवांश—

मूल के तृतीय चरण में चन्द्रमा है। मिथुन नवांश में चन्द्र हुआ। अब चन्द्रमा का धनुराशि स्थित होने का फल कहें या मिथुन नवांश स्थित होने का ? इसका निर्णय यह है कि वैसे तो धनुराशि स्थिति और मिथुन नवांश स्थिति दोनों का ही फल होगा किन्तु राशीश (धनु का स्वामी वृहस्पति)अधिक बलवान होगा तो राशि का फल अधिक होगा और यदि नवांशेश (मिथुन का स्वामी बुध) अधिक बलवान् होगा तो उसका—नवांश का—फल अधिक होगा।

राशिफल के अध्याय १६ (वृहज्जातक) में वराहमिहिर कहते हैं :—

बलवति राशौ तदधिपतौ च
स्वबलयुतः स्याद् यदि तुहिनांशुः।
कथितफलानामविकलदाता
शशिवदतोऽन्येऽप्यनु परिचिन्त्याः ॥

अर्थात् चन्द्र जिस राशि में हो, वह बलवान् हो, उस राशि का स्वामी बलवान् हो तथा स्वयं चन्द्रमा बलवान् हो तभी राशि फल पूर्ण रूप से होता है।

वृहज्जातक अध्याय १९ में नवांश फल का विस्तृत विवेचन किया गया है। क्या शुभ फल और क्या अशुभ फल दोनों का विवेचन कर वराहमिहिर लिखते हैं।

वर्गोत्तमस्वपरगेषु शुभं यदुक्तं
तत्पुष्टमध्यलघुता शुभमुत्क्रमेण।
वीर्यान्वितोंशकपतिर्निरुणद्धि पूर्वं
राशीक्षणस्य फलमंशफलं ददाति ॥

अर्थात् वर्गोत्तमांश में यदि चन्द्र हो तो अत्यन्त शुभ फल होता है। यदि अपने नवांश में हो तो शुभ फल मध्यम समझना चाहिये। दूसरे ग्रह के नवांश में हो तो अल्प शुभ फल। इस प्रकार शुभ फल की पुष्ट, मध्यम, लघु यह तीन कक्षा कीं।

अब अशुभ फल के विषय में कहते हैं कि जहाँ अशुभ फल बताया गया है, वहाँ चन्द्रमा (i) वर्गोत्तमांश में हो तो अल्प अशुभ फल (ii) अपने नवांश में हो तो मध्यम अशुभ फल तथा (iii) दूसरे के नवांश में हो तो अधिक अशुभ फल। इस प्रकार अशुभ फल को भी तीन भागों में उत्क्रम से विभाजित किया गया है।

इसी प्रकार लग्ननवांश, तथा सूर्य नवांश के फल विचार में भी तारतम्य करना चाहिए। हम पहिले बता चुके हैं कि नवांशेश यदि राशीश से बलवान हो तो राशीश की अपेक्षा नवांशेश का ही फल अधिक होता है। यह

तारतम्य केवल राशिफल और नवांश फल में ही करना चाहिए और जो राशीक्षण (राशि किस ग्रह से दृष्ट है) फल, उसकी अपेक्षा नवांशेक्षण फल ही अधिक होता है। यदि नवांशेश दुर्बल हो राशीश बलवान् हो तो दोनों फलों को मिलाकर फल कहना। इतना अधिक नवांश का महत्व है। नवांश, राशिफल का बाधक हो सकता है किन्तु राशि नवांश की बाधक नहीं।

राश्यंशक फल

सेनानीर्धनवान् पिशङ्गनयनश्चोरश्च मेषांशके
पीनस्कन्धमुखांसकोऽसितवपुर्जातो वृषांशे विधौ।
चार्वङ्गः प्रभुसेवको लिपिकरो युग्मांशके पण्डितः
श्यामाङ्गः पितृपुत्रसौख्यरहितश्चन्द्रे कुलीरांशके ॥६५॥

पीनाङ्गोन्नतनासिको धनबलख्यातश्च सिंहांशके
कन्यांशे मृदुभाषणः कृशतनुर्द्यूतक्रियाकोविदः।
कामी भूपतिसेवकः सुनयनश्चन्द्रे तुलांशे स्थिते
कीटांशे विकलोऽधनः कृशतनुः सेवाऽटनो रोगवान् ॥६६॥

चापांशे कृशदीर्घबाहुतनुगस्त्यागी तपस्वी धनी
लुब्धः कृष्णतनुः सदारतनयश्चन्द्रे मृगांशे यदि।
मिथ्यावादरतः स्वदारवशगः कुम्भांशगे शीतगौ
मीनांशे मृदुवागदीनवचनस्तीर्थाटनः पुत्रवान् ॥६७॥

अब चन्द्रमा जिस नवांश में हो उसका फल कहते हैं। चन्द्र-स्पष्ट से किंवा नक्षत्र चरण से यह ज्ञात होता है कि चन्द्रमा किस नवांश में है।

(१) मेष-नवांश—सेनानी (फौज का अफसर), धनी, पिशंग (पीलापन लिये हुए, ईषत् लालिमा युक्त) नेत्र, चोर। (२) वृषभ नवांश—पीन शरीर, कंधे, मुखवाला, श्यामवर्ण। पीन मोटे या विस्तृत को कहते हैं। मूल में स्कंध और अंस दो शब्द आये हैं। सामान्यतः कंधों के लिये स्कन्ध और अंस दोनों ही शब्दों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु स्कन्ध का वास्तविक अर्थ है तना (जैसे वृक्ष का प्रधान भाग जो मूल से ऊपर तक जाता है और ऊपर शाखाएँ फूटती हैं) इसी प्रकार शरीर का स्कन्ध समझना चाहिए। (३) मिथुन नवांश—सुन्दर शरीर प्रभु (राजा) का सेवक, लिपिकर (नकल, छापाखाना, ड्राइंग—रेखाचित्र, चित्र आदि

बनाने वाला) पंडित । (४) कर्क नवांश–श्यामवर्ण, पिता और पुत्र के सौख्य से रहित । (५) सिंह नवांश–मोटे या पुष्ट शरीर वाला, ऊँची नाक, धन और बल (शारीरक बल या सेना) के कारण विख्यात । (६) कन्या नवांश–कोमल वाणी, दुर्बल शरीर, जुआ, रेस, सट्टे के काम में प्रवीण । (७) तुला नवांश–कामी, राजा का सेवक, अच्छे नेत्र वाला । (८) वृश्चिक नवांश–विकल (शरीर के किसी अंग में रोग या मानसिक विकलता), धन रहित, दुर्बल शरीर, सेवा के कारण घूमने फिरने वाला रोगी । (९) धनु नवांश–दुबले किन्तु लम्बे बाहु, त्यागी तपस्वी, धनी । (१०) मकर नवांश–लोभी, श्याम शरीर, स्त्री पुत्र सहित । एक मुद्रित पुस्तक में पाठान्तर है 'सुदारतनयः'—जिसकी अच्छी स्त्री और (अच्छे) पुत्र हों । (११) कुंभ नवांश–मिथ्यावाद (झूठ बोलना या झूठी मुकदमे बाजी में) रत, अपनी स्त्री के वश में रहने वाला । (१२) मीन नवांश–मृदु (कोमल) वाणी किन्तु दीन वचन न बोले (अर्थात् वाणी में शिष्टता, सभ्यता, मृदुता, कोमलता, स्निग्धता हो किन्तु दैन्य न हो, तीर्थ यात्रा करने वाला और पुत्रों से युक्त हो ।

यहाँ भी राशिफल के प्रसंग में जो सिद्धांत बताये गये हैं, उनको लागू करना चाहिये । जब ग्रह उसी राशि उसी नवांश में यथा मेषराशि मेष नवांश, मिथुन राशि मिथुन नवांश में रहता है तो उसकी बहुत प्रशंसा की गयी है । यदि चन्द्रमा किसी नवांश में वर्गोत्तम हो तो उसका क्या फल ? यह यहाँ नहीं कहा गया है ।

होराशास्त्र (बृहज्जातक) में अध्याय १९ श्लोक ७ की टीका में रुद्रभट्ट कहते हैं कि मेष नवांश का फल चोर है । यदि वर्गोत्तम चन्द्र मेष नवांश में हो तो चोरों का अधिप (सरदार—जो स्वयं चोर हो और जिसकी मातहती में अनेक चोर काम करते हों); वृष नवांश में भोगी होता है । यदि वृष में चन्द्रमा वर्गोत्तम हो तो भोगियों में प्रधान हो ।

भट्टोत्पल बृहज्जातक के मूल 'वर्गोत्तमांशेष्वेषामीशा' की टीका में वर्गोत्तम चन्द्र का फल निम्न लिखित देते हैं ।

(१) मेष–चौर स्वामी (२) वृष–भोगियों का, असंचयशीलों का स्वामी । (३) मिथुन–पंडित स्वामी । (४) कर्क–ईश्वरों का स्वामी अर्थात् महाधनिक । (५) सिंह–नृप स्वामी अर्थात् महाराजाधिराज । (६) कन्या–क्लीव (नपुंसकों का स्वामी) । (७) तुला–शूरवीरों का स्वामी । (८) वृश्चिक–भारवाहियों (बोझा ढोने वालों) का स्वामी । (९) धनु–दासों का स्वामी । (१०) मकर–पापियों का स्वामी । (११) कुंभ–क्रूरों का स्वामी । (१२) मीन–अभयों (निर्भयों) का स्वामी ॥९५-९७॥

योग फल

अब विष्कुंभ आदि ३७ योगों में जन्म होने का फल कहते हैं ।

विष्कुम्भे जितशत्रुरर्थपशुमान् प्रीतौ परस्त्रीवश-
श्चायुष्मत्प्रभवश्चिरायुरगदः सौभाग्यजातः सुखी ।
भोगी शोभनयोगजो वधरुचिर्जातोऽतिगण्डे धनी
धर्माचाररतः सुकर्मजनितो धृत्यां परस्त्रीधनः ।।९८।।

शूले कोपवशानुगः कलहकृद् गण्डे दुराचारवान्
वृद्धौ पण्डितवाग् ध्रुवेऽतिधनवान् व्याघातजो घातकः ।
ज्ञानी हर्षणयोगजः पृथुयशा वज्रे धनी कामुकः
सिद्धौ सर्वजनाश्रितः प्रभुसमो मायी व्यतीपातजः ।।९९।।

दुष्कामी च वरीयजस्तु परिघे विद्वेषको वित्तवान्
शास्त्रज्ञः शिवयोगजश्च धनवान् शान्तोऽवनीशप्रियः ।
सिद्धे धर्मपरायणः क्रतुपरः साध्ये शुभाचारवान्
चार्वङ्गः शुभयोगजश्च धनवान् कामातुरः श्लेष्मकः ।।१००।।

शुक्ले धर्मरतः पटुत्ववचनः कोपी चलः पण्डितो
मानी ब्रह्मभवोऽतिगुप्तधनिकस्त्यागी विवेकप्रभुः ।
ऐन्द्रे सर्वजनोपकारचरितः सर्वज्ञधीर्वित्तवान्
मायावी परदूषकश्च बलवान् त्यागी धनी वैधृतौ ।।१०१।।

(१) विष्कुंभ–जितशत्रु–शत्रुओं को जीतने वाला । इस 'जितशत्रु' (मूल) का यह अर्थ भी हो सकता है कि जीत लिया है शत्रुओं ने जिसको । धनी और पशुओं से युक्त । आगे अच्छा फल दिया गया है, इस कारण शत्रुओं को जीतने वाला यही अर्थ उत्तम होगा । (२) प्रीति–परस्त्री (अन्य पुरुष की स्त्री) के वश । (३) आयुष्मान् दीर्घायु, रोग रहित । (४)सौभाग्य–सुखी ।(५)शोभन–भोगी, वध में रुचि रखने वाला । (६)अतिगण्ड–धनी । (७)सुकर्मा–धर्माचरण में संलग्न । (८) धृति–परस्त्री के धन से धनी हो। (९) शूल–क्रोधी और कलह करने वाला ।

(१०) गण्ड–दुराचारी । (११)वृद्धि–जिसकी वाणी में पांडित्य हो ।

(१२) ध्रुव–अतिधनी। (१३) व्याघात–घात करने वाला। (१४) हर्षण–ज्ञानी, बहुत यशस्वी (१५) वज्र–धनी, कामुक (काम वासना प्रधान)। (१६) सिद्धि–सब व्यक्ति आश्रित हों जिसके। सर्वजनाश्रित का यह भी अर्थ हो सकता है कि जो सब जनों का आश्रित हो। किन्तु सिद्धि महिमा वाचक शब्द है, इस कारण पहला अर्थ विशेष संगत है। क्योंकि बाद में प्रभुसम: प्रभु के समान, यह शब्द आया है। (१७) व्यतीपात–मायी–माया करने वाला। माया क्या? भीतर कुछ, बाहर कुछ, ढोंग, प्रतारण, ऐसा नाटक करना कि दूसरा न समझ सके कि नाटक किया जा रहा है, और उसको वास्तविक समझे–यह माया निसर्गतः स्त्रियों में विशेष रहती है। कहा है :—

शम्बरस्य च या माया या माया नमुचेरपि।
बलेः कुम्भीनसेश्चैव सर्वास्ता योषितो विदुः॥

(१८) वरीयान्–दुष्कामी (जो अच्छी वस्तुएँ न हों उनकी इच्छा रखने वाला)। (१९) परिघ–दूसरों से द्वेष रखने वाला धनी। (२०) शिव–शास्त्रों का जानने वाला, धनी, शान्त राजा का प्रिय। (२१) सिद्ध–धर्मपरायण यज्ञ करने वाला। (२२) साध्य–शुभाचारी (अच्छे आचरण वाला) यज्ञकर्ता। (२३) शुभ–सुन्दर शरीर, धनी, कफ प्रकृति प्रधान, कामातुर। (२४) शुक्ल–धर्मरत, जिसके वचनों में चातुर्य हो। क्रोधी, चल (स्थिर नहीं जिसकी मति, या रहने का स्थान), पंडित। (२५) ब्रह्म–अतिगुप्त धनिक (गुप्त रूप से अत्यन्त धनी), त्यागी विवेकियों में श्रेष्ठ, (२६) ऐन्द्र–सब जनों का उपकार करने वाला, सब बातों (शास्त्रादि) को समझने वाला, धनी। (२७) वैधृति–मायावी, दूसरों को दोष लगाने वाला, बलवान्, त्यागी, धनी।

योग का गणित सुगम ज्योतिष प्रवेशिका के पृष्ठों में समझाया गया है।

करण फल

अब बव, बालव आदि प्रत्येक करण में उत्पन्न होने का फल कहते हैं:—करण ज्ञात करने के लिये देखिए सुगम ज्योतिष प्रवेशिका।

बवकरणभवः स्याद्बालकृत्यः प्रतापी
विनयचरितवेषो बालवे राजपूज्यः।
गजतुरगसमेतः कौलवे चारुकर्मा
मृदुपटुवचनः स्यात्तैतिले पुण्यशीलः ॥१०२॥

गरजकरणजातो वीतशत्रुः प्रतापी
वणिजि निपुणवक्ता जारकान्ताविलोलः ।
निखिलजनविरोधी पापकर्माऽपवादी
परिजनपरिपूज्यो विष्टिजातः स्वतन्त्रः ॥१०३॥

कालज्ञः शकुनीभवः स्थिरसुखी जातस्त्वनिष्टाकरः
सर्वज्ञश्च चतुष्पदे तु ललितप्रज्ञायशोवित्तवान् ।
तेजस्वी वसुमानतीव बलवान् वाचालको नागके
किंस्तुघ्ने परकार्यकृच्चपलधीर्हास्यप्रियो जायते ॥१०४॥

(१) बव—बालक की तरह कार्य करने वाला (उछल, कूद, बिना पूर्वापर समीक्षा किये, कार्य में प्रवृत्त।) प्रतापी, प्रताप किसे कहते हैं। 'दूरादेवारीणां भयजनकत्वं प्रतापः।' (२) बालव—जिसके वेष और चरित्र में विनय हो। वेष में विनय क्या ? जिसकी पोशाक (वस्त्र जो शरीर पर धारण किये जाते हों) में सादापन (तड़क, भड़क नहीं) हो। ऐसा व्यक्ति राजपूज्य (राजा के द्वारा पूज्य, सम्मानित) होता है। (३) कौलव—हाथी और घोड़ों से युक्त, सुन्दर कर्म करने वाला। (४) तैतिल—जिसकी वाणी में मृदुता और पाटव (चातुर्य) हो, पुण्यशील (शुभ आचरण और स्वभाव वाला)। (५) गर—प्रतापी, शत्रुरहित। (६) वणिज्—निपुण, परस्त्रीगामी, स्त्रियों में अत्यन्त आसक्त चित्त वाला। (७) विष्टि—इस करण को भद्रा भी कहते हैं। सब जनों का विरोध करने वाला, पापकर्मा, अपवादी (बदनाम, तथा बदनामी करने वाला), स्वतंत्र, अपने आस पास के (भृत्य आदि) लोगों से सम्मानित। अर्थात् उसके नौकर उसकी खुशामद और चापलूसी करते रहें।

भद्रा का स्वरूप अत्यन्त उग्र है। श्रीपति कहते हैं :—

दैत्येन्द्रैः समरेऽमरेषु विजितेष्वीशः क्रुधा दृष्टवान्
स्वं कायं किल निर्गता खरमुखी लांगूलिनी च त्रिपात् ।
विष्टिः सप्तभुजा मृगेन्द्रगलिका क्षामोदरी प्रेतगा
दैत्यघ्नी मुदितैः सुरैस्तु करणप्रान्ते नियुक्ता सदा ॥

अन्य मत से भद्रा में उत्पन्न व्यक्ति दरिद्र होता है।[1] जातकाभरण के मत से अधिक होता है। (पृ० १२ श्लोक ७ बम्बई संस्करण)

---

१. विष्टयां जातो दरिद्रः स्यात्—कालप्रकाशिका अ० २ श्लो० ८९

जातकसारदीप पृष्ठ ३०-३१ में जो करण फल दिया है उसमें जातक पारिजात के मत से कहीं कहीं काफी भिन्नता है। उदाहरण के लिये वणिज् करण का फल उपरोक्त ग्रंथ में निम्नलिखित है :—

नानापण्यविशेषज्ञो वणिक्कर्माऽभिजीवकः।
वणिजाख्ये नरो जातो वणिक्वृत्तिः सदा भवेत् ॥

जातकाभरण, जातकसारदीप आदि ग्रंथों में अयन, ऋतु, तिथि आदि का भी फल दिया है। तुलनात्मक अध्ययन के लिये उनका अवलोकन आवश्यक है। विस्तार भय से इस टीका में–कहाँ फल में साम्य है और कहाँ वैषम्य इसका विवेचन नहीं किया जा रहा है।

(८) शकुनि–कालज्ञ (समय को जानने वाला। ज्योतिषी को भी कालज्ञ कहते हैं), जिसका सुख स्थिर रहे, अनिष्टाकरः—अनिष्ट का भाण्डार? जिसके लिए स्थिर सुखी कह दिया वह अनिष्ट का भाण्डार कैसे होगा? इसलिये जातक सारदीप का मत हमें विशेष सम्मत है।

सद्यो योगकरः शान्तः सदा श्रामी महामतिः।
शकुनाख्यो नरो जातः शकुनज्ञो विशेषतः ॥

अनिष्टाकरः का यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि जातक बार बार कठिनाइयों में पड़ता है। परन्तु 'स्थिरसुखी' से इस लक्षण का विरोध होगा। (२) चतुष्पद–सर्वज्ञ (सर्वशास्त्र विशारद) सुन्दर वुद्धि, यश और धन से युक्त। (३) नाग–तेजस्वी, धनी, अतिवलवान्, वाचाल। (४) किंस्तुघ्न–हास्यप्रिय, चपल वुद्धि, दूसरे का कार्य करने वाला। (मातहत, अधीनस्थ कर्मचारी)

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्द्ध में शकुनि करण होता है, अमावास्या के पूर्वार्द्ध में चतुष्पद; उत्तरार्द्ध में नाग। शुक्ल पक्ष की प्रतिपद् के पूर्वार्द्ध में किंस्तुघ्न।

कृष्ण चतुर्दशी अमावास्या आदि में क्षीण चन्द्र होता है। तब धनी आदि शुभ फल कैसे लिखा है यह गवेषणा का विषय है।

लग्नफल

होराशास्त्र १६वें अध्याय की अवतरणिका में रुद्रभट्ट लिखते हैं : "तत्र लग्नस्य चन्द्रस्य च तुल्यफलत्वाभेदेन प्रथमं तत्फलानि शार्दूलविक्रीडितेनाह।" अर्थात् लग्न और चन्द्र का समान फल माना है। फलदीपिका अध्याय ९ में मंत्रेश्वर लिखते हैं :—

राशेः स्वभावाश्रयरूपवर्णान् ज्ञात्वानुरूपाणि फलानि तस्य।
युक्त्या वदेदत्र फलं विलग्ने यच्चन्द्रलग्नेऽपि तदेव वाच्यम् ॥

इस प्रकार आचार्यों के मत से दोनों में साम्य है। जातक-पारिजात के इसी अध्याय में मेषादि स्थित चन्द्र का फल श्लोक ९२-९४ में बतला चुके हैं। अब मेषादि लग्न का फल कहते हैं :—

बन्धुद्वेषकरोऽटनः कृशतनुः क्रोधी विवादप्रियो
मानी दुर्बलजानुरस्थिरधनः शूरश्च मेषोदये।
गोमान् देवगुरुद्विजार्च्चनरतः स्वल्पात्मजः शान्तधी-
र्विद्यावादरतोऽटनश्च सुभगो गोलग्नजः कामुकः ॥१०५॥

भोगी बन्धुरतो दयालुरधिकः श्रीमान् गुणी तत्त्ववित्
योगात्मा सुजनप्रियोऽतिसुभगो रोगी च युग्मोदये।
मिष्टान्नाम्बरभूषणो ललितवाक्कापट्यधीर्धर्मवान्
जातः स्थूलकलेवरोऽन्यभवनप्रीतः कुलीरोदये ॥१०६॥

जातः सिंहविलग्नकेऽल्पतनयः सन्तुष्टधीर्हिंसकः
शूरो राजवशीकरो जितरिपुः कामी विदेशं गतः।
कन्यालग्नभवः क्रियासुनिपुणः श्रीमान् सुधीः पण्डितः
मेधावी वनिताविलासरसिको बन्धुप्रियः सात्त्विकः ॥१०७॥

ललितवदननेत्रो राजपूज्यश्च विद्वान्
मदनरतिविलोलः स्त्रीधनक्षेत्रशाली।
विरलदशनमुख्यः शान्तबुद्धिर्विषादी
चलमतिरतिभीरुर्जायते तौलिलग्ने ॥१०८॥

मूर्खः क्रूरविलोचनोऽतिचपलो मानी चिरायुर्धनी
विद्वान् वृश्चिकलग्नजश्च सुजनद्वेषी विवादप्रियः॥
प्राज्ञश्चापविलग्नजः कुलवरः श्रीमान् यशोवित्तवा-
न्ना कुम्भीरसमुद्भवश्च रमणीलोलः शठो दीनवाक् ॥१०९॥

अन्तःशठः परवधूरतिकेलिलोलः
कार्पण्यशीलधनवान् घटलग्नजातः।
मीनोदयेऽल्परतिरिष्टजनानुकूल-
स्तेजोबलप्रचुरधान्यधनश्च विद्वान् ॥११०॥

(१) मेष—बन्धुओं से द्वेष करने वाला, दुर्बल शरीर, क्रोधी, विवाद प्रिय, मानी (गर्व सहित), कमजोर घुटने, धन स्थिर न रहे, शूरवीर। (२) वृष–गौ आदि पशुओं से युक्त, देवता गुरु और ब्राह्मणों की पूजा (सत्कार) में रत, थोड़े पुत्र वाला, शान्त बुद्धि, विद्यावाद (शास्त्रार्थ) में संलग्न, घूमने फिरने (या यात्रा करने) वाला, देखने में सुन्दर, कामुक (कामवासना प्रधान)। (३) मिथुन— भोगी अपने बन्धुओं को प्रेम करने वाला, विशेष मात्रा में दयालु, धनी, गुणी, तत्त्ववेत्ता योगात्मा (योगासक्त जिसकी आत्मा हो अर्थात् आत्मिक उन्नतिशील, सज्जनों का प्रिय) (या सज्जन जिसको प्रिय हों), अत्यन्त सुन्दर स्वरूप, रोगी। (४) मिठाई (रसपूर्ण सुस्वादु खाद्य पदार्थ), वस्त्र, आभूषणों का भोक्ता, सुन्दर और कोमल वाणी, कपट बुद्धि, धार्मिक, पुष्ट (मोटा) शरीर, दूसरों के मकानों में प्रीति रखने वाला। फलदीपिका के अनुसार जिसके कई मकान हों। (५) सिंह–थोड़े पुत्र; चित्त में संतोष अधिक हो, हिंसक, शूरवीर, राजा को वश में करने वाला (अर्थात् राजा का प्रिय), शत्रुओं पर विजयी, कामी, विदेशी, जन्म भूमि से अन्यत्र स्थान में रहे। (६) कन्या–विविध क्रियाओं में अत्यन्त निपुण, धनी, बुद्धिमान् पंडित, मेधावी ('धीर्धारणावती मेधा'–जिसकी स्मरण शक्ति अच्छी हो), स्त्रियों के विलास का रसिक, सात्त्विक (वैसे तो प्रत्येक मनुष्य में सत्त्व, रज, तम–तीनों गुण रहते हैं—परन्तु सत्त्वगुण जिसमें अधिक हो उसे सात्त्विक कहते हैं), बन्धुओं से प्रेम करने वाला।

(७) तुला–सुन्दर चेहरा (मुखाकृति) और नेत्र, राजपूज्य (राजा से सम्मानित), विद्वान् स्त्रियों से रति के लिये जिसका चित्त चंचल रहे,। स्त्री, धन और क्षेत्र (खेत, भूमि) से युक्त (८) विरल (परस्पर भिड़े हुए नहीं) दाँत, मुख्य (प्रधान), शान्त बुद्धि, विषादी (मन में भीतर ही भीतर उदास रहे, अस्थिर मति (किसी एक विचार पर दृढ़ न रहना अस्थिर मति का लक्षण है), अत्यन्त भीरु (डरपोक)। (८) वृश्चिक–मूर्ख (बुद्धिमान् नहीं), क्रूर नेत्र, अत्यन्त चपल, मानी (गर्व सहित), दीर्घायु, धनी, विद्वान्, सज्जनों से द्वेष करने वाला, विवादप्रिय। (९) धनु–प्राज्ञ, कुल में श्रेष्ठ, धनी, यशस्वी, द्रव्यवान्। मूल में श्रीमान् और वित्तवान् यह दो शब्द आये हैं। अभिप्राय दोनों का एक ही है। (१०) मकर–स्त्रियों से रमण करने के लिये चंचल चित्त, शठ, दीनवाक्। अर्थात् उसकी वाणी में दैन्य या मृदुता रहती है; किन्तु चित्त शठता से भरा होता है। (११) कुंभ–जिसके हृदय में शठता हो, दूसरों की स्त्रियों से रमण करने के लिये जिसका चित्त सदैव चंचल रहे, कृपण, धनी। (१२) मीन–स्त्री सहवास की कम इच्छा, अपने प्रिय जनों के अनुकूल, तेज

ग्रौर बल से युक्त, प्रचुर धान्य (अधिक मात्रा में ग्रन्न का स्वामी) ग्रौर धन से युक्त, विद्वान् ।

होरा फल

ओजे राशौ भानुहोराप्रजातः
क्रूरः कामी वित्तवान् राजपूज्यः ।
वाग्मी दाता चारुदेहो दयालु-
र्जारस्त्रीकश्चन्द्रहोरा यदि स्यात् ।।१११।।

मार्तण्डहोराजनितः समक्ष
मन्त्री कृतज्ञश्चपलोऽतिभीरुः ।
चन्द्रस्य होराप्रभवः प्रगल्भ-
वाक्योऽलसः पुण्यवधूरतः स्यात् ।।११२।।

राशि के ग्राधे भाग को होरा कहते हैं। होरा फल को चार भागों में विभाजित किया गया है (i) विषम राशि सूर्य की होरा। (ii) विषम राशि चन्द्र की होरा। (iii) सम राशि सूर्य की होरा। (vi) समराशि चन्द्र की होरा। इनमें जन्म होने का क्रमशः फल वतलाते हैं :—

(i) ग्रोज (ऊनी, १,३,५,७,९ तथा ११) राशि में, सूर्य की होरा (०°–१५°) में जन्म हो तो क्रूर, कामी, धनी ग्रौर राजपूज्य (राजा या सरकार द्वारा सम्मानित) हो। (ii) यदि चन्द्रमा की होरा (१५°–३०°) में जन्म हो तो वाग्मी, दाता सुन्दर शरीर, दयालु 'जारस्त्रीक' होता है। एक टीकाकार ने 'जारस्त्रीक' का ग्रर्थ किया है—जिसकी स्त्री व्यभिचारिणी हो। अन्य टीकाकार ने अर्थ किया है कि जातक स्वयं व्यभिचारी हो ग्रौर स्त्रैण्य (स्त्री सदृश व्यवहार करने, स्त्रियों की संगति में अधिक समय व्यतीत करने वाला) हो।

(iii) यदि सम राशि (२,४,६,८,१०,१२) में ग्रौर सूर्य की होरा में जन्म हो तो मंत्री (उच्चपदासीन), कृतज्ञ, चपल, अतिभीरु (डरपोक) होता है। (iv) यदि चन्द्र की होरा में जन्म हो तो प्रगल्भवाक्य (साहसपूर्वक ग्रच्छी तरह वोलने वाला), ग्रालसी ग्रौर सती स्त्री में रत हो।

यहाँ लग्न फल के वाद होरा फल वताया गया है। इसलिये उपर्युक्त फल लग्न की होरा का समझना ।।१११-११२।।

अब लग्न जिस द्रेष्काण में हो उसका फल कहते हैं। लग्न किस द्रेष्काण में है यह ज्ञात करने के लिये देखिये अध्याय १ श्लोक ३०।

कण्ठीरवाजघटकीटमृगाननाद्या
मीनालिसिंहवणिगन्त्यगता दृकाणाः।
क्रूरा भवन्ति कटकस्य सरीसृपस्य
मध्यस्थिताश्च बहुशः प्रवदन्ति सन्तः ॥११३॥

कुलीरमीनादिगतौ दृकाणौ
मीनाङ्गनामन्दिरमध्यगौ च।
गोयुग्मयोरन्त्यगतत्रिभागौ
भवन्ति षट् तोयचरा दृकाणाः ॥११४॥

मेषाश्विगोकुम्भमृगद्वितीय-
स्तुलाधरस्त्रीयुगपूर्वभागः।
चापाङ्गनातोयधरान्त्ययाता-
दृकाणसंज्ञाः प्रभवन्ति सौम्याः ॥११५॥

मृगाजकर्क्यन्त्यगता दृकाणा
वृषस्य चापस्य च पूर्वयातौ।
नृयुग्मतौलीहरिमध्यगास्ते
विमिश्रसंज्ञा इति संवदन्ति ॥११६॥

क्रूरद्रेष्काणजातः खलमतिरटनः पापकर्माऽपवादी
दाता भोगी दयालुः कृषिसलिलधनस्तोयभागे विशीलः।
सौम्यद्रेक्काणजो यः सुखधनतनयश्चारुरूपो दयालु-
र्जातो मिश्रे कुशीलः परयुवतिरतः क्रूरदृष्टिश्चलात्मा ॥११७॥

प्रत्येक राशि में तीन द्रेष्काण होते हैं। इस प्रकार १२ राशियों में ३६ द्रेष्काण हुए। इनको चार भागों में विभाजित किया है :— (i) क्रूर, (ii) जलचर (iii) सौम्य (iv) विमिश्र अर्थात् मिले जुले। कौन सा द्रेष्काण कैसा है यह नीचे के चक्र में स्पष्ट किया जाता है :—

	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
मेष	क्रूर	सौम्य	विमिश्र
वृष	विमिश्र	सौम्य	जलचर
मिथुन	सौम्य	विमिश्र	जलचर
कर्क	जलचर	क्रूर	विमिश्र
सिंह	क्रूर	विमिश्र	क्रूर
कन्या	सौम्य	जलचर	सौम्य
तुला	सौम्य	विमिश्र	क्रूर
वृश्चिक	क्रूर	क्रूर	क्रूर
धनु	विमिश्र	सौम्य	सौम्य
मकर	क्रूर	सौम्य	विमिश्र
कुंभ	क्रूर	सौम्य	सौम्य
मीन	जलचर	जलचर	क्रूर

अब द्रेष्काणों की यह चार संज्ञा बतलाकर इनमें जन्म होने का फल कहते हैं :—

(i) क्रूर—दुष्ट बुद्धि, घूमने फिरने वाला या यात्रा करने वाला (पहिले इसे अवगुण समझा जाता था, गुण नहीं), पापकर्मा (पापाचरण करने वाला), अपवादी (जो अन्य लोगों की निन्दा करे, या जिसकी अन्य लोग निन्दा करें)। (ii) जलचर—दाता, भोगी, दयालु, कृपि और जल (जलोत्पन्न या जल के यातायात से पदार्थ लाने या ले जाये जाने) से धनी, विशील (सौशील्यादि गुणों से रहित)। (iii) सौम्य-सुन्दर शरीर, सुखी, धनी, पुत्रों से युत, दयालु। (iv) विमिश्र—कुशील (जिसका स्वभाव और आचरण अच्छा न हो) दूसरों की युवतियों में रत, क्रूर दृष्टि, चलात्मा (जिसका स्थिर स्वभाव न हो)।

बृहज्जातक अध्याय ५ श्लोक ३ भी द्रेष्काणफल के लिये द्रष्टव्य है। वहाँ चन्द्रमा का द्रेष्काण विशेष स्थित होने का फल कहा गया है। फल दीपिका अध्याय ३ श्लोक १३, १४, १५, में द्रेष्काणों को आयुध, पाश, निगल (निगड) पक्षी, सर्प, गृध्रास्य, चतुष्पाद कालानन आदि स्वरूपों में विभाजित किया है और जन्म के समय आयुध आदि जो द्रेष्काण उदित हो उसके अनुसार फल का निर्देश किया है। देखिये भावार्थवोधिनी फलदीपिका पृष्ठ ६६-६७। वहाँ उनका विवेचन किया गया है। ११३-११७।

नवांश

मार्तण्डांशे खलात्मा बलसुतधनवान् पिङ्गलाक्षश्च कामी
चन्द्रांशे भोगशाली परयुवतिरतः पण्डितो गोधनाढ्यः ।
भौमांशे क्रूरकर्मा चलमतिरटनः पित्तरोगी च लुब्ध-
स्त्यागी रोगी बुधांशे ललिततनुरतिख्यातविद्यायशस्वी ।।११८।।

जीवांशे यदि हेमकेशतनुगः श्रेष्ठः सुधी रूपवान्
मन्त्री पण्डितवाक् प्रसन्नवदनो राजाधिराजप्रियः ।
शुक्रांशे परकामिनीजनरतस्त्यागी सुखी पण्डितो
मन्दांशे यदि पापबुद्धिरधनः स्थूलद्विजो रोगवान् ।।११९।।

अब किस ग्रह के नवांश में जन्म हुआ है, उसके अनुसार फल कहते हैं । जैसे मेष नवांश में जन्म हुआ तो नवांशेश मंगल, वृष नवांश में जन्म हो तो नवांशेश शुक्र इस प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए ।

(i) सूर्य का नवांश अर्थात् सिंह नवांश—दुष्टात्मा, बलवान्, पुत्रों से युक्त, धनी, पिंगल (ईषत् पीलापन लिये हुए) नेत्र, कामी । (ii) चन्द्र का नवांश अर्थात् कर्क—भोगशाली (भोग सांसारिक सभी भोग-उत्तम भोजन, वस्त्र, मकान आदि), दूसरे की युवतियों में आसक्त, पंडित, गोधनाढ्य । इसके दो अर्थ हो सकते हैं । जिसके पास बहुत सी गायें हों तथा जिसके पास गायें और धन हो द्वितीय अर्थ विशेष सम्मत है । (iii) मंगल का नवांश—मेष या वृश्चिक—क्रूर कर्मा, चलमति (किसी एक विचार पर स्थित न रहे), घूमने फिरने या यात्रा करने वाला, पित्त कुपित होने के कारण जो रोग होते हैं, उनसे त्रस्त, लोभी, (iv) बुध का नवांश—मिथुन या कन्या—त्यागी, रोगी, ललित शरीर, अति विख्यात, विद्या यशस्वी (विद्या के कारण जिसको यश प्राप्त हो । ललित का अर्थ है कोमल, सुन्दर और आकर्षक । (v) बृहस्पति का नवांश—धनु या मीन—सुवर्ण सदृश केश और शरीर, श्रेष्ठ, विद्वान्, रूपवान् (सुनहरी केश तो केवल पाश्चात्य देश के लोगों के होते हैं । इसलिये भारत के देशवासियों के लिये अर्थ करना कि अधिक काले केश न हों) (मंत्री, विद्वत्तायुक्तवाणी, प्रसन्नवदन महाराजा (सरकार का प्रिय) । (vi) शुक्र का नवांश—वृषभ या तुला—दूसरे की स्त्रियों में रत, त्यागी, सुखी, पंडित । (vii) शनि का नवांश-मकर या कुंभ—पापबुद्धि (पापकर्मों में जिसकी प्रवृत्ति हो), धन रहित, स्थूल (बड़े) दाँत, रोगी ।

इस प्रकार ग्रंथकार ने प्रत्येक नवांश में जन्म होने का फल कहा है । किन्तु नवांशेश के बलवान् या दुर्बल होने के अनुसार शुभाशुभ फल में तारतम्य होगा यह अपनी बुद्धि से समझना चाहिए। ग्रह बलवान् होने से शुभ फल अधिक होगा, अशुभ फल न्यून । ग्रह दुर्बल होने से अशुभ फल अधिक होगा, शुभ फल न्यून । किस स्तर पर फल होगा यह भी नवांशेश के बलाबल पर निर्भर होता है । इसे एक दृष्टान्त से समझाया जाता है । मान लीजिये वृष का नवांश उदित है । अर्थात् लग्न स्पष्ट वृष नवांश में पड़ता है । अब यदि वृष का स्वामी शुक्र उच्च राशि, उच्च नवांश में है तो उच्च कक्षा की स्त्रियों से रमण करेगा; किन्तु यदि शुक्र नीच राशि का, शनि दृष्ट, राहु युत आदि पाप ग्रहों से दूषित है तो छोटी कक्षा की स्त्रियों से रति करेगा । इत्यादि ऊहापोह अपनी बुद्धि और अनुभव से करना चाहिए । नवांशेश की स्थिति (राशि और भाव में) केवल राशि कुण्डली में ही नहीं अपितु नवांश कुण्डली में भी देखनी चाहिए ॥११८-११९॥

द्वादशांश फल

द्वादशांश कहते हैं, बारहवें भाग को । लग्न स्पष्ट मेष आदि किस द्वादशांश में है यह देखना चाहिये । द्वादशांश निकालना प्रथम अध्याय के श्लोक ३५ में बतलाया गया है ।

जातो मेषद्वादशांशे खलात्मा चोरः पापाचारधर्मानुरक्तः ।
स्त्रीवित्ताढचो रोगवानुक्षभांशे युग्मांशे तु द्यूतकृत्यः सुशीलः॥१२०॥

दुष्टाचारः कर्कटांशे तपस्वी
सिंहे भागे राजकृत्यः सुशूरः ।
द्यूताचारः स्त्रीरतः कन्यकांशे
व्यापारी स्यात् तौलिभांशे धनाढचः ॥१२१॥

कीटांशके वधरुचिर्विटचोरनाथ-
श्चापांशके पितृमहीसुरदेवभक्तः ।
सस्याधिपो मृगमुखांशभवः सभृत्यः
कुम्भे खलस्त्वनिमिषे धनिकश्च विद्वान् ॥१२२॥

प्रत्येक द्वादशांश में जन्म होने का फल नीचे कहते हैं :—

(१) मेष—दुष्टात्मा, चोर, पापाचार (पाप आचरण—विचार, कार्य आदि जिसके धर्म विरुद्ध हों), अधर्मी (पापधर्मी कहिये, अधर्मी कहिये एक ही बात है)।

(२)वृष–स्त्री विताढ्य(स्त्री के धन से युक्त या स्त्री और धन से युक्त)। रोगी। (३) मिथुन–जुआरी(सट्टा करने वाला, घुड़ दौड़ में पैसा लगाने वाला)सुशील। (४) कर्क–दुष्ट आचरण वाला। (५) सिंह–तपस्वी, शूरवीर, राजा का कार्य करने वाला। (६) कन्या—जुआरी, स्त्री में रत (अपनी या पराई यह निर्देश नहीं किया गया है)। (७) तुला–व्यापारी, धनाढ्य। (८) वृश्चिक–दूसरे के वध की इच्छा वाला, विट और चोरों का स्वामी, विट का अर्थ है जार, व्यभिचारी या किसी राजा या बड़े आदमी का नौकर जो नौकर होते हुए भी अपने स्वामी से सखा की भाँति व्यवहार करे, गाने बजाने कविता आदि का शौकीन। ऐसे व्यक्ति धूर्त होते हैं और स्त्रियाँ फँसाने या उनको अपने या अपने स्वामी के लिये स्त्रियों की प्राप्ति में दलाल का काम करते हैं। (९) धनु–पिता, ब्राह्मणों और देवताओं का भक्त। (१०) मकर–सस्य का स्वामी, नौकरों से युक्त। सस्य का अर्थ है पृथ्वी से जो पदार्थ अन्न, तृण, फल, पत्र आदि उत्पन्न होते हैं। (११) कुंभ–खल (दुष्ट)। (१२) मीन–धनिक, विद्वान्।

द्वादशांशेश के बली या दुर्बल होने से फल में भी तारतम्य होगा। द्वादशांशेश की स्थिति, राशि, भाव, अन्य ग्रहों से युति, अन्य ग्रहों की दृष्टि आदि राशि कुण्डली तथा द्वादशांश कुण्डली दोनों में विचार करना चाहिये ॥१२०-१२२॥

त्रिशांश फल

त्रिशांशे धरणीसुतस्य चपलः काठिन्यवाक् क्रूरधी-
र्मन्दस्याटनतत्परो मलिनधीर्जीवांशके वित्तवान्।
सौम्यांशे गुरुदेवभक्तिनिरतः साधुप्रियो बन्धुमान्
कामी कान्तवपुः सुखी च भृगुजत्रिशांशके जायते ॥१२३॥

अब लग्न जिस ग्रह के त्रिशांश में हो उसके अनुसार फल कहते हैं। प्रत्येक राशि में ५ ग्रहों के त्रिशांश होते हैं। सूर्य और चन्द्र का त्रिशांश नहीं होता। इस कारण मंगल, बुध बृहस्पति, शुक्र तथा शनि का ही त्रिशांश फल कहा है। ओज (ऊनी मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु तथा कुंभ में) राशियों के त्रिशांश के स्वामी क्रम से होते हैं मंगल, शनि, बृहस्पति, बुध तथा शुक्र। सम (पूरी, वृषभ कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर तथा मीन में) राशियों के उपर्युक्त ग्रह उत्क्रम से त्रिशांशों के स्वामी होते हैं यथा शुक्र, बुध, बृहस्पति, शनि, मंगल। नीचे फल मंगल, शनि, बृहस्पति, बुध तथा शुक्र इस क्रम से कहा गया है।

(i) मंगल–चपल (चंचल) कठोरवाणी बोलने वाला, क्रूर बुद्धि। (ii) शनि–घूमने फिरने का शौकीन, यात्रा करने वाला, मलिन बुद्धि।

(iii) बृहस्पति–धनी। (iv) बुध–गुरु और देवताओं का भक्त, साधुप्रिय (अच्छे आदमियों का प्रिय या अच्छे आदमी प्रिय हों जिसको) बन्धुओं से युक्त। (v) शुक्र–सुन्दर शरीर सुखी ॥१२३॥

वेला फल

वाग्मी शिष्टाचारधर्मस्तपस्वी
नित्योत्साही निर्मलो दानशीलः।
तेजोविद्यारूपवान् सत्यवादी
वीताराति: सत्त्ववेलाप्रजातः ॥१२४॥

रजोवेलाजातः सुखधनयशोरूपबलवान्
जितारातिः कामातुरमतिरबन्धुप्रियमनाः।
तमोवेलाजातः परधनवधूको गतसुखः
शठस्वामी बन्धुद्विजगुरुविरोधी चपलधीः ॥१२५॥

तमः सत्त्वरजोवेलास्तमः सत्त्वं रजस्तमः।
भवन्त्यर्कदिनादीनामर्धयामैरनुक्रमात् ॥१२६॥

अब वेला का फल कहते हैं। वेला शब्द के अनेक अर्थ हैं—समय, अवसर, सीमा, ज्वारभाटा (यथा समुद्र की वेला) आदि। ज्योतिष में यह विशेष समय के अर्थ में प्रयुक्त होता है। आठ प्रहर (एक प्रहर तीन घंटे या ७½ घड़ी का होता है) दिन रात्रि में है। २ घड़ी या ४८ मिनट का समय एक मुहूर्त कहलाता है। आधा पहर या १½ घंटे या पौने चार घड़ी का समय वेला कहलाता है। मुहूर्त (किसी कार्य के लिये शुभाशुभ समय निर्धारण करने) के लिए भी वेला का विचार किया जाता है।

रवौ वर्ज्यं चतुः पञ्च सोमे सप्त द्वयं तथा।
कुजे षष्ठद्वयं चैव बुधे पञ्च द्वितीयकम् ॥
गुरौ सप्ताष्टकं चैव शुक्रे वेदतृतीयकम्।
शनावाद्यन्तषष्ठञ्च वारवेलातिनिन्दिता ॥

अर्थात् रविवार को ४, ५; सोमवार को ७, २; मंगल को ६, २; बुध को ५, ३, बृहस्पति को ७, ८; शुक्र को ४, ३ और शनि को १, ६, ८; अर्धयामों में वारवेला नामक दोष होता है। इस प्रसंग में अशुभ वारवेलाओं का निदर्शन कर दिया गया है। यह शुभाशुभ केवल मुहूर्त विषयक है। अब प्रकृत विषय पर आइये।

जातक पारिजात में (२४ घंटों में १६ वेला हुईं)। इन १६ वेलाओं को तामसिक, सात्त्विक, राजसिक इन तीन गुणों में विभाजित कर किस वेला में जन्म है—(सात्त्विक आदि) उस के अनुसार फल कहा है। विभाग इस प्रकार है :

वेला/वार	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१	ता	सा	रा	ता	सा	रा	ता
२	सा	रा	ता	सा	रा	ता	सा
३	रा	ता	सा	रा	ता	सा	रा
४	ता	सा	रा	ता	सा	रा	ता
५	सा	रा	ता	सा	रा	ता	सा
६	रा	ता	सा	रा	ता	सा	रा
७	ता	सा	रा	ता	सा	रा	ता
८	सा	रा	ता	सा	रा	ता	सा
९	रा	ता	सा	रा	ता	सा	रा
१०	ता	सा	रा	ता	सा	रा	ता
११	सा	रा	ता	सा	रा	ता	सा
१२	रा	ता	सा	रा	ता	सा	रा
१३	ता	सा	रा	ता	सा	रा	ता
१४	सा	रा	ता	सा	रा	ता	सा
१५	रा	ता	सा	रा	ता	सा	रा
१६	ता	सा	रा	ता	सा	रा	ता

ता से तामसिक, सा से सात्त्विक, रा से राजसिक समझना चाहिये। उदाहरण के लिये रविवार को ११वीं वारवेला सात्त्विक हुई।

(i) जो सात्त्विक वारवेला में जन्म लेता है, वह वाग्मी शिष्ट आचार वाला, धार्मिक, तपस्वी, सदैव उत्साह से युक्त, निर्मल, दानी, तेज, विद्या तथा रूप से युक्त, सत्यवादी, शत्रु रहित होता है। (ii) जो राजसिक वेला में उत्पन्न हो वह सुखी, धनी, यशस्वी, रूपवान्, बलशाली, शत्रुओं को जीतने वाला, सदैव कामवासना संसक्त चित्त होता है। ऐसा व्यक्ति अवन्धु प्रिय होता है अर्थात् बन्धु उसको प्रिय नहीं होते, (या वह बन्धुओं को प्रिय नहीं होता)। (iii) जो तामसिक वेला में उत्पन्न होता है वह दूसरों के धन से धनी, अन्य जनों की पत्नियों का भोगी, सुख रहित, दुष्टों का स्वामी (अर्थात् अत्यन्त दुष्ट, बन्धुओं ब्राह्मणों, और गुरुओं का विरोधी, चंचल बुद्धि होता है।

काल होरा फल

मन्त्रिमण्डलमार्तण्डशुक्रज्ञेन्दुशनैश्चराः।
आरभ्य वारतो होरा रात्रौ पञ्चमवारतः ॥१२७॥

क्लेशायासः संपदः शोकरोगं
विद्यावित्तं सर्वसम्पत् प्रभुत्वम्।
जायासौख्यं वित्तनाशं दिनेशा-
ज्जातस्यैतत्कालहोराफल स्यात् ॥१२८॥

अब सूर्यादि ग्रह की काल होरा में जन्म होने का फल कहते हैं। षड्बल प्रसंग में जिसे होरा कहा गया है उसके काल होरा कहते हैं।

प्रत्येक दिन जिसका वार होता है उस ग्रह की प्रथम होरा होती है :—

(i) सूर्य, (ii) चन्द्र, (iii) मंगल, (iv) बुध, (v) बृहस्पति, (vi) शुक्र, (vii) शनि, ये सात वार होते हैं। सूर्योदय वार प्रवृत्ति से १ घंटा या २½ घड़ी तक वार के स्वामी की, फिर उससे छठे, छठे ग्रह की। मान लीजिए रविवार है—प्रथम होरा रवि, द्वितीय होरा (रवि से छठा) शुक्र की, तृतीय होरा (शुक्र से छठे) बुध की, चतुर्थ होरा (बुध से छठे) चन्द्रमा की यही क्रम है। अब जिस ग्रह की काल होरा में जन्म हो उसका फल कहते हैं :—

(i) सूर्य—क्लेश और आयास (परिश्रम)। (ii) चन्द्रमा—सम्पत्ति (iii) मंगल—शोक और रोग (iv) बुध—विद्या और धन (v) बृहस्पति—सर्व सम्पत्ति (सब प्रकार की सम्पत्ति, भूमि, मकान, द्रव्य, गाय, भैंस, घोड़े, अन्न, वस्त्र, आभरण आदि) और प्रभुता (vi) शुक्र—जाया (पत्नी का) सुख (vii) शनि—धन नाश ॥१२७-१२८॥

मार्तण्डसूनुतनयाश्रयभावजानि
संवत्सरायनमुखप्रभवाखिलानि ।
होरादिवर्गजनितानि फलानि यानि
संकीर्तितानि रविमुख्यवरप्रसादात् ॥१२९॥

इस (९वें) अध्याय में किन किन विषयों का विवेचन किया है, यह ग्रंथकार कहते हैं

विविध भावों में मान्दि स्थित होने का फल, संवत्सर अयन आदि का फल, होरादि वर्ग में जन्म होने का फल—ये सूर्य आदि नव ग्रहों की कृपा से मैंने वर्णित किये हैं ॥१२९॥

अध्याय १०

अष्टकवर्गाध्याय :

चक्रं विलिख्य सह लग्नदिवाकराद्यैः
सूर्यादिलग्नभवनान्तवियच्चराणाम् ।
वाक्याष्टकोपगतवर्णनियोजिताश्चे-
द्भिन्नाष्टवर्गजनिताखिलबिन्दवः स्युः ॥ १ ॥
देवो धवो धीगवशस्तमो रमा
धूलिः क्रमादुष्णकरादिबिन्दवः ।
सालोलसंख्याः समुदायबिन्दवः
सर्वाष्टवर्गः समुदायसंज्ञकः ॥ २ ॥

इस अध्याय में अष्टक वर्ग का विचार करते हैं। अष्टक वर्ग का सिद्धान्त यह है कि यदि कोई ग्रह चन्द्रमा से इष्ट हो परन्तु अन्य सातों ग्रह और लग्न से शुभ हो तो क्या उसको अनिष्ट कहेंगे। इसी प्रकार यदि चन्द्रमा से इष्ट हो परन्तु लग्न तथा छहों ग्रहों से अनिष्ट हो तो क्या उसे इष्ट कहेंगे। सामूहिक रूप से ग्रह इष्ट है या अनिष्ट इसका विचार करने के लिये अष्टक वर्ग सूक्ष्म सिद्धान्त है। लग्न के सहित सूर्य आदि ग्रहों के चक्र देखकर आगे के अनुसार बिन्दु के न्यास से अष्टक वर्ग बनाते हैं। जहाँ पर ग्रह शुभ होता है वहां पर शुभ बिन्दु डालते हैं। उत्तर भारत में जहाँ ग्रह शुभ हो वहाँ शुभ रेखा डालने की प्रथा है, परन्तु दक्षिण भारत में शुभ बिन्दु डालने का नियम है। सूर्यादि ग्रहों के बिन्दु निम्नलिखित हैं :

सूर्य	४८	बुध	५४	शनि	३९
चन्द्र	४९	बृहस्पति	५६		
मंगल	३९	शुक्र	५२		

इन सब की संख्या ३३७ होती है। इसको जोड़ने से जब सब अष्टक वर्गों को जोड़ दिया जाता है तब सामुदायिक संख्या ३३७ होती है। इसको सामुदायिक अष्टक वर्ग कहते हैं। प्रत्येक ग्रह से निम्नलिखित स्थानों पर शुभ बिन्दु डाला जाता है।

सूर्य से

सूर्य — १ २ ४ ७ ८ ९ १० ११
चन्द्रमा — ३ ६ १० ११
मंगल — १ २ ४ ७ ८ ९ १० ११
बुध — ३ ५ ६ ९ १० ११ १२
बृहस्पति — ५ ६ ९ ११
शुक्र — ६ ७ १२
शनि — १ २ ४ ७ ८ ९ १० ११
लग्न — ३ ४ ६ १० ११ १२

चन्द्रमा से निम्नलिखित स्थानों पर शुभ विन्दु होते हैं :

चं. — १ ३ ६ ७ १० ११
मं. — २ ३ ५ ६ ९ १० ११
बु. — १ ३ ४ ५ ७ ८ १० ११
बृ. — १ ४ ७ ८ १० ११ १२
शु. — ३ ४ ५ ७ ९ १० ११
श. — ३ ५ ६ ११
सू. — ३ ६ ७ ८ १० ११
ल. — ३ ६ १० ११

मंगल से निम्नलिखित स्थानों पर बिन्दु पड़ते हैं :

मं. — १ २ ४ ७ ८ १० ११
बु. — ३ ५ ६ ११
बृ. — ६ १० ११ १२
शु. — ६ ८ ११ १२
श. — १ ४ ७ ८ ९ १० ११
सू. — ३ ५ ६ १० ११
चं — ३ ६ ११
ल. — १ ३ ६ १० ११

बुध से निम्नलिखित स्थानों पर विन्दु पड़ते हैं :

बु. — १ ३ ५ ६ ९ १० ११ १२
बृ. — ६ ८ ११ १२

शु. — १ २ ३ ४ ५ ८ ९ ११

श. — १ २ ४ ७ ८ ९ १० ११

सू. — ५ ६ ९ ११ १२

चं. — २ ४ ६ ८ १० ११

मं. — १ २ ४ ७ ८ ९ १० ११

ल. — १ २ ४ ६ ८ १० ११

बृहस्पति से निम्नलिखित स्थानों पर विन्दु लगाये जाते हैं :

बृ. — १ २ ३ ४ ७ ८ १० ११

शु. — २ ५ ६ ९ १० ११

श. — ३ ५ ६ १२

सू. — १ २ ३ ४ ७ ८ ९ १० ११

चं. — २ ५ ७ ९ ११

मं. — १ २ ४ ७ ८ १० ११

बु. — १ २ ४ ५ ६ ९ १० ११

ल. — १ २ ४ ५ ६ ७ ९ १० ११

शुक्र से नीचे लिखे स्थानों पर विन्दु लगाये जाते हैं :

शु. — १ २ ३ ४ ५ ८ ९ १० ११

श. — ३ ४ ५ ८ ९ १०

सू. — ८ ११ १२

चं. — १ २ ३ ४ ५ ८ ९ ११ १२

मं. — ३ ५ ६ ९ ११ १२

बु. — ३ ५ ६ ९ ११

बृ. — ५ ८ ९ १० ११

ल. — १ २ ३ ४ ५ ८ ९ ११

शनि से निम्नलिखित स्थानों पर विन्दु डाले जाते हैं :

श. — ३ ५ ६ ११

सू. — १ २ ४ ७ ८ १० ११

चं. — ३ ६ ११

मं. — ३ ५ ६ १० ११ १२

बु. — ६ ८ ९ १० ११ १२

वृ. — ५ ६ ११ १२
शु. — ६ ११ १२
ल. — १ ३ ४ ६ १० ११

लग्न से निम्नलिखित स्थानों पर विन्दु लगाये जाते हैं :

लग्न	—	३ ६ १० ११
सूर्य	—	३ ४ ६ १० ११ १२
मंगल	—	१ ३ ६ १० ११
बुध	—	१ २ ४ ६ ८ १० ११
बृहस्पति	—	१ २ ४ ५ ६ ७ ९ १० ११
शुक्र	—	१ २ ३ ४ ५ ८ ९
शनि	—	१ ३ ४ ६ १० ११

यहाँ पर पाठकों के सुविधार्थ निम्नलिखित कुण्डली का अष्टक वर्ग बनाया जाता है।—

जन्म लग्न कुण्डली
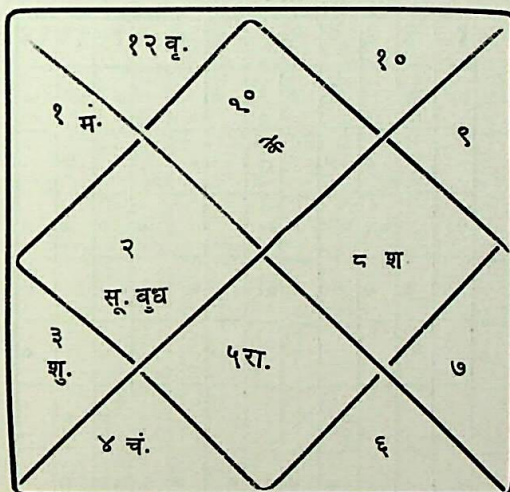
सबसे पहले सूर्य का अष्टक वर्ग बनाना सिखाया जाता है। १३ कोष्ठ ऊपर बनाइये और ९ बगल में जैसा चित्र में बनाया गया है। अब ऊपर १, २, ३, ४········११, १२ भाव लिख दीजिये। यह याद रखिये कि यह राशियाँ

नहीं हैं भाव हैं। बगल में ९ कोष्ठों में लिखिये सातों ग्रहों के नाम, लग्न और योग। जिस भाव में जो ग्रह है उस भाव में* चिह्न बनाइये जिससे गणना में सुभीता हो। देखिये द्वितीय भाव में बृहस्पति है, इसलिये दूसरे भाव के नीचे बृहस्पति के आगे तारे का चिह्न लगाया है। मंगल तीसरे भाव में है इसलिये तीसरे भाव के नीचे और मंगल के सामने तारे का चिह्न लगाया है। सूर्य, बुध चौथे भाव में हैं इसलिये इन दोनों के सामने और चतुर्थ भाव के नीचे चिह्न* बनाया। शुक्र पाँचवें भाव में है इसलिये पंचम भाव के नीचे शुक्र के सामने* चिह्न बनाया है। चन्द्रमा छठे है इसलिए चन्द्रमा के सामने और छठे भाव के नीचे चिह्न है। शनि दशम में है इसलिये शनि के सामने दशम के नीचे चिह्न है। लग्न प्रथम भाव है अतः लग्न के सामने प्रथम भाव के नीचे* का चिह्न है। अब सूर्य से विन्दु डालने हैं इसलिये सूर्य से १, (चतुर्थ भाव में), २ (पंचम भाव में), ४ (सप्तम भाव में) ७ (दशम भाव में), ८ (११वें भाव में) ९ (१२वें भाव में) १० (प्रथम भाव में), ११ (द्वितीय भाव में) बिन्दु लगाइये। इसी प्रकार सब ग्रहों से गिनकर विन्दु लगाइये। फिर इनका योग कर दीजिये। इसी प्रकार चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि और लग्न के अष्टक वर्ग बनाइये।

सूर्याष्टक सारणी

भाव

ग्रह	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
सूर्य	०	०		०x	०		०			०	०	०
चंद्र			०	०		×		०			०	
मंगल	०		०x	०		०			०	०	०	०
बुध	०	०	०	×		०		०	०			०
बृह०		×				०	०			०		०
शुक्र				०	×					०	०	
शनि	०			०	०	०	०	०		x०	०	
लग्न	×		०	०		०		०		०	०	०
योग	४	२	४	६	२	५	३	३	२	६	६	५

चन्द्राष्टक सारणी : भाव

ग्रह	१	२	३	४	५	६	७	८	६	१०	११	१२
सूर्य	०	०		×		०			०	०	०	
चंद्र			०	०		x०		०			०	०
मंगल	०		×	०	०		०	०			०	०
वुध	०	०		x०		०	०	०		०	०	
बृह०	०	x०			०			०	०		०	०
शुक्र	०	०	०		×		०	०	०		०	
शनि		०	०					०		×		०
लग्न	×		०			०				०	०	
योग	५	५	४	३	२	४	३	६	३	३	७	४

भौमाष्टक सारणी : भाव

ग्रह	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
सूर्य	०	०		×		०		०	०			
चंद्र				०		×		०			०	
मंगल	०		०x	०		०			०	०		०
बुध		०		x		०		०	०			
बृह०	०	×					०				०	०
शुक्र			०	०	×					०		०
शनि	०			०	०	०	०	०		x०		
लग्न	x०		०			०				०	०	
योग	५	२	३	४	१	५	२	४	३	४	३	३

बुधाष्टक सारणी : भाव

ग्रह	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
सूर्य		o	o	×				o	o			o
चंद्र	o		o	o		×	o		o		o	
मंगल	o		xo	o		o			o	o	o	o
बुध	o	o	o	xo		o		o	o			o
बृह०	o	×					o		o			o
शुक्र	o		o		xo	o	o	o	o			o
शनि	o			o	o	o	o	o		xo	o	
लग्न	xo	o		o		o		o		o	o	
योग	७	३	५	५	२	५	४	५	६	३	४	५

गुरोरष्टकसारणी : भाव

ग्रह	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
सूर्य	o	o		xo	o	o	o			o	o	o
चंद्र		o		o		×	o			o		o
मंगल	o		xo	o		o			o	o		o
बुध	o	o		xo	o		o	o	o			o
बृह०		xo	o	o	o			o	o		o	o
शुक्र	o	o	o		×	o			o	o		
शनि		o	o						o	×		o
लग्न	xo	o		o	o	o	o		o	o	o	
योग	५	७	४	६	४	४	४	२	६	५	३	६

शुक्राष्टकसारणी : भाव

ग्रह	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
सूर्य		०	०	×							०	
चंद्र	०	०		०	०	x०	०	०	०	०		
मंगल	०	०	०	×	०		०	०			०	
बुध		०		×		०		०	०			०
बृह०		×				०			०	०	०	०
शुक्र	०	०	०		×	०	०	०	०			०
शनि	०	०			०	०	०	०		×		०
लग्न	x०	०	०	०	०			०	x		०	
योग	५	७	३	२	५	५	४	६	५	२	४	४

शनेरष्टक सारणी : भाव

ग्रह	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
सूर्य	०	०		x०	०		०			०	०	
चंद्र				०		×		०			०	
मंगल	०	०	×		०		०	०				०
बुध	०	०	०	×					०		०	०
बृह०	०	×				०	०					०
शुक्र			०	०	×					०		
शनि		०	०					०		×		०
लग्न	x०		०	०		०			०		०	
योग	५	४	४	४	२	२	३	३	१	३	४	४

लग्नाष्टक सारणी : भाव

ग्रह	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
सूर्य	०	०	०	×		०	०		०			
चंद्र			०	०	०	×		०			०	
मंगल	०		x०		०			०			०	
बुध	०	०		x०	०		०		०		०	
वृह०		x०	०		०	०	०	०		०	०	०
शुक्र	०				x०	०	०	०	०			०
शनि	०		०				०	०		x०		०
लग्न	×		०			०				०	०	
योग	५	३	६	२	५	४	५	५	३	३	४	४

अब प्रस्तुत कुंडली के अष्टक वर्ग बनाने से निम्नलिखित अष्टक वर्ग बनेंगे। हम लग्न आदि भावों में विन्दु न देकर विन्दु संख्या देते हैं।

सूर्य का अष्टक वर्ग
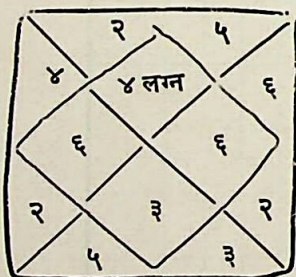
चन्द्र का अष्टक वर्ग
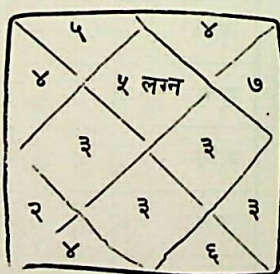
मंगल का अष्टक वर्ग
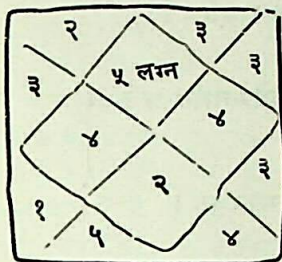
बुध का अष्टक वर्ग
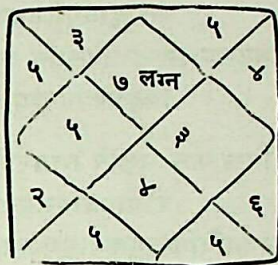
बृहस्पति का अष्टक वर्ग
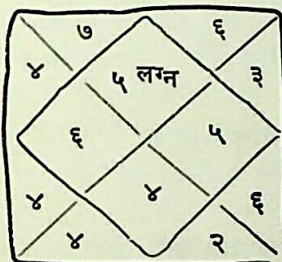
शुक्र का अष्टक वर्ग
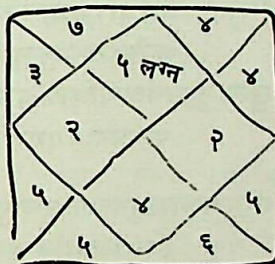
शनि का अष्टक वर्ग
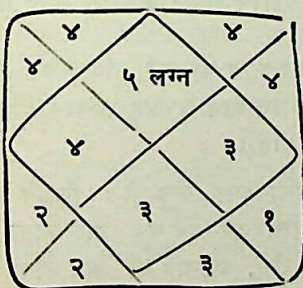
लग्न का अष्टक वर्ग
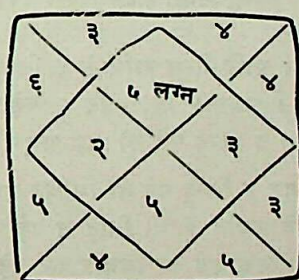
मेषादियद्गृहगता वसुसङ्ख्ययाता-
स्तद्भावपुष्टिबलवृद्धिकरा भवन्ति ।
षट्पञ्चसप्तसहितानि शुभप्रदानि
त्रिद्व्येकबिन्दुयुतभानि न शोभनानि ।। ३ ।।

मिश्रं फलं भवति सागरबिन्दुयोगे
रोगापवादभयदा यदि शून्यभावाः ।
एकादिबिन्दुयुतभानुमुखग्रहाणां
भिन्नाष्टवर्गजनि सर्वफलं प्रवच्मि ।। ४ ।।

करोति नानाविधरोगदुःखभयाटनादीनि च सैकबिन्दुः ।
द्विको मनस्तापनृपालचोरकृतापवादाशननाशनानि ।। ५ ।।

त्रिकस्त्वसञ्चारकृशावलम्ब-
कलेवरव्याकुलमानसानि ।
सुखासुखार्थव्ययवित्तलाभ-
फलप्रदः सागरबिन्दुकः स्यात् ।। ६ ।।

सद्वस्त्रलाभसुतलालनसाधुसङ्ग-
विद्याधनानि कुरुते च सपञ्चबिन्दुः ।
षड्बिन्दुकस्तु नवमोहनरूपशील-
सङ्ग्रामजिद्धनयशोबलवाहनानि ।। ७ ।।

ससप्तबिन्दुस्तुरगादियानसेनाधनप्राभवशोभनानि ।
बिन्द्वष्टकः सप्तगुणाभिरामराजप्रतापं प्रकटीकरोति ।। ८ ।।

मेष आदि जिस राशि में ८ विन्दु पड़ें उस भाव की वल, पुष्टि और वृद्धि होती है । अगर ५, ६, ७ विन्दु पड़ें तव भी वह भाव शुभप्रद होता है । अगर १, २ या ३ विन्दु पड़ें तो वह अशुभ होता है ।।३।।

अगर ४ विन्दु पड़ें तो मिश्रित यानी मिला-जुला फल हो । जिसमें शून्य बिन्दु पड़ें अर्थात् १ भी विन्दु न पड़े उसमें गोचरवश जव वह ग्रह जाता है, जिसके अष्टक वर्ग का विचार कर रहे हैं तो रोग, अपवाद या भय होता है ।

अब यह सामान्य फल बता चुकने के बाद प्रत्येक अष्टक वर्ग का—सूर्याष्टक, चन्द्राष्टक इत्यादि का १ या अधिक बिन्दु का फल कहते हैं ।।४।।

अगर १ बिन्दु हो तो उस राशि में जब ग्रह जाता है तब नाना प्रकार के रोग, दुःख, भय, वृथाटन कराता है । यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि सूर्य का फल देखते समय सूर्याष्टक वर्ग में देखिये कि सूर्य की किस राशि में कितने बिन्दु हैं । सूर्याष्टक वर्ग में प्रस्तुत कुण्डली में एक बिन्दु कहीं नहीं है । चन्द्राष्टक वर्ग में चन्द्रमा के गोचर का विचार होता है । मंगल के अष्टक वर्ग में मंगल का । इसी प्रकार प्रत्येक ग्रह का फल उसके अष्टक वर्ग में विचार किया जाता है ।

यदि दो बिन्दु हों तो मनस्ताप, राज भय, चोर भय, अपवाद और भोजन का सुख नहीं देता ।।५।।

यदि तीन बिन्दु हों तो चलने-फिरने में रुकावट, कृश शरीर तथा मन को व्याकुलता होती है । मूल में शब्द आया है संचार । इसका अर्थ है कि तीन बिन्दु जब हों तो संचार करना पड़े । पहले यात्रा में कष्ट होता था । "परदेश, कलेश नरेशन को" अर्थात् परदेश में राजा को भी कष्ट होता है । आजकल स्थिति बदल गई है । यदि चार बिन्दु हों तो सुख, असुख, अर्थव्यय, वित्त-लाभ इत्यादि मिलाजुला फल होता है ।।६।।

यदि ५ बिन्दु हों तो अच्छे वस्त्रों का लाभ, सुत लालन (यानी बच्चे का दुलार) साधु संग, विद्या, धन का लाभ होता है । ६ बिन्दु हों तो चेहरे पर सौन्दर्य आता है, संग्राम में मनुष्य जीतता है और उसको धन, यश, बल और वाहन की प्राप्ति होती है ।।७।।

यदि अपने अष्टक वर्ग में कोई ग्रह ऐसे स्थान में जाए जिसमें बिन्दु संख्या ७ हों तो उसको घोड़े, सवारी, सेना, धन, प्रभाव आदि की प्राप्ति—उत्कृष्ट फल होते हैं । यदि ८ बिन्दु हों तो उसे सप्त गुणों में श्रेष्ठ राजसी प्रताप प्राप्त होता है । सप्त गुणों में श्रेष्ठ क्या ? ये राज्य के अंग हैं—सेना इत्यादि ।

यहाँ पर १ से लेकर ८ तक बिन्दुओं का फल बताया गया है । यह अक्षरशः फल नहीं देना । सिर्फ इतना फल है कि ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ ये बिन्दु होने से उत्तरोत्तर शुभफल का विकास और अशुभ फल की हानि होती है ।।८।।

शरादिबिन्दुस्थितराशियातः
स्वकीयवर्गे शुभदस्तु नित्यम् ।
अतोऽन्यथा चेदफलप्रदाता
गोचारतः शून्यफले प्रमादी ।। ९ ।।

स्वोच्चमित्रादिवर्गस्थाः केन्द्रादिबलसंयुताः ।
अनिष्टफलदाः सर्वे स्वल्पबिन्दुयुता यदि ।। १० ।।

दुष्टस्थानस्थिता ये च ये च नीचारिभांशगाः ।
ते सर्वे शुभदा नित्यमधिबिन्दुयुता यदि ।। ११ ।।

दिनेशमुख्यग्रहवर्गकेषु यदा शनिः शून्यगृहं प्रयातः ।
करोति पित्रादिकभावजानामतीव रोगारिभयाकुलानि ।।१२।।

जिस ग्रह को अपने वर्ग में (अष्टक वर्ग में) ५ या अधिक ६, ७, ८ विन्दु प्राप्त होते हैं वह शुभ होता है। गोचर वश जब उस राशि में जाए तो उत्कृष्ट फल दिखाता है। इससे अन्यथा हो अर्थात् ५ से कम विन्दु वाली राशि में जब ग्रह जाए तो शुभ फल नहीं करता। गोचर से जब ऐसी राशि में जाए जिसमें ० फल हो तो प्रमाद फल करता है अर्थात् अत्यन्त निकृष्ट फल करता है ।।९।।

चाहे ग्रह अपने घर में हो, उच्च में हो, मित्रों के वर्ग में हो (यहाँ सप्त वर्ग या दश वर्ग अभिप्रेत हैं) चाहे केन्द्र बल हो या अन्य किसी प्रकार का बल हो यदि वह ऐसी राशि में जाता है जिसमें स्वल्प बिन्दु हैं तो अनिष्ट फल देता है ।।१०।।

चाहे ग्रह दुष्ट स्थान में स्थित हो (६, ८, १२) नीच राशि में हो, शत्रु राशि में हो या इनके वर्ग में हो, ग्रह यदि अष्टक वर्ग में अधिक बिन्दु युत है तो शुभ फल करता है। इन दोनों श्लोकों का अक्षरशः अर्थ नहीं लेना चाहिए। यहाँ पर अर्थवाद है। जातकपारिजातकार यह कहना चाहते हैं कि अष्टक वर्ग के विन्दुओं का बहुत महत्त्व है, इस कारण अष्टक वर्ग की इतनी प्रशंसा की गई है। ।।११।।

सूर्य, चन्द्र, मंगल, वुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि के अष्टक वर्ग देखिए। अगर किसी अष्टक वर्ग में ० बिन्दु है तो उसमें गोचरवश जब शनि जाता है, पिता इत्यादि को रोग, शत्रु भय आदि करता है। जब सूर्य के अष्टक वर्ग में ० विन्दु वाली राशि में जाए तव पिता को कष्ट, जब चन्द्राष्टक में ० बिन्दु वाली राशि में जाए तब माता को कष्ट, जब मंगल के अष्टक वर्ग में ० बिन्दु वाली राशि में जाए तव भाई को कष्ट, जव वुध के अष्टक वर्ग ० में जाए तब मित्र को कष्ट, जव बृहस्पति के अष्टक वर्ग में ० बिन्दु वाली राशि में शनि जाए तव पुत्र को कष्ट, जब शुक्र के अष्टक वर्ग में ० विन्दु वाली राशि में शनि जाए तव स्त्री को कष्ट और जब अपने अष्टक वर्ग में ० बिन्दु

वाली राशि में शनि जाए तब जातक को स्वयं को कष्ट होता है। यहाँ पिता आदि को कष्ट हो यही लिखा है परन्तु आशय है कि सूर्य जिन-जिन वस्तुओं का कारक है उस संबंधी कष्ट; चन्द्रमा जिन वस्तुओं का कारक है उस संबंधी कष्ट इत्यादि। अब तक सामान्य सब ग्रहों को लागू होने वाली बातें बतलाई हैं। अब प्रत्येक अष्टक वर्ग का फल कहते हैं ।।१२।।

रवि फल

लग्नं गते दिनकरे रिपुनीचभागे
जातः कृशानुयुगबिन्दुयुते च रोगी।
बाणादिबिन्दुसहितोदयगे दिनेशे
स्वोच्चेऽथवा निजगृहे नृपतिश्चिरायुः ।। १३ ।।

केन्द्रत्रिकोणोपगते दिनेशे षट्पञ्चसप्ताष्टकबिन्दुवर्गे।
रुद्रामलानीलचलाब्दकेषु जातस्य वा तज्जनकस्य मृत्युः ।। १४।।

शोध्यावशिष्टद्वयबिन्दुयाते केन्द्रस्थिते सेन्दुशनीन्दुसूनौ।
भानौ दशाब्दात्परतः समृद्धां तातस्य राज्यश्रियमाहुरार्याः ।।१५।।

अब सूर्य का फल कहते हैं। लग्न में यदि सूर्य शत्रु अथवा नीच भाग में हो (शत्रु का नवांश किंवा तुला नवांश में हो) और उसको उसके (सूर्य के) अष्टक वर्ग में केवल ३ या २ विन्दु प्राप्त हों तो जातक रोगी होता है। यदि लग्न में, सूर्याष्टक वर्ग में ५ या अधिक विन्दु हों और सूर्य अपने घर में या उच्च होकर लग्न में हो तो दीर्घजीवी राजा होता है। इसको भी अक्षरशः नहीं लेना चाहिये। भावार्थ यह है कि नीच और शत्रु भाग में थोड़े विन्दु खराब और उच्च राशि में किंवा स्वराशि में अधिक विन्दु हों तो उत्तम ।।१३।।

यदि सूर्य केन्द्र या त्रिकोण में हो और ६, ५, ७, ८, विन्दु सूर्याष्टक वर्ग में जिस भाव में वह बैठा है, हों, तो जातक का पिता २२वें, ३५वें, ३०वें और ३६वें वर्ष में मृत्यु को प्राप्त होता है ।।१४।।

जब जातक के जन्म के समय सूर्य केन्द्रस्थान में चन्द्रमा, बुध और शनि के साथ हो तो त्रिकोण शोधन और एकाधिपत्य शोधन के बाद केवल २ बिन्दु बचें तो जातक जब १० वर्ष का हो जाता है तब पिता की समृद्धि और राज्यश्री बढ़ती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जातक जब १० वर्ष का हो जाता है तब उसके पिता का भाग्य उदय होता है ।।१५।।

चन्द्र फल

शून्यागारं तरणिशशिनोरष्टवर्गे तदीयो
मासो राशिः सकलशुभदे कर्मणि त्याज्य आहुः ।
यक्ष्मालस्यं शशिनि तनुगे सैकलोकाक्षिबिन्दौ
सप्तत्रिंशच्छरदि मरणं द्विलिखेटान्विते च ॥ १६ ॥

केन्द्रत्रिकोणायगते शशाङ्के
नीचारिगे वृद्धिकलाविहीने ।
बिन्दुद्विके वा यदि सत्रिबिन्दौ
तद्भावनाशं कथयन्ति तज्ज्ञाः ॥ १७ ॥

वेदादिबिन्दुयुतकोणचतुष्टये वा
लाभे विधौ बलयुते यदि भाववृद्धिः ।
बिन्द्वष्टके शशिनि केन्द्रगते तु जाता
विद्यायशोधनबलप्रबला नरेन्द्राः ॥ १८ ॥

चन्द्रमा के अष्टक वर्ग में जिस राशि में चन्द्रमा का एक भी बिन्दु न पड़े अर्थात् जहाँ पर ० बिन्दु हो उस राशि में चन्द्रमा जब गोचर से आए तो कोई शुभ काम नहीं करना। इसी प्रकार सूर्य के अष्टक वर्ग में जब एक भी बिन्दु न हो अर्थात् ० बिन्दु हो तब उस राशि में गोचर से जब सूर्य आए तब उस महीने में कोई शुभ काम नहीं करना। अर्थात् ० बिन्दु वाली राशि चाहे चन्द्रमा के अष्टक वर्ग में हो, चाहे सूर्य के अष्टक वर्ग में हो सब शुभ कार्यों के लिये त्याज्य है। लग्न में यदि १, २, या ३ चन्द्रमा के शुभ बिन्दु पड़ें और चन्द्रमा लग्न में हो (यह चन्द्राष्टक वर्ग में देखना) तो जातक को 'यक्ष्मालस्य' (यक्ष्मा + आलस्य) होता है अर्थात् टी०बी० होती है। यदि इस परिस्थिति में अर्थात् चन्द्रमा लग्न में १, २ या ३ बिन्दु सहित हो और दो, तीन ग्रह से युत हो तो जातक की केवल ३७ वर्ष की आयु होती है ॥१६॥

यदि चन्द्रमा कृष्ण पक्ष का हो अर्थात् उसकी किरणें अपचीयमान हों और नीच या शत्रु राशि का होकर केवल १, २ या ३ बिन्दु अपने अष्टक वर्ग में प्राप्त करे और केन्द्र, त्रिकोण या आय (१, ४, ७, १०, ५, ९, ११) में हो तो जिस भाव में चन्द्रमा बैठा हो उसे नष्ट समझना अर्थात् उस भाव

संबंधी शुभ फल का नाश होता है। किस भाव का ? यह कह चुके हैं कि जिस भाव में चन्द्रमा बैठा हो ॥१७॥

४ या अधिक बिन्दु चन्द्राष्टक वर्ग में चन्द्रमा को उस भाव में प्राप्त हों जिसमें चन्द्रमा बैठा हो और बलवान् चन्द्रमा केन्द्र या त्रिकोण या लाभ में (१, ४, ७, १०, ५, ९, ११) हों तो उस भाव की वृद्धि होती है। यदि चन्द्रमा को ८ बिन्दु प्राप्त हों और केन्द्र में हो तो जातक विद्या, धन, यश, बल प्राप्त करता है और प्रबल राजा होता है। यहाँ जो तीन श्लोक कहे गये हैं १६, १७, १८ वे चन्द्राष्टक वर्ग के हैं ॥१८॥

कुजफल

स्वोच्चस्वके गुरुसुखोदयमानयाते
बिन्द्वष्टके च यदि कोटिधनप्रभुः स्यात्।
चापाजसिंहमृगकीटविलग्नसंस्थे
भौमे चतुष्टयफलोपगते च राजा ॥ १९ ॥

बिन्द्वष्टके धरणिजेऽतिलघुक्षितीशो
मानेऽथवा तनुगते च महीपतिः स्यात्।
जातोऽवनीशकुलजो यदि देशनाथः
स्वोच्चस्वराशिसहिते नृपचक्रवर्ती ॥ २० ॥

(१) यदि मंगल उच्च या स्वक्षेत्र में प्रथम, चतुर्थ, नवम या दशम भाव में बैठा हो और अपने अष्टक वर्ग में ८ बिन्दु हों तो कोटयाधीश अर्थात् करोड़पति हो।

(२) यदि मंगल, मेष, सिंह, वृश्चिक, धनु या मकर राशि का हो और लग्न में हो और ४ या ४ से अधिक अपने अष्टक वर्ग में बिन्दु प्राप्त करे तो राजा हो ॥१९॥

(१) अपने अष्टक वर्ग में मंगल को आठ बिन्दु प्राप्त हों तो छोटा राजा हो।

(२) अगर लग्न या दशम में प्राप्त होकर मंगल को अपने अष्टक वर्ग में ८ बिन्दु प्राप्त हों तो महाराजा हो। यदि राजा के कुल में जातक उत्पन्न हो और ऊपर वाली स्थिति हो तो देश का मालिक हो। यदि मंगल अपनी उच्च राशि या स्वराशि में हो और लग्न या दशम में हो और अपने अष्टक वर्ग में ८ बिन्दु प्राप्त करे तो चक्रवर्ती राजा हो ॥२०॥

बुधफल

केन्द्रत्रिकोणे वसुबिन्दुके ज्ञे
जातीयविद्याधिकभोगशाली ।
स्वोच्चादिकैकद्वितयत्रिबिन्दौ
तद्भाववृद्धिर्न च भावहानिः ॥ २१ ॥

बिन्द्वाधिक्यं यत्तदागारमासे
विद्यारम्भः सर्वविद्याकरः स्यात् ।
गोचारेण ज्ञस्य शून्यालयस्थे
मन्दे बन्धुज्ञातिसम्पद्विनाशः ॥ २२ ॥

(१) केन्द्र या त्रिकोण में बुध हो और अपने अष्टक वर्ग में बुध को ८ बिन्दु प्राप्त हों तो अपनी जातीय विद्या में बहुत विशेष नाम प्राप्त करे और भोगशाली हो। जातीय विद्या क्या? अपनी जातिपरम्परानुकूल, विद्या में निष्णात हो।

(२) यदि बुध अपनी राशि का या अपनी उच्च राशि का हो और १, २ या ३ बिन्दु अपने अष्टक वर्ग में हों तो जिस भाव में बुध बैठा हो उस भाव की वृद्धि होती है, हानि नहीं ॥२१॥

(१) यह देखिये कि किस राशि में बुध को अपने अष्टक वर्ग में अधिक बिन्दु प्राप्त हैं। उस संबंधी सौर मास में (अर्थात् मान लीजिये मेष में अधिक बिन्दु प्राप्त हैं तो जब मेष का सूर्य हो) विद्यारंभ करना उत्तम है। जातक सर्व विद्याओं में निष्णात होता है।

(२) गोचरवश जब शनि ऐसी राशि में जाता है जिसमें बुध के अष्टक वर्ग में एक भी बिन्दु न हो तो बन्धु विनाश, जाति विनाश, सम्पत्ति विनाश आदि दुष्ट फल होते हैं ॥२२॥

गुरुफल

जीवाष्टवर्गाधिकबिन्दुराशौ लग्ने निषेकं कुरुते सुतार्थी ।
तद्राशिदिग्भागगृहस्थितानि गोवित्तयानानि बहूनि च स्युः ॥२३॥
जीवाष्टवर्गलघुबिन्दुगृहोपयाते
भानौ कृताखिलशुभानि विनाशितानि ।

पञ्चादिबिन्दुकरिपुव्ययरन्ध्रगेज्ये
　　　जातश्चिरायुरतिवित्तजितारिकः स्यात् ॥ २४ ॥

स्वोच्चेऽथवा निजगृहे वसुबिन्दुयुक्ते
　　　केन्द्रस्थिते सुरगुरौ गुरुभावगे वा ।
नीचारिभावमपहाय विमूढराशौ
　　　जातः स्वकीययशसा पृथिवीपतिः स्यात् ॥ २५ ॥

यदा महोदेवकुलप्रजाता तदीययोगे नरपालतुल्याः ।
कृतानि पुण्यप्रभवप्रसिद्धबुद्धिप्रतापानि गुणाभिरामाः ॥ २६ ॥

ससप्तबिन्दौ सह लक्ष्मणेन जीवे बहुस्त्रीधनपुत्रवन्तः ।
षड्बिन्दुके वाहनवित्तवन्तः सपञ्चबिन्दौ जयशीलवन्तः ॥२७॥

(१) यह देखिये कि बृहस्पत्ति के अष्टक वर्ग में किस राशि में विशेष बिन्दु हैं । जिस राशि में विशेष बिन्दु हों उस लग्न में निषेक (गर्भाधान) करने से पुत्र होता है ।

(२) उस राशि की दिशा में यदि गौ, धन और सवारी रखी जाए तो उनकी वृद्धि होती है । इस संबंध में कुछ मतभेद है । जब कोई दिशा स्थिर करनी होती है तो इनको नीचे लिखे की तरह जोड़ते हैं ।

मेष	४	वृष	६	मिथुन	४	कर्क	४
धनु	३	कन्या	२	तुला	६	वृश्चिक	५
सिंह	४	मकर	६	कुंभ	५	मीन	७
	११		१४		१५		१६

यहाँ पर मीन में ७ (सर्वाधिक) बिन्दु आये हैं और उत्तर दिशा में (कर्क, वृश्चिक, मीन) हैं । किसी-किसी आचार्य का यह मत है कि दिशा मालूम करने के लिए उस त्रिकोण की समस्त राशियों के बिन्दुओं का योग कर लेना चाहिये ॥२३॥

(१) बृहस्पति के अष्टक वर्ग में जिस राशि में थोड़े बिन्दु हों उसमें जब सूर्य जाए तो जातक जो भी शुभ कर्म करता है वह नाश को प्राप्त होते हैं ।

(२) यदि ५ या ५ से अधिक बिन्दु छठे, आठवें या १२वें में हों और

बृहस्पति उस राशि में बैठा हो तो जातक चिरायु, अत्यन्त धनवान् और शत्रु पक्ष पर विजयी होता है ॥२४॥

यदि अपने घर में या उच्च का बृहस्पति केन्द्र या नवम भाव में हो और ८ बिन्दु हों (किन्तु अपने नीच नवांश में या शत्रु नवांश में या सूर्य सान्निध्य के कारण अस्तंगत नहीं होना चाहिये) तो जातक अपने यश से राजा होता है ॥२५॥

यदि उपर्युक्त योग ब्राह्मण की कुण्डली में हो तो इस योग में उत्पन्न राजा के सदृश होता है। बहुत पुण्य प्रभाव से प्रसिद्ध, बुद्धि, प्रताप आदि गुणों से संपन्न होता है ॥२६॥

यदि बृहस्पति अपने अष्टक वर्ग में ७ बिन्दु से युक्त हो और चन्द्रमा के साथ हो तो बहुत स्त्री, पुत्र, धन वाला हो; बृहस्पति के यदि ६ बिन्दु हों तो बहुत वाहन और धन वाला हो; यदि ५ बिन्दु हों तो जयशील हो अर्थात् शास्त्रार्थ में विजयी हो ॥२७॥

शुक्र फल

साष्टबिन्दुफलकोणकेन्द्रगे भार्गवे तु बलवाहनाधिपः ।
आयुरन्तमविनाशभोगवान् वित्तरत्नविभुरद्रिबिन्दुके ॥ २८ ॥

नीचास्तरिष्फनिधनोपगते तु काव्ये
पूर्वोदितक्षितिपयोगविनाशनं स्यात् ।
शुक्रोऽल्पबिन्दुयुतमन्दिरदिग्विभागे
स्त्रीवश्यहेतुशयनीयगृहं प्रशस्तम् ॥ २९ ॥

यदि अपने अष्टक वर्ग में ८ बिन्दु शुक्र को प्राप्त हों और केन्द्र (१, ४, ७, १०) या त्रिकोण (५, ९) में हो तो बहुत बल और वाहन का अधिप होता है। बल से यहाँ तात्पर्य सेना से है। यदि ७ बिन्दु हों तो आयु भर भोग युक्त हो और बहुत वित्त और रत्न का मालिक हो ॥२८॥

(१) अगर शुक्र नीच हो, सप्तम में हो या आठवें, १२वें हो तो पहले श्लोक में जो योग कहा गया है वह नष्ट हो जाता है।

(२) अपने घर में जिस दिशा में शुक्र के अष्टक वर्ग में कम बिन्दु हों उस दिशा में स्त्री को वश में करने के लिये सोने का कमरा बनाए।

मेष	३	वृष	२	मिथुन	५	कर्क	५
सिंह	४	कन्या	६	तुला	५	वृश्चिक	२
धनु	४	मकर	४	कुंभ	५	मीन	७
	११		१२		१५		१४

यदि जातक पूर्व दिशा में सोने का कमरा बनाए तो अपनी स्त्री को विशेष सन्तुष्ट कर सकेगा। यह पुराने समय की बात है जब घर में चारों दिशाओं में कमरे होते थे ॥२९॥

शनि फल

कोणस्य शून्यतरराशिगते तु मन्दे
जातस्य मृत्युफलमाशुधनक्षयो वा ।
एकद्विलोकयुगबिन्दुयुते च केन्द्रे
मुक्ते स्वतुङ्गभवने रविजेऽल्पमायुः ॥ ३० ॥

षट्पञ्चबिन्दुसहिते तनुगे बलाढ्ये
जन्मादिदुःखबहुलं धननाशमेति ।
मन्दे शरादिफलनीचसपत्नभावे
जातश्चिरायुरतिशोभनवर्गकेन्दौ ॥ ३१ ॥

मूढारिनीचगृहगे शरवेदबिन्दौ
दास्युष्ट्रवित्तसहितास्तनये तनुस्थे ।
सौरेऽष्टबिन्दुगणिते परमन्त्रतन्त्र-
ग्रामाधिपास्तु गिरिबिन्दुगृहे धनाढ्यः ॥ ३२ ॥

शनि के अष्टक वर्ग में जब ० बिन्दु वाली राशि में शनि जाता है तो मृत्यु होती है या तुरंत धन नाश होता है। यदि १, २ या ३, ४ बिन्दु केन्द्र में हों और शनि वहाँ हो तो जातक अल्पायु होता है। इस साधारण नियम का एक अपवाद है कि केन्द्र में यदि अपनी उच्च राशि में शनि हो और १, २, ३ या ४ बिन्दु हों तो जातक अल्पायु नहीं होता ॥३०॥

(१) यदि ६ या ५ बिन्दु शनि के अष्टक वर्ग में लग्न में बलवान शनि हो तो जन्म से ही बहुत दुःखी रहता है और धन नाश होता है।

(२) यदि शनि नीच राशि में या शत्रु राशि में ५ या ५ से अधिक विन्दु सहित हो और चन्द्रमा भी शुभ वर्गों में हो तो जातक दीर्घायु होता है ॥३१॥

(१) यदि अपने शत्रु राशि में, नीच का या अस्त शनि हो और लग्न या पंचम भाव में शनि के अष्टक वर्ग में ५ या ४ विन्दु प्राप्त हों और शनि वहाँ हो तो बहुत सी दासी, ऊँट और धन प्राप्त होते हैं।

(२) यदि शनि के अष्टक वर्ग में शनि को ८ विन्दु प्राप्त हों और लग्न में या पाँचवें शनि हो तो मंत्र, तंत्र का ज्ञाता और ग्राम का मालिक होता है। यदि ७ विन्दु हों तो धनाढ्य हो ॥३२॥

प्रस्ताराष्टक वर्ग

आलिख्य चक्रं नवपूर्वरेखा
याम्योत्तरस्था दश च त्रिरेखाः ।
प्रस्तारकं षण्णवतिप्रकोष्ठं
पङ्क्त्यष्टकं चाष्टकवर्गजं स्यात् ॥ ३३ ॥

होराशशीबोधनशुक्रसूर्य-
भौमामरेन्द्रार्चितभानुपुत्राः ।
याम्यादिपङ्क्त्यष्टकराशिनाथाः
क्रमेण तद्बिन्दुफलप्रदाः स्युः ॥ ३४ ॥

सबिन्दुगः सर्वफलप्रदः स्यादबिन्दुको यद्यफलप्रदः स्यात् ।
अरातिनीचास्तगतो नभोगः सबिन्दुकोऽपि प्रविलोपकर्ता ॥३५॥

पूर्व, पश्चिम ९ रेखा और उत्तर, दक्षिण १३ रेखा खींच कर ९६ कोष्ठ का चित्र बनाइये। इनमें क्रमशः शनि, गुरु, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्रमा और लग्न की ८ कक्षा होती हैं ॥३३॥

सूर्य का प्रस्ताराष्टकवर्ग

	कुंभ	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.
शनि	०			०	०	०	०	०		०	०	
गुरु						०	०			०		०
मंगल	०		०	०		०			०	०	०	०
सूर्य	०	०		०	०		०			०	०	०
शुक्र				०						०	०	
बुध	०	०	०			०		०	०			०
चन्द्र			०	०				०			०	
लग्न			०	०		०				.०	०	०
	४	२	४	६	२	५	३	३	२	६	६	५

इस प्रकार सूर्य का प्रस्ताराष्टक वर्ग बना। एक राशि में ३० अंश होते हैं, इन ३० अंशों को ८ से भाग दिया तो एक हिस्सा ३ अंश ४५ कला आया इनको इन ८ में बाँट दिया।

(i) ०° से ३°-४५', तक शनि की कक्ष्या
(ii) ३°-४५' से ७°-३०' तक गुरु की कक्ष्या
(iii) ७°-३०' से ११°-१५' तक मंगल की कक्ष्या
(iv) ११°-१५' से १५°' तक सूर्य की कक्ष्या
(v) १५° से १८°-४५' तक शुक्र की कक्ष्या
(vi) १८°-४५' से २२°-३०' तक बुध की कक्ष्या
(vii) २२°-३०' से २६°-१५' तक चन्द्रमा की कक्ष्या
(viii) २६°-१५' से ३०° तक लग्न की कक्ष्या

इस प्रकार एक राशि को सातों ग्रह व लग्न की कक्ष्या में बाँट देते हैं। जब सूर्य कुंभ में जाता है तो कुंभ में उसे केवल ४ बिन्दु मिले हैं। बिन्दु दाता हैं

शनि, मंगल, सूर्य और बुध । इसलिये जब इनकी कक्ष्याओं में सूर्य जायेगा तब शुभ फल दिखलायेगा अर्थात् शनि की कक्ष्या में कुंभ राशि के ०° से ३°-४५' तक जायेगा तब शुभ फल दिखलायेगा । मंगल की कक्ष्या ७°-३०' से ११°-१५' तक होती है । इसलिये जब सूर्य की कुंभ राशि में ७°-३०' से ११°-१५' तक अंश होंगे तब शुभ फल दिखायेगा । पुनः बिन्दु प्रदाता ग्रह सूर्य है । वह अपनी कक्ष्या में ११°-१५' से १५° तक शुभ फल दिखलायेगा । उसके उपरान्त बिन्दु प्रदाता बुध की कक्ष्या १८°-४५' से २२°-३०' तक अच्छा फल दिखलायेगा । इसी प्रकार सब राशियों में जो बिन्दु प्रदाता ग्रह है उसकी कक्ष्या में जब सूर्य जाता है तब श्रेष्ठ फल दिखाता है । यहाँ पर केवल सूर्य का प्रस्ताराष्टक वर्ग समझाया गया है अन्य ग्रहों का भी बनाना चाहिये ।।२४।।

बिन्दु सहित ग्रह शुभ फल का देने वाला, है, यह सब प्रकार के फल देता है इसलिये श्रेष्ठ है । बिना बिन्दु का ग्रह फल नहीं देता । शत्रु गृही, नीच राशि का ग्रह व अस्त ग्रह चाहे बिन्दु भी हों प्रलाप कराने वाला है । अर्थात् दुःख देता है ।।३५।।

पञ्च प्राचीरालिखेद्वाणसंख्या-
स्तिर्यग्रेखा वर्जितान्तश्चतुष्काः ।
प्रागादीशा द्वादश व्योमवासा
ज्योतिश्चक्रस्वामिनस्तूबराद्याः ।। ३६ ।।

अजहरितुरगाङ्कै रुक्षकन्यामृगस्थै-
र्युगघटघटरूपैः कर्किकीटावसानैः ।
दिनकरमुखवर्गे तत्त्रिकोणोपयाता
लघुतरसमशून्या बिन्दवः शोधिताः स्युः ।। ३७ ।।

त्रिकोणभावेषु यदल्पबिन्दव-
स्तदीयबिन्दू भवतस्तु तावुभौ ।
न बिन्दुको यस्तु न शोधितेतरौ
समानसंख्या यदि सर्वमुत्सृजेत् ।। ३८ ।।

पांच सीधी समानान्तर रेखाएं खींचिये और पांच इनको काटती हुई आड़ी खींचिये जिससे १६ वर्ग बनेंगे । परन्तु भीतर के चार वर्ग खाली छोड़

दिये जाते हैं अर्थात् नहीं बनाये जाते हैं और किनारे के १२ वर्ग काम में लिये जाते हैं। यथा

त्रिकोणशोधन

मीन	मेष	वृष	मिथुन
कुम्भ			कर्क
मकर			सिंह
धनु	वृश्चिक	तुला	कन्या

इस प्रकार की कुण्डली दक्षिण भारत में प्रचलित है। इनमें मेषादि द्वादश राशि जिस प्रकार ऊपर हैं देखी जाती हैं और जो ग्रह जिस राशि में पड़ा है उसमें लिख दिया जाता है। उत्तर भारत में लग्न से प्रारम्भ कर द्वादश राशि लिखने की परिपाटी है, परन्तु दक्षिण भारत में ऐसा नहीं है। राशियों के स्थान निश्चित हैं और जहाँ कहीं भी लग्न पड़े लग्न लिख देते हैं।

अब इस प्रकार अष्टक वर्ग के लिये चार त्रिकोण बने। मेष, सिंह, धनु। वृष, कन्या, मकर। मिथुन, तुला, कुम्भ। कर्क, वृश्चिक, मीन। संक्षेप में पूर्व की तरफ जो राशियां हैं उनका एक समुच्चय; दक्षिण में जो राशियां है उनका एक; पश्चिम की तरफ जो राशियां हैं उनका एक और उत्तर की तरफ जो राशियाँ है उनका एक गिरोह बनाया जाता है॥३६॥

अष्टक वर्ग किस राशि में कितने बिन्दु आये यह निकाल चुके हैं। अब ये जो चार राशियों के गिरोह आये उसमें त्रिकोण शोधन बताते हैं। त्रिकोण शोधन क्या ? मेष से सिंह और धनु त्रिकोण में पड़ती हैं। सिंह से मेष और धनु त्रिकोण में पड़ती हैं और धनु से मेष और सिंह त्रिकोण में पड़ती हैं इसलिये मेष, सिंह और धनु को एक त्रिकोण कहा है। वृष, कन्या और मकर का दूसरा त्रिकोण। मिथुन तुला और कुम्भ को अन्य त्रिकोण और कर्क, वृश्चिक और मीन को चौथा त्रिकोण।

नियम यह है कि त्रिकोण शोधन में एक-एक त्रिकोण एक साथ लिया जाता है कि त्रिकोण की तीनों राशियों में कितने विन्दु पृथक् पथक् पड़े। अब किस में सबसे कम बिन्दु पड़े हों वह त्रिकोण की अन्य दो राशियों में से घटाए जाते हैं। यदि किसी में शून्य पड़ा हो तो अन्य दोनों राशियों में से शून्य घटाया जाता है। परिणाम यह हुआ कि एक राशि में शून्य हो तो दूसरी में और तीसरी में शून्य घटाया तो संख्या जो पहले थी वही रही। कुछ अन्तर नहीं पड़ा। यदि त्रिकोण की तीनों राशियों में समान संख्या है तो तीनों में यह संख्या घटाने से शून्य हो जायगा।

'त्रिकोणेषु च यन्न्यूनं तत्तुल्यं त्रिषु शोधयेत्'। पराशर के उपर्युक्त मतानुसार यही मत उत्तर भारत में प्रचलित है और इसी के अनुसार हम त्रिकोण शोधन करेंगे ॥३७॥

अब एक अन्य मत दिया जाता है जो वलभद्र ने अपने होरारत्न में लिखा है और जिसके अनुसार दक्षिण भारत के बहुत से ज्योतिषी त्रिकोण शोधन करते हैं।

"त्रिकोणेषु च यन्न्यूनं तत्तुल्यं त्रिषु शोधयेत्" इसका अर्थ वह करते हैं कि त्रिकोण राशि में अर्थात् तीनों भावों में जिसमें सवसे कम विन्दु हों उतने ही कम विन्दु अन्य दोनों भागों में करना अर्थात् मान लीजिये मेष, सिंह व धनु इनमें क्रमशः दो, चार और छह बिन्दु हैं तो सब में सबसे कम दो विन्दु स्थापित करना। यह मत उत्तर भारत में प्रचलित नहीं है। ऊपर ३७वें श्लोक में जो मत है वही प्रचलित है। उसी के अनुसार त्रिकोण शोधन दिया जा रहा है ॥३८॥

एकाधिपत्य शोधन

कण्ठीरवं कटकभं च विना कुजादि-
कावासराशियुगलोपगबिन्दुसङ्ख्याः।
तत्तुल्यशून्यविषमाग्रसहग्रहाद्या-
स्त्वेकाधिपत्यपरिशोधितशेषिताः स्युः ॥ ३९ ॥
राशिद्वयं सद्युचरं न शोधये-
देकं द्वयोः शून्यसमप्यशोधयेत्।
फलाधिके खेटयुते परं त्यजेत्
तुल्यानभोगद्वितयं परित्यजेत् ॥ ४० ॥

सखेचराखेचरबिन्दुसाम्ये विशोधयेदग्रहबिन्दुसङ्ख्याम् ।
विखेटराशिद्वयबिन्दवो ये न्यूनाधिका न्यूनसमा विधेयाः ॥ ४१ ॥

खेटोपयाते लघुबिन्दुराशौ
तत्तुल्यमायान्ति तदन्यसंख्याः ।
पूर्वं त्रिकोणं परिशोध्य पश्चा-
देकाधिपत्यस्य ततः प्रकल्प्याः ॥ ४२ ॥

सिंह और कर्क के स्वामी सूर्य और चन्द्रमा हैं । इनकी एक-एक राशि होती है अतः इनका एकाधिपत्य शोधन नहीं होता। बाकी पांच ग्रहों की दो-दो राशियाँ हैं । मंगल की मेष और वृश्चिक, बुध की मिथुन और कन्या, शुक्र की वृष और तुला, बृहस्पति की धनु और मीन तथा शनि की मकर और कुंभ। इसलिए इन राशियों का शोधन होता है। चाहे ग्रह हो या न हो, चाहे एक में शून्य हो, चाहे समान बिन्दु हों, निम्नलिखित प्रकार से शोधन होता है। याद रखिये कि मेष और वृश्चिक इन दोनों राशियों का ही शोधन होगा । क्योंकि मंगल स्वयं इन दोनों राशियों का स्वामी है। मिथुन और कन्या का ही शोधन होगा क्योंकि इनका एकाधिपत्य है। एकाधिपत्य क्या? दोनों का एक ही आधिपत्य है। कौन? बुध ॥ ३९ ॥

एकाधिपत्य के सात नियम हैं

(१) अगर एकाधिपत्य राशियों में दोनों में ग्रह मौजूद है तो इनका शोधन नहीं होता।

(२) अगर दोनों में चाहे एक में ग्रह हो या न हो, शून्य है तो एकाधिपत्य शोधन नहीं होता ।

(३) अगर दो राशियों में से एक में ग्रह है और दूसरी में ग्रह नहीं है तो दूसरी में जो बिन्दु हों, वे हटा दीजिए ।

(४) अगर दोनों बिना ग्रह के हों और दोनों में समान बिन्दु हों तो दोनों में से बिन्दु हटा दीजिए ।

(५) यदि दो राशियों में एक में ग्रह हो और दूसरी में न हो और दोनों में समान बिन्दु हों तो जिस राशि में ग्रह नहीं हैं उसके बिन्दु हटा दीजिए।

(६) अगर दोनों राशियों में ग्रह नहीं हों और बिन्दु संख्या एक में अधिक एक में कम हो तो जिस राशि में अधिक बिन्दु हों उसकी संख्या थोड़े बिन्दु वाली राशि के बराबर कर दीजिए ।

(७) यदि एकाधिपत्य वाली दोनों राशियों में एक में ग्रह हो और बिन्दु भी थोड़े हों (अग्रह वाली राशि से) तो अग्रह वाली राशि में जो बिन्दु हों उनको सग्रह वाली राशि के समान कर दीजिए।

पहले त्रिकोण शोधन करना फिर एकाधिपत्य शोधन करना चाहिये ।।४०-४२।।

शोध्यावशिष्टानि गुणीकृतानि
मेषादिमानैर्गुणकं हि भानाम्।
सूर्यादिकास्ते गुणिताः स्वमानै-
रेषां ग्रहाणां गुणकं वदन्ति ।। ४३ ।।

शैलाशावसुसागराम्बरशरैः शैलाहिगोसायकै-
रीशद्वादशभिश्च राशिगुणकैर्मेषादिभानां क्रमात्।
बाणैः पञ्चभिरष्टकैः शरनभःशैलेषुभिर्भास्वरा-
देवं व्योमतलाधिवासगुणकैरायुर्विधानोदितैः ।। ४४ ।।

तद्राशिखेटगुणकैक्यफलानि हृत्वा
त्रिंशद्भिरब्दचयमासदिनादिकाः स्युः।
तद्द्वादशाधिकसमा यदि राशिमानै-
राहृत्य तत्समतयाऽनुहरेत्तदायुः ।। ४५ ।।

(१) जो एकाधिपत्य शोधन के बाद फल आये उनको राशि गुणक से गुणा करना चाहिये और इस प्रकार बारह राशियों के राशि गुणक निकालने चाहियें।

(२) बारहों राशियों में एकाधिपत्य के बाद जो फल आये उनको ग्रह गुणक से अर्थात् सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि से गुणा करना चाहिये। इन सबका योग ग्रह गुणक कहलाता है।

राशियों के गुणक निम्नलिखित हैं:

मेष ७	कर्क ४	तुला ७	मकर ५
वृष १०	सिंह १०	वृश्चिक ८	कुंभ ११
मिथुन ८	कन्या ५	धन ९	मीन १२

सब राशियों में जो फल हों उनको तत् तत् राशि गुणक से गुणा करना चाहिये और उनका योग करना चाहिये। अब ग्रह गुणक बताते हैं:

सूर्य　५　बुध　　५　　शनि ५
चन्द्र　५　बृहस्पति १०
मंगल　८　शुक्र　　७

एकाधिपत्य छोड़ने के बाद जो फल आये उस राशि में जो ग्रह हो उससे गुणन करना चाहिये। यदि दो या अधिक ग्रह हों तो फल को प्रत्येक ग्रह की संख्या से गुणन कर जो योग आये, वह रखना चाहिये।

इस प्रकार राशि गुणक का जो योग आये और ग्रह गुणक का जो योग आये उसे जोड़कर ३० का भाग दें, उतने वर्ष आये। शेष को १२ से गुणा कर भाग देने से मास और इसी प्रकार ३० से गुणा कर दिन आ जायेंगे ।।४४-४५।।

पाठकों को त्रिकोण शोधन, एकाधिपत्य शोधन, राशि गुणक और ग्रह गुणक ये चार बातें बताईं। अब इनको सोदाहरण समझाया जाता है।

पहले त्रिकोण शोधन समझायेंगे। लिखा है कि त्रिकोण शोधन के बाद एकाधिपत्य शोधन करना चाहिये। इसलिए त्रिकोण शोधन के पश्चात् एकाधिपत्य शोधन समझाया जायेगा। एकाधिपत्य शोधन के बाद किस प्रकार प्रत्येक राशि के फल को राशि गुणक से गुणा करते हैं यह समझायेंगे और सबसे अंत में प्रत्येक ग्रह-गुणक से किस प्रकार एकाधिपत्य शोधन के बाद गुणा किया जाता है, यह समझायेंगे। दोनों राशि गुणक के फल और ग्रह गुणक के फल जोड़ दिये जाते हैं और उनसे प्रत्येक ग्रह प्रदत्त कितनी आयु आई यह निकालना बतलाया जाता है। नीचे सब ग्रहों के कोष्ठ तथा आयु दी गई है।

सूर्याष्टक वर्ग

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	म	वृ.	ध.	मं.	कु.	मी.	योग
ग्रह	मं.	सू. बु.	शु.	चं.	०	०	०	श.	०	०	ल.	वृ	
बिन्दु	४	६	२	५	३	३	२	६	६	५	४	२	४८
त्रि.शो.	१	३	०	३	०	०	०	४	३	२	२	०	१८
ए.शो.	१	३	०	३	०	०	०	४	३	०	०	०	१४
रा.गु.	७	३०	०	१२	०	०	०	३[illegible]	२७	०	०	०	०८
ग्र.गु.	८	१५+१५ =३०	०	१५				२[illegible]					७३

चन्द्राष्टक वर्ग

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	योग
ग्रह	मं.	सू.बु	शु.	चं.	०	०	०	श.	०	०	ल.	वृ.	
विन्दु	४	३	२	४	३	६	३	३	७	४	५	५	४९
त्रि.शो.	१	०	०	१	०	३	१	०	४	१	३	२	१६
ए.शो.	१	०	०	१	०	३	१	०	२	१	१	२	१२
रा.गु	७	०	०	४	०	१५	७	०	१८	५	११	२४	९१
ग्र.गु.	८	०	०	५				०				२०	३३

मंगलाष्टक वर्ग

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	योग
ग्रह	मं.	सू.बु.	शु.	चं.	०	०	०	श.	०	०	ल.	वृ.	
विन्दु	३	४	१	५	२	४	३	४	३	३	५	२	३९
त्रि.शो.	१	१	०	३	०	१	२	२	१	०	४	०	१५
ए.शो.	१	१	०	३	०	१	१	२	१	०	४	०	१४
रा.गु.	७	१०	०	१२	०	५	७	१६	९	०	४४	०	११०
ग्र.गु.	८	५+५ १०	०	१५				१०				०	४३

बुधाष्टक वर्ग

राशि	मे.	वृ.	मि.	कुं.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	योग
ग्रह	मं.	सू.बु.	शु.	चं	०	०	०	श.	०	०	ल	वृ.	
विन्दु	५	५	२	५	४	५	६	३	४	५	७	३	५४
त्रि.शो.	१	०	०	२	०	०	४	०	०	०	५	०	१२
ए.शो	१	०	०	२	०	०	४	०	०	०	५	०	१२
रा.गु.	७	०	०	८	०	०	२८	०	०	०	५५	०	९८
ग्र.गु.	८	०	०	१०				०				०	१८

बृहस्पति अष्टक वर्ग

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	योग
ग्रह	मं	सू.बु.	शु.	चं.	०	०	०	श	०	०	ल.	वृ.	६
विन्दु	४	६	४	०	४	२	६	५	३	६	५	७	५६
त्रि.शो.	१	४	०	०	१	०	२	१	०	४	१	३	१७
ए.शो.	१	४	०	०	१	०	०	१	०	१	१	३	१२
रा.गु.	७	४०	०	०	१०	०	०	८	०	५	११	३६	११७
ग्र.गु.	८	२०+२० ४०	०	०				५				३०	८३

शुक्राष्टक वर्ग

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	योग
ग्रह	मं	सू.बु.	शु.	चं.	०	०	०	श.	०	०	ल.	वृ.	
बिन्दु	३	२	५	५	४	६	५	२	४	४	५	७	५२
त्रि.शो.	०	०	०	३	१	४	०	०	१	२	०	५	१६
ए. शो.	०	०	०	३	१	४	०	०	०	२	०	५	१५
रा.गु.	०	०	०	१२	१०	२०	०	०	०	१०	०	६०	११२
ग्र.गु.	०	०	०	१५				०				५०	६५

शन्यष्टक वर्ग

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	योग
ग्रह	मं	सू.बु.	शु.	चं.	०	०	०	श.	०	०	ल.	वृ.	
बिन्दु	४	४	२	२	३	३	१	३	४	४	५	४	३९
त्रि.शो.	१	१	१	०	०	०	०	१	१	१	४	२	१२
ए.शो.	१	१	१	०	०	०	०	१	०	१	१	२	८
रा.गु	७	१०	८	०	०	०	०	८	०	५	११	२४	७३
ग्र.गु.	८	५+५ =१०	७	०				५				२०	५०

लग्नाष्टक वर्ग

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	योग
ग्रह	मं.	सू.बु.	शु.	चं.	०	०	०	श	०	०	ल	वृ.	
बिन्दु	६	२	५	४	५	५	३	३	४	४	५	३	४९
त्रि.शो.	२	०	२	१	१	३	०	०	०	२	२	०	१३
ए.शो	२	०	२	१	१	२	०	०	०	०	०	०	८
रा.गु.	१४	०	१६	४	१०	१०	०	०	०	०	०	०	५४
ग्र. गु.	१६	०	१४	५				०				०	३५

श्लोक ४५ के अनुसार आयु

अष्टक	राशिगुणक	ग्रहगुणक	योग	आयु
सूर्य	१०८	७३	१८१	६व. ० म. १२दि.
चन्द्र	९१	३३	१२४	४व. १ म. १८दि.
मंगल	११०	४३	१५३	५,, १ ,, ६ ,,
बुध	९८	१८	११६	३,, १०, १२ ,,
बृहस्पति	११७	८३	२००	६,, ८, ० ,,
शुक्र	११२	६५	१७७	५,, १० २४ ,,
शनि	७३	५०	१२७	४,, १, ६ ,,
लग्न	५४	३५	८९	२,, ८, १८ ,,

सूर्य :—पहले राशि कुंडली लिख लोजिए और जिस राशि में जो ग्रह हों वह वैसा का वैसा भर दीजिए। सूर्याष्टक वर्ग के जितने विन्दु जिस राशि में आये हैं वे भर दीजिए। अव आपको त्रिकोण शोधन करना है। मेष में ४, सिंह में ३ और धनु में ६ विन्दु हैं। सबसे कम सिंह में हैं अतः सिंह में जितने विन्दु हैं वह तीनों राशियों में से कम कर दीजिए तो त्रिकोण शोधन वाली पंक्ति में ४–३=१; मेष में; सिंह में ३–३=०; और धनु में ६–३=३ लिख दीजिए। अव दूसरा त्रिकोण लीजिए। वृष, कन्या और मकर। वृष में ६ विन्दु हैं कन्या में ३ विन्दु और मकर में ५ विन्दु। सवसे कम कन्या में ३ हैं अतः तीनों में से ३–३ घटाये तो वाकी वचे वृष में ३; कन्या में ०; और मकर में २। इसलिए यह संख्या त्रिकोण शोधन के सामने वाली पंक्ति में लिख दीजिए। अव लीजिए मिथुन, तुला और कुंभ। इनमें संख्या हैं २, २ और ४। तीनों में से २ कम किये तो वापिस वचे—०,० और २। इसको त्रिकोण शोधन वाली पंक्ति में लिख दीजिए। अव आइये चतुर्थ त्रिकोण पर। इनमें संख्या हैं कर्क में ५, वृश्चिक में ६, मीन मे २। इसलिए तीनों में से २, २ कम किये और शेषसंख्या ३, ४ और ० त्रिकोण शोधन के सामने लिख दीजिए। यहाँ आपका त्रिकोण शोधन समाप्त हुआ। कहा है कि त्रिकोण शोधन के उपरान्त एकाधिपत्य शोधन करना चाहिये।

अव त्रिकोण शोधन के उपरान्त मेष में १ और वृश्चिक में वचे हैं। नियम १ के अनुसार दोनो संग्रह हैं। इसलिए इनका शोधन नहीं होगा और एकाधिपत्य शोधन के बाद १ और ४ संख्या वैसी की वैसी रख दी जायेगी।

अव दूसरा त्रिकोण लीजिए वृष, कन्या और मकर। इनका एकाधिपत्य शोधन करना है। वृष में ग्रह सूर्य और बुध हैं। नियम ३ के अनुसार वृष में वही संख्या रहेगी और मकर में २ के सामने ० रख दिया जाएगा। अतः वृष में ३ कन्या में ० थी ही और मकर में भी ० रख दो जाएगी। इस प्रकार एकाधिपत्य शोधन हुआ।

अव मिथुन और कन्या लीजिए। मिथुन में कोई संख्या नहीं है और कन्या में भी कोई संख्या नहीं है। इसलिए दोनों में ० होने से वैसी की वैसी संख्या रख दी। अव लीजिए धनु और मीन। मीन सग्रह राशि है धनु अग्रह। नियम २ के अनुसार कोई एकाधिपत्य शोधन नहीं होगा और वैसी की वैसी संख्या धनु में ३ और मीन में ० द्वितीय नियम के अनुसार रख दिया जायेगा। अव लीजिए मकर और कुंभ। दोनों में २–२ बिन्दु हैं।

नियम ४ के अनुसार दोनों में ० रख दिया जायेगा । अब यहाँ एकाधिपत्य शोधन पूर्ण हुआ ।

अब राशि गुणाकार से गुणा कीजिए । मेष में १ संख्या बची है, मेष का गुणाकार ७ है इसलिए ७ लिखा । वृष में १० गुणाकार है इसलिए १०×३= ३० लिखा । कर्क में ३ संख्या है इसलिए ३×४=१२ संख्या लिखी । वृश्चिक में ४ संख्या है इसलिए ४×८=३२ संख्या लिखी । धनु का गुणाकार ९ है इसलिए ३×९=२७ लिखी । तीन रशियों में शून्य है उनको गुणाकार से गुणा करने पर शून्य ही आयेगा । अतः उनकी जगह शून्य लिख दीजिए ।

अब ग्रह गुणाकार लीजिए । मेष राशि में मंगल है और एकाधिपत्य शोधन के बाद १ बचा है इसलिए राशि गुणाकार की पंक्ति में ८ लिखिये । वृष में सूर्य और बुध दो हैं । प्रत्येक का गुणाकार ५ है इसलिए ५×३=१५ और दुबारा ५×३=१५ अर्थात् ३० वृष के नीचे लिखिए । कर्क राशि में चन्द्रमा है । यहां एकाधिपत्य शोधन के बाद ३ संख्या है अतः ३×५=१५ संख्या राशि गुणाकार के सामने लिखी । वृश्चिक राशि में शनि है, इसलिए वृश्चिक के नीचे ४×५=२० लिखिये । शेष राशियों में कोई ग्रह नहीं है या शून्य संख्या है इसलिए कोई संख्या नहीं लिखी ।

अब आयु निकालना बताया जाता है । राशि गुणाकार का योग आया १०८ और ग्रह गुणाकार का योग आया ७३ । दोनों का जोड़ १८१ रहा । इसमें ३० का भाग देने से सही प्रदत्त आयु आयी ६ वर्ष ० मास १२ दिन । इस प्रकार सूर्याष्टक वर्ग समझाया गया है उसी प्रकार अन्य वर्गों में त्रिकोण शोधन, एकाधिपत्य शोधन, राशिगुणाकार, ग्रह गुणाकार और राशि गुणाकार और ग्रह गुणाकार के योग में ३० का भाग देकर आयु निकालना समझना चाहिए ।।४३-४५।।

उच्चं गतस्य द्विगुणं तदीयं
नीचं गतस्यास्तगतस्य चार्द्धम् ।
अतोऽन्तराले त्वनुपात्यमायु-
रारभ्य वक्रे द्विगुणीकृतं स्यात् ।। ४६ ।।

मूलत्रिकोणनिजमित्रगृहोपगानां
तुङ्गादिवर्गशुभयोगनिरीक्षितानाम् ।
उक्तप्रकारगणितागममायुरेव
पापारिवर्गसहितस्य विपादमायुः ।। ४७ ।।

यदि कोई ग्रह अपनी उच्च राशि में हो तो उसकी प्रदत्त आयु दूनी करनी चाहिए अर्थात् अष्टक वर्ग से जो उसकी आयु आई है उसे दुगना करना चाहिये। अगर ग्रह अपनी नीच राशि में हो या अस्त हो तो उसकी आयु का आधा करें। मध्य में अनुपात से निकालें। मंगल के विषय में यह एक विशेष नियम है कि यदि वह वक्री हो तो उसकी प्रदत्त आयु को दुगना करें ॥४६॥

मूल त्रिकोण अपने मित्र स्थान में स्थित, स्वराशि स्थित, अपने उच्चादि वर्ग में स्थित शुभ योग करने वाले ग्रहों की प्रदत्त आयु के सम्वन्ध में यह बताया है। जो ग्रह पाप वर्ग या शत्रु वर्ग में हों उन ग्रहों की चौथाई आयु कम की जाती है ॥४७॥

रविमुख्यनभोगदत्तसंख्याः
परमायुः शरदस्तु मानवानाम् ॥
सविलग्नसमाश्च केचिदाहु-
र्गुरु-मूलात्समुपैति तुल्यमायुः ॥ ४८ ॥

रवि आदि ग्रहों की आयु संख्या जोड़ कर निकाली जाती है जैसा पहले समझाया गया है। मनुष्य की परमायु १०० वर्ष की होती है। पराशर आदि के विचार से ग्रह प्रदत्त आयु में लग्न प्रदत्त आयु भी जोड़नी चाहिये। उसी से आयु ठीक बैठती है ॥४८॥

केन्द्रादन्यगते चन्द्रे सखेटे चाष्टवर्गजम् ।
आयुरेव नभःस्थाने शुभपापयुतेऽथवा ॥ ४९ ॥

केन्द्र में यदि चन्द्रमा न हो या दशम स्थान में पाप ग्रह शुभ से युत हो तो अष्टक वर्गज आयु लेनी चाहिए ॥४९॥

रव्यादिखेटस्थितराशियाताः स्वकीयवर्गोपगबिन्दुसंख्याः ।
वेधाष्टवर्गप्रभवायुरब्दा भवन्ति सर्वे हरणक्रियाश्च ॥ ५० ॥

सूर्य आदि ग्रह भिन्न-भिन्न राशियों में विन्दु डालते हैं और इस प्रकार भिन्नाष्टक वर्ग वनाते हैं। इन भिन्नाष्टक वर्ग से प्रत्येक ग्रह प्रदत्त आयु आती है। इनका योग ही आयु होता है। परन्तु इनमें हरण इत्यादि (यथा उच्च में हो तो द्विगुणित, पाप, शत्रु वर्ग में हो तो चौथाई कम करना) आवश्यक है ॥५०॥

मन्दवैनाशिक नक्षत्र

तत्तत्कारकभावबिन्दुगुणितं शोध्यावशिष्टं फलं
विंशत्या सह सप्तभिश्च विहृतं तच्छेषताराशनौ ।
तातस्तज्जननी सहोदरजनो बन्धुः सुतः स्त्री स्वयं
तत्तुल्या विलयं प्रयान्ति विपुलश्रीनाशहेतुश्च वा ॥ ५१ ॥

किसी ग्रह के अष्टक वर्ग में त्रिकोण शोधन और एकाधिपत्य शोधन के उपरान्त जो विन्दु बचें उनको उन विन्दुओं से गुणा करे (दोनों शोधन के पूर्व हैं) जो उस राशि में हों जो कारक ग्रह से विचारणीय भाव में पड़ें। अर्थात् यदि सूर्याष्टक का विचार कर रहे हैं तो कारक ग्रह से (सूर्य से) विचारणीय भाव(नवम)में पड़ें। यदि चन्द्रमा से विचार कर रहे हैं तो कारक ग्रह से (चन्द्रमा से) करक ग्रह के भाव (चतुर्थ) में पड़ें। यदि मंगल के अष्टक वर्ग का विचार कर रहे हैं तो मंगल से तृतीय में पड़ें क्योंकि मंगल तृतीय भाव का कारक है। उदाहरण के लिये सूर्य से विचार करना है तो सूर्य में त्रिकोण शोधन और एकाधिपत्य शोधन के वाद १४ विन्दु हैं और सूर्य से नवम भाव (सूर्य वृष में है) मीन पड़ेगा। मीन में दो विन्दु हैं इसलिए १४ को २ से गुणा कीजिये।

यदि चन्द्रमा का विचार करना है तो त्रिकोण शोधन और एकाधिपत्य शोधन के वाद १२ विन्दु हैं। चन्द्रमा मातृ कारक है।

इसलिये चन्द्रमा कर्क में है इससे चतुर्थ तुला में ३ रेखा हैं। इसलिये १२ को ३ से गुणा कीजिए।

ऊपर जो गुणन फल आया उसमें २७ का भाग दीजिए। गुणनफल को छोड़ दीजिए। उसका प्रयोजन नहीं है केवल शेष का प्रयोजन है। उदाहरण में सूर्य का गुणनफल आया १४×२=२८। २७ से भाग दिया तो १ बचा। अर्थात् १ नक्षत्र में अश्विनी में जव शनि गोचरबश जायेगा तो पिता की मृत्यु होगी या तत्समान किसी व्यक्ति की मृत्यु होगी।

चन्द्रमा से चौथे भाव में चन्द्राष्टक वर्ग में ३ बिन्दु हैं इनको दोनों शोधन के उपरान्त चन्द्रमा के अष्टक वर्ग में १२ बिन्दु से गुणा किया तो ३६ हुये। २७ से भाग दिया तो शेप ९ वचे। इसलिए अश्विनी, भरणी नवें नक्षत्र आश्लेषा में गोचर वश जव शनि जायेगा तो माता की मृत्यु या तत्समान किसी व्यक्ति की मृत्यु हो। सूर्याष्टक वर्ग में पिता की मृत्यु, चन्द्राष्टक वर्ग में माता की मृत्यु, मंगल वर्ग में भाई की, वुध के अष्टक वर्ग में ज्ञाति की, वृहस्पति के

अष्टक वर्ग में पुत्र की, शुक्र के अष्टक वर्ग में भार्या की और शनि के अष्टक वर्ग में स्वयं अपनी मृत्यु देखें। अगर उस समय कोई मृत्यु न हो तो धन का विशेष नाश होगा ॥५१॥

इति भिन्नाष्टकवर्ग

समुदायाष्टकवर्ग

ततः समालिख्य भगोलचक्रं समस्तबिन्दुस्थितराशिकोष्ठम्।
रव्यादिकानामजपूर्वकाणां बिन्दूपगस्थानफलं वदामि॥ ५२॥

आपञ्चविंशति फलान्यफलान्यसत्य-
मात्रिंशदक्षसहितानि समध्यमानि।
त्रिंशत्पराणि सुखवित्तयशस्कराणि
तद्भाववृद्धिफलदानि च सामुदाये॥ ५३॥

अब समुदायाष्टक वर्ग कहते हैं। सब अष्टक वर्गों के टोटल या योग का नाम समुदाय अष्टक वर्ग कहते हैं और इनमें जितने विन्दु मिलें उनका फल कहते हैं ॥५२॥

भाव	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	
सूर्य	४	२	४	६	२	५	३	३	२	६	६	५	
चन्द्र	५	५	४	३	२	४	३	६	३	३	७	४	
मंगल	५	२	३	४	१	५	२	४	३	४	३	३	
बुध	७	३	५	५	२	५	४	५	६	३	४	५	
गुरु	५	७	४	६	४	४	४	२	६	५	३	६	
शुक्र	५	७	३	२	५	५	४	६	५	२	४	४	
शनि	५	४	४	४	२	२	३	३	१	३	४	४	
	३६	३०	२७	३०	१८	३०	२३	२९	२६	२६	३१	३१	३३७

इस प्रकार सब अष्टक वर्गों को जोड़कर (लग्नाष्टक वर्ग इसमें नहीं जोड़ा जाता) ३३७ विन्दुओं का यह समुदायाष्टक वर्ग तैयार हुआ। इसमें २५ फल (विन्दु) तक के भाव कमजोर समझे जाते हैं। अगर २५ से बहुत कम हों तो निकृष्ट, २५ हों तो थर्ड क्लास में पास। २५ से ३० तक मध्यम रूप से उत्कृष्ट। और ३० से ऊपर भाव सुख, वित्त और यश देते हैं अर्थात् फर्स्ट क्लास। ३० से ऊपर विन्दु हों तो श्रेष्ठ समझिये। यह बहुत उत्तम फल देते हैं ।।५३।।

ये तुङ्गराशिस्वसुहृद्गृहस्था
ये कोणकेन्द्रोपचयस्थिताश्च ।
ये सौम्यवर्गादिबलोपयाता-
स्ते नाशदा लाघवबिन्दुकाश्चेत् ॥ ५४ ॥

ये चावसानरिपुरन्ध्रतुरङ्गभानां
ये नीचपापरिपुखेचरवर्गयुक्ताः ।
ये मान्दिराशिपतिना सहबोधकाश्च
ते सर्वमुख्यफलदास्त्वधिबिन्दुकाश्चेत् ॥ ५५ ॥

जो ग्रह अपनी उच्च राशि में हों, स्वराशि में हों, मित्र की राशि में हों, केन्द्र त्रिकोण या उपचय (३,६, १०, ११) में हों, जो सौम्य वर्गों में हों, चाहे वलवान हों किन्तु यदि वे अष्टक वर्ग में थोड़े विन्दु में हों तो वे नाश कारक होते हैं अर्थात् ग्रहों का अधिक विन्दु में होना बहुत आवश्यक है ।।५४।।

ग्रह चाहे वह छठे, आठवें, बारहवें हों या सप्तम भाव में हों, चाहे वह नीच, पाप, शत्रु ग्रहों के वर्ग में हों, चाहे वह मान्दि राशि पति के साथ होकर बाधक हों वे सब मुख्य (अच्छा) फल देते हैं अगर वे अधिक विन्दु युक्त हों। यहाँ पर अर्थवाद है। एक तरफ तो कह गये चाहे वह बारहवें, आठवें, छठें भाव में हों और दुष्ट वर्गों में हों अर्थात् जितनी बुराई हो सकती थी वह सब गिना दी और कह दिया कि अधिक बिन्दु होना अच्छा है परन्तु श्लोक ३५ में कह चुके हैं कि "अरातिनीचास्तगतो नभोगः सबिन्दुकोऽपि प्रविलापकर्ता,' अर्थात् शत्रु राशि का नीच अस्तंगत ग्रह अधिक बिन्दु होने पर भी अच्छा नहीं, यहाँ कहते हैं कि इन दोषों के होने पर भी ग्रह अच्छा होता है। कहने का तात्पर्य इतना सा है कि अधिक बिन्दु होना अच्छा है और थोड़े विन्दु खराव। अन्य कारणों से जो गुण दोष होंगे वे बने ही रहेंगे। ।।५५।।

मानस्थिताल्लाभगृहे बहुत्वे
लाभाल्लघुत्वे यदि रिष्फराशौ ।
रिष्फोपयातादधिके विलग्ने
जातः सुखी वित्तयशोबलाढ्यः ।। ५६ ।।

यदि दशवें घर में जितने बिन्दु हों उससे अधिक ११वें घर में हों और ११वें से थोड़े १२वें घर में हों और १२वें घर से अधिक लग्न में हों तो जातक सुखी, धनी, यशस्वी, बलाढ्य होता है। फलदीपिका में भी इसी प्रकार का श्लोक है :—

मध्यात्फलाधिकं लाभे लाभात्क्षीणतरे व्यये ।
यस्य व्ययाधिके लग्ने भोगवानर्थवान् भवेत् ।।५६।।

खण्डत्रयं शफरकर्कटकीटकाद्यं
तत्तच्चतुष्टयगृहोपगबिन्दुयुक्तम् ।
आद्यं च मध्यमवसानमिति प्रयुक्तं
केचिद्व्ययादिकमिति प्रवदन्ति लोके ।। ५७ ।।

कुछ लोगों का मत है कि जीवन के तीन खण्ड कैसे जायेंगे यह ज्ञात करने के लिए (i) मीन, मेष, वृष, मिथुन (ii) कर्क, सिंह, कन्या, तुला (iii) वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ। इस प्रकार इन राशियों में जितने विन्दु पड़ें हैं उन्हें जोड़कर जिस खण्ड में अधिक विन्दु पड़ें हों उसको उत्तम, जिसमें मध्यम पड़े हों उसे मध्यम और जिसमें कम पड़ें हों उसे अधम मानना चाहिए। यथा :—

(i) ३०+२७+३०+१८=१०५
(ii) ३०+२३+२९+२६=१०८
(iii) २६+३१+३१+३६=१२४

३३७

इस प्रकार जीवन का तृतीय खण्ड सबसे श्रेष्ठ जायेगा क्योंकि १२४ विन्दु हैं और जीवन का प्रथम खण्ड सबसे निकृष्ट क्योंकि १०५ बिन्दु हैं।

कोई-कोई विद्वान व्यय से खण्ड मानते हैं उनके मत से व्यय, लग्न, द्वितीय और तृतीय एक खण्ड। चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम द्वितीय खण्ड। अष्टम, नवम, दशम, एकादश खण्ड।

(i) ३१+३६+३०+२७=१२४
(ii) ३०+१८+३०+२३=१०१
(iii)२९+२६+२६+३१=११२

३३७

इस प्रकार दोनों सम्प्रदायों में ऐकमत्य नहीं हैं। जातकादेशमार्ग में मीन वाले पक्ष को दिया है :—

मीनेन्द्वालयवृश्चिकप्रभृतिकं खण्डत्रयं कल्पये-
दाद्येऽक्षाधिकतादिमे तु वयसस्त्र्यंशेविदध्यात्सुखम्
मध्ये मध्यवयस्यथान्तिमवयस्त्र्यंशेऽन्त्यखण्डे हि सा
हीनाक्षस्तु वयस्त्रिभाग इह योत्र व्याधिदुःखोद्भवः ॥५७॥

खण्डत्रय में मतभेद

बिन्दुं त्यक्त्वा रिष्फरन्ध्रोपयातं
शिष्टं खण्डं केचिदिच्छन्ति सन्तः।
तुल्यस्वल्पाधिक्यबिन्दुक्रमेण
मिश्रं दुःखं सपदः स्युर्नराणाम् ॥ ५८ ॥

किसी-किसी का मत है कि मीन से प्रारंभ कर १, २, ३, खण्ड बताये हैं उसमें अष्टम भाव के बिन्दु और द्वादश भाव के बिन्दु नहीं जोड़ना चाहिए। ऐसा करने से जो खण्ड का जोड़ आये वह लेना चाहिए। अगर तीनों खण्डों में तुल्य बिन्दु हों तो जातक का जीवन एक समान बीतेगा। यदि किसी खण्ड में स्वल्प बिन्दु हों तो जीवन के उस भाग में दुःख होगा। यदि किसी में अधिक बिन्दु हों तो उसमें जातक को सम्पत्ति मिलेगी ॥५८॥

खण्डत्रय में ग्रह योग होने से फल

सौम्याक्रान्तं यदि सुखकरं मिश्रदं मिश्रयोगं
खण्डं पापद्युचरसहितं क्लेशयोगाकरं स्यात्।
बिन्दुस्वल्पे यदि निजमनस्तापवान् पापवादी
बिन्द्वाधिक्ये वयसि विपुलः श्रीसमेतः प्रजातः॥ ५९ ॥

यदि किसी खण्ड में शुभ ग्रह हों तो वह खण्ड पूर्व का, मध्य का या अन्त का आनन्द दायक बीतेगा। यदि उस खण्ड में शुभ ग्रह और पाप ग्रह दोनों का मिश्रण हो तो सुख-दुःख दोनों उठाने पड़ेंगे। यदि केवल पाप ग्रह हों तो जीवन के उस भाग में क्लेश होता है।

यदि थोड़े विन्दु हों तो मनुष्य का चिन्तायुक्त चित्त रहता है और वह पाप की बातें करता है। यदि विन्दु अधिक हों तो अत्यन्त श्री सम्पन्न होता है। यहाँ दो बातें कहीं एक अधिक विन्दु होने से अच्छा थोड़े विन्दु होने से खराब। दूसरी यह कि खण्ड में शुभ ग्रह होने से अच्छा पाप ग्रह होने से खराब। फलादेश करते समय इन दोनों बातों को ध्यान में रखना चाहिये।

लग्न में अधिक विन्दु का फल

यावद्विन्दुर्लग्नगस्तावदीय-
संख्यातीते वत्सरे राजयानम्।
वित्तं पुत्रं चातिविद्यामुपैति
जातः सम्पद्योगशाली नरश्चेत्॥ ६०॥

यदि कुण्डली में राजयोग हों तो लग्न में जितने विन्दु हों तत्तुल्य वर्ष बीत जाने पर उसका भाग्य उदय होता है। राजा की सवारी मिलती है। वित्त और पुत्र होते हैं। अति विद्या होती है और सम्पत्ति युक्त होता है। उसके उद्योग सफल होते हैं॥६०॥

आयु प्रमाण

रिःफाधीशे मन्दगेहोदयस्थे
होरारन्ध्रस्वामिनौ दुर्बलौ च।
लग्ने यावद्विन्दुसंख्यास्तदीया
जातस्यायुर्वत्सराः सम्भवन्ति॥ ६१॥

यदि मकर या कुम्भ लग्न हो और द्वादशेश लग्न में बैठा हो, लग्न और अष्टम के स्वामी दुर्बल हों तो मनुष्य केवल उतने वर्ष जीता है जितने लग्न में सर्वाष्टक वर्ग में विन्दु हों॥६१॥

बिन्दुओं से राजयोग

यानाधीशे लग्नगे वाहनस्थे
लग्नाधीशे तद्ग्रहोपेतराश्योः ।
त्रिशत्संख्या बिन्दवः सत्रयश्चे-
ज्जाताराजश्रीनिदाना नरेशाः ॥ ६२ ॥

यदि चतुर्थेश लग्न में हो और लग्नेश चतुर्थ में हो और दोनों घरों में ३३-३३ बिन्दु हों तो बहुत से मनुष्यों का स्वामी राजश्री सम्पन्न नरेश होता है ॥ ६२ ॥

होराबन्धुप्राप्तिभावत्रयेषु त्रिशन्मानाधिक्यबिन्दूपगेषु ।
जातस्तेजःश्रीबहुत्वं च राज्यं चत्वारिंशद्वत्सरादूर्ध्वमेति ॥ ६३ ॥

यदि लग्न चतुर्थ और एकादश तीनों भावों में ३० से अधिक बिन्दु हों तो ऐसा जातक तेजस्वी, बहुत धनी होता है और ४० वर्ष के बाद राज्य का अधिकारी होता है ॥६३॥

यत्पञ्चविंशतिमुखास्त्रिदशान्तसंख्या
बन्धुस्थिता नवमराशिकबिन्दवश्च ।
यद्यष्टकेन सह विंशतिवत्सराणा-
मन्ते परे शरदि वा नरवाहनाढ्यः ॥ ६४ ॥

यदि चतुर्थ और नवम राशि में (भाव में) २५ से ३० तक बिन्दु हो तो मनुष्य बहुत धनी होता है और २८ वर्ष बाद पालकी मिलती है ॥६४॥

देवाचार्ये वाहनस्थे स्वतुङ्गे
चत्वारिंशद्बिन्दुसङ्ख्यासमेते ।
मेषागारे लग्नगे वासरेशे
जातो राजा लक्षसंख्याश्वनाथः ॥ ६५ ॥

यदि लग्न में मेष का सूर्य हो और चतुर्थ में कर्क का बृहस्पति हो और चतुर्थ स्थान में ४० बिन्दु पड़ें तो राजा होता है और १ लाख घोड़ें उसकी मातहती में रहते हैं अर्थात् १ लाख सवार उसकी सेना में होते हैं ॥६५॥

चत्वारिंशद्बिन्दुयुक्ते विलग्ने
चापे जीवे भार्गवे मीनराशौ ।
स्वोच्चे भौमे कुम्भगे भानुपुत्रे
जातः सर्वश्रीधरः सार्वभौमः ।। ६६ ।।

यदि लग्न में ४० बिन्दु हों, वृहस्पति धनु में हो, शुक्र मीन में हो, मंगल मकर में हो और कुम्भ में शनि हो तो सर्वश्री सम्पन्न सार्वभौम राजा होता है।। ६६ ।।

क्रियादिराशित्रितयोपयाता
भवन्ति पूर्वादिचतुर्दिशश्च ।
फलाधिकं यद्दिशि तत्प्रदेशे
धनादिवृद्धि समुपैति जातः ।। ६७ ।।

मेष, सिंह, धनु पूर्व दिशा हुई; वृषभ, कन्या मकर दक्षिण दिशा हुई; मिथुन, तुला, कुम्भ पश्चिम और कर्क, वृश्चिक और मीन उत्तर दिशा हुई। जिस दिशा में अधिक बिन्दु हों उस दिशा में जातक की धन की वृद्धि होती है अर्थात् जातक उस दिशा में काम करे तो विशेष धनी हो। उदाहरण कुण्डली में स्थिति इस प्रकार है।

मेष	२७	वृष	३०	मिथुन	१८	कर्क	३०
सिंह	२३	कन्या	२९	तुला	२६	वृश्चिक	२६
धनु	३१	मकर	३१	कुम्भ	३६	मीन	३०
	८१		९०		८०		८६

इस कुण्डली में वृष, कन्या, मकर दक्षिण दिशा में सबसे अधिक बिन्दु हैं इसलिये जातक यदि दक्षिण दिशा में रोजगार करे तो उसे विशेष लाभ होगा ।। ६७ ।।

रोग ज्ञान

लग्नादिशन्यन्तगतं तुरङ्गैः सङ्गुण्य ताराहृतलब्धयाते ।
रव्यादिपापे यदि कोणगे वा रोगादिपीडाविपुलं नराणाम्।।६८।।

मन्दादिलग्नान्तफलं च तद्वल्लग्नान्तमारादुदयात्कुजान्तम् ।
शुभैक्यसंख्यागततारकायां शुभग्रहे सौख्यफलं वदन्ति ।। ६६ ।।

सर्वाष्टक वर्ग में लग्न से शनि तक बिन्दु जोड़िए । शनि जिस राशि में है उसके बिन्दु भी जोड़िए और लग्न के भी । ७ से गुणा कीजिये और २७ से भाग दीजिये जो नक्षत्र आये उसमें यदि रवि आदि पाप ग्रह इस नक्षत्र में या इसके त्रिकोण में जायें तो रोग पीड़ा आदि होते हैं ।

इसी प्रकार शनि से लग्न तक बिन्दुओं को जोड़िए । ७ से गुणा कीजिए । २७ से भाग दीजिए जो नक्षत्र आये उसमें या उसके त्रिकोण में जब पाप ग्रह जाता है तब पीड़ा होती है । लग्न से मंगल तक जोड़िए । सर्वाष्टक वर्ग में जो लग्न में बिन्दु हैं और मंगल की राशि में जो बिन्दु हैं उनको जोड़िए । ७ से गुणा करें । २७ से भाग दीजिए । इस नक्षत्र में या इसके त्रिकोण में जब पाप ग्रह जाता है तब जातक को रोग आदि होते हैं । इसी प्रकार मंगल से लग्न तक सर्वाष्टक वर्ग में जितने बिन्दु हैं सबको जोड़िये । मंगल की राशि के बिन्दु और लग्न की राशि के बिन्दु भी जुड़ेंगे । ७ से गुणा कीजिए । २७ से भाग दीजिए । जो नक्षत्र आये उसमें या उसके त्रिकोण में जब पाप ग्रह जाये तब पीड़ा होती है ।

यहाँ पर मंगल और शनि क्रूर ग्रहों का दृष्टान्त दिया है और उनके बिन्दुओं को जोड़कर ७ से गुणा कर २७ से भाग देकर कष्ट वर्ष निकालना बताया गया है । परन्तु ग्रंथकार कहते हैं कि लग्न से बृहस्पति तक अथवा लग्न से बुध तक अथवा लग्न से शुक्र तक अथवा यदि चन्द्रमा पक्ष बली हो तो लग्न से चन्द्रमा तक जोड़कर शुभ बिन्दुओं को ७ से गुणा कर २७ का भाग देने से उस नक्षत्र में या उसके त्रिकोण नक्षत्र में जब शुभ ग्रह गोचर वश जाता है तब शुभफल होता है । ऐसे ही बृहस्पति से लग्न तक अथवा शुक्र से लग्न तक अथवा बुध से लग्न तक अथवा चन्द्रमा यदि पक्ष बली हो तो चन्द्रमा से लग्न तक शुभ बिन्दुओं को जोड़कर ७ से गुणा करने से, २७ से भाग देने से जो नक्षत्र आये उसमें या उसके त्रिकोण नक्षत्र में जब गोचर वश शुभ ग्रह जाये तब शुभ फल होता है । ग्रंथकार ने मंगल, शनि लिखा है किन्तु फलदीपिकाकार कहते हैं कि मंगल, शनि का विचार जिस प्रकार करना वैसे राहु का भी विचार करना चाहिए । देखिए भावार्थबोधिनी फलदीपिका । इसके अतिरिक्त जातकादेशमार्ग में अष्टक वर्ग का बहुत विस्तृत फल है । स्थानाभाव से यहाँ नहीं दिया जाता है । पाठक जातकादेशमार्ग चन्द्रिका में विस्तृत फल देखें । यह पुस्तक मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशक के यहाँ से प्राप्य है ।।६८-६९।।

शोध्यं राशिद्युचरगुणकैः संगुणय्यैतदैक्यं
हृत्वा शैलैरुडुगणहृतं लब्धमब्दादिकं स्यात् ।
मानाधिक्ये विशतमशते तारकायुर्वराङ्गैः
संगुण्याप्तं दिवसनिचयैर्मातुलैः शुद्धमायुः ।। ७० ।।

अब अष्टक वर्ग से आयु निकालने का प्रकार बताया जाता है। शोध्य पिंड को (जो त्रिकोण शोधन और एकाधिपत्य शोधन के बाद प्राप्त हो और राशि गुणक और ग्रह गुणक से गुणनफल प्राप्त हो) ७ से गुणा करके २७ से भाग देना चाहिये । यह १०० से अधिक आये तो उसमें जितने १०० कम हो सकें उतने कम कीजिये । फिर इसको ३२४ से गुणा करने मे ३६५ से भाग दें यह सौर वर्ष शुद्ध आयु के आते हैं । ग्रंथकार ने लिखा है इसलिए अर्थ दे दिया है परन्तु इस प्रकार की आयु मिलती नहीं है ।।७०।।

स्वल्पमध्यबहुमानवत्सरा मण्डलोनयुतकर्मकल्पिताः ।
तुल्यकालमुपयान्ति सर्वतः सद्गुणोदयकटाक्षवीक्षणात् ।। ७१ ।।

इस प्रकार मण्डल अर्थात् सौ से कम करने से जो आयु आती है वह दीर्घायु, मध्यायु और अल्पायु होती है । लग्न से यदि सद्ग्रह की अर्थात् शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो यह सब प्रकार से ठीक बैठती है ।।७१।।

श्रीवैद्यनाथकृतजातकपारिजाते
पाराशरादिफलसाररसोपयाते ।
प्रस्तारभिन्नसमुदायकबिन्दुशीलः
संकीर्तितस्तु सकलद्युचरप्रसादात् ।। ७२ ।।

इस प्रकार श्री वैद्यनाथकृत जातक पारिजात जो पराशरादि आचार्यों ने कहा है उसके फलित का साररूप है । दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ । इसमें प्रस्ताराष्टकवर्ग, भिन्नाष्टकवर्ग, समुदायाष्टकवर्ग आदि सब ग्रहों की सत्कृपा से समझाये हैं ।।७२।।

अध्याय ११

भावफल

होरालङ्कारमुख्यप्रभवशुभफलादीनि सर्वाणि पुंसां
तत्तद्भावोद्भवानि द्युचरबलवशाद्यानि तानि प्रवच्मि।
ये ये भावाः सितज्ञामरगुरुपतिभिः संयुता वीक्षिता वा
नान्यैर्दृष्टा न युक्ता यदि शुभफलदा मूर्तिभावादिकेषु ॥ १ ॥

भावफल होरा का अलंकार (आभूषण) है। ज्योतिष शास्त्र को आचार्यों ने तीन भागों में विभाजित किया है। संहिता (यथा बृहत्संहिता), सिद्धांत (यथा सूर्य सिद्धान्त) तथा होरा (यथा वराहमिहिर कृत होराशास्त्र जिसे बृहज्जातक भी कहते हैं)। इन्हीं तीन विभागों के कारण ज्योतिषशास्त्र त्रिस्कंध कहा जाता है। जातकपारिजात, फलदीपिका, जातकालंकार सर्वार्थचिन्तामणि आदि जन्मकुण्डली का फलादेश करने वाले समस्त ग्रंथ 'होरा' के अन्तर्गत आते हैं। इसीलिए ग्रंथकार ने होरा शब्द का प्रयोग किया है। और जन्म कुण्डली में प्रत्येक भाव का फलादेश मुख्य अंग है। इस कारण भावफल को अलंकार या आभूषण-रमणीयता-प्रतिपादक कहा है।

सब व्यक्तियों की जन्म कुण्डली में प्रत्येक भाव का जो शुभफल आदि (अर्थात् अशुभ फल भी) ग्रहों के बलाबल के कारण होता है उसके फल का विवेचन करता हूँ। मूल में 'वलवशात्' शब्द आया है, जिसके दो अर्थ होते हैं। एक तो साधारण अर्थ—ग्रहों के प्रभाव के कारण। और दूसरा सूक्ष्म तात्पर्य कि ग्रह के सबल या निर्बल होने के कारण। सिद्धान्त है कि ग्रह किसी भाव में बैठकर या किसी भाव पर दृष्टि होने से—अपने बलाबल (सबल है या निर्बल) के अनुसार पृथक् पृथक् प्रभाव उत्पन्न करता है। सर्वप्रथम मूल सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं।

जो जो भाव शुक्र, बुध, गुरु तथा अपने स्वामी से युक्त या दृष्ट हों तथा अन्य ग्रह से युक्त वा दृष्ट न हों, वह शुभ फल करते हैं। लग्न आदि सब भावों का इस प्रकार विचार करना चाहिये।

यहाँ तीन बातों की ओर ध्यान दिलाया जाता है। शुभग्रह जिनके भावस्थ होने से या भाव पर दृष्टि होने से शुभफल होता है—वे हैं शुक्र, बुध और बृहस्पति। यह तीनों उत्तरोत्तर शुभ होते हैं। शुक्र की अपेक्षा बुध विशेष शुभ, और बुध की अपेक्षा गुरु ? ये निष्कर्ष कैसे निकाला ? क्योंकि लघुजातक के राशिप्रभेदाध्याय श्लोक १४ में वराहमिहिर ने कहा है :—

अधिपयुतो दृष्टो वा बुधजीवनिरीक्षितश्च यो राशिः ।
स भवति बलवान्न यदा युक्तो दृष्टोऽपि वा शेषैः ।।

यहाँ बुध और बृहस्पति दो ही शुभ ग्रहों का उल्लेख किया गया है। और होराशास्त्र पर रुद्रभट्ट अपनी टीका में लिखते हैं कि शुक्र का भाव में स्थित होना शुभ है, परन्तु शुक्र की दृष्टि भाव का नाश करती है। परन्तु साधारणतः शुक्र की दृष्टि को भी ज्योतिषी शुभद ही मानते हैं। रुद्रभट्ट यह भी लिखते हैं कि बलवान् चन्द्रमा भी भाववृद्धि करता है किन्तु क्षीण चन्द्र "प्रकृतिवदनवरतशोककरः" अर्थात् हानि करता है।

तब जातक पारिजात में—भाव वृद्धि कारक ग्रहों में चन्द्रमा की परिगणना क्यों नहीं की ? क्योंकि चन्द्रमा की कलाओं की ह्रास वृद्धि होती रहती है और वह सर्वदा शुभ कारक नहीं होता। चन्द्रमा की स्थिति किन भावों में शुभ मानी गयी है, इसका उल्लेख ८ वें अध्याय में किया जा चुका है।

दूसरा सिद्धांत जिस पर पाठकों की दृष्टि आर्कषित की जाती है, वह यह है कि किसी भाव का स्वामी, यदि उसी भाव में हो तो चाहे वह, पापग्रह भी हो तो भी उस भाव की वृद्धि ही करता है, उसको विगाड़ता नहीं। देहाती कहावत है कि डाकिन भी अपने वच्चे को नहीं खाती है। मंत्रेश्वर ने अपनी फलदीपिका अध्याय १० श्लोक ६ में लिखा है 'पापोऽपि स्वगृहं गतः शुभकरः' अर्थात् पापग्रह भी अपने घर में शुभ फल प्रदान करता है। स्वराशिस्थ पाप ग्रह भी केन्द्र में स्थित होकर महापुरुष योग करता है—इसका वर्णन ७वें अध्याय में किया जा चुका है। किन्तु लघु पाराशरी की सज्जनरञ्जनी के टीकाकार पृ० ९७ पर लिखते हैं कि यदि सप्तमेश क्रूर ग्रह हो और सप्तम में ही स्थित हो तो अनेक विवाह कराता है।

तीसरा संकेत जो ग्रंथकार ने 'बलवशात्' लिखकर किया है, वह यह है कि भावफल में जहाँ शुभफल का उल्लेख किया है वह शुभफल पूर्ण तभी होता है, जब ग्रह पूर्ण बली हो। और पापग्रह स्वराशिस्थ, या शुभवर्गस्थ, शुभग्रहदृष्ट होकर—अपनी दृष्टि से उतना पाप फल नहीं करता जितना पापग्रह नीचस्थ या शत्रुराशिस्थ या पापदृष्ट होकर करता है।

तन्वादिभावेषु शुभोदयेषु तद्भावनाथोपगतेक्षितेषु ।
तदुक्तभावस्य समृद्धिरुक्ता नपापखेटेक्षितसंयुतेषु ।। २ ।।

तनु, धन, सहज आदि १२ भाव होते हैं । तनु आदि भाव में शुभग्रह हो और उस भाव का स्वामी उस भाव में हो, या उस भाव को शुभग्रह तथा उसका स्वामी देखते हों तो उस भाव की समृद्धि होती है । लेकिन एक शर्त लगा दी गई है : यदि पापग्रह उस भाव में न बैठा हो, न उस भाव को देखता हो अर्थात् यदि शुभग्रह तथा भाव स्वामी भाव को देखते हों या उसमें बैठे हों और साथ ही वह भाव पापयुक्त, पापदृष्ट होगा तो न उस भाव की पूर्ण समृद्धि होगी न पूर्ण नाश । मिश्रित फल होगा । कितना शुभ कितना पाप यह ग्रहों के बलाबल—कितने शुभ ग्रह या स्वामी से युत अथवा दृष्ट है और कितने पापग्रहों से, इसका तारतम्य कर निश्चित करना चाहिये ।

यहाँ समृद्धि से क्या आशय है ? यदि अष्टम स्थान में शुभग्रह स्थित हो या इस स्थान को शुभग्रह देखे तो क्या मृत्यु की समृद्धि होगी ? यदि बारहवें घर में शुभग्रह बैठे या उसको देखे तो क्या व्यय की समृद्धि होगी ? नहीं । यहाँ समृद्धि से तात्पर्य है कि उस भाव सम्बन्धी शुभ फल की समृद्धि होगी । अर्थात् मृत्यु की हानि आयु की समृद्धि; व्यय की हानि धन का संचय । बलभद्र हायन रत्न के पृ० ४४ पर सत्याचार्य का मत उद्धृत करते हैं "अष्टमस्थाः सौम्या मृत्युहानिं कुर्वन्ति । पापा मृत्युवृद्धिं कुर्वन्ति । द्वादशे सौम्या व्ययहानिं क्रूरा व्ययवृद्धिं षष्ठभावस्थाः सौम्याः शत्रुहानिं क्रूराः शत्रुवृद्धिं कुर्वन्तीति सत्याचार्यमतम् ।" अर्थात् अष्टम में सौम्य ग्रह मृत्यु की हानि करते हैं, पाप ग्रह मृत्यु की वृद्धि करते हैं । द्वादश में सौम्य ग्रह व्यय की हानि करते हैं, क्रूर व्यय की वृद्धि । छठे घर में सौम्य शत्रु की कमी करते हैं, क्रूर शत्रुओं की वृद्धि ।

कल्याणवर्मा सारावली के अध्याय ३४ श्लोक ७० में कहते हैं कि बृहस्पति, चन्द्र और शुक्र द्वादश स्थान में वित्तपोषण (धनसंचय) करते हैं ।। २ ।।

नीचस्थो रिपुराशिस्थः खेटो भावविनाशकः ।
मूलस्वतुङ्गमित्रस्थो भाववृद्धिकरो भवेत् ।। ३ ।।

यदि कोई ग्रह अपनी नीच राशि या शत्रु राशि में हो तो वह भाव को विनाश करने वाला होता है । यदि ग्रह अपनी मूल त्रिकोण राशि, उच्चराशि, स्वराशि या मित्र की राशि में हो तो भाव की वृद्धि करता है ।

मूल लेखक ने एतावन्मात्र लिखा है और पाठकों के हृदय में शंका हो सकती है कि यह जो भाव के ह्रास या वृद्धि का उल्लेख किया गया है वह उस

भाव के संबंध में कहा है जिसका वह ग्रहस्वामी है या उस भाव के सम्बन्ध में जहाँ वह ग्रह बैठा है। उदाहरण के लिए सिंह लग्न है। षष्ठेश, सप्तमेश शनि नीच राशि का नवम में बैठा है तो शनि नीच होने के कारण उन भावों को बिगाड़ेगा जिनका वह अधिपति है अर्थात् छठे और सातवें भाव को—या नवम (भाग्य स्थान) को जहाँ वह बैठा है ? इसका उत्तर है कि जिन भावों का वह अधिपति हो उनको भी बिगाड़ेगा और जहाँ बैठा है उसको भी। किन्तु भाव को विनाश करने का तात्पर्य यह नहीं है कि उस भावसम्बन्धी कुछ भी शुभफल न हो। यदि भावेश के नीच होने से समस्त शुभफल की हानि हो जाये तो लग्नेश के नीच होने से शरीर सुख का (क्योंकि लग्न शरीर है) सर्वथा नाश हो जाना चाहिए, या सप्तमेश नीच होने से विवाह ही न हो, परन्तु ऐसा नहीं होता। भावेश के नीच या शत्रुराशिस्थ या दुर्बल होने से उस भावसम्बन्धी शुभफल में न्यूनता हो जाती है। अब जहाँ नीच राशिस्थ या शत्रुराशिस्थ ग्रह बैठा है उसका विवेचन करते हैं। सामान्य नियम ऊपर बता चुके हैं कि शुभग्रह किसी भाव में बैठकर या उसको देखकर भाव की समृद्धि करता है और पापग्रह अपनी स्थिति या दृष्टि से भाव की हानि करता है। पापग्रह जहाँ बैठा है वह उसकी उच्च राशि है तो भावहानि कम करेगा, नीचस्थ है या शत्रुराशिस्थ है तो भावहानि विशेष करेगा। शुभग्रह उच्चराशिस्थ होकर जिस भाव में बैठा है उस भाव की विशेष समृद्धि करेगा; जिस भाव में नीच राशिस्थ है या रिपु राशिस्थ होकर बैठा है उस भाव सम्बन्धी पूर्ण शुभ प्रदान नहीं करेगा। कभी-कभी तो शुभग्रह नीचस्थ होकर उस भाव को बहुत बिगाड़ता भी है, जैसे मकर का बृहस्पति यदि सप्तम भाव में हो तो पत्नी अल्पायु होती है और जातक पुनः विवाह करता है।* यहाँ जो पहिले बताया जा चुका है वह ध्यान में रखना चाहिये कि स्वराशिस्थ पापग्रह जिस भाव में बैठा है उसको नहीं बिगाड़ता किन्तु उच्चराशिस्थ भी पापग्रह जहाँ बैठता है उस भाव को कुछ बिगाड़ता ही है। यथा उच्चराशिस्थ मंगल दशम में, जातक के स्वयं के लिए उन्नति कारक है परन्तु पितृ सुख में न्यूनता करेगा ही। या पंचम में मकर का मंगल, पंचम भाव को ईषत् बिगाड़ेगा ही।

तात्पर्य यह है कि बलवान् शुभग्रह बहुत उत्तम, निर्बल शुभग्रह उतने अच्छे नहीं। निर्बल पापग्रह बहुत अनिष्ट कारक, बलवान् पापग्रह उतने अनिष्ट कारक नहीं। इसीलिये प्रश्नमार्ग अध्याय १४ श्लोक १५ में लिखा है :—

---

* देखिये भावार्थबोधिनी फलदीपिका, पृ. २२०।

शुभदानां प्राबल्ये शुभपौष्कल्यं पुनश्च दोषकृताम् ।
वैबल्ये दोषाणां पौष्कल्यं वदति तद्वदभियुक्तः ॥

उत्तर पाराशर में भी लिखा है :

यद् भावेशोऽरिनीचस्थो मूढो वा तन्न पश्यति ।
तद् भावसत्त्वमालस्यं वैरित्वं वा विनिर्दिशेत् ॥
भावेशः कारकोऽपि स्वगृहमुपगतौ तुंगसंगौ यदा ता-
वन्योन्यस्थौ शुभाभ्यामभित इति युतौ वीक्षितौ सौम्यदृष्टौ ।
यद्येवं भावपुष्टिर्भवति यदि हितौ दुःस्थलस्थौ युतौ वा
दृष्टौ पापापचारैर्न भवति रिपुनीचास्तयुक्तौ च हानिः ॥
भावं पश्यति वा स्थितोऽत्र यदि वा यः कोऽपि भावाधिपः
तुङ्गान्योन्यसुहृन्निकेतनगतो दृष्टः शुभैर्मध्यगः ।
भावस्यास्ति बलं न चास्ति यदि चेद्भावाधिपो दुःस्थिते
नीचास्तारिगृहं गतो यदि भवेत् पापैर्युतो वीक्षितः ॥ ३ ॥

यद्भावनाथो रिपुरिष्फरन्ध्रे
दुःस्थानपो यद्भुवनस्थितस्तु ।
तद्भावनाशं कथयन्ति तज्ज्ञाः
शुभेक्षितश्चेत् फलमन्यथा स्यात् ॥ ४ ॥

(१) जिस भाव का स्वामी छठे, बारहवें या अष्टम में हो या (२) जिस भाव में दुःस्थान का स्वामी बैठा हो, उस भाव का नाश हो जाता है। ऐसा ज्योतिषशास्त्र के वेत्ताओं का मत है। किन्तु यदि उसे शुभग्रह देखें तो अन्यथा फल होता है, अर्थात् भाव का नाश नहीं होता ।

छठे, आठवें, बारहवें भाव को अनिष्ट स्थान माना गया है। ज्योतिष में इन्हें त्रिक कहते हैं। त्रिक का शब्दार्थ है तीन कुत्सित अर्थात् अश्लाघ्य । फलदीपिका अध्याय १५ में भी यह श्लोक दिया गया है—एकाध शब्द का हेर फेर है। कह नहीं सकते कि प्रस्तुत ग्रंथकार ने फलदीपिका से यह श्लोक लिया है या फलदीपिकाकार ने जातकपारिजात से। या दोनों ने किसी अन्य प्राचीन ग्रंथ से। दक्षिण भारत के ज्योतिषी बारहवें घर के स्वामी को भी बहुत अनिष्ट मानते हैं। परन्तु उत्तर भारत में प्रचलित लघुपाराशरी के अनुसार द्वादशेश न शुभ है, न पाप। जिस भाव के स्वामी के साथ बैठा हो, जिस भाव में बैठा हो या जिस अन्य भाव का स्वामी हो उसके अनुसार शुभ या अशुभ फल दिखलाता

है । यही सिद्धान्त द्वितीयेश के साथ लागू किया जाता है । इसी कारण लिखा है कि

लग्नात् व्ययद्वितीयेशौ परेषां साहचर्यतः ।
स्थानान्तरानुगुण्येन भवतः फलदायकौ ॥

परन्तु दक्षिण भारत में व्ययेश को निकृष्ट माना है । वास्तव में व्ययेश निकृष्ट नहीं होता तो 'तेषामसम्भवे साक्षात् व्ययाधीशदशास्वपि', यह लिखकर इसको मारकेश कोटि में क्यों रखते ?

अस्तु प्रस्तुत ग्रंथकार ने रिपु, रिःफ, रन्ध्र इन तीन स्थानों को अनिष्ट बताया । सर्व प्रथम षष्ठ स्थान लिखा, उसके बाद द्वादश और सबसे अन्त में अष्टम—इस प्रकार उत्तरोत्तर अनिष्ट में प्रबलता दिखलाई है । छठा स्थान उपचय स्थान भी है, इस कारण इसको सर्व प्रथम लिखा । अष्टम स्थान अत्यन्त अनिष्ट है । इसको अन्त में लिखा ।

जातकादेशमार्ग अध्याय १० श्लोक ३४ में इस सिद्धान्त का विशद प्रतिपादन किया है ।*

षष्ठं द्वादशमष्टमं च मुनयो भावाननिष्टान् विदु-
स्तन्नाथान्वितवीक्षिता यदधिपाः ये वा च भावाः स्वयम् ।
तत्रस्थाश्च यदीश्वरास्त्रय इमे नो सन्ति भावा नृणां
जाता वा विफला विनष्टविकलास्तत्रातिकष्टोष्टमः ॥

यही श्लोक प्रश्न मार्ग अध्याय १४ में दिया गया है । यहाँ भी अष्टम को सबसे निकृष्ट स्थान माना गया है । जातक पारिजात के त्रिक का स्वामी जिस भाव में बैठे या जिस भाव का स्वामी त्रिक में बैठे उसे ही गर्हित बताया गया है, परन्तु प्रश्नमार्ग तथा जातकादेशमार्ग के अनुसार त्रिक का स्वामी जिस भाव को देखे, या त्रिक का स्वामी जिस ग्रह के साथ हो, या जिस ग्रह को देखे उसे भी दूषित करता है ॥ ४ ॥

यद्भावपे केन्द्रगते विलग्नात्त्रिकोणगे वा यदि सौम्यदृष्टे ।
तुङ्गादिवर्गोपगते बलाढ्ये तद्भावपुष्टिं फलमाहुरार्याः ॥ ५ ॥

जिस भाव का स्वामी लग्न से केन्द्र या त्रिकोण में हो, शुभ दृष्ट हो, तुंग (उच्च आदि वर्गों में हो), बली हो, उस भाव की पुष्टि होती है—ऐसा आर्यों (श्रेष्ठजनों) ने कहा है । पहिले बता चुके हैं कि भावेश की दुःस्थिति, नैर्बल्य आदि के कारण उस भावसम्बन्धी कष्ट फल होता है । अब इस श्लोक में

---

* देखिये जातकादेशमार्ग (चन्द्रिका)

बतलाते हैं कि भावेश की सुस्थिति और वलवत्ता हो तो उस भाव सम्वन्धी पुष्ट शुभफल होता है। मूल में वचन आया है 'भाव पुष्टि, जिसका आशय है कि भाव को वल मिलता है और भाव जब बलवान् हो तब भावसम्बन्धी शुभफल प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। किसी भाव का वल ज्ञात करने के लिये भावेश का बल प्रधान है। भावेश का बल तथा भाव शुभग्रहयुक्त है या पापग्रहयुक्त, शुभग्रहदृष्ट है या पापदृष्ट तथा भाव में जो राशि है वह द्विपद, चतुष्पद आदि कैसी राशि है—इन सबका विचार कर, भाव बली है या निर्वल—बली है तो कितना या निर्वल है तो कितना—यह गणित द्वारा निकाला जाता है। इसकी प्रक्रिया श्रीपतिपद्धति केशवीय जातकपद्धति आदि ग्रंथों में देखनी चाहिये। इस प्रसंग में यहाँ केवल यह कहना है कि भाववलनिर्णय में भावेश वल प्रधान है। किसी ग्रह का वल देखने के लिये स्थान बल, कालवल, दिग्वल, चेष्टावल, नैसर्गिक वल, दृग्वल, अयन वल, युद्धबल (यह केवल, मंगल, वुध, गुरु, शुक्र, शनि का होता है) आदि निकाले जाते हैं और उनका योग षड्वल कहलाता है। वह लम्वी गणितसाध्य प्रक्रिया है। इस कारण यहाँ चार स्थूल सिद्धान्त बताये गये हैं। (i) ग्रह की केन्द्र या त्रिकोण में स्थिति (ii) ग्रह पर शुभग्रह या शुभग्रहों की दृष्टि हो (iii) ग्रह उच्च आदि वर्गों में हो (iv) और शेष में—जिन बातों का उल्लेख नहीं किया गया है, उनकी पूर्ति के लिये कहा है कि (iv) ग्रह बली हो। प्राय: वर्ग में राशि, होरा, द्रेष्काण, सप्तमांश, नवांश, द्वादशांश तथा त्रिशांश यह सात वर्ग लिये जाते हैं। ग्रह का स्थान वल निकालने में इन्हीं सात का प्रयोजन है। परन्तु बहुत से ज्योतिषी इन ७ में दशमांश, षोडशांश तथा षष्टि-अंश यह तीन वर्ग और जोड़कर दशवर्ग का विचार करते हैं। उच्चवर्ग, स्ववर्ग वर्गोत्तम, (नवांश में)। बहुत प्रशस्त माने जाते हैं। यदि यह नहीं हों तो अधिमित्र वर्ग या मित्र वर्ग होना अच्छा ही है। अधिमित्र वर्ग की अपेक्षा मित्रवर्ग मध्यम है। किन्तु शत्रुवर्ग, अधिशत्रुवर्ग या नीच वर्ग में होना क्रमशः निकृष्ट, निकृष्टतर, निकृष्टतम है।

वर्गों का तथा ग्रह पर शुभदृष्टि या पाप दृष्टि होना ग्रह के स्वभाव और प्रभाव में बहुत अन्तर कर देता है। बहुत से ज्योतिषी केवल यह देखते हैं कि ग्रह कितने शुभ वर्गों में है, कितने पाप वर्गों में। जिन वर्गों का स्वामी शुभग्रह हो वह शुभवर्ग और जिन वर्गों का स्वामी पाप ग्रह हो वे पापवर्ग कहलाते हैं।

यदि पापग्रह भी वलवान् और शुभ वर्गो में हो और शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो वह शुभ फल करता है और यदि शुभ ग्रह भी निर्बल और पाप ग्रहों के

वर्गों में हो और पापग्रहों से दृष्ट हो तो पाप फल करता है—ऐसा जातकादेश मार्ग का मत है :—अध्याय १० श्लोक ३ में कहते हैं :—

पापग्रहा बलयुताः शुभवर्गसंस्थाः
सौम्या भवन्ति शुभवर्गगसौम्यदृष्टाः ।
प्रायेण पापगणगा विबलाश्च सौम्याः
पापा भवन्त्यशुभवर्गगपापदृष्टाः ॥ ५ ॥

तत्तद्भावत्रिकोणे सुखमदनगृहे वाऽऽस्पदे सौम्ययुक्ते
पापानां दृष्टिहीने भवनपसहिते पापखेटैरयुक्ते ।
भावानां पुष्टिमाहुः सकलशुभकरं चान्यथा चेत्प्रणाशं
मिश्रं मिश्रग्रहेन्द्रैरखिलमपि तथा मूर्तिभावादिकानाम् ॥ ६ ॥

अब भाव पुष्ट (वलवान) है या अपुष्ट (निर्बल) यह निर्णय करने के लिये एक अन्य नियम वतलाते हैं । जातकपारिजात के अध्याय ११ से १५ तक भावफल का विवेचन करते हैं । क्रमशः प्रथम भाव से द्वादश भाव तक—बारहों भावों का विवेचन किया जायेगा । परन्तु प्रारम्भ में भावफल निर्णय के सामान्य नियम बतलाते हैं । यहाँ श्लोक १ से ५ तक कुछ नियमों का प्रतिपादन किया गया है । श्लोक ६ से १२ तक अन्य नियम बतलाये हैं । यह सब नियम—एक दूसरे के वाधक नहीं हैं; अपितु पोषक हैं । इन सभी नियमों की कसौटियों पर भाव को कसना चाहिये । जिस प्रकार रत्नपरीक्षा में, उसका वजन, उसकी चमक (तेज, कान्ति), उसका सौन्दर्य आकार आदि सभी का विचार कर उसका कितना मूल्य है इस निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है, उसी प्रकार 'भाव' को भी अनेक कसौटियों पर कस कर निर्णय किया जाता है कि भाव कितना पुष्ट है और किस मात्रा में शुभ फल करेगा ।

जिस भाव का विचार करना है—उस भाव से चतुर्थ, पंचम, सप्तम, नवम और दशम में शुभ ग्रह हों या उस भाव का स्वामी हो (विचारणीय भाव का स्वामी यदि पापग्रह भी हो तो उसका उपर्युक्त किसी स्थान में होना पोषक है, घातक नहीं) और इन (चतुर्थ, पंचम आदि) भावों में न पापग्रह बैठा हो, न पापग्रह इनको देखता हो तो अत्यन्त शुभ पुष्ट फल होता है । यदि विचारणीय भाव से उपर्युक्त (चतुर्थ, पंचम आदि) भावों में पापग्रह बैठे हों या ये पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो भाव का प्रणाश होता है । 'नाश' क्यों नहीं कहा ? प्रणाश क्यों कहा ? क्योंकि 'प्र' लग जाने से अत्यन्त नाश होता है यह अर्थ अभिप्रेत है ।

पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाता है कि यह जो ४, ५, ७, ९,१० भाव ऊपर बताये गये हैं—इन्हें विचारणीय भाव से गिनना चाहिये। यदि आपको लग्न का विचार करना है तो लग्न से चतुर्थ, पंचम सप्तम, नवम दशम भाव देखिये। मान लीजिये आपको सप्तम भाव (पति या पत्नी) का विचार करना है तो सप्तम से चतुर्थ, पंचम, सप्तम, नवम, दशम (यह लग्न से क्रमशः दशम, एकादश, प्रथम, तृतीय, चतुर्थ स्थान होंगे)। या यदि आपको भाग्य (नवम स्थान) का विचार करना है, तो नवम से ४, ५, ७, ९ तथा १० स्थान लग्न से द्वादश, प्रथम, तृतीय, पंचम, षष्ठ स्थान होंगे।

यहाँ सम्भवतः कुछ पाठक शंका करें कि विचारणीय भाव से ४, ५, ७, ९ तथा १० स्थानों का उल्लेख तो किया किन्तु विचारणीय भाव से प्रथम (अर्थात् स्वयं विचारणीय भाव का जो सर्वोपरि प्रधान है—जिसमें शुभग्रह या जिस पर शुभ दृष्टि भाव को पुष्ट करते हैं और जिसमें पापग्रह स्थिति या जिस पर पाप दृष्टि भाव को दूषित करते हैं) का निर्देश क्यों नहीं किया? उपर्युक्त शंका बहुत संगत और तर्कयुक्त है। इसका उत्तर यह है कि भाव से प्रथम—अर्थात् स्वयं भाव में शुभग्रह या पापग्रह की स्थिति या दृष्टि का पृथक् उल्लेख श्लोक २ में कर चुके हैं, इसलिये यहाँ पुनः उल्लेख नहीं किया। भाव स्वयं सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण है, उससे चतुर्थ, पंचम आदि भाव की अपेक्षा गौण है, इस कारण भाव स्वयं को प्राधान्य देने के लिये उसका पृथक् विवेचन किया।

एक दूसरी शंका यह हो सकती है कि विचारणीय भाव से प्रथम, चतुर्थ, पंचम, सप्तम नवम, दशम—यह छै स्थान गिना दिये—इतने (६) न तो शुभ ग्रह होते हैं, न इतने पापग्रह। तब इन स्थानों में—सबमें न तो शुभग्रह हो सकते हैं, न पापग्रह—हाँ शुभ, दृष्ट या पाप दृष्ट हो सकते हैं क्योंकि बृहस्पति, मंगल तथा शनि—जहाँ स्थित हों—वहाँ से तीन तीन स्थानों को देखते हैं—तब यह श्लोक कैसे चरितार्थ हो सकता है? परन्तु ग्रंथकार का तात्पर्य एतावन्मात्र है कि इन छै स्थानों में जितने अधिक में शुभग्रह बैठे हों—या जितने अधिक स्थान शुभ दृष्ट हों—उतना उत्तम और जितने अधिक स्थान पापयुक्त या पापदृष्ट हों उतना निकृष्ट फल। प्रायः कुंडलियों का विचार करते समय कुछ स्थान शुभयुक्त शुभदृष्ट होते हैं—कुछ पापयुक्त, पापदृष्ट—कुछ शुभयुक्त तथा पापयुक्त भी, तथा कुछ शुभयुक्त पापयुक्त, कुछ अन्य पापयुक्त, शुभ दृष्ट—इस प्रकार मिली जुली स्थिति प्राप्त होती है। ऐसी स्थिति के लिये ग्रंथकार कहते हैं कि मिला जुला फल होता—अर्थात् शुभ और पाप दोनों प्रकार की फल प्राप्ति होती है। अपनी बुद्धि से तारतम्य करके विचार करना चाहिये

कि शुभफल अधिक है या पापफल। अपनी अपनी दशा, अन्तर्दशा में, या गोचर वश ग्रह अपना शुभ या पापफल अपने स्वभावानुसार दिखाता है।

यह श्लोक बहुत विशिष्ट है। साधारणतः ज्योतिषी समझते हैं। यह ग्रह छठे स्थान में बैठा है। नवमेश भी नहीं है। तब इसका भाग्य से क्या सम्बन्ध? या यह ग्रह एकादश में बैठा है, सप्तमेश भी नहीं है; सप्तम का कारक भी नहीं है फिर इसका सप्तम से क्या सम्बन्ध? परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं—जन्म कुंडली के किसी भी भाव में बैठा ग्रह अन्य भावों को प्रभावित करता है। आपका पैर शरीर का पृथक् अंग है; सिर पृथक्। पैर सिर को स्पर्श नहीं करता। फिर भी पैर में चोट लगने से सिर में चक्कर आ जाता है तथा सिर में चोट लगने से पैर लड़खड़ाने लगते हैं॥ ६॥

नाशस्थानगतो दिवाकरकरच्छन्नस्तु यद्राशिपो
नीचारातिगतोऽथवा यदि शुभैः खेटैरयुक्तेक्षितः।
तद्भावस्य विनाशनं मुनिगणाः शंसन्ति खेटैर्युतो
यद्यत्रापि फलप्रदो नहि तथा मूर्त्यादिभानां क्रमात्॥ ७॥

अब लग्न आदि बारह भावों का निम्नलिखित नियमानुसार विचार कीजिये। जिस भाव का स्वामी (i) नाश स्थान अर्थात् अष्टम में हो (ii) अस्त हो—सूर्य सान्निध्य के कारण रात्रि में—सूर्योदय के पहिले या सूर्यास्त के बाद किसी समय भी आकाश में दिखाई न दे (iii) अपनी नीच राशि में हो या अपनी शत्रु राशि में हो (iv) न शुभग्रह के साथ हो, न शुभग्रह से दृष्ट हो, उस भाव का विनाश होता है। तृतीय चरण के अन्त में तथा चतुर्थ चरण के प्रारम्भ में ग्रंथकार ने कहा है "खेटैर्युतो यद्यत्रापि फलप्रदो नहि"। अर्थात ग्रहों के साथ यद्यपि हो किन्तु फलप्रद नहीं होता। इसके दो अर्थ हो सकते हैं:—(i) यद्यपि ऐसा ग्रह (नाशस्थानगत, अस्त आदि) अन्य ग्रहों के साथ भी हो (अर्थात् अन्य उत्तम भावेश के साथ भी हो) तथापि अपनी दुर्बलता और दोषापत्ति के कारण (शुभ) फल देने में समर्थ नहीं होता। दूसरा अर्थ (i) यदि ऐसा भाव (जिसका स्वामी नाश स्थान गत, अस्त आदि हो) अन्यग्रह से युत भी हो—अर्थात् अन्य ग्रह उस भाव में बैठे भी हों तो भी भाव (अपने स्वामी की दुर्बलता के कारण) फल देने में समर्थ नहीं होता।

मंत्रेश्वर की फलदीपिका अध्याय १५ का श्लोक ३ निम्नलिखित है:

नाशस्थानगतौ दिवाकरकरैर्लुप्तस्तु यद् भावपो
नीचारातिगृहं गतो यदि भवेत्सोम्यैरयुक्तेक्षितः।

तद्भावस्य विनाशनं वितनुते तादृग्विधोऽन्योऽस्ति चेत्
तद्भावोऽपि फलप्रदो नहि शुभश्चेन्नाशमुग्रग्रहः ॥

दोनों (जातकपारिजात तथा फलदीपिका के) श्लोकों के पूर्वार्ध प्रायः एक ही हैं। फलदीपिका के उत्तरार्ध में यह उल्लेख किया गया है कि यदि ऐसा ही (अस्त आदि) अन्य ग्रह उस भाव में बैठा हो तो शुभफल देने में समर्थ नहीं होता और यदि ऐसा (बैठने वाला) ग्रह उग्र (पाप) हो तो नाश-प्रद होता है।

जातकपारिजात के इस श्लोक में जो 'नाशस्थान' शब्द आया है उसका क्या अर्थ? नाश या मृत्यु शब्द ज्योतिष में अष्टम स्थान का बोधक है। शंका यह है कि जन्मलग्न से अष्टम स्थान समझा जाये या विचारणीय भाव से। एक अंग्रेजी के टीकाकार ने अर्थ किया है — विचारणीय भाव से अष्टम।

ज्योतिष में इस विषय में दो सम्प्रदाय हैं। लग्न से अष्टम को सब ने ही दुःस्थान माना है। अपने भाव से अष्टम–अर्थात् सप्तमेश का लग्न से द्वितीय में होना भी अच्छा नहीं माना जाता। पंचमेश पंचम से अष्टम (अर्थात् लग्न से द्वादश) अच्छा नहीं। किन्तु यदि द्वितीयेश भाग्य में हो, नवमेश चतुर्थ में हो, अष्टमेश तृतीय में हो, दशमेश पंचम में हो तो अपने भाव से अष्टम होने पर भी अच्छा ही समझते हैं।

प्रश्नमार्ग अध्याय १४ का ४२वां श्लोक निम्नलिखित है :

भावात्तदीश्वरे सुस्थे भावसम्पन्न चान्यथा।
लग्नादनुभवश्चैवं चिन्त्यतामिति केचन ॥

अर्थात् विचारणीय भाव से उसका स्वामी सुस्थान में हो तो भावसम्पत्ति होती है, अन्यथा नहीं। भावसम्पत्ति से तात्पर्य है उस भावसम्बन्धी शुभफल या समृद्धि का। किन्तु प्रश्नमार्गकार द्वितीय पंक्ति में कहते हैं कि कुछ अन्य का मत है कि भावेश सुस्थान में है या नहीं, यह विचारणीय भाव से नहीं किन्तु लग्न से सुस्थान में है या दुःस्थान में यह देखना चाहिए।

अस्तु इस सम्बन्ध में दोनों मत प्रचलित हैं। विचारणीय भाव का स्वामी विचारणीय भाव से दुःस्थान में है या सुस्थान में और लग्न से कैसे स्थान में है। प्रश्नमार्ग के इसी अध्याय के श्लोक ३९ और ४९ उद्धृत किये जाते हैं।

स्वामी कारकखेचरश्च बलिनौ यस्येष्टभावस्थितौ
सम्पूर्णानुभवक्षमश्च नियतं भावः स नृणां भवेत्।
रिःफारातिमृतिस्थितौ च विबलौ यत्कारकाधीश्वरौ
भावोयं नहि संभवेदपि नृणां कास्यानुभूतौ कथा ॥

जब (किसी भाव का) स्वामी और कारक इष्ट (अच्छे) भाव में स्थित हों तो उस भाव का सम्पूर्ण अनुभव (शुभफल) कराने में समर्थ होते हैं। यदि द्वादश, षष्ठ या अष्टम में हों और निर्बल हों तो उस भाव का सम्भव ही नहीं होता, अनुभव (शुभफल) की तो कथा ही क्या ?

प्रश्नमार्ग के संस्कृत टीकाकार टीका में लिखते हैं "इष्टभावस्थितौ लग्नात् भाच्च" अर्थात् अच्छा भाव लग्न से भी देखना और विचारणीय भाव (राशि) से भी।

मूर्त्याद्या निजरन्ध्रपेण शनिना वा स्युर्यदा संयुताः
स्वस्वारिव्ययरंध्रपापहृतयः तत्स्थस्य वा चेत्तदा।
तत् तद् भावविपत्तिरस्ति नियमादेवं वरांगादिषु
ब्रूयादंघ्रियुगान्तिमेषु च वपुर्भागेषु रोगान् सुधीः ॥

इसमें यह बताया गया है कि जब विचारणीय भाव से उसका अष्टमेश गोचर वश उस विचारणीय भाव में जाता है या विचारणीय भाव से षष्ठेश, व्ययेश या, रंध्रेश (अष्टमेश) पापग्रह हो और उसकी अन्तर्दशा हो या विचारणीय भाव से छठे, बारहवें या अष्टम में पापग्रह हो और उसकी अन्तर्दशा हो तो विचारणीय भाव सम्बन्धी अवयव (प्रथम भाव से, द्वितीय नेत्र, मुख आदि) में रोग होता है या उस विचारणीय भाव सम्बन्धी (द्वितीय से धन, तृतीय से भाई बहिन आदि) कष्ट या हानि होती है। कहने का भाव यह है कि विचारणीय भाव के स्वामी की स्थिति लग्न तथा तत् तत् भाव दोनों से देखनी चाहिये।

दुःस्थाने वाऽरिगे मूढे दुर्बले भावनायके।
भावस्थं सम्पदं कर्तुं न शक्ता भावमाश्रिताः ॥

यदि भावस्थानी दुःस्थान में हो या शत्रु राशि में हो, मूढ़ (सूर्य सान्निध्य के कारण अस्त हो) और दुर्बल हो तो भावेश की दुःस्थिति और नैर्बल्य के कारण, विचारणीय भाव में जो ग्रह बैठे हैं, वे भाव की सम्पत्ति (भाव सम्बन्धी शुभ फल) करने में असमर्थ होते हैं। यहां दो सिद्धांत बतलाये गये हैं। प्रथम तो भावेश का प्राधान्य और भावाश्रित (भाव में जो ग्रह बैठे हैं) ग्रहों की आपेक्षिक गौणता। द्वितीय यह कि जैसे के घर में आप बैठे हैं वैसा फल आप देंगे। यदि आप राजा के महल में बैठे हैं तो आप अपने अतिथि का राजवैभवोपयुक्त स्वागत करने में समर्थ हैं किन्तु यदि गरीब की टूटी झोपड़ी में बैठे हैं तो आप अपने अतिथि का क्या स्वागत कर सकते हैं ? इन दोनों सिद्धान्तों का हम यहां क्रमशः विवेचन करेंगे।

भावेश की महत्ता :—किसी भी भाव का विचार करने के लिये किन किन का विचार करना चाहिये ? जातकादेशमार्ग अध्याय १०—भाव विचार का प्रथम श्लोक है :

> **सर्वत्र भावगृहतत्पतिकारकाख्यै-**
> **स्तद्युक्तवीक्षकखगैरपि तद्गणैश्च ।**
> **चिन्त्यानि भावजफलान्यखिलानि युक्त्या**
> **नृणां विलग्नभवनादथवा शशांकात् ॥**

अर्थात् भाव का विचार करने के लिये जन्म लग्न या चन्द्र लग्न से निम्न-लिखित का विचार करना चाहिये (i) भाव (ii) उसका स्वामी (iii) उस भाव का कारक (जैसे पंचम का बृहस्पति, सप्तम का शुक्र) (iv) उस भाव में जो ग्रह बैठे हों (v) उस भाव को जो ग्रह देखते हों (vi) उसके स्वामी के साथ जो ग्रह हों (vii) उसके स्वामी को जो ग्रह देखते हों (viii) उसके कारक के साथ जो ग्रह हों (ix) उसके कारक को जो ग्रह देखते हैं।

यहाँ जातकपारिजात के प्रणेता उपर्युक्त (ii) और (iv) की तुलनात्मक विवेचना करते हैं और (ii) को प्राधान्य देते हैं। **भावाधिप स्वामी :**—मान लीजिये किसी के दशम स्थान में सिंह राशि पड़ती है। तो दशमेश सूर्य हुआ। दशमेश जैसी राशि जैसे भाव में पड़ा हुआ है उसके अनुसार तो फल करेगा ही किन्तु मान लीजिये—दो जातकों की जन्म कुण्डलियों में वृश्चिक लग्न है और दोनों की जन्म कुण्डलियों में सूर्य धनु राशि का पड़ा है और एक में धनु का स्वामी वृहस्पति कर्क राशि में उच्चस्थ है तथा दूसरी में धनु का स्वामी वृहस्पति मकर राशि में नीचस्थ हो तो क्या दोनों कुण्डलियों में समान बली समझा जायेगा ? नहीं।

जिस राशि में कोई ग्रह होता है, उस राशिनाथ के बलाबल के अनुसार भी ग्रह अपना प्रभाव दिखाता है। केशवी जातक के बलसाधनाध्याय में—स्थान बल निकालने के प्रसंग में कहते हैं :—

> **नीचो नो भगणाच्च्युतः षडधिकश्चेत्षड् हृदोच्चं बलं**
> **स्वर्क्षेऽर्द्धं समभेऽष्टमस्त्रिचरणा मूलत्रिकोणे बलम् ।**
> **मित्रर्क्षेंघ्रिरधीष्टभे त्रय इभांशा वैरिभेष्टचंशको**
> **दन्तांशोऽध्यरिभे गृहादिपवशात्खेटस्य सप्तैक्यजम् ॥**

यहां 'गृहादिपवशात्' इन शब्दों की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाता है। जन्मपत्रिकाविधानम् के प्रणेता श्रीजीवनाथशर्मा इसकी व्याख्या करते हुए लिखते हैं "...ग्रहो यस्मिन् गृहेऽस्ति तद् गृहस्वामिनः स्वक्षाद्युक्तबलं ग्राह्यम् ।

एवं होरादिस्वामिनामपि। अथोदाहरणम्। रवेर्गृहाधीशो गुरुः स च समभेऽ-
तोऽष्टमांशो बलम्···" इस पद्धति के अनुसार भावाधिप स्वयं अधि-
मित्र, मित्र, सम, शत्रु, अधिशत्रु राशि में हो इसके अनुसार उसको सप्तवर्गज
बल प्राप्त नहीं होता है—किन्तु भावाधिप जिस राशि में है—उसका स्वामी
अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु, अधिशत्रु की राशि या वर्ग में है तदनुसार सप्तवर्गज
बल निर्णीत किया जाता है। भावाधिप स्वामी का महत्व दिखलाने के लिये ही
जातकपारिजात में लिखा है कि भाव में बैठे हुए ग्रह भाव की समृद्धि में शक्त
नहीं होते (क्योंकि भाव में बैठे हुए ग्रह जिस राशि में बैठे हैं, वही जब मूढ,
दुर्बल, नीच या शत्रु राशि में हैं तो उसके घर (राशि या भाव) में बैठे हुए ग्रह
भी निर्बल हो जायेंगे)। मान लीजिये सूर्य धनु में है तो पाश्चात्य ज्योतिष
मतानुसार, धनु का स्वामी बृहस्पति, सूर्य का डिज़पोज़िटर (पाश्चात्य ज्योतिष
का पारिभाषिक शब्द) हुआ और डिजपोजिटर के बलाबलानुसार वहां बहुत
विस्तृत फल विवेचन में तारतम्य किया।

प्रसंगानुसार यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि श्रीपति पद्धति अध्याय ३
के तृतीय श्लोक के उतरार्ध में लिखा है।

एवमेव खलु सप्तवर्गजं स्याद् बलं निजपतेर्वशादिह

और उस पद्धति के अनुसार सूर्य यदि धनु में है तो सूर्य का बृहस्पति अधिमित्र
है या सम—इसी आधार पर बल निकाला जाता है।

ग्रह जिस राशि में है—उस राशि का स्वामी 'ख' बलवान् है तो 'क'
भी बली होगा। यही नहीं। ग्रह 'क' ग्रह 'ख' की राशि में है और ग्रह 'ख' ग्रह
'ग' की राशि में तो यदि ग्रह बलवान् और केन्द्र या त्रिकोण में है, तो ग्रह 'क'
भी बलवान् समझा जायेगा। इसी आधार पर मंत्रेश्वर ने फलदीपिका अध्याय
६ में ३५वें श्लोक में काहल और पर्वत योग दिये हैं—

लग्नाधिपाप्तभपतिस्थितराशिनाथः
स्वोच्चस्वभेषु यदि कोणचतुष्टयस्थः।
योगः स काहल इति प्रथितोऽथ तद्व-
ल्लग्नाधिपाप्तभपतिर्यदि पर्वताख्यः॥

इस सम्बन्ध में एक और बात बतायी जाती है। प्रायः अधिकांश कुण्डलियों
में कोई न कोई ग्रह बिगड़ा हुआ मिलता ही है—ग्रह दुःस्थान में हुआ तब भी
दूषित हुआ या नीच राशि में हुआ तब भी निर्बल हुआ। अब आप दुःस्थान
स्थित ग्रह को अधिक दोषपूर्ण समझेंगे या नीच राशि स्थित ग्रह को। ज्योतिष
ऐसा शास्त्र नहीं है जिसका अध्ययन केवल शास्त्रीय दृष्टिकोण तक ही सीमित

हो, इसका उपयोग प्रतिदिन फलादेश में करना पड़ता है । यह व्यावहारिक विद्या है, अतः यह ज्ञात कर लेना आवश्यक है यदि आपके सम्मुख दो जन्म पत्र हों, एक में ग्रह दुःस्थान में पड़ा है, दूसरे में ग्रह सुस्थान में है किन्तु अच्छे भाव में है तो आप फलादेश में क्या तारतम्य करेंगे ? इस तारतम्य का विचार प्रश्न मार्ग* में किया गया है :

स्वोच्चाभीष्टगृहेषु कारकपती रन्ध्राद्यनिष्टस्थितौ
यद्भावस्य स सम्भवेदविमलो नास्यानुभूतिर्नृणाम् ।
नीचाद्याश्रयतो बलौ शुभतरे लाभादिभावे स्थितो
यद्भावाधिपकारकौ स विकलोप्यस्यानुभूतिर्वदेत् ॥

कहते हैं कि किसी भाव का स्वामी और भाव का कारक यह दोनों अपनी उच्च आदि राशि में होकर भी यदि अष्टम आदि अनिष्ट भाव में हों तो उस भावसम्बन्धी शुभफल का अनुभव नहीं होता है। इसके विपरीत किसी भाव का स्वामी और कारक चाहे नीच राशि में हों किन्तु बली हों और शुभतर-लाभ (एकादश) आदि में हो, तो उस भाव सम्बन्धी अविकल (पूर्ण, संतोषप्रद) शुभ फल तो प्राप्त नहीं होता है, तथापि कुछ शुभ फल की अनुभूति हो ही जाती है । विशेष व्याख्या के लिये देखिये जातकादेशमार्ग (चन्द्रिका) ॥ ७ ॥**

दुःस्थाने वाऽरिगे मूढे दुर्बलेभावनायके ।
भावस्य सम्पदं कर्तुं न शक्ता भावमाश्रिताः ॥ ८ ॥

दुष्टस्थितो वापि यदा नभोगः
पापोऽरिनीचांशकसंयुतो यः ।
स्वतुङ्गमित्रांशकराशियुक्तः
शुभेक्षितो वा यदि शोभनः स्यात् ॥ ९ ॥

इस श्लोक में दुःस्थान स्थित किंवा पापनवांश, शत्रुनवांश, नीचनवांश में स्थित होने के कारण ग्रह में नैर्बल्य तथा दोष आजाता है, उसका परिहार बतलाया है । कहते हैं कि ग्रह चाहे दुःस्थान में स्थित हो चाहे पापग्रह के नवांश मे हो या शत्रु के नवांश में हो या अपने नीच नवांश में हो यदि अपने उच्च नवांश या मित्र नवांश में बैठा हुआ शुभग्रह उसको देखे तो शोभन (सुन्दर, अच्छा) फल होता है ।

---

*प्रश्नमार्ग अध्याय १४ श्लोक ४० ।

**जातकादेशमार्ग (चन्द्रिका) पृष्ठ १९९-२०० ।

प्रस्तुत श्लोक में नवांश को वहुत महत्त्व दिया गया है। वास्तव में यह ठीक भी है। इसी ग्रंथ के १८ वें अध्याय के श्लोक ७३ की व्याख्या देखिये कि यदि सूर्य अपनी उच्चराशि किन्तु नीच नवांश में हो (मेष राशि के २०° से २३°-२०', तक तुला नवांश होने के कारण यदि सूर्य इन अंशों में हो तो उच्चराशि किन्तु नीच नवांश में होगा) तो उसकी दशा में कितना शुभफल होगा और सूर्य यदि नीच राशि किन्तु उच्च नवांश में हो (तुला राशि के २०° से २३°-२०', में सूर्य हो तो मेष नवांश में होने के कारण नीच राशि, उच्चनवांश में होगा) तो अच्छा फल होगा।

यहाँ एक सिद्धांत बताया गया है। अपने उच्च नवांश में स्थित शुभग्रह की दृष्टि दोष का निराकरण करती है। शुभग्रह स्वनवांश में हो तो भी और मित्र के नवांश में हो तो भी अच्छी। यदि शुभग्रह उच्च नवांश में होने के साथ साथ उच्चराशि या स्वराशि में भी हो तो उसकी शुभदृष्टि और भी वलवती होगी। कर्क राशि का प्रथम नवांश कर्क ही होता है और मकर का सप्तम नवांश कर्क होता है। इस कारण कर्क नवांश में वृहस्पति के होने से, उच्च नवांश स्थित शुभ ग्रह हो—यह जो नियम इस श्लोक में घटित हो जायेगा। परन्तु उच्च राशि, उच्च नवांश में जो वृहस्पति की महिमा है वह नीच राशि, उच्च नवांश में किस प्रकार हो सकती है। साथ ही जिस शुभग्रह की दृष्टि द्वारा दोष-निराकरण का हम विचार कर रहे हैं वह किन भवनों का स्वामी है, कहाँ वैठा है, स्वयं किन ग्रहों से दृष्ट है या किनके साथ है इसका तारतम्य भी कर लेना चाहिये। कन्या के अन्तिम नवांश में बुध स्वराशि उच्च नवांश में होता है। अब दो उदाहरण लीजिये। एक में मीन राशि कर्क नवांश स्थित वृहस्पति से देखा जाता है। दूसरे उदाहरण में वही बुध मंगल और शनि—दो पापग्रहों से दृष्ट है। दोनों उदाहरणों में बुध की दृष्टि क्या समान शुभफल करेगी ? नहीं। क्योंकि जहाँ बुध स्वयं बलवान शुभग्रह दृष्ट है वहाँ उसकी दृष्टि में शुभता और बलवत्ता विशेष मात्रा में होगी और जहाँ वह स्वयं पापदृष्ट है उसकी शुभदृष्टि न उतनी शुभ होगी (शुभ होगी अवश्य परन्तु उतनी शुभ नहीं), न उतनी प्रभावशालिनी।

एक दूसरी शिक्षा जो इस श्लोक में निर्दिष्ट नियम से लेनी चाहिये कि दोषयुक्त ग्रह पर बलवान शुभग्रह की दृष्टि, दोष का निराकरण करती है किन्तु यदि ग्रह में कोई दोष नहीं है और फिर भी उस पर बलवान शुभग्रह की दृष्टि है तो—जिस ग्रह पर दृष्टि है उसको और भी पुष्ट—शुभफल देने में समर्थ बनायेगी ॥ ८-९ ॥

भावेशाक्रान्तराशीशे दुःस्थे भावस्य दर्बलम्।
स्वोच्चमित्रस्वराशिस्थे भावपुष्टि वदेद् बुधः ॥ १० ॥

इसमें उसी सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है, जिसका हम श्लोक ८ की व्याख्या में सविस्तर विवेचन कर चुके हैं। जिस राशि में भावेश हो (विचारणीय भाव का स्वामी हो) उस राशि का स्वामी यदि दुःस्थ (दुःस्थान में) हो तो विचारणीय भाव दुर्वल हो जाता है। भाव के दुर्वल होने से शुभफल देने की क्षमता में ह्रास हो जाता है। यद्यपि मूल श्लोक में केवल दुःस्थ कहा है—परन्तु इससे केवल दुःस्थान (छठा, आठवाँ, बारहवाँ) घर ही नहीं अपितु नीच राशि, शत्रु राशि, नीच नवांश, शत्रु नवांश आदि सभी दोषकारक स्थिति समझनी चाहिये। संस्कृत के पंडितों की शैली है कि एक वस्तु के निर्देश से अनेक वस्तुओं का निर्देश कर देते हैं। सिद्धान्त यह बताया गया कि विचारणीय भाव का स्वामी जिस राशि में बैठा हो, उस राशि का स्वामी यदि कमजोर, अशक्त, दोषयुक्त (अनिष्ट राशि में या दुःस्थान में बैठने के कारण, या अस्त, पापयुत, पापवर्ग स्थित पापदृष्ट होने के कारण—या अन्य किसी भी कारण से) है तो विचारणीय भाव दुर्बल हो जाता है।

इसके विपरीत, यदि विचारणीय भाव का स्वामी जिस राशि में है उस राशि का स्वामी अपनी उच्चराशि, स्वराशि या मित्रराशि में है तो विचारणीय भाव पुष्ट होता है अर्थात् शुभफल देने में क्षम होता है। मूल में केवल राशिस्थिति कही गयी है। परन्तु यदि ग्रह केन्द्र त्रिकोण एकादश—शुभ स्थानों में हो, नवांश तथा अन्य वर्गों में भी बलवान् हो, बलवान् शुभग्रहों से दृष्ट हो तो और भी अधिक विचारणीय भाव पुष्ट होगा।

मान लीजिये कर्क लग्न की कुण्डली है। दशम भाव का विचार करना है। दशमेश मंगल मकर में है। अब यदि मकर का स्वामी तुला में है तो दशम भाव की पुष्टि होगी, किन्तु यदि शनि मेष में है दशम भाव का उतना उत्तम फल नहीं होगा।

नीच भंग राजयोग में—जो ग्रह नीच राशि में है उसके स्वामी की सुस्थिति से नीच ग्रह के दौर्बल्य का निराकरण हो जाता है॥ १० ॥

यद्भावलाभधनविक्रमराशियाता
यद्भावनाथसुहृदश्च तदुच्चनाथाः।
तद्भावपुष्टिबलमम्बरचारिणस्ते
कुर्वन्ति मूढरिपुनीचविवर्जिताश्चेत् ॥ ११ ॥

अब एक अन्य नियम बतलाते हैं। विचारणीय भाव का (१) स्वामी (२) विचारणीय भाव के स्वामी के मित्र (३) विचारणीय भाव के स्वामी का उच्चनाथ (जैसे मान लीजिये मेष लग्न है। नवम भाव का विचार करना है। भाव का स्वामी बृहस्पति है। बृहस्पति कर्क में उच्च होता है। तो कर्क का स्वामी चन्द्रमा बृहस्पति का उच्चनाथ हुआ) यह तीनों (१), (२) तथा (३) विचारणीय भाव से द्वितीय, तृतीय या एकादश में हों तो विचारणीय भाव की पुष्टि होती है किन्तु शर्त यह है कि ये ग्रह अपनी नीच राशि, शत्रुराशि में नहीं होने चाहियें, न अस्त हों।

मूल में 'तदुच्चनाथ:' शब्द आया है जिसके दो अर्थ हो सकते हैं (i) भावेश का उच्चनाथ अर्थात् भावेश जिस राशि में उच्च होता है उस राशि का स्वामी (ii) भाव का उच्चनाथ अर्थात् भाव में जो राशि पड़ी है उसमें जो ग्रह उच्च होता है वह ग्रह। इस अर्थ में दोषापत्ति यह होती है कि मिथुन, सिंह, धनु, कुम्भ, वृश्चिक में कोई ग्रह उच्च नहीं होता इस कारण इन राशियों का कोई उच्च नाथ नहीं होता। शेष राशियों के उच्चनाथ निम्नलिखित हैं :— मेष-सूर्य; वृष–चन्द्रमा; कर्क–वृहस्पति; कन्या–बुध; तुला–शनि; मकर–मंगल; मीन–शुक्र।

एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है किसी भी राशि में यदि कोई ग्रह उच्च होता है तो उसको इससे क्या ? मेष में यदि सूर्य उच्च होता है, तो जन्म कुंडली में जिस भाव में मेष राशि पड़ी है उस भाव को सूर्य से क्या लेना देना? परन्तु जैसा हम अभी बतलायेंगे इस भाव का (जिसमें जन्म कुंडली में मेष है) सूर्य से सम्बन्ध है। चाहे सूर्य मेष में पड़ा हो या न पड़ा हो, चाहे जन्म कुंडली में सूर्य मेष राशि को पूर्ण या आंशिक दृष्टि से देखता हो या न देखता हो इस भाव का सूर्य से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। क्योंकि, सिद्धान्त है कि जब सूर्य की महादशा या अन्तर्दशा होगी, तब जन्म कुंडली में मेष राशि है उस भाव का शुभफल होगा और तुला राशि (सूर्य की नीच राशि) जिस भाव में पड़ी है, उस भाव सम्बन्धी ह्रास, या दुष्ट फल होगा। जब चन्द्रमा की दशा अन्तर्दशा होगी तब वृष जिस भाव में है उस सम्बन्धी शुभफल और वृश्चिक जहाँ है तद्भाव सम्बन्धी ह्रास या चिन्ता होगी। मंगल की महादशा, अन्तर्दशा में मकर जिस भाव में है उसका उत्कृष्ट फल और कर्क जहाँ है तत्सम्बन्धी अनिष्ट फल होगा। बुध की महादशा में कन्याराशिगत भाव का शुभफल और मीनराशिगत भाव का अशुभ फल। मान लीजिये आपका कर्क लग्न है और बृहस्पति की महादशा या अन्तर्दशा आयी तो कर्क लग्न में है इसका शारीरिक स्वास्थ्य शक्ति, व्यक्तिगत प्रभाव, उद्यम आदि में वृद्धि और सप्तम स्थान में मकर है,

अतः पत्नी के स्वास्थ्य में ह्रास, साझेदारी के काम में झंझट आदि होंगे। किन्तु यदि आपका कन्या लग्न है ग्रौर शुक्र की दशा, अन्तर्दशा आई तो प्रथम भाव सम्वन्धी ह्रास ग्रौर सप्तम भाव सम्वन्धी वृद्धि होगी। इसी प्रकार शनि की दशा, ग्रन्तर्दशा मेष राशि जन्म कुंडली में है तत्सम्वन्धी चिन्ता ग्रौर तुला जहाँ है तत्सम्बन्धी शुभफल करेगा।

इस प्रकार किसी भी राशि का उस ग्रह से आन्तरिक सम्वन्ध होता है, जो उस राशि में उच्च या नीच प्रकार है। दशा, अन्तर्दशा कैसी होगी—शुभ तो किन भावों के लिये, ग्रशुभ तो किन भावों के लिये—यह विचार करने के ग्रनेक नियम हैं, जो आगे ग्रध्याय १७ ग्रौर १८ में बताये गये हैं। प्रस्तुत प्रकरण महादशा अन्तर्दशा का नहीं है तथापि राशियों का उन ग्रहों से ग्राभ्यन्तरिक सम्बन्ध होता है—जो उनमें उच्च या नीच होते हैं—एतावन्मात्र निर्देश करने के लिये ऊपर दशा, अन्तर्दशा का संकेत किया गया है।

अब इस श्लोक में प्रस्तुत नियम पर एक ग्रन्य कोण से दृष्टिपात कीजिये। भाव से भावेश ग्रादि की स्थिति द्वितीय, तृतीय तथा एकादश में ग्रच्छी बतायी गयी है। केवल शनि यदि भावेश हो तो भाव से एकादश बैठकर भाव को देखेगा। अन्य ग्रह यदि अपने भाव से एकादश में हों तो भाव को नहीं देखेगा। ग्रौर भाव से द्वितीय या तृतीय में बैठकर तो भाव को कोई भी ग्रह नहीं देख सकेगा। इसके पहिले बता चुके हैं कि भावेश भाव में बैठे या भाव को देखे तो भाव पुष्ट होता है। अब भावेश की ऐसी स्थिति, जहाँ बैठकर भावेश भाव को नहीं देखता, तथापि अच्छा समझा जाता है। हमारी दृष्टि में पूर्वापेक्षया (भावेश की भाव में स्थिति) यह मध्यम है। परन्तु जहां भाव में वृष राशि है ग्रौर भावेश शुक्र भाव से एकादश में मीन में हो, या भाव में कर्क राशि हो ग्रौर भावेश भाव से एकादश में वृष में हो, या वृश्चिक भाव का स्वामी स्वस्थान से तृतीय में मकर का हो, या मकर जिस भाव में हो उससे द्वितीय में कुम्भ का शनि हो तो बहुत सुन्दर फल होगा। श्लोक ७ में बताया गया है कि भावेश की कैसी स्थिति में या कैसी कैसी स्थिति में भाव का नाश होता है। शास्त्र में पुनः पुनः उसी बात को दुहराने की परिपाटी नहीं है। विज्ञजन को स्वयं इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि अन्यत्र कहाँ क्या उल्लेख किया जा चुका है। इस ग्राधार पर यदि भाव में सिंह राशि हो तो ग्रपने स्थान से तृतीय में होने पर भी सूर्य की तुला राशि स्थिति अच्छी नहीं समझी जायेगी, या यदि धनु भाव हो, तो उसका स्वामी मकर यद्यपि धनु भाव से द्वितीय ग्रौर मीन भाव से एकादश होगा किन्तु नीचस्थ बृहस्पति उतना भावपोषक नहीं हो सकेगा या कुंभ भाव का स्वामी तृतीय में मेषस्थ होने के कारण दुर्बल होगा यह सब ध्यान में रखना चाहिये।

शास्त्र की परिपाटी है कि जब दो नियमों में विरोध (आपात) दिखाई दे तो उनका इस प्रकार सामञ्जस्य करना चाहिये कि दोनों में विरोध न हो। शास्त्र के नियमों को लागू करते समय, यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि सामान्य नियम कौन से हैं और विशेष नियम कौन से। इस परिपाटी को ध्यान में रखते हुए यह विस्मरण नहीं करना चाहिये कि लग्न से षष्ठ, अष्टम, द्वादश में कोई ग्रह अच्छा नहीं समझा जाता। केवल शुक्र द्वादश में भी अच्छा समझा जाता है क्योंकि यह भोगप्रधान ग्रह है, और द्वादश स्थान भोग स्थान (शयन सुख का भाव) है। अतः द्वितीयेश अपने स्थान से एकादश (लग्न से व्यय में) अच्छा नहीं। इसी चतुर्थेश अपने स्थान से तृतीय (लग्न से छठे), पंचमेश अपने स्थान से द्वितीय (लग्न से छठे), षष्ठेश अपने स्थान से द्वितीय (लग्न से सप्तम—षष्ठेश सप्तम में होने से भार्या से विरोध कराता है या भार्या को रोगिणी करता है) या सप्तमेश अपने स्थान से द्वितीय (लग्न से अष्टम) अच्छा नहीं। बृहत्पाराशर* का श्लोक है :—

कलत्रपो विना स्वर्क्षं स्थितः षष्ठेऽष्टमे व्यये ।
रोगिणीं कुरुते नारीं तथा तुङ्गादिकं विना ॥

पुनः कहते हैं :—

जायेशे रन्ध्रगे जाया सुखं न लभते क्वचित् ।
दुःशीला रोगिणी तस्य भार्या नैव वशंवदा ॥**

इसी प्रकार अष्टमेश अपने स्थान से द्वितीय में होने पर भी भाग्य हानि करेगा। अष्टमेश अपने भाव (अष्टम) से तृतीय में भी अर्थात् लग्न से दशम में होने से दशम भाव को बिगाड़ेगा और दशमेश दशम से तृतीय और एकादश (क्रमशः लग्न से द्वादश और अष्टम में) दशम भाव को निर्बल करता है। इसी प्रकार लाभेश लाभ से द्वितीय (लग्न से द्वादश) लाभ भाव के लिये अच्छा नहीं। यह सब अपनी सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन कर निश्चय करना चाहिये।

अब श्लोक २, ४, ६ तथा ११ के नियमों को इस प्रकार हृदयस्थ कीजिये। भावेश यदि भाव से १ में (अर्थात् भाव में ही–श्लोक २), ४, ५, ७, ९, १० में (श्लोक ६) तथा २, ३, ११ (श्लोक ११) में हो तो अच्छा है; ६, ८, १२ में अच्छा नहीं।

यद्यपि पंचमेश पंचम से तृतीय (लग्न से सप्तम) या सप्तमेश सप्तम से एकादश (लग्न से पंचम) अच्छा ही होना चाहिये क्योंकि यह स्थान

---

* अध्याय १९, श्लोक २

** बृहत्पाराशर अध्याय २५, श्लोक ८०

लग्न से भी अच्छे हैं । किन्तु मंत्रेश्वर ने कहा है* :—

दारेशे सुतगे प्रणष्टवनितोऽपुत्रोऽथवा धीश्वरो
द्यूने वा निधनेश्वरोऽपि कुरुते पत्नीविनाशं ध्रुवम् ।
क्षीणेन्दौ सुतगे व्ययास्ततनुगैः पापैरदारात्मजः
स्त्रीसंगाद्धननाशनं मदगयोः स्वर्भानुभान्वोर्वदेत् ॥

इनके अनुसार पंचमेश का सप्तम में बैठना या सप्तमेश का पंचम में बैठना अच्छा नहीं । किन्तु बृहत्पाराशर के अनुसार पंचमेश सप्तम में हो या सप्तमेश पंचम में हो तो अच्छा ही है ।

सुतेशे कामगे मानी सर्वधर्मसमन्वितः ।
सदोपकारनिरतः सुतसौख्ययुतो नरः ॥
जायेशे सुतगे मानी भवेत् सर्वधनाधिपः ।
सदैव हर्षसंयुक्तो नरः सर्वगुणैर्युतः** ॥

जन्मप्रदीप के अनुसार भी पंचमेश का सप्तम में बैठना अच्छा है ।

तनयपतौ सप्तमगे सुखता सुभगाऽथ देवगुरुभक्ता ।
प्रियवादिनी सुशीला नरस्य तनु जायते दयिता ॥

सप्तमेश के पंचम में बैठने का मिश्रफल है :—

सप्तमपतौ सुतस्थे सौभाग्ययुतः सुतान्वितः पुरुषः ।
प्रियया सह दुष्टमतिस्तत्तनयः पालयेद्दयिताम् ॥११॥

भावांशतुल्यः खलु वर्तमानो
भावोद्भवं पूर्णफलं विधत्ते ।
भावोनके चाप्यधिके च खेटे
त्रैराशिकेनात्र फलं विचार्यम् ॥१२॥

जातकपारिजात का यह श्लोक श्रीपतिपद्धति अध्याय प्रथम से उद्धृत है । इसका अर्थ है कि भावमध्य पर कोई ग्रह स्थित हो तो उस भाव सम्बन्धी पूर्ण फल प्रदान करता है । यदि भावमध्य की अपेक्षा ग्रह के अंश कम हैं—या अधिक हैं तो त्रैराशिक से निकालना चाहिये कि ग्रह कितना फल करेगा ।

मान लीजिये पंचम भाव स्पष्ट ४-१५° (सिंह राशि के १५ अंश पर है । और सिंह में बृहस्पति है । अब यदि बृहस्पति का स्पष्ट ४-१५° है (सिंह के १५ अंश) तो भाव मध्य और बृहस्पति स्पष्ट समान होने से, बृहस्पति पंचम भाव का पूर्ण फल करेगा । मान लीजिये पंचम भाव आरंभ ४-०° पर है और

*फलदीपिका अध्याय १० श्लोक २
**अध्याय २५ श्लोक, ५४ तथा ७७

पंचम भाव समाप्ति ५-०° है और बृहस्पति ४-१०° है तो भाव प्रारंभ से भाव मध्य तक (४-०° से ४–१५° तक) १५ अंश होते हैं और बृहस्पति स्पष्ट से पंचम भाव मध्य का अन्तर ५° अंश है तो बृहस्पति पंचम भाव का $\frac{२}{३}$ फल करेगा। यदि बृहस्पति स्पष्ट ४-५° हो तो—भाव मध्य ४-१५° से अंश दूर होने के कारण बृहस्पति पंचम भाव का केवल $\frac{१}{३}$ फल करेगा।

अब दूसरा उदाहरण लीजिये जिसमें बृहस्पति भाव मध्य के आगे स्थित हो। भाव ४-०° से ५-०° तक है। भाव मध्य ४-१५° है। अब यदि बृहस्पति स्पष्ट ४-२०° है तो $\frac{२}{३}$ फल करेगा। यदि बृहस्पति स्पष्ट ४-२५° है तो केवल $\frac{१}{३}$ फल करेगा। कहने के तात्पर्य यह है कि भाव मध्य पर ग्रह पूर्ण फल करता है और भाव मध्य से जितना दूर (चाहे पहिले चाहे बाद में) ग्रह स्थित होगा उतना ही अनुपात से फल कम करेगा है।

केशवपद्धति में भी लिखा है :—

शून्यं सन्धिषु भावगेऽखिलफलं स्याद्भावसन्ध्यन्तरे-
णाप्तं सन्धिखगान्तरं क्षयचयं भावाधिकेऽल्पे खगे ॥

यह सब यवनपद्धति पर आधारित है। यवनेश्वर कहते हैं :—

भावांशैः समतां ग्रहः खलु गतः पूर्णं विधत्ते फलं
सन्धिस्थो न फलप्रदोऽन्तरगतैस्त्रैराशिके नैव च।
भावान्यूनमथ ग्रहस्य गणयेदंशाधिकं चाधिपै-
र्हत्वा चाप्यथ सन्धितोऽधिकमथ प्रोक्तं फलं भावजम् ॥

जातक पारिजात में ग्रह किस हद तक भाव का फल करेगा यह विवेचन करने के बाद हम अपना मत प्रदर्शन करते हैं। प्रचलित भाव स्पष्ट करने की जो पद्धति है उसके अनुसार लग्न से गिनने पर जो राशि जिस भाव में आनी चाहिये वह राशि उस भाव में नहीं आती। उदाहरण के लिये काशी का अक्षांश २५.१९ उत्तरीय और देशान्तर ४३-०१ पूर्वीय है। जब पूर्वीय क्षितिज पर १°-२२′ कर्क लग्न के उदित होंगे, तब श्रीपति या केशवी पद्धति के अनुसार दशम स्पष्ट २४° मीन होगा और भावस्पष्ट चक्र निम्नलिखित होगा।

भावस्पष्ट चक्र
भावमध्याः

प्र०	द्वि०	तृ०	च०	पं०	ष०	स०	अ०	न०	द०	ए०	द्वा०
३	३	४	५	६	७	९	९	१०	११	०	१
१	२९	२७	२५	२७	२९	१	२९	२७	२५	२५	२९
२२	१४	७	०	२७	१४	२२	१४	७	०	७	१४
०	४०	२०	०	२०	४०	००	४०	२०	०	२०	४०

सं	सं.	सं.	सं	सं	सं	सं	सं	सं	सं	सं	सं
३	४	५	६	७	८	९	१०	११	०	१	२
१५	१३	११	११	१३	१५	१५	१३	११	११	१३	१५
१८	११	३	३	११	१८	१८	११	३	३	११	१८
२०	०	४०	४०	०	२०	२०	०	४०	४०	०	२०

इस पद्धति के अनुसार लग्नेश चन्द्रमा हुआ। द्वितीयेश भी चन्द्रमा हुआ क्योंकि प्रथम भाव, मध्य तथा द्वितीय भाव मध्य दोनों कर्क में पड़ते हैं। तृतीयेश सूर्य हुआ, चतुर्थेश बुध, पंचमेश शुक्र, षष्ठेश मंगल, सप्तमेश शनि, अष्टमेश, नवमेश भी शनि, (क्योंकि सप्तम, अष्टम भाव मध्य मकर में पड़ते हैं और नवम भाव मध्य कुंभ में, दशमेश बृहस्पति, एकादशेश मंगल और द्वादशेश शुक्र।

अब जरा गंभीर दृष्टि से विचार कीजिये। कर्क लग्न के लिये पंचमेश, दशमेश (त्रिकोण तथा केन्द्र दोनों का स्वामी होने के कारण) मंगल योग कारक माना जाता है किन्तु यहां वह षष्ठेश, एकादशेश होने के कारण पापी हो गया। अब ऐसी जन्म कुण्डली का आप योग कारक मानकर मंगल का शुभ फल कहेंगे या षष्ठ लाभाधिपति होने के कारण पाप फल। सामान्यतः कर्क लग्न के लिये सप्तमेश अष्टमेश होने के कारण शनि मारक तथा पापी माना जाता है, यहाँ यह भाग्येश भी हो गया। कर्क लग्न के लिये लाभाधिपति होने के कारण शुक्र पापी होता है। चतुर्थ (केन्द्र) का स्वामी होने के कारण बहुत से दैवज्ञ शुक्र को केन्द्राधिपत्य दोष से दूषित मानते हैं क्योंकि शुक्र नैसर्गिक शुभ ग्रह है। किन्तु उपर्युक्त प्रकार से भाव स्पष्ट बनाने से शुक्र त्रिकोण (पंचम) तथा द्वादश (जिसका स्वामी स्थानान्तरानुगुण्य फल देता है) का स्वामी होने से शुभ हो गया।

कर्क लग्न के लिये तृतीय भाव के स्वामी बुध से तृतीय भाव का विचार किया जाता है। परन्तु प्रस्तुत भाव स्पष्ट प्रणाली में तृतीयेश सूर्य हो गया क्योंकि तृतीय भाव स्पष्ट २७°-७′-२०″ सिंह में है। सूर्य के बली या निर्बल होने से तृतीय भाव पुष्ट या अपुष्ट होगा या द्वितीय। चतुर्थ स्थान का विचार चतुर्थ स्पष्ट २५° कन्या में होने से बुध से करेंगे या जो आर्ष पद्धति के अनुसार कर्क लग्न के लिये चतुर्थेश शुक्र माना जाता है उससे? इसी प्रकार सारी जन्म कुण्डली के विचार करने की जो पद्धति और प्रणाली है उसके मूल पर ही कुठाराघात हो जाता है।

उच्च अक्षांशों में क्या परिस्थिति होती है इस पर भी जरा दृष्टिपात कीजिये।

मिस वेण्टे हाकूनसन का जन्म ओसलो (नौरवे) में रविवार १६ मई सन् १९४८ को नौरवे स्टैण्डर्ड समयानुसार रात्रि के ११ वज कर ३० मिनिट पर हुआ। औसलो का अक्षांश ५९°-५४' उत्तरीय है और देशान्तर १०°-४५' पूर्वीय। जन्मलग्न स्पष्ट ८-१°-३०'-४६" (धनु) आया और दशम स्पष्ट ६-२२°-१'-४६" (तुला)। भावस्पष्ट निम्नलिखित हुए।

भावस्पष्ट चक्र

त०	ध०	स०	सु०	सु०	रि०	प०	रं०	भा०	रा०	ला०	व्य०
८	९	११	०	१	१	२	३	५	६	७	७
१	१८	५	२२	५	१८	१	१८	५	२२	५	१८
३०	२१	११	१	११	२१	३०	२१	११	१	११	२१
४६	६	२६	४६	२६	६	४६	६	२६	४६	२६	६
सं०	सं०	सं०	सं०	सं०	सं०	सं०	सं०	सं०	सं०	सं०	सं०
८	१०	११	०	१	१	२	४	५	६	७	७
२४	११	२८	२८	११	२४	२४	११	२८	२८	११	२४
५५	४६	३६	३६	४६	५५	५५	४६	३६	३६	४६	५५
५६	१६	३६	३६	१६	५६	५६	१६	३६	३६	१६	५६

जन्म कुण्डली निम्नलिखित है। परन्तु यदि हम प्रचलित परिपाटी के अनुसार भाव स्पष्ट करते हैं तो कोई भाव १३°-९'-४०' का हो जाता है और कोई भाव ४६°-५०'-२०' का। भाव स्पष्ट के अनुसार वृहस्पति लग्नेश, तृतीयेश हुआ; मंगल चतुर्थेश, लाभेश व्ययेश, पंचमेश, षष्ठेश दशमेश शुक्र हुआ। वुध सप्तमेश, भाग्येश हुआ। केवल लग्नेश द्वितीयेश, षष्ठेश, सप्तमेश, अष्टमेश, व्ययेश वही रहते हैं जो वास्तव में हैं अन्य भावेश वदल जाते हैं। इसलिये दशम स्पष्ट करके, लग्न स्पष्ट और दशम स्पष्ट में जो अन्तर हैं उसके ६ भाग करके एक एक भाग जोड़ कर जो भाव स्पष्ट प्रणाली है वह उचित नहीं है। भारतवर्ष में इस पद्धति का प्रचार अरब और मिस्र शास्त्र की देन है। स्वर्गीय पंडित रामयत्न जी ओझा जो वाराणसेय विश्व पंचांग के प्रवर्तक और आद्य सम्पादक थे अपनी पुस्तक फलित विकास में लिखते हैं :—

"···आजकल भाव का साधन मुसलमानी मत के अनुसार याम्योत्तर वृत्तीय लग्न जिसको मध्यलग्न या दशम लग्न कहते हैं उसके वश होता है, यह रीति आज भी मुसलमानों में प्रसिद्ध है। इसका खंडन उत्तम रीति से सिद्धान्त तत्त्व विवेक में लिखा है। ऋषि सम्मत ये भाव नहीं हैं क्योंकि ऋषि प्रणीत जैमिनि सूत्र में जो दशा बनती है वह राशियों की ही बनती है, भाव के इस विधि को मानने से कभी-कभी किसी राशि की दशा दो बार होगी और कभी-किसी की होगी ही नहीं। इसी कारण स्वामी टीकाकार ने 'सर्वे भावा लग्नांशसमा:' लिखा है। वराहमिहिर ने अथवा सब फलितज्ञों ने लग्न के बाईसवें द्रेष्काण को मारक द्रेष्काण कहा है, बाईसवाँ द्रेष्काण मारक द्रेष्काण तभी होता है जब लग्न के अंशादि के तुल्य ही अष्टम भाव का अंशादि हो। इसी प्रकार लग्न अष्टम के बीच में भी ६३ नवांश कहे गये हैं। यह भी लग्न और अष्टम के नवांश तुल्य हुये विना नहीं होता। इसी प्रकार पृथुयशा ने भी कहा है।

स्वांशे विलग्ने यदि वा त्रिकोणे स्वांशः स्थितः पश्यति धातुचिन्ताम्।
परांशकस्थश्च करोति जीवं मूलं परांशोपगतः परांशम्॥

इस श्लोक की बातें तभी हो सकती हैं जब लग्न, पंचम और नवम का अंशादि तुल्य होगा। इन विचारों से स्पष्ट है कि आधुनिक भावानयन प्राचीनों को अभिमत नहीं है। लग्न शुद्ध बनाकर एक एक राशि जोड़ने से ही द्वादश भाव शुद्ध बन जाते हैं। लग्न के अंश में पन्द्रह अंश जोड़ने से लग्न की संधि होती है, उसमें एक एक राशि जोड़ने से बारहों भाव की संधि बन जाती है। इसी प्रकार का भाव साधन फलोपयुक्त होता है ··· श्रीपति पद्धति, केशव पद्धति इत्यादि सभी यवनमतानुवादित ग्रंथ हैं। इनमें लिखी विधि भाव की अशुद्धि है।

लग्नमारभ्य सर्वत्र राशिवृद्ध्या यथाक्रमम्।
भावाः सर्वेऽवगन्तव्याः सन्धौ राश्यर्धयोजनात्॥

बृहज्जातक (जिसका अपर नाम होराशास्त्र भी है) की रुद्रभट्ट कृत सैकड़ों वर्ष पुरानी एक संस्कृत टीका है। यह एक मतानुसार ईसवी सन् ९९५ में लिखी गयी। बृहज्जातक की जितनी टीकायें संस्कृत में लिखी गयी हैं, उनमें यह सर्वश्रेष्ठ है। भट्टोत्पल की टीका से भी विशिष्ट है। यह प्रथम बार श्रीसेतु लक्ष्मी प्रसाद माला त्रिवेन्द्रम के अन्तर्गत सन् १९२६ में मुद्रित और प्रकाशित हुई।

छठे अध्याय के श्लोक २ की टीका में चक्र (भगण) का पूर्वभाग कौन सा हुआ और इतर भाग कौन सा, इसकी व्याख्या करते हुए लिखते हैं:

वृश्चिकार्धे उदयति धनुर्मकरकुंभार्धाः तथा तुलाकन्यासिंहार्धाश्च चक्रस्य पूर्वभागः। कुंभस्योत्तरार्धादारभ्य यावत् सिंहपूर्वार्धमितरभागः।

अर्थात् लग्न स्पष्ट ७-१५° (वृश्चिक के १५ अंश) हों तो सिंह के १५° से ३०° कन्या, तुला वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ के १५° तक पूर्वभाग । शेष (कुंभ के १५° से ३०° तक, मीन, मेष, वृष, मिथुन, कर्क तथा सिंह के ०° से १५° तक इतर भाग) । इस विवरण से स्पष्ट है कि लग्न स्पष्ट तुल्य अंश ही दशम स्पष्ट होता है और लग्न स्पष्ट तथा दशम स्पष्ट में पूरी ३ राशि का अन्तर होता है ।

१८ वें अध्याय के श्लोक ११ की टीका करते हुए लिखते हैं :

भावाश्चाद्वादशापि द्वादशसु राशिषु जननकालोदीयमानांशकसंख्यासमान संख्ये अंशके वर्तन्ते । तस्मात् पूर्वं पंचदशे भागे भावारंभः तस्योपरिपतने पंचदशे भागे भावविरामः ।

अर्थात् जन्म के समय राशि में जो अंश उदित हो रहा हो—(अर्थात् लग्न स्पष्ट) तत्तुल्य अंश सब राशियों में भाव मध्य होता है, इस प्रकार बारहों राशियों में लग्न स्पष्ट अंश तुल्य द्वादश भाव होते हैं । किसी भी भाव मध्य से १५ अंश पूर्व भाव प्रारंभ और भाव मध्य के १५ अंश बाद भाव विराम होता है ।

मंत्रेश्वर भी लिखते हैं :

उदयर्क्षांशस्फुटतुल्यांशे निवसन् पूर्णफलमाधत्ते ।
शनिवद्राहुः कुजवत्केतुः फलदाता स्यादिह प्रोक्तः ॥[1]

अर्थात् लग्न के जितने अंश उदित हों, तत्तुल्य अंश में—जब किसी भाव में ग्रह होता है तो पूर्ण फल प्रदान करता है । (उदाहरण के लिये सिंह के ७ अंश यदि उदित हों (अर्थात् लग्न स्पष्ट ४-७° हो तो कन्या के ७ अंश पर ग्रह द्वितीय भाव का पूर्ण फल करेगा, तुला के ७ अंश पर तृतीय भाव का, वृश्चिक के ७ अंश पर चतुर्थ का, धनु के ७° पर पंचम का, मकर के ७° पर षष्ठ का, कुंभ के ७° पर सप्तम का, मीन के ७° पर अष्टम का, मेष के ७° पर नवम का, वृष के ७° पर दशम का, मिथुन के ७° पर एकादश का और कर्क के ७° पर द्वादश का) । शेष आधे श्लोक में अन्य विषय प्रतिपादन किया गया है कि राहु शनि की तरह फल प्रदान करता है, केतु मंगल की तरह ।

यद्यपि दो प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथों से उद्धरण देने के बाद—लग्न स्पष्ट के तुल्य अंश पर ही प्रत्येक भाव मध्य होना चाहिये—इस सिद्धान्त के प्रतिपादक और पोषक अन्य मतों का प्रदर्शन पिष्टपेषाण मात्र होगा किन्तु इस मत के विषय में

---

१. फलदीपिका अध्याय ८ पर श्लोक ३४

जिज्ञासु पाठकों के हृदय में कोई शंका न रहे, इस कारण वृहज्जातक की भट्टोत्पली टीका का एक अंश* उद्धृत किया जाता है। चक्र (भचक्र) के पूर्व और अपर भाग की व्याख्या करते हुए लिखते हैं:

यावन्तो भागा लग्नस्योदितास्तावन्त एव भागा लग्नचतुर्थराशेः परित्यज्य शेषभागमारभ्य पंचमषष्ठसप्तमाष्टमनवमराशयो दशमराशिलग्नोदितभाग-तुल्यांशाश्चक्रपरार्द्धम्। शेषं पूर्वार्द्धम्।

अर्थात् लग्न के जितने अंश उदित हों (लग्न स्पष्ट तुल्य अंश) उतने ही अंश लग्न राशि से जो चतुर्थ राशि हो—उस राशि से प्रारंभ कर, पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम राशि और दशम राशि के लग्न स्पष्ट तुल्य अंश तक परार्द्ध होता है। शेष पूर्वार्द्ध। इस प्रकार पूर्वार्द्ध और परार्द्ध—दोनों प्रत्येक १८० अंश (६ राशि × ३० = १८०°) के होते हैं। इस सिद्धान्तानुसार ऊपर जो जन्मकुंडली दी गई है, उसमें मीन के १°-३०'-४६" से प्रारम्भ कर मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह तथा कन्या के १°-३०'-४६" तक परार्द्ध होगा। और कन्या के १°-३०'-४६" से प्रारम्भ कर तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ तथा मीन के १°-३०'-४६" तक पूर्वार्द्ध होगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि लग्न स्पष्ट से चतुर्थ भाव स्पष्ट तक ९०°; चतुर्थ भाव स्पष्ट से सप्तम भाव स्पष्ट तक ९०°; सप्तम भाव स्पष्ट से दशम भाव स्पष्ट तक ९०° और दशम भाव स्पष्ट से लग्न स्पष्ट तक ९०° होंगे और प्रत्येक भाव ३० अंश का होगा। यही भाव स्पष्ट की आर्ष पद्धति है ॥१२॥

लग्न भाव फल

शरीरवर्णाकृतिलक्षणानि यशोगुणस्थानसुखासुखानि।
प्रवासतेजोबलदुर्बलानि फलानि लग्नस्य वदन्ति सन्तः ॥ १३ ॥

शरीर, वर्ण आकृति, लक्षण, यश, गुण, स्थान, सुख, असुख (दुःख, क्लेश आदि) प्रवास (अपने घर या जन्म भूमि से अन्यत्र रहना) तेज बल (शक्ति, सामर्थ्य पुरुषार्थ) अबल (दुर्बलता, अक्षमता, साहस की कमी) यह सब विद्वानों ने लग्न से विचार करना, यह कहा है। जातकरत्न में भी यह श्लोक प्राप्त होता है किंतु तृतीय चरण में वहां पाठान्तर है। उसके अनुसार चिन्ता, व्यग्रता आदि का विचार भी लग्न भाव से करना।

---

* दरभंगा संस्करण संवत् १९८३, पृ० ६०

जन्म कुंडली में लग्न का वही स्थान है जो शरीर में सिर का। यदि शरीर से सिर पृथक् कर दिया जाये तो—उस शिरोहीन शरीर का क्या मूल्य। लग्न और लग्नेश बलवान् होने से, अन्य शुभ भावों के बलवान् होने से, उनका शुभ फल भोगने में भी जातक समर्थ होता है किंतु लग्न तथा लग्नेश के निर्बल होने से अन्य शुभ भावों के फल भोगने की क्षमता मनुष्य में नहीं रहती। उदाहरण के लिये मुख तथा भोजन का विचार द्वितीय भाव से किया जाता है। यदि द्वितीयेश बलवान् हो, द्वितीय भाव शुभ युत, शुभ दृष्ट हो तो जातक को भोजन सुख उत्तम होना चाहिए किंतु यदि शरीर (लग्न तथा लग्नेश) ही क्षीण, दुर्बल या योग ग्रस्त है तो वह जातक उत्तमोत्तम पदार्थ उपलब्ध होने पर भी भोजन सुख का आनन्द नहीं ले सकेगा। हमने करोड़पतियों को आधा पाव दलिये पर गुजारा करते देखा है। शरीर में पाचन शक्ति कम होने के कारण कुछ खा ही नहीं सकते, पचा ही नहीं सकते। रक्त में मेद की मात्रा अधिक होने से डाक्टरों ने चिकनाई (घी, मक्खन, तेल, दूध, आदि) मना कर रखा है। मधुमेह के कारण चीनी, गुड़, केला, आम आदि फल मना कर रखा है क्योंकि फलो में भी शर्करा होती है। उनके लिए पथ्य है करेले का रस तथा नीम की पत्ती।

या अन्य उदाहरण लीजिये सप्तम भाव, सप्तम भावेश तथा शुक्र तीनों बलवान हैं। द्वादश भाव भी अच्छा है। पत्नी स्वस्थ, सुन्दर और आकर्षक है। अन्य रमणीय तरुणियाँ भी उनकी यथाभिलषित सेवा के लिए उपलब्ध हैं, शारीरक रोग और अक्षमता के कारण विलास उनके लिये विडम्वना मात्र है। भोग उनके भाग्य में ही नहीं है, क्योंकि लग्न और लग्नेश निर्बल हैं। विस्तार भय से अन्य भावों का उदाहरण नहीं दे रहे हैं। शेष में यही कहना है कि लग्न का महत्त्व सब भावों की अपेक्षा अधिक है। इसीलिये मंत्रेश्वर ने कहा है कि*

लग्नेश्वरो यद्भवनेशयुक्तो यद् भावगस्तस्य फलं ददाति।
भावे तदीशे बलभाजितेन भावेन सौख्यं व्यसनं बलोने॥

अर्थात् लग्नेश जिस भाव में बैठा हो या जिस भावेश के साथ बैठा हो, उसका फल देता है। यदि भाव (जिसमें लग्नेश) बैठा है पुष्ट हो शुभ फल, यदि बलहीन है तो उस भाव संबंधी व्यसन (कष्ट फल); यदि भावेश (जिसके साथ लग्नेश बैठा है) सबल है तो उस भावेश संबंधी सुख, यदि भावेश कमजोर है तो उस भावेश संबंधी व्यग्रता (चिन्ता) होती है।

---

*. फलदीपिका अध्याय १५ श्लोक २७।

लग्नेश का इतना अधिक महत्त्व है कि चाहे वह नैसर्गिक शुभ हो या क्रूर, जिस भाव में बैठता है उसके शुभ फल को बढ़ाता है। अष्टम परम अशुभ स्थान है। परन्तु यदि अष्टमेश लग्नेश भी हो तो वही ग्रह शुभ हो जाता है।

भाग्यव्ययाधिपत्येशो रन्ध्रेशो न शुभप्रदः।
स एव गुणसंधाता लग्नाधीशोऽपि चेत् स्वयम् ॥

पाठकों का ध्यान फलदीपिका अध्याय १७ श्लोक ३४ तथा ३५ की ओर भी आकृष्ट किया जाता है। इनसे लग्न तथा लग्नेश की महत्ता प्रतिपादित होती है। विस्तार भय से केवल निर्देश दिया गया है ॥१३॥

नरश्चिरायुर्नृपपूजितः सुखी
लग्ने भवेत्सौम्यगृहं यथा तथा।
लग्ने यदा स्वामिनिरीक्षिते धनी
कुशाग्रबुद्धिः कुलकीर्तिवर्द्धनः ॥ १४ ॥

लग्न यदि "सौम्य गृह" हो तो—जितनी अधिक मात्रा में सौम्य हो जातक उतना ही अधिक दीर्घायु, राजसत्कृत और सुखी होगा। लग्न यदि लग्नेश से दृष्ट हो तो जातक धनी, कुशाग्रबुद्धि (कुश के अग्र भाग के समान तीक्ष्ण जिसकी बुद्धि हो—अर्थात् तत्काल अर्थ ग्रहण करने की क्षमता जिसकी बुद्धि में हो) और कुल कीर्ति वर्द्धक होता है। कुल कीर्ति वर्द्धन के दो अर्थ हो सकते हैं—(i) जो कुल और कीर्ति की वृद्धि करे (ii) जो कुल की कीर्ति की वृद्धि करे। कुल की वृद्धि तो मनुष्य स्वयं करता नहीं यह तो भगवत्प्रदत्त संतान पर निर्भर है। संतान जितनी ही अधिक होगी, उतना ही अधिक कुल का विस्तार होगा तब लग्न स्वामी से लग्न दृष्टि हो—इसका कुल विस्तार से क्या सम्बन्ध ? यदि लग्न स्वामी लग्न को न देखे तो क्या संतान नहीं होगी ? यहाँ लग्न स्वामी लग्न को देखे—यह कहने का प्रयोजन एतावन्मात्र है कि भावेश जब भाव को देखता है तो भाव पुष्ट होता है। लग्न भाव बली होने से शरीर में बल, वीर्य, विक्रम, सामर्थ्य अधिक होते हैं, जिस कारण अधिक और बलिष्ठ संतानोत्पादन की क्षमता मनुष्य में होती है। स्वभावतः कुल वृद्धि होगी। इसी सिद्धान्त पर बृहत्पाराशर अध्याय २५ श्लोक में लिखा है :—

लग्नेशे लग्नगे हृष्ट-पुष्टांगश्च पराक्रमी।
मनस्वी चातिचपलो द्विभार्यः परगोऽपि वा ॥

अर्थात् लग्नेश यदि लग्न में हो तो जातक हृष्ट-पुष्ट अंग वाला, पराक्रमी, मनस्वी, अतिचपल होता है। उसके दो पत्नी होती हैं या अन्य स्त्रीगमन

करता है। शरीर का बल युक्त होना, पराक्रम, मनस्विता, चापल्य (इधर-उधर भ्रमण की प्रवृत्ति)—शारीरक शक्तिशालिता के लक्षण हैं। लग्न बलवान् होने से न केवल शरीर बलवान् होता है अपितु मन भी बलिष्ठ होता है। शरीर और मन का आधार-आधेय सम्बन्ध है। निर्बल शरीर और दुर्बल चित्त वाला क्या पराक्रम करेगा। शक्ति की ऊर्जा से ही चापल्य होता है। शक्ति के अभाव में शरीर और चित्त दोनों शिथिल रहते हैं। जब बल और वीर्य का आधिक्य होता है तो पुरुष के लिये एक स्त्री पर्याप्त नहीं होती। इसीलिये जब एक से अधिक विवाह की प्रथा थी—अधिक बल, वीर्य वाले दो या अधिक विवाह कर लेते थे या पर स्त्री गमन का आश्रय लेना पड़ता था। इसलिये दो भार्या होना या परदारोपगमन का शाब्दिक अर्थ नहीं करना चाहिये कि लग्नेश लग्न में होगा तो दो भार्या अवश्य होंगी या अन्य स्त्री गमन करेगा। यह केवल शारीरक सामर्थ्य के उपलक्षण मात्र हैं। ज्योतिषी को प्रत्येक फल में—सिद्धान्त की ओर दृष्टि देनी चाहिये। बिना बुद्धि का उपयोग किये फलादेश अशुद्ध होता है।

अब दूसरी शंका। यदि लग्नेश लग्न को न देखे तो क्या संतान नहीं होगी ? सिद्धान्त है कि लग्न या किसी भाव के पुष्ट होने में कई हेतु होते हैं (i) भावेश का भाव को देखना (ii) भावेश की सबलता (iii) भाव में शुभ ग्रह स्थिति (iv) भाव पर शुभ ग्रहों की दृष्टि (v) कारक का बलवान् होना (vi) भावेश और कारक की परस्पर स्थिति (vii) कारक पर शुभ दृष्टि आदि-आदि। यदि (i) भावेश भाव को न देखे तो भी अन्य हेतु भाव को पुष्ट करें तो भाव की पुष्टि होती है। अतः भावेश भाव को न देखे—लग्न, लग्नेश से दृष्ट न हो तो भी लग्न बलवान् से सन्तान होती हैं।

मूल में 'सौम्य गृह' शब्द आया है। इसकी व्याख्या अपेक्षित है। सौम्य गृह से तात्पर्य है कि (i) लग्नेश सौम्य ग्रह की राशि हो (ii) शुभ ग्रह लग्न को देखे (iii) शुभ ग्रह लग्न में बैठे हों (iv) लग्न-स्पष्ट शुभ ग्रहों के वर्गों में हो। एक टीकाकार ने अर्थ किया है—यदि लग्न सौम्य ग्रह की राशि हो तो शंका उठती है कि जिनका मेष, सिंह, वृश्चिक, मकर या कुंभ लग्न हो—वह दीर्घायु, सुखी और उच्च पदाधिकारी नहीं होते। इसलिये सौम्य ग्रह विचार करते समय लग्न स्पष्ट के वर्ग, लग्नेश के वर्ग, शुभयुक्त, शुभदृष्ट आदि का विचार कर लेना चाहिये।

जातकादेशमार्ग अध्याय १० में भाव का शुभ राशि में होना, भाव पुष्ट होने के अनेक हेतुओं में परिगणित किया गया है : "भावे शुभर्क्षे शुभनाथमित्रैर्युक्ते बलाढ्यैरवलोकिते च।" वहीं जातकादेशमार्ग पृ० १७१ का श्लोकपापग्रहाबलयुताः···दृष्टाः दिया गया है जिसका अर्थ है—

'पाप ग्रहों को उनके पाप मात्र होने से पाप(अशुभ) नहीं समझ लेना चाहिए और शुभ ग्रहों को उनके शुभ मात्र होने से शुभ नहीं समझना। यदि पाप ग्रह (१) बलवान् हो (पाप करने की क्षमता में बलवान् नहीं किंतु षड्बल, स्थान बल, काल बल, दिक् बल, चेष्टा बल, दृग्बल आदि में बलवान) (२) शुभ वर्गों में स्थित हो (३) शुभ वर्गों में स्थित शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो वह शुभ हो जाता है। इसी प्रकार सौम्य (नैसर्गिक शुभ ग्रह यदि बलहीन हो (षड्बल में निर्बल) (२) पाप ग्रहों के वर्ग में स्थित हो (३) पाप वर्गों में स्थित पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो पाप अशुभ प्रभाव दिखाने वाला हो जाता है।

सौम्य राशियाँ कौन सी हैं? शुभ ग्रह की राशि सौम्य तथा पाप ग्रहों की राशियाँ असौम्य। यह एक दृष्टिकोण हुआ। ओज राशि क्रूर, सम राशि सौम्य—यह दूसरा दृष्टिकोण हुआ। शीर्षोदय राशि सौम्य, पृष्ठोदय क्रूर—यह तीसरा दृष्टिकोण है॥१४॥

लग्नांशपाद्वीर्ययुतग्रहाद्वा तनुस्वरूपाकृतिलक्षणानि।
वर्णं वदेच्चन्द्रनवांशनाथाद्विलग्नभात्सर्वशुभाशुभानि॥ १५॥

लग्न नवांश के स्वामी या जन्मकुण्डली में तनु (प्रथम भाव) में जो बलवान् ग्रह हो उसके अनुसार जातक का स्वरूप, आकृति और उसके लक्षण होते हैं। चन्द्रमा जिस नवांश में हो उस नवांश स्वामी के अनुसार वर्ण (गौर, श्याम आदि होता है। लग्न से जातक के सब फल शुभ और अशुभ कहना।

पहले श्लोक १३ में कहा है कि शरीर की आकृति तथा वर्ण और लक्षण लग्न से कहना और अब कहते हैं कि लग्न नवांश से कहना। क्या इसमें विरोध नहीं हुआ। इसी आशय का श्लोक बृहज्जातक अध्याय ५ में आया है। जिसकी टीका करते हुए भट्टोत्पल लिखते हैं कि यदि लग्न नवांश राशि बलवान् हो तो उसकी सी आकृति लक्षण आदि होते हैं। वास्तव में लग्न राशि से विचार करना और पुनः लग्न नवांश से विचार करना—इन दोनों कथनों में कोई विरोध नहीं है। यदि हम कहें कि शरीर की पुष्टता से डाक्टर यह निर्णय करते हैं कि मनुष्य दीर्घजीवी होगा या नहीं और पुनः यह कहें कि इस मनुष्य के हार्ट (हृदय) की परीक्षा करके डाक्टर यह बतायेंगे कि यह कितने वर्षों तक जीयेगा तो इन दोनों में कोई विरोध नहीं। राशि शरीर है तो नवांश हृदय।

जातकपारिजात के श्लोक में 'तनौ' लग्न भाव में बलवान् ग्रह से आकृति, लक्षण, आदि कहा है। बृहज्जातक के अनुसार—जन्मकुंडली में बलवान् ग्रह से विचार करना। रुद्रभट्ट अपनी संस्कृत टीका पृ० १२८ में लिखते हैं "वीर्याधिको

ग्रहः केन्द्रस्थितः इत्यर्थाद् भवति ।" किन्तु भट्टोत्पल केवल यह कहते हैं कि सब ग्रहों में जो सर्वाधिक बली हो उसके अनुसार कहना चाहिए ।

भट्टोत्पल यह भी लिखते हैं कि अन्य मत है कि चन्द्र जिस राशि में हो उस राशि स्वामी का जैसा वर्ण कहा गया है, वैसा वर्ण भी जातक का हो सकता है 'एतच्च वर्णादिजातिकुलदेशान् बुद्ध्वा वक्तव्यम्' अर्थात् शरीर का वर्ण आदि जब निश्चय करना हो तो जातक के कुल, उसकी जाति, देश आदि का भी विचार कर लेना चाहिये । अंग्रेज अत्यन्त गौर वर्ण होते हैं, हवशी काले । भारतवर्ष में ही कश्मीर के लोगों का अन्य वर्ण है, दक्षिण के वासियों का दूसरा । वास्तव में फलादेश करते समय अनेक प्रभावों का सामञ्जस्य करना पड़ता है ॥१६॥

त्रिकोणकेन्द्रे यदि लग्ननाथे शुभान्विते शोभनवीक्षिते वा ।
शुभग्रहागारगते बलाढ्ये चतुःसमुद्रान्तयशः समेति ॥ १६ ॥

यदि लग्नेश केन्द्र या त्रिकोण में हो, शुभ ग्रह के साथ हो, शुभ ग्रह से वीक्षित हो, शुभ ग्रह के घर में हो, बलवान् हो तो उसका यश चारों समुद्र तक पहुँचता है अर्थात् वह अत्यन्त यशस्वी और कीर्तिशाली होता है ।

मनुष्य विख्यात कीर्ति कब होता है ? जब उसके सत्कर्म, गुण, मान, पद आदि विशिष्ट कोटि के होते हैं । इन सबका वैशिष्ट्य कब होता है ? जब वह विद्या, वैभव, पराक्रम, सत्कर्म आदि से युक्त है । यह सब किनमें होता है ? जिसका लग्नेश (i) शुभ ग्रह की राशि में (ii) शुभ ग्रह के साथ (iii) शुभ ग्रह से दृष्ट (iv) केन्द्र या कोण में अवस्थित (v) बली हो । ऊपर पाँच बातें बतायी गयी हैं किस केन्द्र का कितना महत्त्व है, यह पहले बताया जा चुका है । त्रिकोणों में पंचम की अपेक्षा नवम विशेष बलवान् है । कोई ग्रह शुभ राशि में तो बैठा है किंतु उस राशि का स्वामी (जिसमें ग्रह बैठा है) स्वयं निर्बल है तो निर्बल ग्रह अपनी राशि में बैठे ग्रह को कितना बल प्रदान कर सकेगा ? इसी प्रकार शुभ ग्रह से युक्त तथा दृष्ट होना शुभ है परन्तु साथ में बैठने या देखने वाला ग्रह यदि स्वयं कमजोर है तो अधिक शुभ प्रभाव उत्पादन करने में क्षम नहीं होगा । बली होने की भी कई श्रेणियाँ है । जितना अधिक बली होगा उतना अधिक शुभ फल दिखायेगा । यह सब अपनी बुद्धि से ऊहापोह कर लेना चाहिये ।

जातकरत्न में भी कहा है :

लग्नाधिपे शुभयुते यदि तुंगभागे
केन्द्रत्रिकोणसहिते शुभदृष्टियुक्ते ।

कर्माधिपेन सहिते यदि वा स्वगेहे
सद्भावकीर्तिधनधान्यचिरायुरेति ॥१६॥

होराधिनाथे रिपुरन्ध्ररिष्फे पापान्विते पापनिरीक्षिते वा ।
पापग्रहाणां भवनोपयाते जातोऽप्रकाशो भवतीह मर्त्यः ॥ १७ ॥

ऊपर लग्नेश के शुभ ग्रह की युति, दृष्टि आदि के कारण शुभ फल बताये हैं—उससे बिलकुल विपरीत फल तब होता है जब लग्नेश पाप ग्रह की राशि में, पाप से युत दृष्ट आदि हो। कहते हैं कि यदि लग्नेश (i) छठे, आठवें या बारहवें घर में हो (ii) पाप ग्रह के साथ हो (iii) पाप ग्रह से दृष्ट हो (iv) पाप ग्रह की राशि में हो तो जातक 'अप्रकाश' होता है। 'अप्रकाश' क्या ? जो प्रकाश में न आये, जिसका नाम न फैले, जिसके विषय में अधिक लोग न जानें, जो मान लीजिये, अंधकार में अपना जीवन यापन करे। अर्थात् ऐसा व्यक्ति साधारण जीवन व्यतीत करता है, न उसकी ख्याति हो, न उसे यश प्राप्त होता है। यहाँ भी किस हद तक पाप ग्रहों से बाधित लग्नेश है इसका तारतम्य कर लेना चाहिये। प्रत्येक श्लोक में प्रत्येक सिद्धान्त का पुनः पुनः उल्लेख नहीं किया जाता है। जो अन्यत्र कहा गया है—पाप ग्रह का शुभ वर्ग या पाप वर्ग में होना—आदि आदि सभी ध्यान में रखना चाहिये ॥१७॥

कीर्तिस्थानपतौ विलग्नभवने जातः स्वयं कीर्तिमान्
वित्तस्थे तु विशेषकीर्तिसहितः स्वोच्चादिवर्गान्विते ।
दुःस्थे चञ्चलयात्रया हततनुर्जातोऽथवा दुर्जनः
केन्द्रे कोणगते शुभग्रहयुते यात्रासुखं जायते ॥ १८ ॥

कीर्तिस्थान का स्वामी यदि लग्न में हो तो जातक स्वयं कीर्तिमान् होता है। स्वयं से क्या तात्पर्य है ? अर्थात् अपने कर्मों के कारण। संस्कृत में एक श्लोक है :

उत्तमा आत्मनः ख्याताः पितुः ख्याताश्च मध्यमाः ।
अधमा मातुलख्याता श्वशुराख्याताःऽधमाधमाः (?)॥

अर्थात् जो स्वयं के (अपने कार्य, गुण आदि के) कारण ख्यात हों, वे उत्तम, जो अपने पिता के कारण ख्यात हों वे मध्यम, जो अपने मामा के कारण ख्यात हों वे अधम, और जो अपने श्वशुर के कारण ख्यात हों वे अधमाधम। तो कीर्ति स्थान स्वामी लग्न में बैठे तो जातक स्वयं कीर्ति उपार्जित करता है। यह भाव प्रकट करने के लिये मूल में 'स्वयं' का प्रयोग किया गया है। यदि कीर्ति

स्थान स्वामी अपने उच्च आदि (उच्च, स्व, अधिमित्र—जितने अधिक वर्गों में होगा उतना अधिक विशिष्ट फल होगा) वर्गों में धन स्थान (लग्न से द्वितीय स्थान) में हो तो जातक विशेष कीर्ति सहित होता है। यदि दुःस्थान में हो तो चंचल यात्रा (तेज सवारी में यात्रा करने) के कारण शरीर में आघात लगता है या दुर्जन होता है। यदि केन्द्र या कोण में शुभग्रह के साथ हो तो यात्रा सुख होता है।

लग्न भाव के प्रसंग में यह श्लोक कहा गया है। इसलिये यह ध्यान रखना चाहिये कि कीर्ति तथा यात्रा का सुख पूर्ण तभी प्राप्त होगा जब लग्नेश शुभ स्थान में वली हो।

मूल में शब्द आया है "कीर्तिस्थान का स्वामी।" एक टीकाकार ने इसका अर्थ किया है 'नवमेश' अर्थात् नवम भाव का स्वामी और अपनी टीका में विशेष कीर्ति की व्याख्या करते हुए लिखा है कि ऐसा जातक तालाब खुदवाना, बाग लगवाना, मन्दिर बनवाना आदि चिरस्थायी शुभ कर्म के द्वारा विशेष कीर्ति प्राप्त करता है। परन्तु हमारे विचार से कीर्तिस्थान दशम है। इस कारण कीर्तिस्थान के स्वामी से दशमेश लेना चाहिये। सत्कर्म से सुकीर्ति होती है। दुष्कर्म से दुष्कीर्ति और दशमस्थान को कर्मस्थान कहा है। वास्तव में नवम और दशम भाव फलादेश में परस्पर सम्बद्ध है। जातक पारिजातकार ने चतुर्दश अध्याय में, नवमभाव के सन्दर्भ में श्लोक ६६, ७१ तथा ६० में यश और कीर्ति का उल्लेख किया है। वृहत्पाराशर अध्याय २१ के श्लोक ७ और १० नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

भाग्येशे कर्मभावेशे कर्मेशे भाग्यराशिगे।
सौम्येक्षिते धनाढचश्च कीर्तिमांस्तत्पिताभवेत् ॥

यहां नवमेश दशमेश के परस्पर स्थान विनिमय तथा शुभेक्षित होने से धनाढच होता है और उसका पिता कीर्तिमान् होता है, यह कहा है। पिता का कीर्तिमान् होना लिखा है स्वयं का नहीं और दशमेश नवमेश दोनों का उल्लेख किया गया है।

भाग्येशे धनभावस्थे धनेशे भाग्यराशिगे।
द्वात्रिंशात्परतो भाग्यं वाहनं कीर्तिसंभवः ॥

अर्थात् भाग्येश धन (द्वितीय) भाव में हो और धनेश भाग्य में हो ३२ वर्ष के बाद भाग्योदय हो, सवारी प्राप्त हो और कीर्ति संभव हो। यहाँ केवल नवम भाव का आश्रय लेकर कीर्ति का जिक्र किया गया है।

वृहत्पाराशर २२वें अध्याय में दशम भाव से भी कीर्ति का उल्लेख किया है। श्लोक २, १९, २० तथा २१ नीचे उद्धृत किये जाते हैं :—

स्वराश्यंशोच्चगे पूर्णबलोपेते तु कर्मपे ।
पितृसौख्यान्विते जातः पुण्यकर्मा सुकीर्तिमान् ।।
कर्मस्थानगते चन्द्रे तदीशे तत् त्रिकोणगे ।
लग्नेशे केन्द्रभावस्थे सत्कीर्तिसहितो भवेत् ।।
लग्नेशे कर्मभावस्थे कर्मेशे बलसंयुते ।
देवेन्द्रगुरुणा दृष्टे सत्कीर्तिसहितो भवेत् ।।
कर्मस्थानाधिपे भाग्ये लग्नेशे कर्मसंयुते ।
लग्नात्पंचमगे चन्द्रे ख्यातकीर्तिः प्रजायते ।।

इत्यादि । दशम स्थान कर्म स्थान होने से सुकर्मा होने से जातक कीर्तिमान् होता है । हमारे विचार से कीर्तिस्थान से दशम स्थान लेना चाहिये क्योंकि सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय १० श्लोक २५ में लिखा है कि शनि दशम स्थान में अपकीर्ति करता है । दशम भाव से क्या विचार करना चाहिये इस विषय में उसी ग्रंथ के अध्याय दशम का प्रथम श्लोक निम्नलिखित है :—

दशमात् प्रवृत्तिमाज्ञां कीर्ति वृष्टि प्रवासपूर्तादीन् ।
मानं कर्माजीवं जानुस्थानं च निर्देशेद्दासान् ।।

और आगे चलकर दशमेश का उल्लेख करते हुये लिखते हैं

कीर्तिस्थानाधिपे सौम्ये स्वोच्चमित्रस्ववर्गगे ।
सौम्ये षष्ट्यंशके वापि सत्कीर्तिसहितो भवेत् ।।

दशम स्थान का किन-किन नामों से निर्देश किया जाता है, इसका उल्लेख करते हुए मंत्रेश्वर, फलदीपिका अध्याय १, श्लोक १५ में कहते हैं :

व्यापारास्पदमानकर्मजयसत्कीर्तिक्रतुं जीवनम् ।
व्योमाचारगुणप्रवृत्तिगमनान्याज्ञां च मेषूरणम् ।।

अर्थात् दशम स्थान को कीर्तिस्थान भी कहते हैं । जातकपारिजात अध्याय ७, श्लोक ११८ तथा ११९ की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया जाता है जहाँ लग्न से या चन्द्रमा से शुभ ग्रह होने से अमला योग होता है और ग्रंथकार ने 'तस्य कीर्तिरमला' (श्लोक ११८) तथा 'कीर्तिराचन्द्रतारकी' (श्लोक ११९) आदि विशेषण प्रयुक्त किये हैं । अतः श्रीवैद्यनाथ का 'कीर्तिस्थान' से दशम स्थान ही अभिप्रेत है, ऐसा हमारा मन्तव्य है ।।१८।।

होरास्वामिनि पञ्चमे यदि सुतस्थानेशयुक्तेऽथवा
भाग्ये वा यदि भाग्यपेन सहिते लग्ने यशस्वी पिता ।
भ्रातृस्थानपतौ विलग्नगृहगे तत्कारकभ्रातृपा-
वेकस्थौ बलशालिनौ च यदि वा तत्सोदरः कीर्तिमान् ।। १९ ।।

इस श्लोक के पूर्वार्द्ध का शब्दानुवाद निम्नलिखित है :

लग्न का स्वामी पंचम में यदि पंचमेश के साथ अथवा भाग्य में अथवा यदि भाग्येश के साथ लग्न में हो तो जातक का पिता यशस्वी होता है।

एक टीकाकार ने अर्थ किया है (i) जन्म लग्नेश यदि पंचम भाव में हो अथवा (ii) पंचमेश के साथ नवम में हो अथवा (iii) भाग्येश के साथ लग्न में हो तो जातक का पिता यशस्वी विद्वान् होता है।

एक दाक्षिणात्य टीकाकार कहते हैं (i) यदि लग्नेश पंचम या नवम में हो या (ii) लग्नेश पंचमेश या नवमेश के साथ लग्न में हो तो जातक का पिता यशस्वी होता है।

एक मराठी टीकाकार ने भी यही अर्थ किया है। संस्कृत के श्लोकों में अर्द्ध विराम (कौमा) तो होता नहीं और देहलीदीपकन्याय से 'यदि' आदि शब्द दोनों ओर लग जाते हैं। परन्तु हमारी समझ में निम्नलिखित अर्थ विशेष उपयुक्त है : (i) लग्नेश यदि पंचमेश के साथ पंचम में हो या (ii) लग्नेश पंचमेश के साथ भाग्य में हो या (iii) लग्नेश नवमेश के साथ लग्न में हो तो जातक का पिता यशस्वी होता है।

केवल लग्नेश का पंचम या नवम में होना उत्तम अवश्य है क्योंकि पंचम और नवम दोनों त्रिकोण होने से शुभ हैं। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि लग्नेश के केवल पंचम या नवम में होने से पिता यशस्वी होगा ?

लग्नेशे पुत्रगे क्रोधी सुतसौख्यं च मध्यमम्।
प्रथमापत्यनाशः स्यात्कीर्तिमान् राजवल्लभः ।।
लग्नेशे नवमे याते भाग्यवान् जनवल्लभः।
विष्णुभक्तः पटुर्वाग्मी पुत्रदारधनैर्युतः ।। (बृ. पा.)
पञ्चमगोलग्नपतिः ससुतं सत्यागमीश्वरं विदितम्।
बहुजीविनं च सुखिनं सुकर्मनिरतं नरं तनुते ।।
मूर्तिपतिर्यदि नवमे तदा भवेत्प्रवरबान्धवः सुकृती।
समसत्त्वश्च सुशीलः सुकृतः ख्यातः सुतेजस्वी ।। (हो. प्रदीप)

१९वें श्लोक के उत्तरार्द्ध के अर्थ में कोई वैमत्य नहीं है। तृतीयेश लग्न में हो या तृतीयेश और भ्रातृकारक (अर्थात्) दोनों एक साथ हों और बलवान् हों तो जातक का भाई कीर्तिमान् होता है। जातकपारिजात का १९वाँ श्लोक जातकरत्न में भी प्राप्त होता है। परन्तु इस श्लोक का उत्तरार्द्ध जातकरत्न में निम्नलिखित है :

लग्नेशे स्थिरभे शुभग्रहयुते सौम्यग्रहैर्मूर्धगे
जातः सर्वसुखं धनं च बहुलं संप्राप्नुयात्तैर्युतः।

वास्तव में, यहाँ भी, यदि केवल तृतीयेश लग्न में हो—विशेषकर कन्या लग्न तृतीयेश मंगल लग्न में, मकर लग्न तृतीयेश बृहस्पति लग्न में तो क्या जातक का भाई कीर्तिमान् होगा, इसमें हमें सन्देह है। तृतीयेश के बलाबल की कोई चर्चा नहीं की गयी है।

तनुस्थिते तृतीयेशे पुरुषार्थपरोऽर्थवान् ।
अविद्यः किन्तु मतिमाञ्जायतेऽसंशयं नरः ।। (बृ. पा.)
सहजपतौ लग्नगते वाग्वादी लंपटः स्वजनभेदी ।
सेवापरः कुमित्रः क्रूरवचा भवति पुरुषश्च ।। (जा. सा. दी.) १९ ।।

विद्याधिपे वा यदि चन्द्रसूनौ लग्ने सुखे लग्नपसंयुते वा।
बलान्विते पापदृशा विहीने विद्यायशस्वी भवति प्रजातः ।।२०।।

यदि 'विद्याधिप' या बुध लग्न में या लग्नेश के साथ चतुर्थ में हो, और बली हो, उस पर पापग्रह की दृष्टि न हो तो जातक अपनी विद्या के कारण यशस्वी होता है। यहाँ विद्याधिप या बुध जो उपर्युक्त योग कर रहा हो उसका बलवान् होना आवश्यक है। बलवान् यह विशेषण लगा देने से, उसकी शुभफल देने की क्षमता स्वाभाविक है। साथ में यह भी कह दिया है कि उस पर पाप दृष्टि न हो क्योंकि यह सर्वानुमोदित सिद्धान्त है कि पाप दृष्टि शुभफल को बिगाड़ती है। अब केवल 'विद्याधिप' की व्याख्या करना शेष है। कौन सा भाव विद्याभाव माना जाये ?

कै० गणक भास्कर, विष्णुगोपाल नवाथे ने अपनी मराठी टीका में विद्याधिप की व्याख्या 'पंचमाधिपति' की है। काशी से प्रकाशित टीका में, टीकाकार ने विद्याधिप का अर्थ द्वितीयेश किया है और लिखा है कि इसी अध्याय का ४९वाँ श्लोक देखिये—जहाँ विद्या का विचार द्वितीय से करना, ऐसा लिखा है। परन्तु इस ग्रंथ के द्वितीय भाव से क्या-क्या विचार करना उसमें भी यह लिखा है कि विद्या का विचार करना (अध्याय ११, श्लोक ४९) और चतुर्थ भाव से क्या-क्या विचार करना उसमें भी यह लिखा है कि चतुर्थ से विद्या का विचार करना (अध्याय १२, श्लोक ५९) तब ऐसी स्थिति में 'विद्याधिप' का अर्थ द्वितीयेश करना या चतुर्थेश। श्री सुब्रह्मण्यम् शास्त्री ने, इस श्लोक में जो 'सुख' शब्द आया है उसका अर्थ भी द्वितीय भाव किया है क्योंकि श्लोक ४९ में द्वितीय भाव से क्या-क्या विचार करना उसमें 'सुख' भी लिखा है। श्री सुब्रह्मण्यम् शास्त्री इस श्लोक का अर्थ निम्नलिखित करते है :

"जब द्वितीयेश या बुध लग्न में हो या द्वितीय भाव में लग्नेश हो—और जब भाव बली हो और पाप ग्रह दृष्टि रहित हो तो जातक विद्या के कारण यशस्वी होता है।"

परन्तु हमें यह अर्थ मान्य नहीं है। बलान्विते या पापदृशा विहीने यह जो दो विशेषण आये हैं यह विद्याधिप या बुध का विशेषण हैं भाव के नहीं। हमारे विचार से इस श्लोक का निम्नलिखित अर्थ होना चाहिये।

"यदि चतुर्थेश या बुध, लग्नेश के साथ लग्न या चतुर्थ में हों और बलवान् तथा पापदृष्टि रहित हों तो जातक विद्या के कारण यशस्वी होता है।"

दक्षिण भारत में विद्या का विचार द्वितीय तथा चतुर्थ दोनों से किया जाता है। इसकी विशेष व्याख्या और तारतम्य का विचार हमने अपनी पुस्तक हिन्दू प्रिडिक्टिव एस्ट्रोलौजी में किया है कि कहाँ द्वितीय भाव से और कब चतुर्थ भाव से विद्या का विचार करना। जिज्ञासु पाठक अवलोकन करें। यहाँ हमने विद्याधिप का अर्थ चतुर्थेश इस कारण किया है कि ग्रंथकार ने पहिले तृतीयेश का शुभ फल लिखा और उसके बाद यह श्लोक लिखा। अतः क्रमानुसार तृतीयेश के बाद चतुर्थेश होता है। इसके अतिरिक्त लग्नेश और विद्याधिप या लग्नेश और बुध सुख (हम सुख का अर्थ चतुर्थ स्थान करते हैं) स्थान में हों इससे भी चतुर्थेश अर्थ करना विशेष उपयुक्त प्रतीत होता है। किंतु यदि द्वितीयेश अर्थ किया जाये तो भी शास्त्र सम्मत है। क्योंकि प्राचीन भारत में मौखिक विद्या का विशेष प्रचार और प्रसार था। शास्त्रार्थ (मौखिक) द्वारा ही विशेष यश प्राप्त होता था ॥२०॥

धर्मोदयेशौ नवमोदयस्थौ धर्मोदयेशौ तनुधर्मगौ वा।
सुरेन्द्रवन्द्येक्षितसंयुतौ चेत् समेति जातश्चिरकालभाग्यम् ॥२१॥

यदि नवमेश नवम में, लग्नेश लग्न में हो या नवमेश लग्न में और लग्नेश हो और यह दोनों बृहस्पति से युत या दृष्ट हों तो उसका भाग्य चिरस्थायी होता है। लग्नेश और नवमेश, दोनों बृहस्पति से युत वा दृष्ट तभी होंगे जब बृहस्पति प्रथम, पंचम या नवम में हो। यद्यपि मूल में केवल बृहस्पति की युति या दृष्टि कहा है, किंतु बृहस्पति जितना बलवान् होगा, उतना शुभ फल अधिक होगा, यह ऊहापोह पाठकों को अवश्य करना चाहिये। हमारे विचार से लग्नेश, नवमेश दोनों एक साथ लग्न या पंचम में बैठें और बृहस्पति से युत या दृष्ट हों तो भी यही शुभ फल होगा। नीचे दो कुंडलियाँ दी जाती हैं।

दोनों कुंडलियों में लग्नेश नवम में, नवमेश लग्न में हैं और बृहस्पति से युत या दृष्ट हैं। किंतु कुंडली एक में लग्नेश और नवमेश दोनों नीच हैं। कुंडली २ में लग्नेश उच्च है, बृहस्पति स्वराशिस्थ है और सिंह का मंगल लग्न में है। सिंह का मंगल लग्न में भाग्यकारक माना जाता है क्योंकि फलदीपिका अ०७ में कहा है।
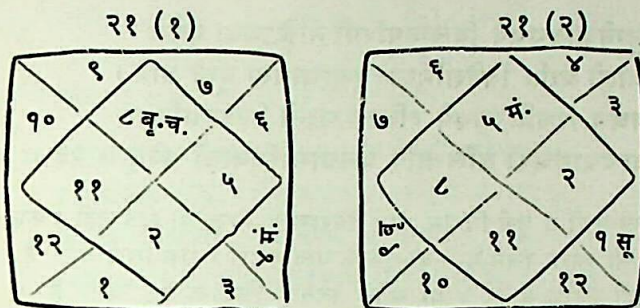
भौमश्चेदजहरिचापलग्नसंस्थः
पृथ्वीशं कलयति मित्रखेटदृष्टः ।।

अतः जातक पारिजात के श्लोक २१ में कथित योग ऊपर दी हुई दोनों कुंडलियों में समान रूप से शुभ फल कैसे करेगा, यह पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं। बृहस्पति को दृष्टि या युति की शुभता में—बृहस्पति किन भावों का अधिपति है—इस विचार से तारतम्य होगा ।।२१।।

लग्नाधिपस्य व्ययगे तदुच्च-
मित्रे सुहृत्तुङ्गखगेक्षिते वा ।
तद्राशिगे वा यदि मित्रखेटे
तस्य स्थितिर्जन्मवसुन्धरायाम् ।। २२ ।।

लग्नेश जिस राशि में बैठा हो उस राशि से बारहवीं राशि—लग्नेश की उच्चराशि या लग्नेश की मित्र राशि हो या लग्नेश के मित्र या उच्च ग्रह से देखी जाती हो या लग्न में लग्नेश का मित्र ग्रह बैठा हो (तद्राशिगे का एक और अर्थ भी हो सकता है—तत्-उस; किस? जिस राशि की ऊपर चर्चा की गई है अर्थात् लग्नेश जिस राशि में है, उससे बारहवीं राशि में, लग्नेश का मित्र ग्रह बैठा हो) तो जातक अपनी जन्म भूमि में ही निवास करता है।

श्री नवाथे ने इसकी व्याख्या निम्नलिखित की है :

लग्न स्वामी की बारहवीं राशि (अर्थात् लग्नेशाधिष्ठित राशि से १२वीं राशि) उसका मित्र ग्रह उच्च होकर बैठा हो या उसका (लग्नेश का) कोई मित्रग्रह उच्च होकर इस राशि को देखता हो या लग्न स्वामी की राशि में उसका मित्र ग्रह बैठा हो तो जातक अपना जीवन जन्मभूमि में ही बिताता है ।।२२।।

लग्नेशाद्व्ययपे विलग्नपरिपौ नीचेऽथवा दुर्बले
जातो याति विदेशमिष्टदनुजाचार्येण दृष्टे यदि ।
तत्रैव स्थितिरन्त्यपे रविकरच्छन्ने विलग्नाधिपा-
दल्पग्रामचरो बलिन्यपि धनग्रामाधिवासो भवेत् ।। २३ ।।

संस्कृत पद्यों में पूर्ण विराम, अर्द्ध विराम के चिह्न तो होते नहीं । कई बार एक भाव को व्यक्त करने में—दो-एक के बाद दूसरा श्लोक लिखे जाते हैं; कई बार एक ही श्लोक में ३, ४ या अनेक स्वतंत्र सिद्धान्त कहे जाते हैं । यह आवश्यक नहीं कि चरण (एक श्लोक में चार चरण होते हैं) समाप्ति पर भाव समाप्ति हो जाये । न यह आवश्यक है कि कर्ता, कर्म, क्रिया, विशेषण, क्रिया विशेषण—एक के बाद दूसरा किसी क्रम विशेषण से ही उपयुक्त हो । अतः उपर्युक्त श्लोकों के भी दो अर्थ होते हैं । दोनों दिये जाते हैं :—

प्रथम—लग्नेश जिस राशि में बैठा हो उससे वारहवें का स्वामी यदि लग्नेश का शत्रु हो और नीच राशि में हो या वलहीन हो और शुक्र उसका (लग्नेश स्थित राशि से व्ययेश का) मित्र हो और उसे देखता हो तो जातक विदेश को जाता है । यदि उपर्युक्त व्ययेश सूर्य सान्निध्य के कारण अस्त हो तो "तत्रैव स्थितिः"—जन्म भूमि में ही रहता है और छोटे ग्राम में रहता है; किंतु यदि उपर्युक्त व्ययेश (लग्नेशाधिष्ठित राशि से १२वें का स्वामी) बलवान् हो तो धनग्रामाधिवास (धन्य-धान्य से समृद्ध ग्राम अर्थात् नगर में) निवास करता है।

द्वितीय—द्वितीय अर्थ दक्षिण के श्री सुब्रह्मण्यम् शास्त्री के अनुसार निम्नलिखित है :

लग्नेश जिस राशि में बैठा है, उससे वारहवें का स्वामी यदि लग्नेश का शत्रु हो या नीच या दुर्वल हो तो जातक विदेश जाता है । यदि उपर्युक्त व्ययेश का मित्र शुक्र हो और शुक्र उस व्ययेश को देखता हो तो "तत्रैव स्थितिः—" वहीं विदेश में बस जाता है । यदि यह व्ययेश रविकरछिन्न (अस्त) हो तो छोटे ग्राम में रहता है परन्तु यदि वह बलवान् हो तो धनग्राम (नगर) में रहता है।

प्रथम अर्थ में एक शंका होती है । यदि "तत्रैव स्थितिः" का 'जन्म भूमि में ही निवास करता है'—यह अर्थ करते हैं तो जन्म भूमि छोटा ग्राम हो तो भी वहाँ रहेगा, बड़ा ग्राम हो तो भी वहाँ रहेगा, उपर्युक्त व्ययेश अस्त हो तो छोटे ग्राम में (जन्म भूमि में रहे), बलवान् हो तो नगर में (जन्म भूमि में रहे), यह असंगत हो जाते हैं । एक टीकाकार ने यदि मित्रशत्रु (उपर्युक्त व्ययेश) से देखा जाता हो—इसको "विदेश जाता है"—इससे जोड़ा है । दूसरे टीकाकार ने यदि मित्रशत्रु (उपर्युक्त व्ययेश) से दृष्ट हो—इसको

"तत्रैव स्थितिः—" इसके साथ जोड़ा है 'तत्रैव स्थितिः'—इसमें तत्रैव वहाँ ही—इसका एक ने अर्थ किया है—जन्म भूमि में ही; दूसरे ने विदेश में ही। यह सब विद्वानों के विचारणीय विषय हैं ।।२३।।

होरेशाद्व्ययपे विलग्नभवनात् केन्द्रत्रिकोणस्थिते
मित्रस्वोच्चगृहोपगे शुभयुते पार्श्वद्वये मानवः ।
चेतोरम्यमहीचरो दिविचराचार्येन्दुशुक्रक्षिते
दिव्यक्षेत्रमुपैति जन्मधरणीवासस्तदर्थे रिपौ ।। २४ ।।

इस श्लोक में तीन योग बताये गये हैं:—

(i) लग्नेश जिस राशि में बैठा है—उससे बारहवीं राशि का स्वामी अर्थात् लग्नेश से व्ययेश, यदि लग्न से (लग्नेश से नहीं) केन्द्र या त्रिकोण में हो, अपनी मित्र, उच्च या स्वराशि में हो, उसके दोनों ओर (अगल-बगल) शुभ ग्रह बैठे हों तो जातक रमणीक भूमि में यात्रा करता है। उदाहरण : लग्नेश मकर में है। मकर से १२वें धनु का स्वामी बृहस्पति केन्द्र में कर्क (उच्च) राशि का है। बृहस्पति के दोनों ओर शुभ ग्रह हैं। यह उपर्युक्त योग का उदाहरण हुआ है। यद्यपि बृहस्पति से द्वादश में सूर्य भी है। किंतु बुध बृहस्पति के अव्यवहित सान्निध्य में है। इस कारण बृहस्पति के पार्श्वद्वय में शुभ ग्रह है। यदि कर्क में ही बुध और शुक्र दोनों होकर बृहस्पति के अगल-बगल में हों, तो भी यह योग घटित होगा।
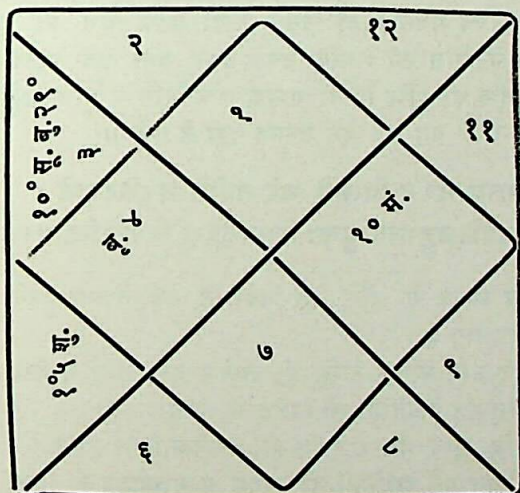
(ii) लग्नेश जिस राशि में है उससे १२वीं राशि का स्वामी यदि बृहस्पति तथा शुक्र से दृष्ट हो तो दिव्य क्षेत्र को प्राप्त करता है। एक टीकाकार के मत से दिव्य क्षेत्र से आशय मनोहर, सुन्दर स्थान है। अन्य मत से पुण्य क्षेत्र तीर्थादि समझना चाहिये।

परन्तु फलदीपिका, अध्याय १४, श्लोक २२ में व्ययेश (लग्न से व्यय स्थान का स्वामी) से मृत्यु के उपरान्त जातक की मरणोपरान्त ऊर्ध्वगति होगी या अधोगति—ऊर्ध्वगति होगी तो किस लोक को जायेगा—शिवलोक, वैकुंठ, स्वर्ग आदि इसका भी निर्देश किया है। परन्तु जातक पारिजात में व्ययेश की चर्चा चल रही है। लग्नेश जिस राशि में हो उससे व्ययेश की। परन्तु लग्न से व्ययेश या लग्नेश से व्ययेश सिद्धान्त एक ही है। स्वर्गादि क्षेत्र को भी दिव्य क्षेत्र(द्यौ आकाश को कहते हैं) कहते हैं इसलिये दिव्य क्षेत्र के प्रसंग में उपर्युक्त चर्चा कर दी गई है।

(iii) किंतु यदि लग्नाधिष्ठित राशि से १२वें का स्वामी लग्नेश से द्वितीय में बैठा हो और लग्नेश का शत्रु हो तो जातक अपनी जन्म भूमि में ही रहता है। "जन्मधरणीवासस्तदर्थे रिपौ" का अन्य अर्थ होता है कि यदि इस व्ययेश से द्वितीय भाव में शत्रु ग्रह बैठा हो तो जातक अपनी जन्म भूमि में ही रहता है। हमें द्वितीय अर्थ विशेष उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि प्रसंग व्ययेश का चल रहा है इसलिये 'तत्' व्ययेश के लिये प्रयुक्त हुआ है।

काशी से प्रकाशित जातक पारिजात के इस श्लोक का हिन्दी अनुवाद निम्नलिखित दिया है "लग्नेश से व्ययाधीश लग्न से केन्द्र या कोण में हो, मित्र ग्रह या अपने उच्च भवन में हो उसके दोनों तरफ शुभ ग्रह हों तो मनुष्य रमणीय भूमि में वास करे। यदि उसके दूसरे तथा छठे स्थान पर वृहस्पति, चन्द्रमा और शुक्र की दृष्टि हो तो जातक जन्म भूमि में वास करे और दिव्य स्थान प्राप्त करे।" यह अर्थ हमें सम्मत नहीं है ॥२४॥

विदेशभाग्यं चरभे विलग्ने चरे तदीशे चरखेटदृष्टे ।
स्थिते स्वदेशे बहुभाग्ययुक्तः स्थिरग्रहैर्भूरिधनान्वितः स्यात् ॥२५॥

भाग्योदय स्वदेश में होगा या विदेश में यह निश्चय करने के लिये एक अन्य प्रकार बतलाते हैं।

(i) यदि लग्न में चर राशि हो, लग्नेश चर राशि में बैठा हो और उसे चर राशि स्थित ग्रह देखते हों तो विदेश में भाग्योदय हो।

(ii) यदि लग्न स्थिर राशि हो, लग्नेश स्थिर राशि में हो और उसे स्थिर राशि स्थित ग्रह देखते हों तो स्वदेश में भाग्योदय हो ॥२५॥

होराधीशे पापखेटे रिपुस्थे
पापक्षेत्रे भानुपुत्रेण युक्ते ।
शूद्रप्रायो राहुणा केतुना वा
जातश्चाण्डालोऽथवा नीचतुल्यः ।। २६ ।।

लग्नेश यदि पाप ग्रह हो, छठे स्थान में बैठा हो और पाप ग्रह की राशि में बैठकर शनि के साथ हो तो जातक शूद्रप्राय (शूद्र के समान अर्थात् गर्हित आचार-विचार वाला होता है । यदि ऐसा लग्नेश पाप क्षेत्र में छठे घर में बैठा हुआ राहु या केतु के साथ हो तो जातक चाण्डाल के समान आचार-विचार वाला अथवा नीचतुल्य होता है । यह श्लोक शब्दानुवाद के दृष्टिकोण से सरल है । लग्नेश जातक स्वयं का परिचायक है । पाप क्षेत्र में पाप ग्रह के साथ बैठेगा तो पापाचारी होगा, शुभ ग्रह के क्षेत्र में शुभ ग्रह के साथ बैठेगा तो शुभाचार शीलवान् होगा । सत्संग से गुण उदय होते हैं; पाप (ग्रह) के संग से पापाचार । धार्मिक व्यक्ति के घर में या देवालय में बैठेंगे तो शुभाचार सम्पन्न होंगे । डाकू, वेश्या, चोर, शराबी के घर में या ताड़ीखाने में बैठेंगे तो वैसा ही आचार-व्यवहार होगा । सिद्धान्त वहुत सुन्दर है । इसमें मतभेद की गुंजायश नहीं । मूल में 'रिपौ'—इसका सवने लग्न से छठे स्थान (षष्ठ स्थान शत्रु स्थान कहलाता है)—यह अर्थ किया है । परन्तु मूल श्लोक के अनुसार लग्नेश भी पाप ग्रह होना चाहिये और षष्ठ स्थान भी पाप क्षेत्र । नीचे लग्न तथा प्रत्येक लग्न से छठे स्थान की राशि दी जाती है ।

लग्न	षष्ठ राशि	लग्न	षष्ठ राशि
१	६	७	१२
२	७	८	१
३	८	९	२
४	९	१०	३
५	१०	११	४
६	११	१२	५

इनमें केवल सिंह तथा वृश्चिक लग्न होने से लग्न में पाप राशि और उससे षष्ठ में पाप राशि होती है । और सूर्य को पाप ग्रह माना जाय या क्रूरग्रह मात्र इसमें भी मतभेद है । वृश्चिक लग्न होने से लग्नेश अपनी स्वराशि मेष में छठे घर का होगा और चाहे षष्ठ में हो लग्नेश का स्वराशि में होना गुण

ही माना जाता है। अवगुण नहीं। इस कारण इस श्लोक में दिया गया सिद्धान्त मान्य होने पर भी, कुण्डली में घटित होना कठिन है ॥२६॥

लग्नाधिपे शोभनराशियुक्ते बलोपयाते तनुपुष्टिमेति ।
लग्नस्थखेटे रिपुनीचभागे दुःस्थानपे देहसुखं न याति ॥ २७ ॥

इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में लग्नेश प्रयुक्त शुभ योग बताया है और उत्तरार्द्ध में लग्न प्रयुक्त अशुभ फल। कहते हैं कि यदि लग्नेश शोभन राशि में हो, बलवान् हो तो जातक का शरीर पुष्ट होता है अर्थात् स्वास्थ्य सुन्दर होता है। लग्न में कोई ग्रह यदि नीच या शत्रु भाग में हो, और दुःस्थान का स्वामी हो तो शरीर में सुख नहीं होता। 'शोभन' राशि का क्या अर्थ? शोभन का साधारण अर्थ है जिसमें ग्रह शोभा बढ़ाये। ग्रह कब शोभा बढ़ाता है? जब वह शुभ राशि में हो, स्वगृही मूल त्रिकोण या उच्च राशि में हो—वह राशि पापाक्रान्त, पापदृष्ट न हो। नीच या शत्रु भाग से क्या तात्पर्य? राशि के षोडश वर्ग, दश वर्ग, सप्त वर्ग या षड् वर्ग प्रसिद्ध हैं। वर्ग और भाग एक ही बात है। इसलिये यहाँ भाग से तात्पर्य वर्ग से है और वर्गों में प्रधान नवांश हैं। यहाँ राशि भी षड् वर्ग या सप्त वर्ग के अन्तर्गत आ जाती है किन्तु मूल में 'भाग' शब्द आया है, इस कारण मुख्यतः नवांश का विचार करना। गौण रूप से अन्य वर्गों का भी दुःस्थान षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश को कहते है। परन्तु लग्न का स्वामी दुःस्थान पति होकर लग्न में हो तो शुभ ही हैं। यथा मेष या वृश्चिक लग्न में मंगल, वृष या तुला लग्न में शुक्र, कुंभ लग्न में शनि।

यह श्लोक इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है कि भाव और भावेश दोनों का विचार करना चाहिये।

जातक रत्न लग्नेश के विषय में कहता है:—

लग्नेश्वरः क्रूरसमन्वितश्चेज्जातस्य सौख्यादि विनाशमेति ।
तादृक् फलं नाशगतेऽपि तस्य शुभेक्षितश्चेत्फलमन्यथा स्यात् ॥

जातकालंकार अध्याय २ का श्लोक २ है:

देहाधीशः सपापो व्ययरिपुमृतगः देहसौख्यं न दद्याद्
जन्तोर्निजर्क्षे व्ययरिपुमृतिपस्तत्फलस्यैव कर्ता ।
मूर्तौ चेत्क्रूरखेटस्तदनुतनुपतिः स्वीयवीर्येण हीनः
नानानेकाकुलः स्याद् व्रजति हि मनुजो व्याधिमाधिप्रकोपम् ॥२७॥

विलग्नदर्शी तनुपो विलग्नग
स्त्रयोऽपि षष्ठाष्टमरिष्फराशिपाः ।
सपत्ननीचोपगताश्च दुर्बला
यदि स्वपाके न फलं प्रकुर्युः ॥ २८ ॥

साधारण रूप से अच्छे और बलवान् ग्रह किसी भाव को देखें, उसके स्वामी हों या उसमें बैठें तो उस भाव की अपनी दशा अंतर्दशा में वृद्धि करते हैं। इस साधारण नियम का अपवाद इस श्लोक में बतलाया है, कहते हैं कि लग्न को देखने वाला ग्रह, लग्न का स्वामी तथा लग्न में स्थित—यह तीनों ग्रह यदि छठे, आठवें, या बारहवें के स्वामी हों तथा शत्रु राशि या नीच राशि में स्थित होकर दुर्बल हों तो अपने पाक (दशा, अन्तर्दशा में) फल नहीं देते। फल नहीं देते—इसका अर्थ समझना चाहिये कि शुभ फल नहीं देते। साधारण नियम है कि लग्न या लग्नेश से सम्बन्ध करने वाले ग्रह शुभ फल देते हैं। जातकादेश-मार्ग अध्याय १०, श्लोक १० में कहा है :

लग्नलग्नेशसम्बन्धात् तद्भावानुभवः स्मृतः ।
सम्बन्धात् पुनरन्येषां तादृशं फलमादिशेत् ॥

फलदीपिका अध्याय १५ का श्लोक है २७ भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है :

लग्नेश्वरो यद् भवनेशयुक्तो यद्भावगस्तस्य फलं ददाति ।
भावे तदीशे बलभाजितेन भावेन सौख्यं व्यसनं बलोने ॥

इसी साधारण नियम का अपवाद जातक पारिजात ने बताया है कि शत्रु राशि, नीच राशि में स्थित दुर्बल ग्रह, षष्ठ, अष्टम या द्वादश का अधिपति हो—तो लग्न में हो, लग्न का स्वामी हो या लग्न को देखे तो शुभ फल नहीं करता।

इस सिद्धान्त को अन्य भावों पर भी लागू करना चाहिये। शंकाः—पहिले कई बार शत्रु या नीच राशिगत दुर्बलता ग्रह या षष्ठाष्टम द्वादशाधिपति अनिष्ट होता है यह कह चुके हैं, फिर इस श्लोक का विधान कर वही बात पुनः क्यों कही ?

समाधानः—लग्न और लग्नेश दोनों बहुत शुभ माने गये हैं। लघुपाराशरी के अनुसार यदि अष्टमेश लग्नेश भी हो तो 'स एव शुभसंधाता" वह शुभ फल देता है। ऐसी स्थिति में यह भ्रांति न हो जाये कि लग्नेश—षष्ठेश, अष्टमेश या व्ययेश होकर भी सर्वदा, सर्वथा अपनी दशा, अन्तर्दशा में शुभ फल ही

प्रदान करेगा, इसका निवारण करने के लिये कहा कि यदि नीच या शत्रु राशि में दुर्बल होगा तो शुभ फल प्रदान नहीं करेगा। बारंबार कथन करने से सिद्धान्त हृदय में खचित हो जाता है, इसी कारण—एक ही बात को अनेक प्रकार से समझाने की शास्त्रीय पद्धति है।

यदि लग्नेश सदैव शुभ ही होता तो सत्याचार्य यह क्यों कहते कि

यो लग्नाधिपतेः शत्रुर्लग्नेशान्तर्दशां गतः।
करोत्यकस्मान्मरणं सत्याचार्यमतं त्विदम्॥

अथवा सुश्लोकशतककार क्यों लिखते कि

गुरुलग्नेश्वरे सोत्थे दुःखं भ्रात्रादितो दिशेत्

अथवा

देहाधिपः पापयुतोऽष्टमस्थो व्ययारिगो वांगसुखं निहंति।
सर्वत्र भावेषु च योजनीयमेवं बुधैर्भाववशात् फलं हि॥२८॥

लग्ने जलर्क्षे शुभखेचरेन्द्रै-
र्युक्ते तनोः स्थौल्यमुदाहरन्ति।
लग्नाधिपे तोयखगे बलाढ्ये
सौम्यान्विते तत्तनुपुष्टिमाहुः॥ २९ ॥*

यदि लग्न में जल राशि हो और लग्न में शुभ ग्रह बैठे हों तो मोटा शरीर होता है। यदि लग्नेश जल राशि में हो, बलवान् हो, सौम्य ग्रह के साथ हो तो पुष्ट शरीर होता है। जल राशि कौन कौन सी हैं—इसके लिये देखिये अध्याय १, श्लोक १७॥२९॥

लग्नाधिपे नाशगते तु शुष्क-
राशौ तनोः कष्टमतीव कृच्छ्रम्।
लग्नांशपस्थांशपराशिनाथः
शुष्कग्रहः स्यात्तनुशुष्कमाहुः॥ ३० ॥

लग्नेश यदि शुष्क राशि में अष्टम में हो तो शरीर व्याधियुक्त होता है। शुष्क राशि कौन कौन सी हैं इसके लिये देखिये अध्याय १२, श्लोक १५। शुष्क

---

* श्लोक २९ जातकरत्न में भी उपलब्ध होता है। वहाँ तृतीय चरण में 'तोयखगे' के स्थान में 'तोयगते' पाठ है।

राशि कहिये, निस्तोय भूतल चर कहिये। एक ही बात है। यह राशियाँ हैं मेष, सिंह, तुला और धनु।

जन्म लग्न में जो नवांश है उसे कहिये 'क'। 'क' का स्वामी जिस ग्रह के नवांश में हो उसे कहिये 'ख'। 'ख' जिस राशि में बैठा हो उस राशि के स्वामी को कहिये 'ग'। 'ग' यदि शुष्क राशि—मेष, सिंह, तुला या धनु में हो तो शुष्क शरीर अर्थात्—दुबला-पतला शरीर होता है।

एक अन्य पुस्तक में तृतीय चरण का पाठान्तर है "लग्नाधिपस्थांशपराशि-नाथः"। इसका अर्थ होगा लग्नेश जिस नवांश में है—उस नवांश का स्वामी जिस राशि में है—उस राशि का स्वामी यदि शुष्क राशि में हो तो शरीर दुबला-पतला होता है ॥३०॥

मध्यस्थे रिपुखेटयोस्तनुपतौ जातोऽरिभीतो भवेत्
केतौ लग्नगतेऽथवा फणिपतौ दुःस्थे विलग्नाधिपे।
तत्पाके तदरीशभुक्तिसमये वैकल्यमङ्गे वदेत्
लग्ने शत्रुपतौ फणिध्वजयुते देहव्रणं देहिनाम् ॥ ३१ ॥

इस श्लोक में ३ योग बताये गये हैं : (१) यदि लग्नेश दो शत्रु ग्रहों के मध्य में हो तो जातक सदैव शत्रुओं से भयभीत रहता है। एक ही राशि में तीन ग्रह हों—बीच में लग्नेश हो, अगल-बगल में शत्रु ग्रह हों तो भी शत्रु मध्य हो सकता है और लग्नेश जिस राशि में है उसके अगल बगल (पिछली और आगे) की राशियों में शत्रु ग्रह हों तो भी लग्नेश शत्रु ग्रहों के मध्य में होगा। सिद्धान्त यह है कि चाहे अलग-अलग राशियों में चाहे एक या दो राशियों में—लग्नेश बीच में हो, अगल-बगल शत्रु हों। यदि लग्नेश और शत्रु ग्रह के बीच में कोई लग्नेश का मित्र ग्रह आ जाये तो लग्नेश शत्रुओं के बीच में नहीं कहलायेगा। (२) यदि राहु या केतु लग्न में हो और लग्नेश षष्ठ, अष्टम या द्वादश में हो तो लग्नेश की महादशा में, लग्नेश जिस राशि में बैठा है उससे षष्ठ राशि के स्वामी की अन्तर्दशा में—जातक के शरीर में वैकल्य (रोग या आघात) होता है। एक ग्रंथ में 'तदरीशभुक्तिसमये' की जगह पाठान्तर है 'तदधीशमुक्तिसमये' अर्थात् लग्नेश जिस राशि में है—उस राशि के स्वामी वाली अन्तर्दशा में। (३) यदि लग्न में षष्ठेश राहु या केतु के साथ बैठा हो तो शरीर में व्रण होता है ॥३१॥

बलैर्विहीने यदि लग्ननाथे
केन्द्रत्रिकोणे सति रोगभाक् स्यात् ।
लग्नेश्वराधिष्ठितराशिनाथे
दुःस्थानगे दुर्बलदेहवान् स्यात् ॥ ३२ ॥

(१) यदि लग्नेश बल से हीन हो (निर्बल हो) और केन्द्र या त्रिकोण में बैठा हो तो जातक रोगी होता है । यहाँ केन्द्र या त्रिकोण में बैठना रोग का हेतु नहीं है । केन्द्र या त्रिकोण में बैठना तो गुण है । बल से हीन होना रोग का हेतु है ।

(२) लग्नेश जिस राशि में बैठता है—उसका स्वामी यदि दुःस्थान (६, ८, १२) में हो तो शरीर दुर्बल होता है ॥३२॥

सक्रूरो देहपो देहसौख्यहाऽन्त्यारिरन्ध्रगः ।
सारीशे देहपे दुःस्थे लग्नस्थे वाऽथ रोगवान् ॥ ३३ ॥

(१) यदि लग्नेश क्रूर ग्रह के साथ षष्ठ, अष्टम या द्वादश में हो तो शरीर सुख का नाश करता है ।

(२) यदि लग्नेश, षष्ठेश के साथ छठे, आठवें या बारहवें हो या लग्न में भी हो तो जातक रोगी होता है ॥३३॥

लग्ने सपापे लग्नेशे बलहीनोऽपि रोगवान् ।
लग्नेशे दुर्बले कोपी निर्व्याधिः केन्द्रकोणगे ॥ ३४ ॥

इसमें २ योग बताये गये हैं ।

(१) यदि लग्न में पापग्रह हो, लग्नेश बलहीन हो तो भी जातक रोगी होता है । लग्न में पापग्रह होना, लग्नेश का बलहीन होना दोनों रोगी होने के हेतु हुए । (२) लग्नेश दुर्बल हो, केन्द्र या त्रिकोण में हो तो जातक "निर्व्याधिः" (व्याधिरहित, नीरोग) होता है । केन्द्र या त्रिकोण में स्थिति अच्छी मानी गई है इस कारण नीरोग होता है, किन्तु लग्नेश के दुर्बल होने से मनुष्य क्रोधी होता है । कुछ टीकाकारों ने द्वितीय योग को दो पृथक् पृथक् योगों में विभाजित कर दिया है (i) लग्नेश दुर्बल हो तो कोपी हो (ii) लग्नेश केन्द्र या त्रिकोण में हो तो नीरोग होता है । परन्तु हमारा विचार हमने ऊपर व्यक्त कर दिया है । लग्नेश के बलहीन होने से रोगी होता है यह तो ऊपर द्वितीय चरण में लिख ही चुके हैं, इस कारण तृतीय तथा चतुर्थ चरण मिलकर अन्य योग

बनाते हैं। प्रथम और द्वितीय चरण को मिलाकर एक योग बनाया जा सकता है तथा दो पृथक् पृथक् योग भी । लग्न में पापग्रह का होना भी रोग का हेतु है। लग्नेश का बलहीन होना भी । दोनों होंगे तो रोग का प्राबल्य और स्वास्थ्य का दौर्बल्य अधिक मात्रा में होगा ।।३४।।

देहेशस्थितराशीशे नाशगे दुर्बलो भवेत् ।
भावेशाक्रान्तराशीशैर्दुःस्थैर्भावाश्च दुर्बलाः ।। ३५ ।।

इसमें दो योग बताये हैं । एक सामान्य जो सब भावों पर लागू होता है । दूसरा उसी सिद्धान्त का लग्न भाव पर उपयोग ।

(१) यदि लग्नेश जिस राशि में हो उस राशि का स्वामी लग्न से अष्टम भाव में हो तो जातक दुर्बल होता है ।

(२) कोई भी भावेश जिस राशि में हो, उस राशि का स्वामी दुःस्थान में हो तो वह (विचारणीय भाव) दुर्बल होता है ।
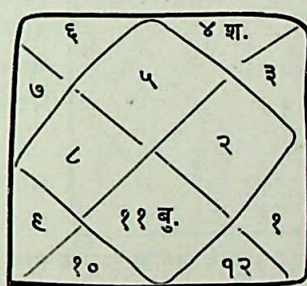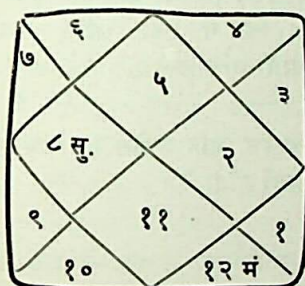
ऊपर प्रथम उदाहरण कुण्डली में लग्नेश सूर्य वृश्चिक राशि में है और वृश्चिक का स्वामी अष्टम में गया इस कारण शरीर सुख में कमी करता है। द्वितीय उदाहरण में धनेश बुध कुंभ में हैं और कुंभ का स्वामी शनि द्वादश में गया इस कारण धनभाव को बिगाड़ता है ।।३५।।

सर्पारयोर्बृहद्बीजो योगे वा सर्पमन्दयोः ।
लग्ने कुजे नाभिगुल्फव्रणस्थौल्यं समादिशेत् ।। ३६ ।।

इसमें दो योग बताये हैं:—

(१) मंगल और राहु साथ हों या शनि और राहु एक साथ हों तो अंडकोष की वृद्धि होती है । इस बीमारी को अंग्रेजी में हाइड्रोसील कहते हैं ।

(२) यदि लग्न में मंगल हो तो नाभि प्रदेश में, गुल्फ (टखनों) में या वृषण (अंडकोष) में स्थौल्य (मोटापन फूलना आदि) होता है। इसमें तीन योग बताये हैं ॥३६॥

लग्नेशे यदि रिष्फगे दिनकरस्थारातिनाथान्विते
जायावान् बहुरोगवान् कृशतनुः संरक्तगौरद्युतिः।
लग्नर्क्षादरिनाथपेन च युते जातोऽसिताङ्गो यदा
साहौ लग्नपतौ तु वञ्चनविषाद्भीतिं समेति ध्रुवम् ॥ ३७ ॥

(१) यदि लग्नेश लग्न से १२वें घर में हो और लग्नेश के साथ—जन्म कुण्डली में सूर्य जहाँ है, उस राशि के छठी राशि का स्वामी भी हो तो जातक कृश शरीर वाला, अनेक रोगों से पीड़ित ललाई लिये हुए गौर वर्ण का, जायावान् (पत्नी से युक्त)होता है उसके शरीर पर रोम(बाल)अधिक होते हैं।
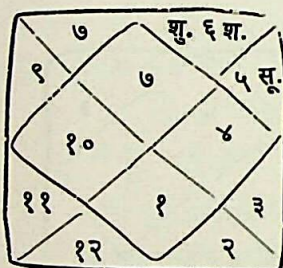
प्रस्तुत उदाहरण कुण्डली में शुक्र लग्नेश है और लग्न से १२वें घर में पड़ा है। सूर्य सिंह राशि का है। सिंह से छठी राशि मकर है। मकर का स्वामी शनि लग्नेश शुक्र के साथ १२वें घर में है।

(२) लग्नेश यदि षष्ठेश के साथ हो तो जातक श्यामवर्ण होता है।

(३) यदि लग्नेश राहु के साथ हो तो कोई उस जातक को धोखे से विष देता है। मूल में शब्द हैं "वञ्चनविषात् भीतिं।" इसके दो अर्थ हो सकते हैं। (i) जातक को धोखे से विष दिये जाने का भय हो (ii) जातक को विष से तथा कोई उसके साथ धोखेबाजी करे—इसका भय हो।

श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने अपनी टीका में तीन पृथक् पृथक् योगों को मिलाकर एक योग कर दिया है—कि पहले योग की शर्त की पूर्ति हो तभी द्वितीय या तृतीय योग घटित होगा। हमारे विचार से तीन पृथक् पृथक् योग हैं॥ ३७॥

लग्ने शुभे शोभनदृष्टियुक्ते
बाल्यात् सुखं तन्नहि पापयोगात्।
दुःखी भवेत्पापबहुत्वयोगे
लग्ने तु बाल्यान्मरणान्तमाहुः ॥ ३८ ॥

लग्न में यदि शुभ ग्रह हो और लग्न पर शोभन दृष्टि हो तो जातक बाल्यावस्था से ही सुख प्राप्त करता है किन्तु पापयोग होने से ऐसा नहीं होता। यदि लग्न में बहुत पापग्रहों का योग हो तो बचपन से मरण पर्यन्त जातक दुःखी रहता है।

मूल में 'लग्ने शुभे' शब्द आये हैं—जिसका दो टीकाकारों ने अर्थ किया है कि लग्न में शुभ राशि हो। परन्तु यदि यह अर्थ करें तो इसमें दो आपत्ति होती हैं। (१) प्रथम तो यह कि केवल वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धनु तथा मीन लग्न वाले ही बाल्यावस्था से सुखी होने का योग प्राप्त कर सकेंगे। (२) द्वितीय यह कि 'लग्न में शुभग्रह की स्थिति के बिना ही, लग्न की केवल शुभ राशि होने से और शुभ ग्रह दृष्ट होने से ही यह योग घटित हो जायेगा।

इस अध्याय के प्रारंभिक १२ श्लोकों में भाव विवेचन के मूल सिद्धान्त बतलाये गये हैं और प्रथम श्लोक में ही भाव की शुभता के लिये उसमें शुभ ग्रह की स्थिति को एक मुख्य हेतु माना गया है।

शोभन दृष्टि से क्या तात्पर्य? साधारणतया शुभग्रह की दृष्टि तो शोभन दृष्टि है ही किन्तु क्या शुभ और शोभन का एक ही अर्थ है? नहीं। शोभन शुभ की अपेक्षा अधिक व्यापक अर्थ है। हमारे विचार से लग्नेश की लग्न पर दृष्टि भी शोभन के अन्तर्गत आ जायेगी।

पाप योग से क्या तात्पर्य? पाप स्थिति से तो पाप योग होगा ही, किन्तु पापदृष्टि का भी पाप योग में समावेश हो जाता है। पाप योग और पाप सम्बन्ध एक ही बात है और सम्बन्ध केवल युति से नहीं अपितु दृष्टि से भी होता है यह निर्विवाद है। होराशास्त्र के पंचम अध्याय के १६वें श्लोक की टीका में रुद्रभट्ट एक प्राचीन सुपरिचित नियम का उद्धरण देते हैं "योगे दृष्टि-फलं योज्यं दृष्टौ योगफलं तथा।"

यहाँ नवीन पाठकों के हृदय में एक शंका उठ सकती है कि लग्न से बचपन का क्या सम्बन्ध? ज्योतिष के एक सम्प्रदायानुसार लग्न बाल्यावस्था है और युवावस्था दशम भाव, प्रौढ़ावस्था सप्तम भाव तथा वृद्धावस्था चतुर्थ भाव। इसी सिद्धान्त पर इंग्लैंड के प्रसिद्ध ज्योतिषी स्वर्गीय एलेन लिओ ने 'हाउ टू जज ए नेटिविटी' अर्थात् 'जन्मकुण्डली का विचार कैसे करना' के पृष्ठ १६७ पर लिखा है कि यदि चतुर्थ स्थान में अत्यन्त पाप पीड़ित शनि हो तो जातक को अपनी वृद्धावस्था दारिद्र्य में व्यतीत करनी पड़ती है। उनके तथा अन्य पाश्चात्य ज्योतिषियों के मत से चतुर्थ भाव से जीवन के अन्तिम वर्षों का विचार करना

चाहिये। साथ में सेठ श्री रामकृष्णजी डालमिया की जन्मकुण्डली दी जा रही है। इन्होंने अपनी जवानी और प्रौढ़ावस्था में करोड़ों रुपये कमाये और बैंक, बीमा कम्पनी तथा अनेक उद्योगों (सीमेण्ट, चीनी, जूट, कागज, केमिकल समाचार पत्र) की स्थापना की और भारतवर्ष के प्रमुख उद्योगपतियों में मूर्धन्य स्थान प्राप्त किया किन्तु वृद्धावस्था में करोड़ों का घाटा हुआ, जेल गये और श्रीसम्पन्नता नष्ट हो गई ॥३८॥

देवलोकांशके शुक्रे लग्नेशे गोपुरांशके ।
लग्ने शुभग्रहैर्दृष्टे मध्येऽन्ते सौख्यमाप्नुयात् ॥ ३९ ॥

यदि शुक्र देवलोकांश में हो, लग्नेश गोपुरांश में हो और लग्न शुभग्रहों से दृष्ट हो तो जीवन की मध्यावस्था तथा वृद्धावस्था में सुख प्राप्त करता है। ग्रह देवलोकांश या गोपुरांश में कब होता है, इसके लिये देखिये अध्याय १, श्लोक ४५ तथा ४६।

बिलकुल उपर्युक्त योग घटित हो ऐसी जन्मकुण्डलियाँ तो कठिनता से प्राप्त होंगी। अतः सिद्धान्त समझ लेना चाहिये कि लग्नेश बलवान् हो, लग्न पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो और शुक्र बलवान् हो तो जातक धनी होता है ॥३९॥

लग्ने शुभे धने पापे केन्द्रे पापसमन्विते ।
लग्नेश्वरोत्तमांशस्थे चादौ दुःखमतः सुखम् ॥ ४० ॥

लग्न में शुभग्रह हो, धन (द्वितीय) स्थान में पापग्रह हो, केन्द्र में पापग्रह हो, लग्नेश उत्तमांश में हो तो आदौ (प्रथम वय में) दुःख अतः (उसके बाद) सुख होता है।

इस श्लोक में दो शुभ बातें कहीं; दो पापकारक। लग्न में शुभ ग्रह होना तथा लग्नेश का उत्तमांश में होना शुभफलद है। उत्तमांश ग्रह कब होता है, इसके लिये देखिये अध्याय १, श्लोक ४५। और दो कष्टकारक योग कहे— धन स्थान तथा केन्द्र में पापग्रह होना। श्लोकार्थ स्पष्ट है। यहाँ हमें एतावन्मात्र कहना है कि लग्नेश चाहे सौम्य ग्रह हो चाहे क्रूर उसे क्रूर नहीं गिनना चाहिये। लघुपाराशरी की सज्जनरञ्जनी टीका में टीकाकार ने निम्नलिखित प्राचीन वचन उद्धृत किया है:

लग्नाधीशः विलग्नस्थः केन्द्रगो वा यदा भवेत् ।
अविशेषेण शुभदो न तत्र क्रूरसौम्यता ॥४०॥

लग्नेशे शुभराशिस्थे शुभग्रहनिरीक्षिते ।
गोपुरांशगते वाऽपि षोडशाब्दात्परं सुखम् ॥ ४१ ॥

लग्नेश शुभ राशि में हो, शुभग्रह से निरीक्षित हो या गोपुरांश में हो तो १६वें वर्ष से सुख होता है। अर्थ सरल है। हमारे विचार से लग्नेश यदि स्वराशि या उच्चराशि में हो तो भी उसे शुभ राशिस्थ ही समझना—चाहे वह क्रूर राशि में भी हो, स्वगृही या उच्चस्थ होने से शुभ फलकारक ही होता है ॥४१॥

लग्नेशस्थांशनाथे तु केन्द्रकोणोच्चसंयुते ।
लाभे वा बलसंयुक्ते त्रिंशद्वर्षात्परं सुखम् ॥ ४२ ॥

लग्नेश जिस नवांश में हो, उस नवांश का स्वामी उच्च होकर केन्द्र या कोण में हो या बली होकर लाभ में हो तो ३०वें वर्ष से सुख होता है।

जातकदेशमार्ग अध्याय १० का श्लोक १२ नीचे दिया जा रहा है इन्होंने भी लग्नेश, चन्द्र राशीश तथा भावेश जिन नवांशों में स्थित हों उन्हें महत्त्व दिया है।

लग्नेशजन्मेश्वरभावनाथा येषु स्थिता भेष्वथवांशपेषु ।
तद्राशिजाताश्च फलन्ति भावास्तदीयनीचोच्चग्रहोद्भवा वा ॥

'अंशेश' अर्थात् नवांश स्वामी के बलाबलानुसार फल में कितना तारतम्य हो जाता है इसका निर्देश मंत्रेश्वर ने फलदीपिका अध्याय ५, श्लोक ९ में किया है :

अंशेशे बलवत्ययत्नधनसंप्राप्ति बलोनेंशपे
स्वल्पं प्रोक्तफलं भवेदुदयतः कर्मर्क्षदेशे फलम् ।
अंशस्योक्तदिशं वदेत्पतियुते दृष्टे स्वदेशे फलं
सत्यन्यैः परदेशजं तदधिपस्यांशे स्वदेशे स्थिरे ॥४२॥

लग्ने रव्यादिसंदृष्टे पादशः फलमुच्यते ।
राजसेवी पितृधनो जलपण्यो महाधनः ॥ ४३ ॥

धार्मिकः स्थूलशिश्नः स्याद्विद्याशिल्पयशोऽन्वितः ।
राजपूज्यो व्रतयुतो वेश्यासक्तो धनी सुखी ॥ ४४ ॥

मन्दहृष्टे विलग्ने तु वृद्धस्त्रीको मली खलः।
केनाप्यदृष्टं लग्नं चेद्राशिग्रहवशाद्वदेत् ॥ ४५ ॥

लग्ने स्वामीक्षिते राजा तत्प्रियो वा धनी सुखी।
सौम्येक्षितेऽखिलं सौम्यं पापहृष्टे त्वशोभनम् ॥ ४६ ॥

सुखी लग्ने द्वयादिदृष्टे सर्वदृष्टे नृपो भवेत्।
लग्ने त्रयः शुभा राजा दुःखी पापग्रहत्रयम् ॥ ४७ ॥

इन पाँच श्लोकों में विविध ग्रहों की लग्न पर दृष्टि का फल वताया है। अतः इनकी एक साथ व्याख्या की जाती है। मूल में जो 'दृष्टे पादशः' (श्लो० ४३) कहा है उसका एक पाद (एक चरण या चौपाई) दृष्टि यह अर्थ नहीं समझना। पादशः का अर्थ है कि श्लोक के प्रत्येक पाद (चरण) में एक ग्रह की दृष्टि का फल वताया गया है।

यदि सूर्य लग्न को देखे तो राजसेवी (राजा या गवर्नमेण्ट की सेवा करने वाला) तथा पैतृक धन लाभ करे; चन्द्रमा देखे तो जल में उत्पन्न पदार्थ में व्यापार करने वाला और महाधनी हो। मूल में 'जलपण्यो' शब्द आया है। हमारे विचार से चन्द्रमा जल प्रधान ग्रह है, इस कारण जलपण्य का प्रयोग किया। आजकल के सन्दर्भ में जहाज देश से बाहर जलमार्ग द्वारा वस्तुओं का आयात निर्यात भी इसमें शामिल कर लेना चाहिये। सूर्य पितृकारक, राजकारक ग्रह है इसलिये तदनुरूप फलादेश किया। चन्द्रमा लक्ष्मी सहोदर है। इसी ग्रंथ के अध्याय २ श्लोक ४९ में कहा है 'चेतोबुद्धिनृपप्रसादजननी संपत्करश्चन्द्रमाः' अर्थात् चन्द्रमा सम्पत्ति कारक भी होता है। इस कारण चन्द्रमा की दृष्टि का फल महाधनी कहा है। वहुत से पाठक यह तर्क कर सकते हैं कि करोड़ों कुण्डलियों में चन्द्रमा सप्तम में स्थित होकर लग्न को देखते हैं किन्तु वे महाधनी तो क्या धनी भी नहीं हैं। तर्क वहुत उचित है। केवल एक योग से पूर्ण फलादेश नहीं हो सकता। राजयोग भी होते हैं। उनके भंग करने वाले भी योग होते हैं। धन योग होते हैं अन्य योग दारिद्रकारक भी होते हैं। द्रष्टा ग्रह के बलाबल के अनुसार भी प्रभावों में अन्तर हो जाता है। इसे न केवल चन्द्र की दृष्टि के प्रसंग में ध्यान रखना चाहिये, अपितु सर्वत्र स्मरण रखना चाहिये ॥४३॥

मंगल लग्न को देखे तो धार्मिक हो और उस पुरुष की जननेन्द्रिय स्थूल हो (यदि स्त्री की कुण्डली हो तो उसकी शिश्नस्थानीय भगनासिका स्थूल हो यह उद्दीप्त कामवासना का लक्षण है। मंगल का कामवासना से विशेष सम्बन्ध है।

मंगल मकर में उच्च होता है, इसी कारण कन्दर्प को मकरकेतन कहा गया है। और सब निर्देश तो ज्योतिषशास्त्र सम्मत हैं किन्तु मंगल की दृष्टि से धार्मिक होता है यह कैसे कहा? क्योंकि बृहज्जातक के 'एकग्रहस्य सदृशे फलयोर्विरोधे····' इस श्लोक की टीका में रुद्रभट्ट लिखते हैं "कुजस्य फलमधर्मनिरतेषु प्रीति·········· कुजः स्वदशायामधर्मनिरतेषु प्रीतिं जनयति।" फलदीपिका अध्याय २, श्लोक ३ के अनुसार 'असत्योक्ति' का विचार मंगल से करना। पंचम उपासना और वुद्धि का स्थान है और इसी ग्रन्थ के अध्याय ८, श्लोक ७२ में लिखा है कि मंगल पंचम में हो तो जातक 'विधर्मी' होता है। अध्याय ८, श्लोक १ में कहते हैं कि सूर्य और मंगल एक साथ हों तो 'अनृतवाक्' झूठ बोलनेवाला और पापी होता है। अतः मंगल की लग्न पर दृष्टि हो तो धार्मिक होता है। यह किस हेतु से लिखा गया यह पंडितों का विचारणीय विषय है। हमारे विचार से मंगल दांभिक वनाता है धार्मिक नहीं।

यदि बुध लग्न को देखे तो विद्वान् हो, शिल्पी हो और यशस्वी हो। यह आवश्यक नहीं कि विद्वान् भी हो और शिल्पी भी हो। वैसे तो शिल्प भी एक विद्या है परन्तु साधारणतः जिस अर्थ में विद्वान् शब्द प्रयुक्त है, वैसे विद्वान् शिल्पी नहीं होते और सुन्दर कल, पुर्जे, मूर्ति, लकड़ी के शिल्प में प्रवीण विद्वान् नहीं होते। अतः बुधजनित गुण बुध की दृष्टि से होते हैं यह अर्थ कर सामञ्जस्य करना चाहिये। बृहस्पति की लग्न पर दृष्टि हो तो राजपूज्य तथा व्रती होता है। व्रती क्या? जो व्रतोपवासनियम परिचर्यादि से भगवद् भक्ति करे। यदि शुक्र लग्न को देखे तो वेश्या में आसक्त, धनी, और सुखी हो ॥४४॥

यदि शनि लग्न को देखे तो वृद्धस्त्री (अर्थात् नवयुवती नहीं) (चाहे अपनी पत्नी हो या अन्य स्त्री) में रत, दुष्ट और मलिन शरीर या मलिन वस्त्र पहननेवाला (या दोनों) होता है। यदि कोई ग्रह लग्न को न देखे तो लग्न में जो ग्रह हो, तदनुसार फल कहे॥४५॥

लग्न को यदि लग्न का स्वामी देखे तो जातक राजा, या राजा का कृपा-पात्र तथा धनी होता है। शुभ ग्रह लग्न को देखे तो शुभ फल, पापग्रह लग्न को देखे तो अशुभ फल ॥४६॥

यदि दो ग्रह लग्न को देखें तो सुखी हो। दो से अधिक देखें तो तदनुसार अधिक सुखी हो। यदि सब ग्रह लग्न को देखें तो नृप (राजा-सम्प्रति उच्च अधिकारी) हो। यदि लग्न में तीन शुभ ग्रह हों तो राजा हो। तीन पाप ग्रह लग्न में हों तो दुःखी हो ॥४७॥

लग्नाधिपोऽतिबलवानशुभैरदृष्टः
केन्द्रस्थितः शुभखगैरवलोक्यमानः ।
मृत्युं विधूय विदधाति सुदीर्घमायुः
सार्द्धं गुणैर्बहुभिरूर्जितया च लक्ष्म्या ।।४८।।

लग्नेश (i) अति बलवान् हो (ii) केन्द्र में स्थित हो (iii) शुभ ग्रह उसको देखते हों (iv) पाप ग्रह न देखते हों तो बलारिष्ट आदि जनित मृत्यु का उन्मूलन करता है (क्योंकि अमर तो हो नहीं सकता, कभी तो मृत्यु होगी ही) दीर्घायु होता है और गुणवान् तथा लक्ष्मीवान् होता है । यहाँ लग्नेश में जो जो गुण होने चाहियें वह सब बता दिये हैं। शुभ ग्रहों से दृष्ट हो, पाप ग्रहों से दृष्ट न हो, इसके अन्तर्गत यह भी अर्थ आ जाता है कि शुभ ग्रह या ग्रहों से युति हो, पाप ग्रह या पाप ग्रहों से युति नहीं हो । जितने गुण ऊपर बतलाये हैं वे सब तो किसी कुण्डली में मिलते नहीं । गुण जितनी मात्रा में हों उतना ही अधिक शुभ फल होगा ।।४८।।

द्वितीय भावफल

अब द्वितीय भावफल प्रारंभ करते हैं

वित्तं नेत्रं मुखं विद्या वाक्कुटुम्बाशनानि च ।
द्वितीयस्थानजन्यानि क्रमाज्ज्योतिर्विदो विदुः ।।४६।।

धन, नेत्र, मुख, वाणी, कुटुम्ब, भोजन इनका विचार द्वितीय भाव से किया जाता है। जिस क्रम से विद्या आदि का ऊपर उल्लेख किया है, उसी क्रम से इस ग्रंथ के इस अध्याय में इनका विवेचन किया गया है । द्वितीय स्थान से विशेषकर संचित धन का विचार किया गया है। पंचम स्थान से पाश्चात्य ज्योतिषी सट्टा, लॉटरी, घुड़ दौड़ आदि से द्रव्य प्राप्ति का योग देखते हैं; अष्टम स्थान से भूमि के अन्दर गड़े हुए धन, निधि, मृत-धन (विरासत, किसी के मरने के बाद बीमा कम्पनी से बीमा का द्रव्य) का विचार किया जाता है। एकादश स्थान से लाभ देखा जाता है । द्वितीय स्थान से और एकादश से आय। इनमें क्या अन्तर है ? एकादश स्थान बलवान् हो तो आमदनी होगी, किंतु यदि द्वितीय स्थान निर्बल होगा तो धन संचित नहीं होगा । द्वितीय स्थान बलवान् होगा तो संचित धन तो चिरकाल तक रहेगा किंतु मासिक या वार्षिक आय कम होगी । पहिले द्रव्य, सोना चाँदी, रत्न आदि के रूप में रखा जाता

था इस कारण ज्योतिष के कतिपय स्थानों में द्वितीय स्थान से सोना, चाँदी, रत्न आदि का भी विचार करना यह भी लिखा है। चतुर्थ स्थान से भूसम्पत्ति, जमीन जायदाद का विचार किया जाता है और नवम से भाग्य का जिसके अन्तर्गत धन, आय, भूसम्पत्ति आदि सभी आ गये।

द्वितीय स्थान से कुटुम्ब का विचार भी किया जाता है। कुटुम्ब क्या? जो लोग जातक के घर में रहें, साथ में खायें पीयें। जिनका कुटुम्ब स्थान निर्बल होता है उनकी सन्तान, पुत्र, पुत्रियाँ, पौत्र, पौत्री, दौहित्र, दौहित्री, भाई, बहिन, भाञ्जे, भाञ्जी, भतीजे, भतीजी, माता, पिता, जामाता, सम्बन्धियों से भरपूर घर रहता है और जिनका कुटुम्ब स्थान निर्बल रहता है उनका कुटुम्ब बहुत सीमित रहता है।

द्वितीय स्थान का कारक बृहस्पति है। वाक् शक्ति—वाणी का कारक बुध है, यह स्मरण रखना चाहिये। कारक से भावाधीश अच्छे स्थान पर पड़े, दोनों (भावेश और कारक की युति हो) परस्पर दृष्टि हो तो विशेष शुभ फल होता है। यदि कारक से भावेश छठे, आठवें, बारहवें हो तो अच्छा फल नहीं होता।

प्रत्येक भाव का विचार कैसे करना—भाव, भावेश, भाव में कौन से ग्रह बैठे हैं, कौन देखते हैं, भावेश किस राशि या भाव में है, किनके साथ या किन से दृष्ट है, बलवान् है या निर्बल, यह अध्याय के प्रारंभिक १२ श्लोकों में बता चुके हैं। आगे उन्हीं नियमों को प्रत्येक भाव पर लागूकर नियम बताये गये हैं। मूल सिद्धान्त हृदयंगम हो जाने से, प्रत्येक भाव सम्बन्धी नियमों को समझने में सुगमता होती है ॥४६॥

वित्तायोदयराशयः पतियुता वित्ताधिको जायते
लाभस्थौ धनलाभपौ निजसुहृत्तुङ्गादिगौ चेत्तथा।
तद्वल्लाभधनाधिपौ तनुगतावन्योन्यमिष्टग्रहौ
लग्नेशे धनलाभराशिपयुते लग्ने बहुद्रव्यवान् ॥५०॥

इस श्लोक में चार धन योग बताये हैं। निम्नलिखित ग्रह स्थिति होने से जातक बहुत धनी होता है। (१) धनेश (द्वितीयेश) धन (द्वितीय में हो, लाभेश (एकादशेश) लाभ में हो तथा लग्नेश लग्न में हो (२) धनेश और लाभेश अपनी उच्च राशि या स्वराशि या मित्रराशि में स्थित होते हुए—दोनों लाभ में हों। उदाहरण के लिये नीचे दी गयी कुण्डलियाँ देखिये।
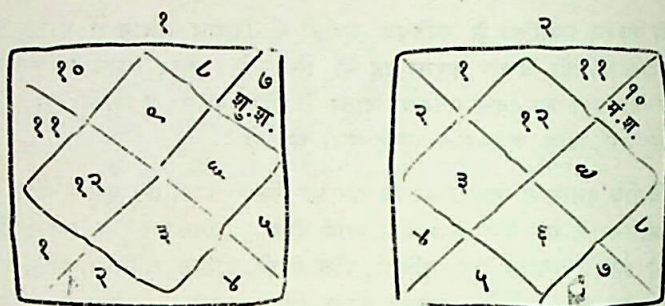
कुण्डली नं०१ में धनेश शनि उच्च होकर लाभ में बैठा है और लाभेश शुक्र स्वगृही है। कुण्डली नं०२ में धनेश मंगल और लाभेश शनि दोनों एक साथ लाभ में बैठे हैं। मंगल उच्च और शनि स्वगृही है। परन्तु सब लग्न वालों के लिये यह सम्भव नहीं कि लाभ स्थान धनेश की उच्च राशि हो, इस कारण ऊपर जो उदाहरण कुंडलियाँ दी गई हैं वह उत्तम पक्ष है। यदि एक स्वगृही और एक मित्र क्षेत्री हो तो मध्यम पक्ष है। यहाँ नैसर्गिक मैत्री समझना क्योंकि धनेश और लाभेश के एक साथ बैठने से ही तात्कालिक शत्रु तो हो ही जायेंगे। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि मूल में 'तुंगादिगौ' तुंग आदि कहा है। आदि का तात्पर्य? अर्थात् स्वनवांश स्वद्रेष्काणादि वर्गों में वली हों तो भी जातक अति धनी होगा (३) लाभेश और धनेश मित्र हों और एक साथ लग्न में बैठें तो भी जातक बहुत धनी होता है। (४) लग्न में लग्नेश, लाभेश और धनेश तीनों बैठें तो भी यही फल प्रत्युत ऊपर (३) का जो फल बताया उससे भी अधिक फल होगा ऐसा हमारा विचार है क्योंकि लग्नेश, धनेश, लाभेश तीनों की युति हो जायेगी और लग्नेश स्वगृही अर्थात् बलवान् होगा ॥५०॥

धनोपयातः प्रथमोऽथ दर्शी ग्रहो द्वितीयो धनपस्तृतीयः।
तत्पाकभुक्तौ धनलाभमेति क्रमेण तत्कारकवर्गमूलात् ॥५१॥

इसमें वह तीन ग्रह बताये हैं जो धन लाभ कराते हैं। (१) प्रथम जो धन स्थान में बैठा हो (२) द्वितीय जो धन स्थान को देखता हो (३) तृतीय जो धन स्थान का मालिक हो। ये ग्रह अपनी महादशा में और अन्तर्दशा में धन लाभ कराते हैं। किस प्रकार? अपने "कारकवर्गमूलात्।"

यह श्लोक का अनुवाद हुआ। पर केवल अनुवाद किसी विषय के हृदय को नहीं खोलता। अतः व्याख्या की आवश्यकता पड़ती है। क्या धन स्थान में बैठा

हुआ ग्रह सदैव धन लाभ कराता है ? नहीं। आगे ऐसे योग दिये गये हैं जहाँ द्वितीय स्थानगत ग्रह धन लाभ नहीं प्रत्युत धन हानि करते हैं। धन स्थान को देखने वाले ग्रह स्वयं नैसर्गिक शुभ हों या अच्छे भाव के स्वामी हों, तभी धन लाभ कराते हैं। संकेत निधि में धन भाव में यदि क्षीण चन्द्र, बुध दृष्ट हो तो धन क्षय होता है :

एवं कृशोब्जो धनगो ज्ञदृष्टो धनक्षयायैव सितस्तदाप्त्यै।

बृहत्पाराशर अध्याय ४४ के श्लोक १६-१८ नीचे दिये जाते हैं:—

सबाधकान् निःस्वयोगान् वच्मि सम्प्रति ते मुने।
वित्तस्थौ कुजसौरी तु कथितौ धननाशकौ॥
बुधेक्षितो महावित्तं कुरुते नियतं द्विजः।
निःस्वतां कुरुते तत्र रविर्नित्यं यमेक्षितः॥
महाधनयुतं ख्यातं शन्यदृष्टः करोत्यसौ।
एवमेव फलं सौरो वित्तस्थेऽर्केक्षिते(?)॥

धनेश सदैव ही धनप्राप्ति कराता है। वली और सुस्थान स्थित धनेश धन दिलाता है। किन्तु निर्बल दुः स्थान स्थित धनेश धन व्यय कराता है।

फलदीपिका अध्याय २० श्लोक १५ में कहा है कि 'दुःस्थ' होने पर द्वितीयेश क्या फल दिखलाता है :

जाड्यं संसदि वाक्कुटुम्बचलनं दुष्पत्रिकां दृग्रुजं।
वाग्दोषं द्रविणव्ययं नृपभयं दुःस्थे द्वितीयाधिपे॥

कहने का तात्पर्य यह है कि धनेश, धनदर्शी और धन स्थान स्थित ग्रह यदि शुभ फल देने में क्षम हो तभी धन-प्राप्ति कराते हैं। यदि यह धन प्राप्ति कराने में क्षम हो तो अपनी दशा अन्तर्दशा में 'कारकवर्गमूलात्' धनागम कराते हैं।

'कारकवर्गमूलात्' का क्या अर्थ ? श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने व्याख्या की है "जो वर्ग धन कारक ने प्राप्त किये हों उस उद्गम से।" इससे अर्थ स्पष्ट नहीं होता। मूल जड़ को कहते हैं। मूलात् का अर्थ यहाँ हुआ—"उस उद्गम स्थान, प्रकार, कार्य आदि से, उस हेतु से, उस उपाय से, उस आधार से" जो वर्ग धन कारक ने प्राप्त किये हों ? प्रायः जब ग्रह, उत्तम, गोपुर आदि वर्ग प्राप्त करता है तव वर्ग प्राप्त करना कहा जाता है। परन्तु ज्योतिष के किसी ग्रंथ में यह विवेचन नहीं किया गया है कि उत्तम वर्ग में ग्रह हो तो इस कारण धन प्राप्ति हो, अमुक वर्ग हो तो अमुक कारण से धन लाभ हो। केवल यह

कहा गया है कि जितने अधिक अच्छे वर्ग में हो उतना अधिक शुभ होता है अतः श्रीसुब्रह्मण्य शास्त्री का अनुवाद इस कारक वर्ग से क्या तात्पर्य है—इस पर प्रकाश नहीं डालता। एक अन्य टीकाकार लिखते हैं कि अध्याय १, श्लोक १०-१२ में राशियों के जो स्थान बताये गये हैं—उन स्थानों में संचार करने से धन प्राप्ति होती है —धन कारक ग्रह जिस वर्ग में हो—उस वर्ग की राशि का जो स्थान है उसमें संचार करने से। परन्तु इस अर्थ से संतोष नहीं होता।

एक मराठी टीकाकार लिखते हैं कि बृहस्पति (धनकारक) उत्तमादि जितने अच्छे वर्गों में हो, उस ही परिमाण से धन स्थित, धनदर्शी तथा धनेश यह तीनों ग्रह धन लाभ कराते हैं। परन्तु यह व्याख्या भी हमें संतोषप्रद नहीं प्रतीत होती। विविध टीकाकारों का मत हमने इसलिये दिया है कि ज्योतिष के विद्वान् विविध मतों का तारतम्य करें, उचित अर्थ क्या होना चाहिये इस निष्कर्ष पर पहुँच सकें।

धनकारक तीन ग्रह बतलाये। धन स्थान स्थित धन को देखने वाला ग्रह तथा धनेश। अब जो ग्रह धन प्राप्ति करायेगा वह उन बातों से, उन हेतुओं से, उन पदार्थों से, उन उपायों से, उन सम्बन्धियों से, उन व्यापारों से, उन क्रियाओं से जो उस ग्रह के वर्ग में आते हैं—जिनका वह कारक है। कौन सा ग्रह किन किन वस्तुओं, कार्यों या सम्बन्धियों का कारक है यह बृहज्जातक अध्याय ८ तथा १०, फलदीपिका अध्याय १९-२० तथा इसी ग्रंथ के अध्याय १५ में बतलाया गया है। पन्द्रहवें अध्याय के श्लोक ४४-५० का अवलोकन करें।

ग्रह जहाँ बैठा है, जिसके साथ बैठा है, जिसके नवांश में है, जिस भाव का स्वामी है तथा जिनका कारक है, उसके अनुसार लाभ या हानि कराता है यह ज्योतिष का मूल सिद्धान्त है। अतः वराहमिहिर ने अध्याय ८ के २०वें श्लोक में कहा है :

संज्ञाध्याये यस्य यद् द्रव्यमुक्तं
कर्माजीवे यस्य यच्चोपदिष्टम्।
भावस्थानालोकयोगोद्भवं यत्
तत्तत् सर्वं तस्य योज्यं दशायाम्॥

उदाहरण के लिये मीन का शुक्र द्वितीय में हो तो चतुर्थेश नवमेश होने से चतुर्थ नवम स्थान सम्बन्धित कार्यों से तथा शुक्र जिन वस्तुओं का कारक है—उस निमित्त या उन निमित्तों से धन दिलायेगा।

प्रत्येक ग्रह स्थान विशेष का कारक होता है, जैसे सूर्य प्रथम, नवम और दशम का। इसके अतिरिक्त पिता, नख, दन्त, चर्म, स्वर्ण, क्रूरता, तीक्ष्णता,

धैर्य, राजा, उद्यम, प्रताप आदि का भी कारक सूर्य होता है। ग्रहों के विचार से सब पदार्थों, कार्यों, सम्बन्धियों को पृथक् पृथक् वर्ग (विभागों, समूहों में) विभाजित कर दिया गया है। धनागम उसी आधार से होता है। यही "कारक-वर्गमूलात्" का आशय है।

जातकपारिजात के प्रणेता का 'कारकवर्गमूलात्' या 'कारक वर्ग' से क्या आशय है यह अध्याय १५ के श्लोक ७२ के अवलोकन से स्पष्ट हो जायेगा ॥५१॥

धनस्थे यदि लग्नेशे निधिमान् बलसंयुते।
दुर्बले पापसंयुक्ते वञ्चनादिफलं वदेत् ॥५२॥

लग्नेश यदि बलवान्, होकर दूसरे घर में बैठा हो तो धनी होता है, किन्तु यही लग्नेश दूसरे घर में बैठने पर भी दुर्बल और पापसंयुक्त हो तो जातक ठगा जाता है। ठगा जाता है यह क्यों कहा? धन हानि होती है, सीधे से यह क्यों नहीं कहा? क्योंकि देखने में तो लग्नेश की द्वितीय स्थान स्थिति धन दिलाने वाली प्रतीत होती है किन्तु परिणाम होता है धनहानि। ठगे जाने में भी यही होता प्रतीत होता है हमें लाभ होगा—सस्ता सोना खरीद रहे हैं। परन्तु वह निकल जाता है—सोने का मुलम्मा किया हुआ पीतल और लाभ के बजाय हानि हो जाती है। अतः दुर्बल तथा पाप संयुक्त लग्नेश की द्वितीय स्थान स्थिति आपात दृष्टि से मूल्यवान् परन्तु वास्तव में हानिप्रद है—इसी कारण ठगा जाना कहा। पापसंयुक्त का अर्थ पापयुत या पापदृष्ट दोनों करना चाहिये क्योंकि दृष्टि का फल भी युति के समान होता है ॥५२॥

धनस्थितः पापदृशा समेतः सपत्ननीचार्ककराभितप्तः।
तत्पाकभुक्तौ धननाशमाहुः स गोचरे दुष्टबलान्विते वा ॥५३॥

द्वितीय स्थान में कोई ग्रह हो, वह पापदृष्ट हो, शत्रुराशि में या नीच राशि में, या अस्त हो तो वह अपनी महादशा या अन्तर्दशा में धननाश कराता है। केवल महादशा और अन्तर्दशा में ही नहीं अपितु गोचर में दुष्ट बलान्वित ग्रह से जब युत हो। मूल में "स गोचरे दुष्टबलान्विते वा" यह कहा है। यहां 'दुष्टबलान्वित' के दो अर्थ हो सकते हैं। जब वह ग्रह स्वयं गोचर में बली और दुष्ट (दुष्टता के लिये सामर्थ्यशाली) हो। दूसरा अर्थ हो सकता है कि जब ऐसा ग्रह गोचर में अन्य दुष्टबल (दुष्टता करने के लिये) ग्रह से योग करे। हमारे विचार से प्रथम अर्थ विशेष उपयुक्त है ॥५३॥

कुटुम्बभावे बहुखेटयुक्ते धनप्रदव्योमचरे बलाढ्ये ।
स्वतुङ्गमित्रस्वगृहोपगे वा धनं समेत्यामरणान्तमाहुः ।।५४।।

यदि द्वितीय स्थान में अनेक ग्रह हों और धनप्रद ग्रह (जो तीन ग्रह ऊपर श्लोक ५१ में बताये हैं) बली हों या स्वगृही, उच्च राशि का या मित्रगृही हो तो जातक जीवन भर (आमरणान्त) धनी रहता है। यहाँ बली या स्व-गृही आदि क्यों कहा ? क्योंकि बिना स्वोच्च या स्वगृही हुए भी ग्रह बली हो सकता है। बल २४ कारणों से होता है। एक हेतु उच्चराशि में होता है, दूसरा स्वराशि में होगा, शेष अन्य २२ हेतु भी हैं। इस कारण बली शब्द का उपयोग किया। बल के लिये देखिये अध्याय दूसरा ।।५४।।

वित्ताधीशे सोदरेशेन युक्ते
लग्नस्थे च भ्रातृवित्तं समेति ।
मातृस्थानस्वामिना मातृवित्तं
यद्भावेशेनान्वितस्तद्धनं स्यात् ।।५५।।

धनेश यदि तृतीयेश के साथ लग्न में बैठे तो भाई का या भाई से धन प्राप्त होता है। धनेश यदि चतुर्थेश के साथ लग्न में बैठे तो माता का या माता से धन प्राप्त होता है। सिद्धान्त यह है कि जिस भावेश के साथ धनेश लग्न में बैठे उस (भावसम्बन्धी यथा तृतीयेश बैठे तो तृतीय भाव, चतुर्थेश बैठे तो चतुर्थ भाव, पंचमेश बैठे तो पंचम भाव इत्यादि) निमित्त से धन लाभ होता है। यह जो धनेश और किसी भावेश का एक साथ लग्न में बैठना उस भाव सम्बन्धी निमित्त से धन लाभ कहा इसमें दो बातों की ओर पाठकों का विशेष ध्यान आकर्षित किया जाता है। नीचे दो कुण्डलियाँ दी जा रही हैं। प्रथम कुण्डली में धनेश और शनि (दशम तथा एकादश का स्वामी) दोनों लग्न में अवश्य हैं परन्तु दशमेश, एकादशेश नीच तब पूर्ण फल कैसे करेगा। दूसरी उदाहरण कुण्डली में धनेश और चतुर्थेश, लाभेश दोनों हैं। दोनों लग्न में हैं—एक स्वगृही, दूसरा उच्च राशि का। अतः धन प्राप्ति योग विशेष हुआ। धनेश चतुर्थेश होने के साथ-साथ लग्नेश, धनेश, चतुर्थेश, लाभेश का लग्न में योग हो गया। अतः इस श्लोक में बताये गये योग के अतिरिक्त अन्य योग भी हो गये।

१

२
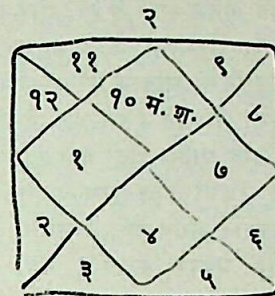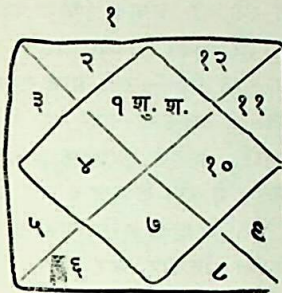
(२) दूसरी वात यह है कि प्राचीन समय में भाई से लाभ, माता से लाभ ......आदि लाभ के निमित्त सीमित थे। भाई से लाभ या माता से लाभ यह उपलक्षण मात्र है। तृतीय स्थान से जितनी बातों का विचार किया जाता है, उन सबसे या उनमें से किसी से लाभ हो सकता है। चतुर्थ स्थान से—भूमि, वाहन आदि जितनी बातों का विचार किया जाता है—यदि उपर्युक्त योगकारक चतुर्थेश है तो उनमें से एक या अधिक हेतु से लाभ हो सकता है। सम्भवतः कुछ पाठक शंका करें कि यदि लग्नेश, द्वितीयेश दोनों की युति लग्न में हो तो उपर्युक्त तर्क से—स्वयं से लाभ होना चाहिये क्योंकि लग्नेश लग्न स्वयं जातक का प्रतिनिधित्व करता है। स्वयं को स्वयं से लाभ कैसे होगा? लाभ तो दूसरे से होता है। इसका समाधान यह है कि जातक को स्वयं अपने पुरुषार्थ से लाभ होता है। इसके अतिरिक्त लग्न से पुत्रवधू का छोटा भाई (पंचम से, सप्तम से पुत्रवधू और उससे तृतीय छोटा भाई), जामाता का छोटा भाई (पंचम अपनी कन्या उससे सप्तम—एकादश अपना जामाता–उससे तृतीय उसका छोटा भाई) दादी (दशम पिता—उससे चतुर्थ। यद्यपि दक्षिण भारत में नवम से पिता का विचार करते हैं किन्तु हम उत्तर भारत के सम्प्रदायानुसार दशम से ही करते हैं) आदि का विचार किया जा सकता है। ज्योतिषी को सम्भावना देखनी चाहिये—क्या इसकी दादी धनिक है? क्या इसका श्वशुर इसे लाभ कराने में क्षम है? इत्यादि बिना यह सब ऊहापोह किये ठीक फलादेश करना सम्भव नहीं ॥५५॥

वित्ताधीशे लग्नगे लग्ननाथे
वित्तस्थानेऽयत्नतो वित्तमेव।
यद्भावस्थौ लग्नवित्तेश्वरौ चे-
त्तन्मूला तु द्रव्यवृत्तिर्नराणाम् ॥५६॥

यदि धनेश लग्न में हो और लग्नेश धन में तो अयत्न (बिना विशेष, आयास या परिश्रम किये, थोड़ा प्रयत्न तो करना ही पड़ता है) धन प्राप्ति होती है। जिस किसी भाव में लग्नेश और धनेश एक साथ बैठें—उसी भाव सम्बन्धी कार्य—जो जो बातें (उस भाव से विचारी जाती हैं उनमें से एक या अधिक कार्य से द्रव्य प्राप्ति होती है। तृतीय भाव से भाई, बहिन, पराक्रम, यातायात आदि से (तथा काल पुरुष का तृतीय भाव मिथुन में होने से बुध के वर्ग में जो कार्य व्यवहार आदि आते हैं उनसे) चतुर्थ से माता, वाहन, भूमि, मकान, मित्र आदि इस प्रकार ऊहापोह कर, परिस्थिति का विचार कर फल कहना चाहिये ॥५६॥

चन्द्रः कुटुम्बभवने शुक्रेण निरीक्षितः प्रदाता च ।
सौम्ये शुभसंदृष्टे स एव धनवान् सदा ज्ञेयः ॥५७॥

यदि चन्द्रमा द्वितीय में हो और शुक्र से दृष्ट हो तो धनाढ्य होता है। यदि बुध द्वितीय में हो और शुभ ग्रह दृष्ट हो तो सदा धनवान् रहता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि धन स्थान स्थित और उसका द्रष्टा ग्रह जितना बलवान् होगा उतना ही अधिक शुभ फल होगा।

१

२
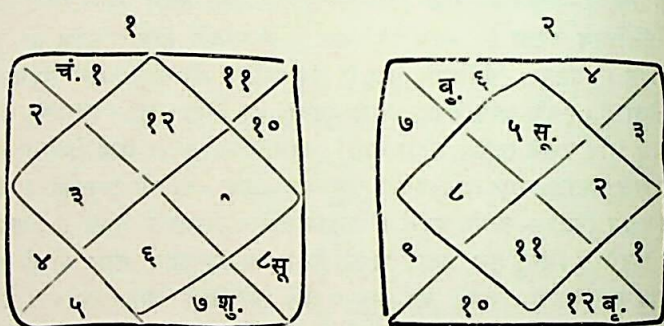
उदाहरण कुण्डली १ में द्वितीय स्थान में चन्द्र है इसको स्वराशिस्थ शुक्र पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। उदाहरण २ में धन स्थान स्थित बुध उच्चस्थ है और उसको स्वराशिस्थ बृहस्पति देख रहा है। अतः उत्तम धन योग हुआ ॥५७॥

अर्थाधीशो यत्र संस्थो नराणां
तस्मिन् काले तत्र वृद्धिविशेषात् ।
तद्भागे च द्रव्यलाभं करोति
वक्रोऽसौ चेद्दिक्षु सर्वार्थसिद्धिः ॥५८॥

जन्म कुण्डली में धनेश जहाँ बैठा हो, उस काल में (धनेश की दशा, अन्त-र्दशा में) विशेष धन वृद्धि होती है—उस भाग में द्रव्य लाभ कराता है। यदि धनेश वक्र हो तो सब दिशाओं में लाभ कराता है। यहाँ धनेश अपनी दशा, अन्तर्दशा आदि में (काल में इस शब्द के अन्तर्गत गोचर भी आ गया—उसकी राशि या नक्षत्र में सूर्य, या बृहस्पति या स्वयं धनेश गोचरवश जायें—यह अर्थ भी आ गया—क्योंकि काल बहुत व्यापक शब्द है, इसका अर्थ केवल दशा, अन्तर्दशा तक ही सीमित नहीं करना चाहिये) धन लाभ कराता है, यह एक उक्ति है।

कोई ग्रह अपना शुभ फल कब कराता है, इसके सम्बन्ध में पृथुयशस ने होरासार अध्याय ३१ में श्लोक १२ में—किस सौर मास में फल होगा—इसका निर्देश किया है :

अन्तर्दशाधिपक्षेत्रे वर्तते भास्करो यदा।
तस्मिन्काले दशाप्रोक्तं फलं भवति निश्चितम् ॥

अर्थात् जिस ग्रह की अन्तर्दशा हो उसके क्षेत्र में (राशि में) (जैसे बुध की अन्तर्दशा हो तो जब मिथुन या कन्या में) सूर्य गोचर वश हो तब उस अन्तर्दशा नाथ का निश्चित फल होता है।

बृहज्जातक के अध्याय २ श्लोक १९ की टीका करते हुए रुद्रभट्ट लिखते हैं :

'स्वदिवससमहोरामासगैरित्यत्र स्वशब्देन स्वकीयाः सर्वेऽपि कालविशेषाः संगृह्यन्ते। तथा हि—आदित्यस्य कालविशेषास्तावद् उत्तरायणं सिंहगुरुः सिंह-मासः सिंहचन्द्रः कृत्तिकोत्तरफल्गुन्युत्तराषाढनक्षत्राणि। तेषु गुरुस्थितिकालः सूर्यस्थितिकालश्च, सूर्यवारः, सिंहराशिः सूर्यकालहोरेत्येवमादयः सूर्यस्य शुभाशुभपाकसमयविशेषः।

अब एक दूसरे शब्द 'तद्भागे' पर विचार कीजिये। शब्दार्थ सरल है—उस भाग में। किस भाग में? यत्र संस्थो० ? जहाँ द्वितीयेश बैठा हो। इसलिये अर्थाधीश ग्रह की दशा का निराकरण हो जाता है। अर्थाधीश जहाँ बैठा हो उस स्थान—राशि या भाव की दिशा में द्रव्य लाभ कराता है। एक मराठी टीकाकार लिखते हैं 'जिस स्थान में बैठा हो, उस स्थान दर्शक दिशा में। श्रीसुब्रह्मण्य शास्त्री टीका करते हैं "जहां साधारणतया ग्रह जा रहा हो उससे निर्दिष्ट प्रदेश में।" परन्तु इस श्लोक में गोचर का निर्देश नहीं है और उस प्रदेश में जो निर्दिष्ट हो, इससे कोई निर्णायक अर्थ नहीं निकलता।

हमारे विचार से 'यत्र संस्थो०' का राशिपरक तथा भावपरक दोनों अर्थ किये जा सकते हैं—परन्तु जहाँ बैठा है—इसका जन्म कुण्डली के सन्दर्भ में हम लोग

—जिस भाव में बैठा है—इसी अर्थ में व्यवहार करते हैं। इसलिये जिस भाव में बैठा है यह अर्थ उपयुक्त होगा और प्रथम, द्वितीय, तृतीय को पूर्व दिशा, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ को उत्तर दिशा, सप्तम, अष्टम, नवम को पश्चिम तथा दशम, एकादश, द्वादश को दक्षिण दिशा मानना चाहिये। यह इस श्लोक का अर्थ हुआ।

किन्तु इस प्रसंग में सारावली अध्याय ५ का श्लोक ३६ दिया जाता है :

आशाबलसमुपेतो नयति स्वदिशं नभश्चरः पुरुषम् ।
नीत्वा वस्त्रविभूषणवाहनसौख्यान्वितं कुरुते ॥

अर्थात् दिग्बली ग्रह अपनी दिशा में जातक को ले जाता है और समृद्ध करता है।

इसी (जातकपारिजात) के अध्याय १७ में कालचक्र दशा के कुछ श्लोकों में राशि के अनुसार भी दिशाओं का फल कहा है। (यथा श्लोक २१, २२, २३, २४)।

ग्रह अपनी दशा में अपनी दिशा में लाभ कराता है, यह जातकपारिजात के अध्याय १५, श्लोक ७१ में भी कहा गया है।

अष्टक वर्ग (अध्याय १०, श्लोक ६७) में राशियों की दिशा से भी लाभ का निर्देश किया जाता है। यह सब ध्यान में रखना चाहिये ॥५८॥

धनेशे लाभसंयुक्ते लाभेशे धनलाभगे ।
तावुभौ केन्द्रगौ वाऽपि धनवान् ख्यातिमान् भवेत् ॥५९॥

धनेशे व्ययषष्ठस्थे व्ययेशे वित्तगेऽथवा ।
लाभेशे रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा धननाशनम् ॥६०॥

व्ययभावगते जीवे वित्तेशे बलवर्जिते ।
शुभैरनीक्षिते लग्ने वित्तनाशं वदेद् बुधः ॥६१॥

लग्नेशे धनराशिस्थे धनेशे लाभराशिगे ।
लाभेशे च विलग्नस्थे निध्यादिधनमाप्नुयात् ॥६२॥

लग्नायधनभाग्येशाः परमोच्चांशसंयुताः ।
वैशेषिकांशगा वापि तदा कोटीश्वरो भवेत् ॥६३॥

दिनेश्वरकरच्छन्ने धनेशे नीचराशिगे ।
पापषष्ठ्यंशसंयुक्ते ऋणग्रस्तो भवेन्नरः ॥६४॥

इन छः श्लोकों में धनी होने के, धन लाभ होने के, धन हानि या ऋण-ग्रस्त (कर्जदार) होने के कुछ योग बताये हैं।

(i) धनेश लाभ में हो और लाभेश धन (द्वितीय) में हो या धनेश और लाभेश दोनों केन्द्र में हों। यहाँ केन्द्र से तात्पर्य लग्न से केन्द्र का है। परन्तु लाभेश धनेश परस्पर एक दूसरे को पूर्ण दृष्टि से देखते हों तो भी धन के लिये अच्छा योग है, ऐसा हमारा विचार है ॥५९॥

(ii) अब इस श्लोक में तीन योग बताते हैं, जिसमें धन नाश होता है (क) धनेश व्यय में हो अर्थात् लग्न से द्वितीय का स्वामी लग्न से बारहवें घर में बैठे (ख) लग्न से १२वें घर का स्वामी लग्न से द्वितीय घर में हो। (ग) ग्यारहवें घर का स्वामी लग्न से छठे, आठवें या बारहवें बैठे ॥६०॥

(iii) बृहस्पति लग्न से बारहवें घर में बैठे, दूसरे घर का स्वामी बलहीन हो और लग्न को शुभग्रह न देखता हो तो धन नाश होता है। बृहस्पति को व्यय में धननाशक क्यों कहा—क्योंकि बृहस्पति धनकारक है। द्वितीय, पंचम नवम, दशम तथा एकादश का कारक भी है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि अध्याय ८ श्लोक ९८ में द्वादश भावगत बृहस्पति का अन्य दुष्ट फल कहा है, किन्तु धननाश नहीं कहा गया है।

बृहज्जातक अध्याय १८, श्लोक ७ में लिखा है कि बारहवें घर में बृहस्पति हो तो खल होता है। रुद्रभट्ट इसकी टीका करते हैं 'खलो निस्सङ्गः'। भट्टोत्पल कहते हैं "खलः क्रूरचेष्टः"।

बृहज्जातक* के अध्याय २०, श्लोक १० का उत्तरार्द्ध निम्नलिखित है :

समुपचयविपत्ती सौम्यपापेषु सत्यः।
कथयति विपरीतं रिःफषष्टाष्टमेषु ॥

इसकी टीका में भट्टोत्पल लिखते हैं:—

'सत्याचार्यस्तु पुनः समुपचयविपत्ती सौम्यपापेषु कथयति। यस्मिन्भावे सौम्याः स्थितास्तस्य भावस्य समुपचयं वृद्धि कुर्वन्ति। यस्मिन्भावे पापाः स्थितास्तस्य भावस्य विपत्ति हानिं कुर्वन्ति। किन्तु रिःफषष्ठाष्टमेष्वेतद्विपरीतं कथयन्ति। रिःफे द्वादशे स्थाने सौम्याः भावहानिं कुर्वन्ति पापाः वृद्धिम्। तेन रिःफे सौम्या व्ययहानिं कुर्वन्ति। पापाः व्ययवृद्धिम्। षष्ठे सौम्याः शत्रुहानिं कुर्वन्ति। पापाः शत्रुवृद्धिम्। अष्टमे सौम्याः मृत्युहानिं कुर्वन्ति, पापाः मृत्युवृद्धिमिति। तथा च सत्यः "सौम्याः पुष्टिं पापास्तद्धानिसंश्रिता ग्रहाः कुर्युः"।

---

* भिन्न भिन्न प्रकाशित संस्करणों में अध्याय संख्या में ये भेद है। केरल से प्रकाशित पुस्तक में अध्याय १८ लिखा है। बंबई से प्रकाशित पुस्तक में अध्याय २०।

सारावली अध्याय ३४, श्लोक ७० में कहा है :—

गुरुचन्द्रदानवेज्या व्ययभवने वित्तपोषणं कुर्युः ॥

इत्यादि मतों को भी ध्यान में रखना चाहिये ।।६१।।

(iv) यदि लग्नेश द्वितीय में हो, द्वितीयेश लाभ में हो और लाभेश लग्न में हो तो निधि आदि धन प्राप्त करता है। अर्थात् अधिक धन प्राप्ति का यह योग है। इस पुस्तक के कई भिन्न-भिन्न स्थानों से प्रकाशित संस्करण देखें—किसी-किसी में लाभेशे च विलग्नस्थे छपा है—किसी-किसी में लाभेशे च धनस्थे। हमें द्वितीय पाठ शुद्ध प्रतीत होता है क्योंकि 'वा' कर देने से केवल लाभेश के लग्न में होने से साधारण उत्तम धन लाभ योग। विशिष्ट (निधि प्राप्त हो) ऐसा योग नहीं होगा।

शास्त्र में सब बातों को एक ही जगह कहने की, या बारम्बार पुनरावृत्ति की परम्परा नहीं है। किसी अध्याय में वर्ग (दशवर्ग या षोडशवर्ग) से शुभाशुभ देखना, कहीं षड्बल की महिमा, कहीं षड्बल में बली होने की प्रशंसा, कहीं ग्रहों के सुयोग या दुर्योग से फलादेश, कहीं रश्मि विचार, कहीं ग्रहों के अस्तादि दोष, कहीं अवस्था (बलादि) भेद से फल में विभिन्नता, कहीं आरोही का शुभफल, अवरोही का दुष्ट फल आदि विविध प्रसंगों में फल कहे हैं। इसलिये कब किस ग्रह परिस्थिति में कितना फल होगा, इसका सर्वेक्षण कर फलादेश करना चाहिये। उदाहरण के लिये लाभेश यदि नीच होकर लग्न में बैठे (यथा तुला लग्न में) या लग्नेश नीच होकर द्वितीय में बैठे तो कितना फल करेगा ?।।६२।।

(v) यदि लग्नेश, लाभेश, धनेश, तथा भाग्येश यह चारों ग्रह अपने परम उच्च अंश में हों (देखिये अध्याय १, श्लोक २९) या वैशेषिकांश में (देखिये अध्याय १, श्लोक ४६) हो तो कोट्याधीश हो (अर्थात् करोड़पति हो)। दसों स्ववर्ग में ग्रह हों, उसमें भी चारों ग्रह लग्न, द्वितीय, नवम तथा एकादश के स्वामी वैशेषिकांश में हों यह प्रायः असम्भव है। इसलिये यह चारों ग्रह जितने अधिक (दशवर्ग में) बली हों उतना जातक अधिक धनी होगा यह अर्थ समझना ।।६३।।

(vi) यदि धनेश (दूसरे घर का स्वामी) नीच हो और सूर्य के समीप होने के कारण अस्त हो तथा पाप षष्ट्यंश में हो तो जातक ऋणग्रस्त होता है। षष्ट्यंश के लिये देखिये अध्याय १, श्लोक ३८,४३। इस श्लोक में ३ दोष बताये हैं। किन्तु अन्य दोष भी होते हैं जो अन्य अध्यायों में बताये गये हैं। जैसे धनेश का विचार करना वैसे ही लाभेश का भी विचार करना चाहिये ।।६४।।

नेत्रविचार

शुक्रेन्दुनयनाधीशैरेकस्थैस्तु निशान्धकः ।
सूर्यशुक्रविलग्नेशैरदृश्यैर्मध्यलोचनः ॥६५॥

(१) यदि शुक्र, चन्द्र और द्वितीय स्थान का स्वामी—तीनों ग्रह एक साथ हों (अर्थात् एक राशि में हों—ज्योतिष के प्राचीन ग्रन्थों में जहाँ कहीं युति या एक साथ होने का निर्देश हो वहाँ एक राशि में युति समझना, भाव में नहीं) तो जातक निशान्ध होता है अर्थात् रात्रि में दिखाई नहीं देता है । प्रायः यह रोग वृद्धावस्था में होता है । इसे रतौंधी कहते हैं । रतौंधी रात्र्यन्ध का अपभ्रंश है ।

(२) यदि सूर्य, शुक्र और लग्नेश, भचक्र के अदृश्य भाग में एक साथ हों तो जातक मध्य लोचन होता है । लग्न स्पष्ट से सप्तम भाव स्पष्ट तक अदृश्य भाग और सप्तम स्पष्ट से लग्न स्पष्ट तक दृश्य भाग होता है । 'मध्यलोचन' का क्या अर्थ—लोचनों का आकार मध्यम होता है या देखने की शक्ति (दृष्टि) मध्यम होती है । इस श्लोक में दृष्टि का प्रकरण है । इस कारण मध्यम दृष्टि होती है, यह अर्थ लेना । मध्यम क्या ? संस्कृत में उत्तम, मध्यम और अधम यह तुलनात्मक अध्ययन में प्रयुक्त होते हैं ? इस कारण मध्यम का अर्थ—जो उत्तम नहीं और अधम भी नहीं । मूल में द्वितीय पंक्ति सूर्य, शुक्र तथा लग्नेश 'एकस्थैः' एक साथ हों यह शब्द नहीं आया है, इसलिये 'एकस्थैः' का अध्याहार ऊपर की पंक्ति से करना क्योंकि भचक्र के अदृश्य भाग में यत्र कुत्रापि सूर्य, शुक्र तथा लग्नेश के होने से जातक मध्य लोचन हो यह अनुभव के विरुद्ध है । यदि लग्नेश और शुक्र दोनों अस्त हों तो यह योग विशेष घटित होगा ।

जातकालंकार के निम्नलिखित श्लोक से उपर्युक्त उक्ति की पुष्टि हो जाती है ।

शुक्रेन्दुभ्यां संयुते नेत्रनाथे निश्यन्धः स्यात् पापदृष्टे शुभैर्न ।
शुक्रार्कौ वा लग्नपेनैव युक्तौ पाताले वा रन्ध्रगे मध्यदृक् स्यात् ॥

अर्थात् यदि द्वितीयेश चन्द्र और शुक्र के साथ हो—उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो, शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो जातक रात्र्यन्ध होता है । यदि सूर्य, शुक्र और लग्नेश एक साथ लग्न से चतुर्थ या अष्टम में हों तो मध्य दृष्टि वाला हो ॥ ६५ ॥

विलग्नवित्तास्ततपःसुतेशा रिपुव्ययच्छिद्रगृहोपयाताः ।
विलग्नसम्बन्धकरः सितश्चेद्विलोचनाभावमुपैति जातः ॥६६॥

यदि लग्नेश, द्वितीयेश, पंचमेश, सप्तमेश, षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश भावों में (कोई कहीं, कोई कहीं या दो या अधिक या सब किसी एक ही त्रिक भाव में) हों और लग्न से शुक्र यदि सम्बन्ध करे तो जातक नेत्रहीन, अंधा हो। मूल में शब्द आया है "विलग्नसम्बन्धकरः सितश्चेत्" तो शुक्र लग्न से सम्बन्ध करे—इसका क्या अर्थ। अर्थात् शुक्र लग्न में हो या लग्न को देखे। हमारे विचार से शुक्र लग्नेश के साथ हो तो भी शुक्र का लग्न से, लग्नेश के माध्यम से, सम्बन्ध हो जायेगा।

एक मराठी टीकाकार "विलग्नसम्बन्धकरः" का अर्थ करते हैं कि शुक्र यदि लग्न में हो। जातकरत्न में भी यह श्लोक उपलब्ध होता है कि वहां तृतीय चरण है 'विलग्नकर्मान्त्यगसंस्थिता वा'—अर्थात् 'या लग्न, दशम या व्यय में हों। यह पाठ उत्तम है परन्तु आपत्ति यह है कि प्रथम पंक्ति में 'व्यय' आ गया और द्वितीय पंक्ति में पुनः 'अन्त्य' (उसी भाव का द्योतक शब्द आ गया) इस कारण पुनरुक्ति हो जाती है। किसी-किसी पुस्तक में जो ऊपर प्रथम पंक्ति में 'सुतेशा' है उसकी जगह पाठ 'सुखेशा' है ॥ ६६ ॥

सितः सुतारीशयुतो विलग्ने नरेशकोपान्नयनप्रमादः।
धनेशभौमौ यदि लग्नयातौ कर्णस्य रोगं कथयन्ति तज्ज्ञाः ॥६७॥

इसमें दो योग वताये हैं।

(१) यदि शुक्र पंचमेश और षष्ठेश के साथ लग्न में हो तो राजा के कोप से नेत्रों में विकृति होती है। पहिले नेत्र निकालने का दण्ड दिया जाता था। अब नहीं दिया जाता है। इसे फलादेश के समय ध्यान में रखना चाहिये।

(२) यदि मंगल और द्वितीयेश दोनों लग्न में हों तो कान का रोग होता है। मीन तथा तुला लग्न वालों को—मंगल ही द्वितीयेश होता है इस कारण इन लग्न वालों को केवल मंगल लग्न में होने से यह योग घटित नहीं होगा ॥ ६७ ॥

शन्यारयोगे गुलिकेन युक्ते नेत्रेश्वरे तत्र तु नेत्ररोगः।
नेत्रे यदा पापबहुत्वयोगे यमेन दृष्टे सति रुग्णनेत्रः ॥६८॥

इसमें दो योग वताये हैं:—

(१) द्वितीयेश, मंगल, शनि और गुलिक एक साथ हों तो नेत्र रोग होता है। द्वितीयेश की पापयुति ही यहां नेत्र रोग का हेतु है। श्रीसुब्रह्मण्य शास्त्री लिखते हैं कि यदि उपर्युक्त द्वितीय स्थान में हो तो नेत्ररोग होता है। यह

अर्थ हमें सम्मत नहीं है क्योंकि द्वितीय स्थान में ही इन सब की युति हो, इस अभिप्राय को प्रकट करने वाला कोई शब्द मूल में नहीं है। दूसरे द्वितीय स्थान में पापग्रह होने का—इसी श्लोक के उत्तरार्द्ध में पृथक् फल कहा है। (२) यदि नेत्र में अधिक पापग्रह बैठें और उनको शनि देखे तो नेत्र रोग होता है। हमारा अनुभव है कि यदि एक भी पापग्रह द्वितीय या द्वादश में हो तो जातक की दृष्टि कमजोर होती है। और एक भी पापग्रह या सूर्य या चन्द्र द्वितीय या व्यय में बैठे और उसको पापग्रह देखें तो अवश्य दृष्टि मान्द्य होता है ॥ ६८ ॥

नेत्रेश्वरे शुभयुते शुभदृष्टियुतेऽथवा ।
शुभांशकस्थिते वाऽपि शुभदृक् स नरो भवेत् ॥६९॥

यदि द्वितीयेश शुभग्रह युत या शुभदृष्ट हो, या शुभनवांश में हो तो जातक सुन्दर नेत्र वाला होता है। यह इस श्लोक का अर्थ है। जातकरत्न के अनुसार भी

लग्नाधिपे सौम्यखगेन युक्ते बलान्विते कारकखेचरेन्द्रे ।
नेत्रे शुभे तद्भुवनेश्वरे वा सौम्यान्वितः सौम्यदृशा समेतः ॥

परन्तु हमारे विचार से ऊपर जो शुभयुत या शुभदृष्ट कहा गया है उन शुभ ग्रहों में शुक्र नहीं लेना क्योंकि शुक्र नेत्र विकार करने के लिये प्रसिद्ध है। जातकालंकार अध्याय २, श्लोक १८ में कहा है:—

नेत्रपृष्ठे च शुक्रो दिनकरतनयः स्यात्पदे चाधरे चेत्
केतुर्वा सैंहिकेयस्तदनु तनुपतिर्भौमवित्क्षेत्रसंस्थः ।
आभ्यामालोकितः सम्भवति हि कतिचित् स्थानगो वा तदानीं
नेत्रे रोगी नरः स्यात् प्रवरमतियुतैर्होरिकैर्ज्ञेयमेवम् ॥

वृहत्पाराशर अध्याय १४ में द्वितीय भावफल के प्रसंग में कहा है :—

शुक्रेण युक्तो यदि नेत्रनाथः शुक्रस्य वार्क्षादिग्रहत्रयस्य ।
सम्बन्धवान् स्याद्यदि देहपस्य नेत्रं विधत्ते विपरीतभावम् ॥
तत्र स्थितौ चन्द्ररवी निशांध्यं जात्यन्धतां नेत्रपदेहपार्काः ।
पंत्रर्क्षनाथेन युतास्तदांध्यं कुर्वन्ति मात्रादिफलं तथेदृक् ॥

नेत्रप्रकरण यहां समाप्त हो रहा है। आगे दूसरा प्रकरण प्रारम्भ होगा। जातकपारिजात के इस प्रकरण में नेत्ररोग के कतिपय एवं कर्णरोग का एक

योग दिया है । इस प्रकरण में वृहज्जातक अध्याय २३ के श्लोक ३, १०, ११, १२ दिये जा रहे हैं

निधनारिधनव्ययस्थिता रविचन्द्रारयमा यथा तथा ।
बलवद्ग्रहदोषकारणैर्मनुजानां जनयंत्यनेत्रताम् ।।

जिस मनुष्य की जन्म कुंडली में द्वितीय, षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश में सूर्य, चन्द्र, मंगल तथा शनि हों—किसी भी क्रम से (चाहे इनमें से दो, तीन या चारों एक ही घर में हों अन्य घर, २, ६, ८, १२ में से खाली हों तो) बलवान् ग्रह के दोष—वात, पित्त, कफ आदि से अनेत्रता नेत्रहानि (दृष्टिहानि) होती है ।

नवमायतृतीयधीयुता न च सौम्यैरशुभा निरीक्षिताः ।
नियमाच्छ्रवणोपधा तदा रदवैकृत्यकराश्च सप्तमे ।।

नवम, एकादश, तृतीय तथा एकादश में पापग्रह हों और शुभ ग्रहों से दृष्ट न हो तो बहरापन या कर्णरोग करते हैं । सप्तम में पापग्रह दाँतों में विकृति करते हैं (दाँतों में विकार या ऊवड़-खावड़ भद्दे दाँत) ।

उदयत्युडुपे सुरास्यगे सपिशाचोऽशुभयोस्त्रिकोणयोः ।
सोपप्लवमण्डले रवावुदयस्थे नयनापवर्जितः ।।

यदि राहु से ग्रस्त चन्द्रमा लग्न में हो (अर्थात् जब चन्द्र ग्रहण के समय जन्म हो और चन्द्रमा लग्न में हो) और त्रिकोण में दो पापग्रह—मंगल, शनि हों, तो जातक पिशाचाविष्ट होता है । यदि लग्न में ग्रस्त (ग्रहण के समय जन्म हो) सूर्य हो तथा त्रिकोण (५वें तथा ९वें स्थान) में दो पापग्रह—मंगल और शनि हों तो नेत्र से हीन हो ।

इसी अध्याय का तीसरा श्लोक है

लग्नाद् व्ययारिगतयोः शशितिग्मरश्म्योः
पत्न्या सहैकनयनस्य वदन्ति जन्म ।
द्यूनस्थयोर्नवमपंचमसंस्थयोर्वा
शुक्रार्कयोर्विकलदारमुशंति जातम् ।।

जिस व्यक्ति के छठे, बारहवें सूर्य चन्द्र हो (एक ग्रह छठे में, दूसरा बारहवें । तो वह एकनयन (काना) होता है और उसकी स्त्री भी कानी होती है । उत्तरार्द्ध

में कहा है कि यदि सूर्य, शुक्र एक साथ पंचम या सप्तम या नवम में हो तो उसकी स्त्री विकल (रोगिणी, किसी अंग से हीन होती है) विकल का अर्थ यहां एकांगहीनता है क्योंकि भगवान् गार्गि का वचन है :

पंचमे नवमे द्यूने समेतौ सितभास्करौ ।
यस्य स्यातां भवेद्भार्या तस्यैकांगविवर्जिता ॥

वृहज्जातक अध्याय २० के प्रारम्भ में जो कहा गया है कि लग्न में सूर्य हो तो विकल नयन हो, मेष का सूर्य लग्न में हो तो तिमिर नयन (चक्षु रोगी) हो, सिंह का सूर्य लग्न में हो तो निशान्ध हो, कर्क का सूर्य लग्न में हो तो बुद् बुदाक्ष (पुष्पिताक्ष) हो, यह सब भी नेत्र रोग सम्बन्ध में स्मरण रखना चाहिये ॥ ६९ ॥

मुखविचार

जातोऽसौ सुमुखः शुभे धनगते तुङ्गादिवर्गान्विते
तद्भावे यदि सौम्यवर्गसहिते वाक्सिद्धिमेति ध्रुवम् ।
आज्यस्पर्शमुपैति वित्तगृहभे भौमे दिनेशेक्षिते
जातः कोद्रवमुख्यभुग् धनगते राहौ च पापेक्षिते ॥७०॥

इस श्लोक में अनेक योग वताये हैं । उनका क्रमशः निर्देश करते हैं ।

(१) यदि धन स्थान में शुभ ग्रह अपने उच्च आदि (स्व, अधिमित्र, वर्गोत्तम आदि) वर्ग में हो तो जातक सुन्दर मुख वाला होता है। यहाँ सुन्दर मुख होने का एक हेतु वताया है । शुभ ग्रह द्वितीय स्थान को देखें तो भी हमारे विचार से यही फल होगा।

मुख शब्द के दो अर्थ हैं:—आनन (चेहरा) और मुँह जिसके द्वारा भोजन किया जाता है। यहाँ इसका अर्थ चेहरा है । फलदीपिका अध्याय ६ के अष्टम श्लोक का चतुर्थ चरण है—'लग्नाद्वित्तगतैः शुभैस्तु सुशुभो योगो न पापेक्षितैः' अर्थात् लग्न से द्वितीय स्थान में शुभ ग्रह हों और उनको पाप ग्रह न देखते हों तो सुशुभ योग होता है। इस श्लोक में 'वित्तगतैः' शुभ ग्रहों के लिये वहुवचन आया है । किन्तु हमारे विचार से एक भी शुभ ग्रह, शुभ राशि तथा वर्गों में वलवान् हो और पाप ग्रह से वीक्षित न हो तो सुशुभ योग होगा । यह तो स्पष्ट ही है कि जितने अधिक शुभ ग्रह होंगे उतना अधिक शुभफल होगा। सुशुभ योग का भी वही फल लिखा है जो शुभग्रह जनित सुनभा (सुनफा) आदि का होता है ।

(२) उस (द्वितीय) भाव में (अर्थात् भाव मध्य में) यदि शुभ ग्रहों के वर्ग हों तो जातक को वाक् सिद्धि होती है अर्थात् जो बात वह बोलता है वह

सत्य हो जाती है। वाक् सिद्धि का प्रायः इसी अर्थ में प्रयोग होता है। श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने लिखा है कि उसकी अच्छी प्रकार बोलने की शक्ति होती है। परन्तु हमें यह अर्थ सम्मत नहीं है। जातकरत्न में लिखा है:

वागीशे बलसंयुते शुभयुते स्वोच्चादिवर्गस्थिते।
देवेड्ये बलसंयुते शुभयुते वाक्सिद्धिमेति ध्रुवम् ॥

अर्थात् यदि वागीश (द्वितीय स्थानाधिपति) बलवान् हो, शुभयुत हो, स्वोच्चादि वर्गों में और बृहस्पति भी बलवान् हो, शुभयुत हो तो वाक्सिद्धि होती है। हमें जातकरत्न का श्लोक विशेष सुन्दर प्रतीत होता है क्योंकि वाक्सिद्धि के लिये धार्मिक सिद्धि आवश्यक होती है। धर्मक्रिया की सफलता और योग, उपासना भक्ति आदि का प्रतिफल वाक्सिद्धि है और धर्म का कारक बृहस्पति है। इस कारण जातकरत्न ने वाक्सिद्धि के लिये बलवान् बृहस्पति को भी आवश्यक समझा।

(३) यदि द्वितीय में मंगल हो और उसे सूर्य देखे तो आज्यस्पर्श होता है। एक विद्वान् लिखते हैं कि जातक का मुख रक्त विकार के कारण रुग्ण होने से, उसे औषधि रूप में घृताक्त करता हो। श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने आज्य स्पर्श लिखकर ही अपना अनुवाद पूरा कर दिया है और नीचे एक ही टिप्पणी दे दी है कि 'कहा जाता है कि आज्यस्पर्श एक प्रकार का प्रायश्चित्त है। एक मराठी टीकाकार ने भी आज्यस्पर्श की टीका आज्यस्पर्श नामक प्रायश्चित्त की है।

सर्वार्थचिन्तामणि में दो श्लोक आये हैं जिनमें आज्यस्पर्श व्यवहृत हुआ है। नीचे जो दो श्लोक दिये गये हैं उनमें प्रथम में मुद्रित पुस्तक में आज्य सृगादिसहितः स भवेत् तदानीम्' पाठ है। परन्तु 'आज्यसृग्' का कोई उपयुक्त अर्थ नहीं होता। इस कारण हमारे विचार से 'आज्यस्पृशादि' पाठ है। हो सकता है 'आज्यसृग्' कोई रुधिर सम्बन्धी रोग होता हो। वैसी स्थिति में आज्यसृगादि ही पाठ होना चाहिये।

लग्नांत्यशत्रुमदने सति भूमिपुत्रे मांद्यन्विते कमलबन्धुनिरीक्षिते वा।
मूढारिनीचभवने यदि वा क्षितीजे त्वाज्यस्पृशादिसहितः स
भवेत्तदानीम् ॥
मन्दात्मजेन सहिते यदि भूमिपुत्रे वित्तेऽथवा निधनराशि-
मुपागते वा।
तेनैव वीक्षितयुते धनभावनाथे त्वाज्यस्पृशादिनियतं
प्रवदन्ति तज्ज्ञाः।

यहां मंगल की दुर्बलता किंवा मंगल शनि युति या शनि की मंगल पर दृष्टि होने से आज्यस्पर्श कहा। आपाततः शनि की मंगल पर दृष्टि किंवा मंगल की शनि पर दृष्टि अच्छी नहीं होती। अतः यह दुर्योग हुआ।

ऊपर हमने एक टीका का उल्लेख किया है जिसमें विद्वान् टीकाकार ने अर्थ किया है कि जातक का मुख रक्तविकार से युक्त होता है। अतः उसे घृताक्त करना पड़ता है। इस अर्थ की पुष्टि सर्वार्थचिन्तामणि के निम्नलिखित श्लोक से होती है :

विलग्नसप्ताष्टमवित्तराशौ दिनेशयुक्ते क्षितिसूनुदृष्टे।
भौमेऽथवा वासरनाथदृष्टे स्फोटाग्नभीतिं प्रवदेत् खलाद्वा ॥

वैसे जातकपारिजात के चतुर्थ चरण में कोद्रव (कदन्न—जो अन्न गरीब लोग खाते हैं) उसका जिक्र किया है। अतः भोजन के सन्दर्भ में तृतीय तथा चतुर्थ चरण का अर्थ किया जाये सूर्य और मंगल दोनों तेजस् ग्रह हैं और आज्य तेजस् द्रव्य है इस कारण जातक घृतमय पदार्थ खाता है, यह भी अर्थ किया जा सकता है। आज्य और घृत में थोड़ा अन्तर है। 'सर्पिविलीनमाज्यं स्यात् घनीभूतं घृतं भवति। यथा शाकुन्तल नाटक में 'आज्यधूमोद्गमेन'। अस्तु इस योग में ग्रंथकार का तात्पर्य है। आज्यस्पर्श रोग विशेष ही प्रतीत होता है।

(४) यदि राहु धन स्थान में हो और उसे पापग्रह देखता हो तो कोद्रव खाता है। कोद्रव का अर्थ ऊपर दिया जा चुका है ॥७०॥

लग्नास्तार्थाष्टमस्थेऽर्के भौमे वाऽन्यतरेक्षिते।
आज्यस्पर्शोऽग्निभीतिर्वा सम्भवन्ति मसूरिकाः ॥७१॥

यदि लग्न, सप्तम, द्वितीय या अष्टम में सूर्य हो और उसे मंगल देखता हो या इन किन्हीं स्थानों में मंगल हो और उसे सूर्य देखता हो तो आज्यस्पर्श, अग्नि से भीति (जल जाना) या मसूरिका रोग होता है। मसूरिका रोग शीतला (जिसे भाषा में माता कहते हैं) का एक प्रकार है ॥ ७१ ॥

पापैर्युते मुखस्थाने दुर्मुखः पापवीक्षिते।
क्रोधाननो नरः पापी तदीशे गुलिकान्विते ॥७२॥

इसमें दो योग बताये हैं :

(१) यदि द्वितीय स्थान में पापग्रह हों और उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो जातक दुर्मुख (कुत्सित चेहरे वाला) होता है। जितना अधिक पापयुक्त

ग्रौर पापदृष्ट होगा—उतना ग्रधिक कुत्सित मुख होगा। मूल में 'पापैः' बहुवचन ग्राया है। संस्कृत में बहुवचन का ग्रर्थ होता है तीन या तीन से ग्रधिक। वैसा योग मिलना कठिन है। इस कारण इन योगों का ग्राशय लेना चाहिये। इन्हें वेद वाक्य नहीं समझना चाहिये।

(२) यदि द्वितीयेश गुलिक के साथ हो तो जातक क्रोधानन, जिसके चेहरे से सदैव गुस्सा टपकता हो तथा पापी होता है। तीन टीकाकारों ने इस श्लोक को ३ योगों में विभाजित कर दिया है (i) यदि पाप ग्रह द्वितीय में हों तो दुर्मुख, (ii) यदि पाप ग्रह द्वितीय को देखते हों तो क्रोधानन, (iii) यदि द्वितीयेश गुलिक के साथ हो तो पापी ॥७२॥

प्रफुल्लवदनः श्रीमान् केन्द्रे मुखपतौ यदा।
स्वोच्चस्वमित्रवर्गस्थे सुमुखः शुभवीक्षिते ॥७३॥

इसमें दो योग वताये हैं—

(१) यदि द्वितीयेश केन्द्र में हो तो प्रफुल्लवदन ग्रौर श्रीमान् हो। प्रफुल्ल-वदन के दो ग्रर्थ हैं। (i) चेहरा विकसित हो (ii) चेहरे पर ग्रानन्द प्रकट हो। श्रीमान् के भी दो अर्थ हैं। धन का विचार द्वितीय से किया जाता है, इस कारण द्वितीयेश केन्द्र में हो (ग्रर्थात् सु-स्थान स्थित ग्रौर वली हो तो लक्ष्मी-युक्त अर्थात् धनी हो। श्री लक्ष्मी को कहते हैं। दूसरा ग्रर्थ श्री का है कान्ति, सुन्दरता, रूपच्छटा—इसलिये जातक के चेहरे पर कान्ति, लावण्य, मनोहारिता हो यह श्रीमान् का दूसरा अर्थ है।

(२) यदि द्वितीयेश ग्रपने उच्च, स्वयं के मित्र ग्रादि के वर्ग में हो ग्रौर उसे शुभग्रह देखता हो तो सुमुख, दर्शनीय, सुन्दर चेहरे वाला हो। जितने ग्रधिक शुभवर्गों में स्थित वलवान् शुभग्रह द्वितीयेश (तथा द्वितीय भाव को भी—यद्यपि मूल में यह नहीं कहा गया है) को देखेंगे उतना ही सुन्दर जातक का मुख (चेहरा) होगा ॥७३॥

वाग्भावेशे राहुयुक्ते च दुःस्थे
राहुक्रान्तस्थाननाथान्विते च।
पाके भुक्तौ तस्य दन्तामयः स्याद्
जिह्वारोगं तारकासूनुभुक्तौ ॥७४॥

इसमें चार योग बताये हैं।

(१) यदि द्वितीयेश राहु के साथ दुःस्थान में बैठा हो (२) अथवा द्वितीयेश दुःस्थान में बैठकर, राहु जिस राशि में है उसके स्वामी के साथ बैठा हो तो उसकी (द्वितीयेश की) दशा में और राहु की अन्तर्दशा में (ऊपर (१) की परिस्थिति में) या द्वितीयेश की दशा में और राहु जिस राशि में है उस राशि स्वामी की अन्तर्दशा में दाँतों की बीमारी (दन्तविकार, पीड़ा, मसूड़ों से रक्त या पीप आना) हो। (३) और द्वितीयेश की दशा तथा वुध की अन्तर्दशा में जिह्वारोग हो।

श्रीसुब्रह्मण्यशास्त्री तथा एक मराठी टीकाकार ने उपर्युक्त (१) तथा (२) को मिलाकर एक बना दिया है, जो हमें सम्मत नहीं है। मूल में 'च' का अर्थ है—इस परिस्थिति में भी। जातकरत्न का श्लोक है कि

वाग्भावपे षष्ठगते सराहौ राहौ स्थितर्क्षाधिपसंयुते वा।
दन्तादिरोगं पतनं च तेषां भुक्तौ तयोर्वा प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥

इस श्लोक से उसी आशय की पुष्टि होती है, जो जातक पारिजात के श्लोक का अर्थ हमने दिया है। जातकरत्न के अनुसार यदि वाक् (वाणी) भाव का स्वामी अर्थात् द्वितीयेश यदि राहु के साथ लग्न से षष्ठ में हो या द्वितीयेश जिस राशि में राहु है उसके साथ हो (षष्ठ में यह प्रथम चरण से अध्याहार करना) तो दाँत आदि के रोग होते हैं, दाँत गिर जाते हैं उन दोनों की अन्तर्दशा में।

किन दोनों की ? द्वितीयेश तथा राहु की (अथवा राहु जिस राशि में हो उसके स्वामी की—जैसा भी योग कुण्डली में हो)।

यह श्लोक वहुत महत्त्वपूर्ण है। इसलिये नहीं कि इसमें दाँत और जिह्वा के रोग का निर्देश है, प्रत्युत इसलिये कि इसमें राहु के साथ किसी भावेश का दुःस्थान में वैठना वहुत दोषयुक्त वताया गया है। दूसरा महनीय सिद्धान्त जो प्रतिपादित किया है वह यह कि केवल पापग्रह (इस श्लोक में उदाहरणार्थ राहु) ही गर्हित नहीं है, अपितु पाप ग्रह जिस राशि में वैठता है उसके स्वामी को दूषित करता है। याद रखिये यदि आपका शनि नीच राशि का वैठा है तो वह मेष के स्वामी मंगल को दोषयुक्त करता है; यदि आपका मंगल कर्क है तो वह चन्द्रमा की शुभता का भी ह्रास करता है। यदि आपका सूर्य तुला का है तो शुक्र के शुभफल देने की क्षमता में भी न्यूनता करता है। राहु या केतु जिस राशि में हों, उन राशियों के स्वामी को भी दूषित करते हैं। इस सिद्धान्त पर शुभग्रह जिन राशियों में वैठे हों उन राशियों के तत् तत् स्वामियों को भी वल (क्षमता के लिये) प्रदान करते हैं। इसी सिद्धान्त पर अच्छे भावों के स्वामी

जिन राशियों में बैठते हैं उन राश्यधिपों (राशि के तत् तत् स्वामियों) को भी भलाई प्रदान करते हैं, और दुःस्थानों के स्वामी जिन राशियों में बैठते हैं उनको बिगाड़ते हैं। किस हद तक भलाई प्रदान करेंगे या बिगाड़ेंगे यदि ग्रहों (जो भलाई प्रदान करते हैं और जिसको भलाई प्रदान की जाती है अथवा जो बिगाड़ता और जिसको बिगाड़ता है) के बलाबल पर निर्भर करता है।

बुध वाणी का कारक है। इस कारण बुध से जिह्वा का रोग कहा। बहुत सी जन्म कुण्डलियों में हमने देखा कि बुध ने जिह्वा रोग नहीं किया किन्तु जातक ने बुध की अन्तर्दशा में ऐसी वाणी का प्रयोग किया अर्थात् ऐसे वचन बोले जिससे उसकी हानि हुई (नौकरी छूटी, व्यापार में घाटा उठाया आदि)। अंग्रेजी में एक कहावत है कि हम अपने व्यवहार (कार्य) से उतने शत्रु उत्पन्न नहीं करते जितने अपनी वाणी से। इसीलिये संस्कृत का श्लोक है :

परापवादसस्येषु चरन्तीं गां निवारय। अथवा
यदीच्छेत् शाश्वतीं प्रीतिं त्रीणि तत्र न कारयेत्।
वाग्वादमर्थसम्बन्धं परोक्षे दारदर्शनम् ॥७४॥

राहुद्वितीयगृहपौ सहजेशयुक्तौ
जातः समेति गलरोगमतीव कष्टम्।
दारिद्र्यदौ शशिरवी धनराशियातौ
भौमार्कजौ सकलरोगकरौ भवेताम् ॥७५॥

इसमें तीन योग बताये हैं:—

(१) यदि राहु, द्वितीयेश तथा तृतीयेश एक स्थान में हो तो गले-कंठ में कष्टकर रोग होता है। आगे तृतीय चरण में 'द्वितीय स्थान में हों'—यह आया है। इसको उपर्युक्त योग में भी लगायें तो द्वितीय स्थान में राहु, द्वितीयेश तथा तृतीयेश की युति से कण्ठ रोग होगा अन्यत्र नहीं।

(२) यदि सूर्य और चन्द्रमा दोनों धन स्थान में हों तो जातक दरिद्र होता है। एक अन्य पुस्तक में 'शशिरवी' के स्थान में 'रविशनी' पाठ है। इस पाठ के अनुसार यदि सूर्य शनि एक साथ हों तो जातक दरिद्र होता है।

(३) यदि मंगल और शनि एक साथ द्वितीय में हों तो अनेक प्रकार की व्याधियाँ (नेत्र सम्बन्धी, दाँत या जिह्वा आदि की हैं—जो राशि द्वितीय स्थान में हो वह काल पुरुष के जिस अंग में पड़े उसमें भी) होती हैं।

ज्योतिष का सामान्य सिद्धान्त स्मरण रखना चाहिये—

"दोषकृन्नतु सर्वत्र स्वोच्चस्वर्क्षगतो ग्रहः"

अर्थात् स्वराशि किंवा उच्चराशि का ग्रह सर्वत्र दोषप्रद नहीं होता ।।७५।।

विद्यावाग्विचार

वाग्भावेशे गुरुयुते नाशस्थे मूकता भवेत् ।
दोषकृन्न तु सर्वत्र स्वोच्चस्वर्क्षगतो ग्रहः ।।७६।।

वाग्भावेश (द्वितीय भाव का स्वामी) वृहस्पति के साथ, लग्न से अष्टम हो तो मूक(गूंगा) हो। इसका एक अपवाद बतलाया है। किसी साधारण नियम का कोई विशेष नियम बाधक तो नहीं है यह सर्वत्र विचार कर लेना चाहिये। द्वितीय पंक्ति में कहते हैं कि दुर्योग करने वाला ग्रह यदि अपनी उच्च राशि या स्वराशि का हो तो दोषकारक नहीं होता। इस नियम को यहीं नहीं प्रत्युत सर्वत्र ध्यान में रखना चाहिये ।।७६।।

वागीशबुधजीवेषु निर्विद्यो नाशगेषु च ।
केन्द्रेषु ते त्रिकोणे वा स्वर्क्षे वा विद्ययाऽन्वितः ।।७७।।

यदि द्वितीयेश बुध और वृहस्पति तीनों लग्न से अष्टम में हों तो जातक विद्या से हीन हो। यदि यह तीनों ग्रह (एक साथ या पृथक् पृथक् या दो एक साथ एक पृथक्) केन्द्र, त्रिकोण या स्वराशि में हों तो विद्या से अन्वित अर्थात् विद्वान् हो। इस श्लोक की प्रथम पंक्ति का अनुवाद करते हुए 'नाशस्थे' की व्याख्या में श्रीसुब्रह्मण्य शास्त्री लिखते हैं कि 'अपने स्थान से अष्टम'। परन्तु द्वितीय स्थान से अष्टम, लग्न से नवम हुआ जो बहुत शुभ और उत्तम स्थान माना जाता है। इसलिये हम शास्त्री जी के अर्थ से सहमत नहीं हैं। आगे की पंक्ति में केन्द्र त्रिकोण स्थिति को शुभ बताया है जो ठीक ही है ।।७७।।

द्वितीये दुर्बले सौम्ये द्वन्द्वयुद्धहतो भवेत् ।
जीवार्थेशौ दुर्बलौ वा पवनव्याधिमान्नरः ।।७८।।

इसमें दो योग बताये हैं :

(i) यदि द्वितीय स्थान में दुर्बल (देखिये षड्बल प्रकरण, अध्याय २) बुध हो तो द्वन्द्व (दो व्यक्तियों की परस्पर लड़ाई, झगड़ा, मल्लयुद्ध) में मारा जाये। मूल में 'सौम्य' शब्द आया है। सौम्य—अर्थात् बुध। सौम्य शुभग्रह को कहते हैं।

(ii) यदि द्वितीयेश तथा बृहस्पति दुर्बल हो तो वातव्याधियुक्त हो। बृहस्पति 'कफ' का अधिष्ठाता माना जाता है। ऐसी स्थिति में बृहस्पति के दुर्बल होने पर पवनव्याधि (वातव्याधि) क्यों कहा, इसका हेतु स्पष्ट नहीं है ॥७८॥

वाक्स्थानपे देवपुरोहितेन
युक्ते यदा नाशगते तु मूकः।
वाक्स्थानपे सौम्ययुते त्रिकोणे
केन्द्रस्थिते वा शुभदे च वाग्मी ॥७९॥

७६ श्लोक की प्रथम पंक्ति में जो लिखा है वही इस श्लोक की प्रथम पंक्ति है इसका अर्थ पहिले दिया जा चुका है।

द्वितीय पंक्ति में कहते हैं कि यदि द्वितीयेश 'सौम्य' के साथ केन्द्र या त्रिकोण में हो या स्वयं द्वितीयेश शुभग्रह हो और केन्द्र या त्रिकोण में हो, वाग्मी हो। मूल में 'सौम्ययुते' शब्द आया है, जिसके दो अर्थ होते हैं। शुभग्रह सहित या बुध सहित। बुधवाणी कारक है। भावेश तथा कारक की युति शुभ स्थान में उत्तम मानी जाती है ॥७९॥

वागीशस्थांशपे सौम्ये स्वोच्चे वा शुभवीक्षिते।
पारावतांशके वाऽपि वाग्मी पटुतरो भवेत् ॥८०॥

यदि द्वितीय स्थान का स्वामी जिस नवांश में है—उस नवांश का स्वामी शुभग्रह हो और यह शुभग्रह अपने स्वोच्च (अपनी उच्चराशि में हो या शुभग्रह से दृष्ट हो या पारावतांश में हो तो जातक वाग्मी (जिसकी बोलने की शक्ति अप्रतिहत हो) और पटुतर (विशेष प्रवीण) होता है। वाग्मी अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होता है; वाचालता अवगुण माना जाता है। यह 'वाग्मी' और वाचाल में सूक्ष्म अन्तर है। पारावतांश के लिये देखिये अध्याय १, श्लोक ४६। इस श्लोक में कहे हुए सिद्धान्त को स्मरण रखना चाहिये कि न केवल भावेश का विचार कीजिये अपितु भावेश जिस नवांश में है, उस नवांश का स्वामी शुभ है या पाप, अच्छे वर्गों में है या कुत्सित वर्गों में, उच्च स्वराशि, या अधिमित्रराशि में किंवा नीच अधिशत्रु या शत्रुराशि में, शुभयुत शुभवीक्षित है या पापयुत पापवीक्षित—यह सब भी विचार के योग्य हैं ॥८०॥

केन्द्रत्रिकोणगे जीवे शुक्रे स्वोच्चं गते यदि।
वाग्भावपेन्दुपुत्रे वा गणितज्ञो भवेन्नरः ॥८१॥

इसमें दो योग बताये गये हैं:—

(१) बृहस्पति केन्द्र या त्रिकोण में हो तथा शुक्र अपनी उच्चराशि में हो तो गणितज्ञ होता है।

(२) बुध यदि द्वितीय का स्वामी हो तो गणितज्ञ होता है। यह तभी होगा जब वृष या सिंह जन्म लग्न हो।

किन्तु लाखों कुण्डलियाँ ऐसी मिलेंगी जिनमें वृष या सिंह लग्न है किन्तु जातक गणितज्ञ नहीं है, इसलिये हमारे विचार से बुध बलवान् होने से ही जातक गणितज्ञ होगा ॥८१॥

गणितज्ञो भवेज्जातो वाग्भावे भूमिनन्दने ।
ससौम्ये बुधसन्दृष्टे केन्द्रे वा सोमनन्दने ॥८२॥

यदि द्वितीय में शुभग्रह के साथ मंगल हो और (i) उसे बुध देखता हो या (ii) बुध केन्द्र में हो तो जातक गणितज्ञ (गणितशास्त्र में निष्णात) होता है। एक पुस्तक में द्वितीय पंक्ति में पाठान्तर है। उसमें पाठ है 'ससोमे बुधसंदृष्टे केन्द्रे वा सोमनन्दने'। यदि यह पाठान्तर माना जाये तो अर्थ होगा कि यदि द्वितीय में मंगल हो—उसके साथ बुध हो या बुध उसे देखता हो या बुध केन्द्र में हो तो जातक गणितज्ञ होता है। कर्क लग्न है। पंचम, दशम का स्वामी
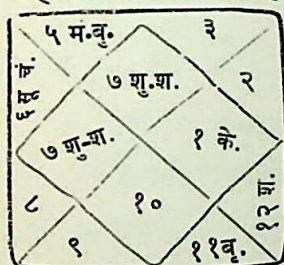
मंगल द्वितीय में है, साथ में बुध है। मंगल कन्या नवांश में है और बुध मंगल के नवांश में है। दोनों को बृहस्पति पूर्ण दृष्टि से देखता है। बृहस्पति वक्री है। तुला नवांश में है। इस तुला नवांश का स्वामी शुक्र स्वगृही, केन्द्र में दिग्बल-युक्त है। यह एक गणितज्ञ की कुण्डली है॥८२॥

वाग्भावपे रवौ भौमे गुरुशुक्रनिरीक्षिते ।
पारावतांशके वापि तर्कयुक्तिपरायणः ॥८३॥

यदि सूर्य या मंगल द्वितीय स्थान का स्वामी हो (अर्थात् जन्म लग्न कर्क, तुला या मीन हो) और (i) उसे (दूसरे घर के स्वामी को) बृहस्पति और शुक्र देखते हों अथवा (ii) वह (सूर्य या मंगल जो भी द्वितीयेश हो) पारावतांश में हो तो तर्क और युक्तिपरायण होता है। वैसे तो लोक व्यवहार में भी

तर्क और युक्ति की आवश्यकता होती है; जो तर्क और युक्ति से सर्वथा शून्य है वह नितान्त मूर्ख है। किन्तु शास्त्र में तर्क और युक्ति की विशेष आवश्यकता है—विशेषकर न्याय लौजिक (यह आंग्लभाषा का शब्द है जिसका अर्थ है तर्कशास्त्र) गणित, कानून में। एक पुस्तक में द्वितीय पंक्ति में पाठान्तर है। लिखा है 'पारावतांशके सौम्ये तर्कयुक्तिपरायण:' अर्थात् यदि बुध पारावतांश में हो तो तर्क तथा युक्तिपरायण होता है ।।८३।।

सम्पूर्णबलसंयुक्ते गुरौ तद्भवनेश्वरे ।
दिनेशभृगुसन्दृष्टे शाब्दिकोऽयं भवेन्नरः ।।८४।।

यदि द्वितीयेश बृहस्पति हो और सम्पूर्ण बलयुक्त हो (ग्रह कब सम्पूर्ण बलयुक्त होता है इसके लिये देखिये अध्याय २) और उसको सूर्य और शुक्र देखते हों तो जातक शाब्दिक (शब्दशास्त्र अर्थात् व्याकरण में निष्णात) होता है। यह सब विद्या के योग प्राय: ब्राह्मणों की जन्म कुण्डली में देखे जाते थे। बृहस्पति से अनेक बातों का विचार किया जाता है। यही योग क्षत्रिय की कुण्डली में मण्डलाधीश या राजा बना सकता है। व्यापारी की कुण्डली में अत्यन्त धनी। किसी साधारण व्यक्ति को अनेक पुत्रों से युक्त। किसी विरक्त को विशिष्ट तपस्वी। यह सब सूक्ष्म तारतम्य को बिना ध्यान में रखे, देश, काल, पात्र का बिना विचार किये जो फलादेश किया जायेगा वह भ्रमपूर्ण होगा।

जातकरत्न में लिखा है :—

गुरौ धनस्थे बलपूर्णयुक्ते शुक्रेण सूर्येण च दृष्टियुक्ते ।
शुक्रे धने स्वोच्चगतेऽथवाऽपि जातो नरः शब्दविशेषशास्त्रात् ।।

अगले पृष्ठ पर एक अति धनाढ्य की कुण्डली दी जाती है। सूर्य और शुक्र उच्च हैं। शुक्र द्वितीय स्थान में है। मंगल, बुध, शुक्र कोई अस्त नहीं है। जन्म लग्न तथा चन्द्र लग्न दोनों से सप्तमेश उच्च है। चन्द्र लग्न से दशम में बृहस्पति है। चन्द्र लग्न से लग्नेश, द्वितीयेश लाभेश का योग त्रिकोण में है। बहुत धनी परिवार में विवाह हुआ। स्वयं बहुत धनाढ्य हैं। ऐसी स्थिति में जातकरत्न का श्लोक 'यदि पूर्ण बली बृहस्पति धन स्थान में हो और सूर्य तथा शुक्र से दृष्ट हो अथवा शुक्र धन स्थान में अपनी उच्चराशि का हो तो शब्दशास्त्री (वैयाकरण हो) फलीभूत नहीं होता किन्तु धन प्रदान करने में फलितार्थ हुआ। यह सब दैवज्ञ को सदैव ध्यान में रखना चाहिये ।।८४।।
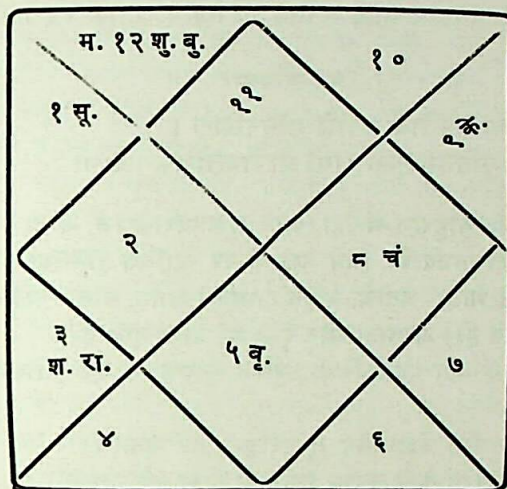
वेदान्तपरिशीली स्यात्केन्द्रकोणे गुरौ यदि ।
बुधेन भृगुणा दृष्टे शनौ पारावतांशके ।।८५।।

यदि बृहस्पति केन्द्र या त्रिकोण में हो और बुध तथा शुक्र से दृष्ट हो और शनि पारावतांश में हो तो जातक वेदान्तशास्त्र में विद्वान् होता है । जातकरत्न में वेदान्तज्ञ होने का एक अन्य योग दिया है :

धने बुधे स्वोच्चगते शनिस्तु पारावतस्थे भृगुरुत्तमांशे ।
गुरौ भृगौ वा तनुभावयुक्ते वेदान्तविज्ञानपरायणः स्यात् ।।८५।।

षट्शास्त्रवल्लभः केन्द्रे जीवे दानवपूजिते ।
सिंहासने गोपुरांशे वाग्भावस्यांशपे बुधे ।।८६।।

यदि बृहस्पति केन्द्र में हो, तथा शुक्र सिंहासनांश में हो, तथा द्वितीय भाव मध्य जिस नवांश में हो उसका स्वामी बुध हो और गोपुरांश में हो तो जातक षट् शास्त्र (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त और छन्द शास्त्र में निष्णात होता है।

कुछ मुद्रित पुस्तकों में चतुर्थ चरण का पाठान्तर है । उनमें लिखा है 'वाग्भावस्थांशपे' । उसका अर्थ होगा—द्वितीय स्थान में जो ग्रह हो वह बुध के नवांश में हो और बुध गोपुरांश में हो ।

गोपुरांश, सिंहासनांश आदि के लिये अध्याय १, श्लोक ४५ ॥८६॥

कुटुम्बविचार

उपजीव्य नरं सर्वे तदीशे गोपुरांशके ।
वर्द्धन्ते मुदितास्तस्य भृगौ पारावतांशके ॥८७॥

यदि द्वितीयेश गोपुरांश में हो और शुक्र पारावतांश में हो तो जातक के उपजीव्य (जो भोजनादि के लिये जातक पर आश्रित हों—आत्मीय परिवार के लोग, कुटुम्बी भाई, भतीजे, बहिन, भान्जे आदि, नौकर-चाकर जो उसके यहाँ भोजन करते हों) प्रसन्नता और वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।

इस श्लोक के वाद किसी-किसी मुद्रित पुस्तक में एक श्लोकार्ध उपलब्ध होता है ।

नास्ति चेद्राजयोगं तु पुरस्कृत्य नरं जनाः ।

खण्डित श्लोक होने से इसका अर्थ नहीं दिया जा रहा है ॥८७॥

जायाकुटुम्बगृहपौ सितपापयुक्तौ
दुःस्थौ च तत्समकलत्रहरौ भवेताम् ।
वित्ताधिपे बलवति स्मरराशिपे वा
तुङ्गादिगे यदि समेति कलत्रमेकम् ॥८८॥

पत्नी का विचार प्रधानतः सप्तम स्थान से किया जाता है, द्वितीय से कुटुम्ब । परन्तु कुटुम्ब का आधार पत्नी है । पत्नी नहीं होगी तो संतान कहाँ से होगी । यद्यपि कुटुम्ब के अन्तर्गत पत्नी तथा संतति के अतिरिक्त परिवार के अन्य सदस्य भी आ जाते हैं किन्तु पत्नी और संतति कुटुम्ब के प्रधान अंग हैं इसलिये कुटुम्व के प्रकरण में पत्नी एक या अधिक होंगी, इसका विचार इस श्लोक में किया गया है ।

(i) यदि द्वितीयेश शुक्र तथा पापग्रह से युत होकर छठे, आठवें या बारहवें बैठा हो तो जितने पापग्रह से युक्त हो उतनी ही पत्नियों का नाश होता है ।

(ii) द्वितीयेश या सप्तमेश यदि उच्च आदि हो तो एक ही पत्नी होती है ।

यहाँ यह सिद्धान्त स्मरण रखना चाहिये कि प्रधानतः सप्तम और सप्तम से तथा शुक्र से (जो स्त्री तथा सप्तम भाव का कारक है) और आनुषङ्गिक रूप से द्वितीय और द्वितीयेश से पत्नी का विचार किया जाता है। इनके दुर्बल होने

से, दुःस्थान स्थित होने से (इसका एक अपवाद है—व्यय स्थान दुःस्थान होने पर भी यहाँ शुक्र की स्थिति अच्छी समझी जाती है, दूषित नहीं) पापयुत, पापदृष्ट होने से पत्नीसुख में हानि होती है। मूल में कहा है 'द्वितीयसप्तमाधीश शुक्र और पापग्रह से युत होकर दुःस्थान में हों' इसका अर्थ हमने किया है कि द्वितीयेश या सप्तमाधीश। मूल में 'या' अर्थवाचक कोई शब्द नहीं है। तथापि दोनों ही दुःस्थान आदि में होने से पत्नी-सुख में हानिकारक हैं, इस कारण हमने 'या' लिखा। इसी प्रकार द्वितीयेश या सप्तमेश शुक्र के साथ त्रिक में होगा तो शुक्र और द्वितीयेश या सप्तमेश दोषयुक्त हो जायेंगे अथवा द्वितीयेश या सप्तमेश पापग्रह के साथ होकर दुःस्थान में होंगे तो दूषित हो जायेंगे। इस कारण द्वितीयेश या सप्तमेश शुक्र के साथ या पापग्रह के साथ दुःस्थान में हों तो पत्नी-सुख में हानि करेंगे यह अर्थ विशेष उपयुक्त होगा। इसीलिये एक विद्वान् टीकाकार ने संस्कृत टीका में लिखा है

सप्तमेशो द्वितीयेशो वा शुक्रेण वा केनचिदेकेन पापेन युक्तो दुःस्थश्च स्यात्

यहाँ जो मूल में—उत्तरार्द्ध में यह कहा है कि द्वितीयेश या सप्तमेश बलवान् हो, उच्चादि राशि में हो तो एक ही विवाह कराता है—जातकपारिजातकार के इस मत से हम सहमत नहीं हैं। उच्चादि का अर्थ होता है उच्च में हो, स्वगृही हो, स्वनवांश हो, वर्गोत्तम हो आदि। हमारे विचार से स्वगृही आदि की स्थिति में तो एक ही विवाह करायेगा परन्तु सप्तमेश उच्च होने से बहुत-सी कुण्डलियों में हमने देखा है कई विवाह कराता है। आज से ५२ वर्ष पूर्व, जयपुर के (अब स्वर्गीय) प्रसिद्ध ज्योतिषी पंडित केदारनाथ जी ने इस सम्बन्ध में हमें उनकी स्वयं की कुण्डली का दृष्टान्त देते हुए कहा था कि उनका सप्तमेश सूर्य अपनी उच्च राशि मेष में था, इस कारण उनके तीन विवाह हुए। दिल्ली के प्रसिद्ध ज्योतिषी पंडित शंभुनाथ जी मिश्र का भी सप्तमेश उच्च है। उनके भी तीन विवाह हुए।

१

२
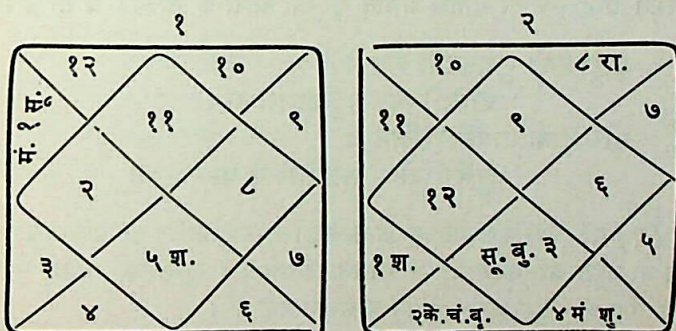
द्वितीय कुण्डली एक अन्य सज्जन की है। सप्तमेश स्वगृही बुध है परन्तु नीच शनि से दृष्ट है। सप्तम में सूर्य है। शुक्र अष्टम में गया नीचस्थ मंगल के साथ है। इनके चार विवाह हुए। दो पत्नियों का देहान्त पति के जीवन काल में ही हो गया। स्वयं की मृत्यु १९३७ में हुई। दो पत्नियाँ अभी जीवित हैं ॥ ८८ ॥

पत्नीविचार के लिये देखिये अध्याय १४।

भोजन पात्र तथा भोजन का विचार

भुक्तिस्थानपतौ सितेन्दुसहिते लग्नादिकेन्द्रस्थिते
रौप्यं पात्रमुपैति काञ्चनमयं जीवेन्दुशुक्रान्विते।
भुक्तिस्थानपदेहपौ शनियुतौ लोहादिपात्रं वदेद्
भौमे पापनिरीक्षिते धनगते जातः कदन्नादिभुक् ॥८९॥

इस श्लोक में यह विचार किया गया है कि जातक सोना, चाँदी, लोहा आदि किस धातु के पात्रों में भोजन करेगा। सोना, चाँदी के पात्रों में भोजन करना किसी समय गौरव की बात थी। लोहे के पात्र में अत्यन्त छोटी श्रेणी के व्यक्ति भोजन करते थे। अब इस समय भोजन पात्र व्यवहार में महान् अन्तर हो गया है। बड़े बड़े राजा महाराजा कोट्याधीश चीनी के बर्तन में भोजन करते हैं। धनिक वर्ग में स्टेनलैस स्टील (जो परिष्कृत लोहा ही है) के पात्रों में भोजन करना फैशन हो गया है।

यदि द्वितीयेश चन्द्रमा और शुक्र के साथ (लग्न से) केन्द्र में हो तो चाँदी के पात्र में भोजन करता है। यदि यह द्वितीयेश (लग्न से) केन्द्र में बृहस्पति, शुक्र, चन्द्र इन तीनों से युत हो तो सोने के पात्र में भोजन करता है। यदि लग्नेश और द्वितीयेश दोनों शनि के साथ हों तो लोहा आदि के पात्र में भोजन करता है। यदि मंगल द्वितीय स्थान में हो और पापग्रह उसे देखें तो कदन्न (कुत्सित अन्न—मोटा अनाज अर्थात् कुत्सित श्रेणी के भोज्य) खाता है ॥८९॥

बह्वाशनो भुक्तिपतौ सपापे
दावाग्निदण्डायुधकालभागे।
नीचांशके पापनिरीक्षिते च
शुभैर्न दोषः सहितेक्षिते वा ॥९०॥

(१) यदि द्वितीयेश पापग्रह के साथ हो और दावाग्नि या दण्डायुध षष्टयंश में हो तो बहुत अधिक मात्रा में भोजन करता है। अत्यधिक मात्रा में भोजन करना दोष है—इस कारण उपर्युक्त लक्षण कहे हैं।

(२) यदि द्वितीयेश नीच नवांश में हो और पापग्रह उसे देखते हों तो इस योग में जातक अधिक भोजन करता है। किन्तु इस योग में यदि पापग्रह की बजाय शुभग्रह से युत हो या शुभग्रह देखते हों तो अधिक भोजन करने का दोष नहीं होता ॥ ९० ॥

भुक्तिस्थाने शुभयुते तदीशे शुभसंयुते।
शुभग्रहेण सन्दृष्टे सुखभुक् स नरो भवेत् ॥९१॥
परान्नभुक् तदीशेऽपि नीचशत्रुसमन्विते।
नीचखेचरसन्दृष्टे तद्दूषणपरायणः ॥९२॥

यदि द्वितीय स्थान में शुभग्रह हो, उसका स्वामी शुभग्रह से युत, शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो सुखपूर्वक भोजन करता है। अर्थात् भोजन के लिये विशेष आयास नहीं करना पड़ता और उत्तम भोजन करता है ॥ ९१ ॥

यदि द्वितीयेश नीच राशि में हो या अपने शत्रु से युत हो तो दूसरे का अन्न खाता है अर्थात् भोजन के लिये अन्य मनुष्य पर निर्भर रहना पड़ता है। (दरिद्र होने का यह लक्षण है) यदि उपर्युक्त ग्रहयोग में द्वितीयेश नीच ग्रह से दृष्ट हो तो दूसरे का अन्न खाता है और उसकी (भोजन करने वाले की या भोजन की) निन्दा भी करता है ॥९२॥

कालोचिताशनो भुक्तिनाथे लग्नेशवीक्षिते।
पापग्रहेण सन्दृष्टे नीचांशादियुते न तु ॥९३॥

यदि द्वितीयेश लग्नेश से दृष्ट हो तो समय पर तथा उचित भोजन करता है किन्तु यदि द्वितीयेश नीच नवांश आदि में हो, पापग्रह से दृष्ट हो तो ऐसा नहीं होता।

संस्कृत में दो श्लोक हैं :

समृगोरगसारंगं सपक्षिपशुमानुषम्।
आमध्याह्नात् कृताहारं भवतीह जगत्त्रयम् ॥
नातः पापीयसीं काञ्चिदवस्थां शम्बरोऽब्रवीत्।
यत्र नैवोद्यमः प्रातर्भोजनं प्रति दृश्यते ॥

अर्थात् समय पर भोजन प्राप्त होना तथा उचित भोजन प्राप्त होना शुभ फल है। इससे विपरीत अशुभ फल है ॥९३॥

स्वल्पाशी रुचिकामः स्याद् भुक्तिनाथे शुभे गृहे।
स्वोच्चे शुभेन सन्दृष्टे मृद्वंशादिसमन्विते ।।६४।।

इसमें दो योग बताये हैं । किसी-किसी टीकाकार ने दोनों योगों को सम्मिश्रित करके एक योग बना दिया है।

यदि (i) द्वितीयेश शुभग्रह में हो

(ii) यदि द्वितीयेश अपनी उच्चराशि में, मृद्वंश में शुभग्रह दृष्ट हो तो जातक उत्तम भोजन में रुचि रखने वाला किन्तु सूक्ष्म (थोड़ा) आहार करने वाला होता है। ऊपर (i) में शुभगृह (घर) आया है। शुभग्रह की राशि में। दूसरा अर्थ नवम, पंचम आदि शुभराशि में। 'मृद्वंश' के लिये देखिये अध्याय १—षष्टचंशप्रकरण।

स्वल्पाहार के विषय में अन्यत्र से एक श्लोक उद्धृत किया जाता है :

भुक्तीश्वरे केन्द्रगते बलाढचे स्वोच्चस्थिते वा ग्रहवीक्षिते वा ।
शुभग्रहाः केन्द्रगताश्च सर्वे जातस्तु भुंक्तेऽन्नमतीव सूक्ष्मम् ।। ६४ ।।

भुक्तिस्थानाधिपे मन्दे तदीशे वाऽर्किसंयुते।
नीचेऽर्कसूनुना दृष्टे श्राद्धभुक् सततं नरः ।।६५।।

यदि (i) द्वितीयेश शनि हो या (ii) द्वितीयेश शनि से युत हो या (i) द्वितीयेश अपनी नीच राशि में हो और शनि से दृष्ट हो तो जातक सदैव श्राद्ध में (जो ब्राह्मण को भोजन कराया जाता है) भोजन करता है। अब श्राद्ध में भोजन कराने की प्रथा में क्रमशः ह्रास हो रहा है। इसका फलितार्थ यह है कि यह कुत्सित योग है क्योंकि श्राद्धभोजी की निन्दा की गई है ।। ९५ ।।

सिंहासनांशे यदि देवपूज्ये
शुक्रे यदा गोपुरभागयुक्ते ।
पारावतांशे धनपे बलाढचे
जातस्त्वसङ्ख्याश्रितरक्षकः स्यात् ।।६६।।

ऊपर श्लोक ८७ की टीका में कह चुके हैं कि द्वितीय स्थान से कुटुम्ब, परिवार तथा आश्रितजनों का विचार किया जाता है उसी का वैभव (किस ग्रहयोग में अनेक आश्रितजन जातक के यहाँ रहते हैं) इस श्लोक में बताया है :

यदि बृहस्पति सिंहासनांश में हो, शुक्र गोपुरांश में हो तथा द्वितीय बलवान् हो और पारावतांश में हो तो जातक असंख्य आश्रितों का रक्षक होता है।

यह सब बली बृहस्पति, बली शुक्र तथा बली द्वितीयेश की महिमा है। काशी के प्रसिद्ध ज्योतिषी स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० हृषीकेश जी उपाध्याय केवल दशम स्थान स्थित बृहस्पति से (क्योंकि दशम में बैठकर बृहस्पति द्वितीय स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है) कहा करते थे कि जातक के यहाँ एक आँजला (अञ्जलि छोटी होती है—भाषा में इसका पुंल्लिग आँजला होता है) भर नमक प्रतिदिन खर्च होगा अर्थात् इतने आदमी प्रतिदिन चौके में भोजन करेंगे कि इतनी मात्रा में नमक खर्च हो ॥ ९६ ॥

अध्याय १२

तृतीयचतुर्थभावफल

ज्येष्ठानुजस्थितिपराक्रमसाहसानि
कण्ठस्वरश्रुतिवराभरणांशुकानि ।
धैर्यं च वीर्यबलमूलफलाशनानि
वक्ष्ये तृतीयभवनात् क्रमशोऽखिलानि ॥१॥

अब मैं क्रमशः तृतीय भावफल कहता हूं । ज्येष्ठ, और कनिष्ठ भ्राताओं का फल, पराक्रम, साहस, कंठ स्वर, श्रवण, आभरण, वस्त्र, धैर्य, वीर्य, वल, मूल, फल, भोजन यह सव क्रमशः कहता हूं । जातकाभरण में लिखा है :—

सहोदराणामथ किंकराणां पराक्रमाणामुपजीविनां च ।
विचारणा जातकशास्त्रविद्भिस्तृतीयभावे नियमेन वाच्या ॥

जातकरत्न में लिखा है :—

तृतीयराशेः सहजाभिवृद्धि भक्ष्यं मलं चापि पुनश्च कर्णम् ।
सहोदराणां क्रमशस्तु सख्यं भुक्तौ विशेषादपि मूलकादीन् ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि आनुषंगिक रूप से फल, मूल, भोजन भी तृतीय भाव के अन्तर्गत दिये हैं ॥ १ ॥

भ्रातृविचार

भ्रातृस्थान तृतीय च नवैकादशसप्तमम् ।
तत्तदीशदशायां च भ्रातृलाभो भवेन्नृणाम् ॥२॥

भ्रातृ स्थान तृतीय, नवम, एकादश और सप्तम है । इन चारों के स्वामियों की अन्तर्दशा में भाई का लाभ होता है । अर्थात् यदि उम्र कम हो तो भ्राता का जन्म और अधिक उम्र हो तो भ्राताओं का अभ्युदय समझना चाहिये ॥ २ ॥

भ्रातृस्थानेशतद्राशितद्भावस्थद्युचारिणाम् ।
मध्ये बलसमेतस्य दशा सोदरवृद्धिदा ॥३॥

यह देखिये विचारणीय कुण्डली में निम्नलिखित तीनों में से कौन अधिक बलवान् है :—

(१) तृतीय भावेश, (२) जिस भाव में तृतीय राशि का स्वामी हो वह, (३) तृतीय भाव में जो ग्रह बैठा हो या बैठे हों। इन तीनों में जो बलवान् है उसकी दशा अन्तर्दशा में सहोदर भाई की वृद्धि हो अर्थात् यदि उम्र कम है तो भ्रातृजन्म हो। यदि उम्र ज्यादा हो गई है तो भाई का अभ्युदय हो ॥ ३ ॥

भौमो बलविहीनश्चेद्दीर्घायुर्भ्रातृगो भवेत् ।
त्रिलग्नगो बली यस्य कारकः स प्रभुः स्मृतः ॥४॥

इसमें दो योग कहे हैं। (१) यदि मंगल बलहीन होकर तीसरे भाव में बैठा हो तो जातक का भाई दीर्घायु होता है।

(२) यदि कारक मंगल बली होकर लग्न में बैठे तो मनुष्य प्रभावशाली होता है। फलितार्थ यह है कि कारक बलवान् होना चाहिये और अच्छे स्थान में लग्न में बैठे तो जातक के लिये अच्छा है किन्तु 'कारको भावनाशाय' इस सिद्धान्तानुसार तृतीय भाव में बल कारक अर्थात् मंगल इष्ट नहीं है ॥ ४ ॥

जन्मकाले गुणी प्राणी कारको यः समृद्धिकृत् ।
क्षयकारी विपर्यासे भावपो विबलोऽधिकः ॥५॥

जन्म काल में यदि किसी भाव का कारक बलवान् हो तो उस भाव के लिये अच्छा है। इसीलिये गुणी और बलशाली कारक हो तो वह उस भाव की जिसका वह कारक है वृद्धि करता है। अब दूसरी बात कहते हैं यदि इसके विपरीत हो तो उस भाव की हानि करता है। यह तो हुआ कारक के विषय में। अब भावपति के विषय में कहते हैं कि भावपति यदि निर्बल हो तो भ्रातृ पक्ष के लिये क्षयकारी होता है ॥ ५ ॥

सोदरेशकुजौ नाशं गतौ चेत्सोदरक्षयः ।
पापर्क्षगौ सपापौ वा भ्रातॄनुत्पाद्य नाशदौ ॥६॥

इसमें दो योग कहे गये हैं। (१) यदि तृतीय भाव का स्वामी और मंगल दोनों अष्टम भाव में गये हों तो भ्रातृहानि होती है।

(२) यदि मंगल (जो भ्रातृभाव का कारक है) और तृतीय भावाधिप दोनों पापग्रह की राशि में हों या पापग्रह के साथ हों तो भाइयों को उत्पन्न करके नष्ट करते हैं। देखिये जातकरत्न में भी कहा है :—

नाशस्थितौ सोदरनाथभौमौ
पापेक्षितौ सोदरनाशमाहुः।
पापर्क्षगौ पापसमागतौ वा
भ्रातॄन् समुत्पाद्य विनाशहेतू॥

यहां छठे श्लोक की व्याख्या समाप्त हुई ॥ ६ ॥

नीचास्तगौ सोदरनायकाख्यौ
नीचांशगौ पापसमागतौ वा
क्रूरादिषष्ट्यंशगतौ तदानीं
भ्रातॄन्समुत्पाद्य विनाशहेतू ॥७॥

अगर तृतीय भावाधिप और तृतीय कारक मंगल दोनों नीच राशि, नीच अंश (नवांश) या अस्त या पापग्रह के साथ या क्रूर षष्टयंश में हों तो भाई पैदा होते हैं किन्तु नष्ट हो जाते हैं। इसमें पांच अवगुण बताये हैं।

(१) नीच राशि में होना (२) नीच नवांश में होना (३) अस्त होना (४) क्रूर षष्टि-अंश में होना (५) या पापग्रह के साथ होना। दोनों में जितने अधिक दोष हों, तारतम्य करके उतना ही अनिष्ट फल कहना।

किसी-किसी पुस्तक में नीचास्तगौ की जगह नीचर्क्षगौ यह पाठ है। उत्तर पाराशर में भी लिखा है :

तृतीयपतिमंगलौ स्वगृहतुंगगेहागतौ
मिथो भवति मित्रगौ शुभयुतौ शुभप्रेक्षितौ।
सुवीर्यधृतिविक्रमं प्रमुखसद्गुणैर्मिश्रितः
शुभेन दलमन्यथा फलति नीचपापान्विते॥
भ्रातुः कारकपौ यदा तु निजदिव्रान्योन्यतुंगागतौ
दुःस्थानं परिहृत्यतस्तु भवतः प्रख्यातसौभ्रातृकः।
दुःस्थानेन भवेच्छुभग्रहयुतौ तत्रैव तानल्पशो
नीचौ ह्यस्तमयंगतौ नहि तदा स्वामीक्षितश्चेद्बहुः ॥७॥

अतिक्रूरसमायुक्ते भावे वा कारकेऽपि वा।
तद्भावनायके वाऽपि बाल्ये सोदरनाशनम् ॥८॥

जब तृतीय भाव, उसका कारक या उसका स्वामी अति क्रूर ग्रह से समायुक्त हो तो जातक के भाइयों का बाल्यावस्था में ही नाश होगा। यहाँ पर शब्द आया है 'अतिक्रूरसमायुक्त'। इसका क्या अर्थ ? जब कोई पापग्रह नीच हो या अस्तंगत हो या शत्रुवर्ग में हो तो वह अतिक्रूर समझा जाता है ॥ ८ ॥

धनेश्वरे नाशगते बलाढ्ये पापान्विते सोदरकारकाख्ये ।
तन्मातृकारग्रहसंयुते च सापत्नमातुः सहजा वदन्ति ॥९॥

यदि तृतीय भाव का मालिक बलवान् होकर अष्टम भाव में पड़े और भ्रातृकारक पापान्वित होकर तृतीय से चतुर्थ अर्थात् लग्न से षष्ठ हो तो उस जातक के सौतेले भाई बहिन होते हैं ॥ ९ ॥

भ्रातृस्थाने यदि शुभयुते सोदराणां चिरायुः
पापाक्रान्ते सहजभवने पापदृष्टे विनाशम् ।
ज्येष्ठं हन्ति द्युमणिरनुजस्थानगः पापदृष्टः
सौरस्तस्यानुजमवनिजो हन्ति सर्वान् कनिष्ठान् ॥१०॥

यदि तृतीय भाव दृष्टि या योग से शुभयुत हो अर्थात् शुभग्रहों की दृष्टि और योग होने से भाई लोगों की चिरायु होती है और यदि पापग्रह से पीड़ित—योग या दृष्टि द्वारा हो तो विनाश होता है, यह सिद्धान्त है। सूर्य यदि तृतीय स्थान में हो और पापदृष्ट हो तो बड़े भाई का नाश करता है। शनि छोटे भाई का नाश करता है और मंगल समस्त छोटे भाइयों का नाश करता है ॥१०॥

त्रिकोणकेन्द्रे यदि पापखेटे
तृतीयभावादनुजस्य नाशम् ।
शुभोपयाते सहजाभिवृद्धिः
शुभाशुभं मिश्रफलं वदन्ति ॥११॥

यदि तृतीय भाव से केन्द्र में या त्रिकोण में पापग्रह हों तो छोटे भाइयों का नाश करते हैं। यदि शुभग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हों तो तृतीय भाव में वृद्धि करते हैं। यदि मिश्र फल हो अर्थात् कुछ पापग्रह हों, कुछ शुभग्रह हों तो मिश्रित फल हो। ऐसे समय ज्योतिषी को अपनी बुद्धि से काम लेना पड़ता है। शुभग्रह का अतिरेक हो तो शुभफल विशेष होगा, यदि पापग्रह का आधिक्य हो तो पापफल विशेष ॥ ११ ॥

दुःस्थे चन्द्रे सोदरस्वामियुक्ते
जातस्यान्यस्तन्यपानं वदन्ति ।
मातृभ्रातृस्थानपौ बन्धुयातौ
नास्ति भ्रातृस्थानवृद्धिर्नराणाम् ।।१२।।

यदि तृतीयेश चन्द्रमा के साथ छठे, आठवें, बारहवें हो तो जातक अपनी मां के अतिरिक्त किसी स्त्री का स्तनपान करता है। चन्द्रमा मातृकारक है और जब वह तथा तृतीयेश दोनों छठे, आठवें, बारहवें हो जायें तो कारक और भावेश दोनों के बिगड़ जाने से माता की हालत यह नहीं रहती कि बच्चे को स्तनपान करा सके। यह पुराने समय की बात है जब स्त्रियां अपने बच्चों को स्तनपान कराती थीं। आजकल यह बात नहीं है। अब बचपन से ही बच्चों को बोतल से दूध पिलाया जाता है।

यदि तृतीयेश और चतुर्थेश दोनों चतुर्थ स्थान में हों तो जातक के भ्रातृ स्थान की वृद्धिकारक हों ।। १२ ।।

भौमान्वितौ सोदरदौ भवेता-
मन्यैः समेतौ यदि नानुजः स्यात् ।
सौरस्तृतीयेऽनुजनाशकर्ता
विधुन्तुदः सोदरवृद्धिकृत्स्यात् ।।१३।।

यदि तृतीयेश और चतुर्थेश दोनों मंगल से युक्त हों तो भाई देते हैं। यदि अन्य ग्रहों से युक्त हों तो छोटा भाई न हो। शनि यदि तृतीय घर में हो तो भाई का नाश करे और यदि राहु हो तो भाई की वृद्धि करे। ज्योतिष में एक कहावत है—शनिवत् राहुः कुजवत् केतुः—कि शनि के समान राहु फल देता है परन्तु यहां बिलकुल उलटा फल है। शनि नाश करता है, राहु बढ़ाता है ।।१३।।

अदृश्यराशौ यदि वा सपापे वधूगृहस्थे सहजाधिनाथे ।
जातानुजस्योपरि नानुजः स्यात् पुंवर्गगे दृश्यगते तथैव ।।१४।।

लग्न का जो अंश उदित हुआ है वहां से लेकर लग्न, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ और सप्तम के उतने अंश जितने लग्न के उदित हुए हों—यह १८०° अनुदित भाग या अदृश्य भाग कहलाता है। बाकी का १८०° उदित भाग या दृश्य भाग कहलाता है। कहते हैं कि तीसरे घर का मालिक अदृश्य भाग में हो या पापग्रह के साथ हो तो एक छोटा भाई होने के बाद पुनः भाई न हो।

पुरुष राशि के वर्ग में दृश्य भाग में हो तो वही फल। मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ पुरुष वर्ग में हैं ॥ १४ ॥

भ्रातृस्थानपतौ तु पुंभवनगे तस्यानुजो जायते
युग्मर्क्षे यदि भार्गवेण शशिना युक्तेऽथवा वीक्षिते ।
सौम्यर्क्षे शुभखेचरेक्षितयुते केन्द्रत्रिकोणस्थिते
पश्चाज्जातसहोदरश्चिरसुखी दीर्घायुरारोग्यभाक् ॥१५॥

इसमें तीन योग कहे गये हैं—(१) यदि तृतीयेश पुरुष भवन में हो तो छोटा भाई होता है। मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ पुरुष राशि हैं।

(२) यदि युग्मर्क्ष में तृतीयेश हो और शुक्र और चन्द्रमा इनसे वीक्षित या अन्वित हों तो भी यही फल। वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन, युग्मर्क्ष हैं।

(३) तृतीयेश यदि शुभग्रह की राशि में, शुभग्रह से वीक्षित, शुभग्रह से युत हो और केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हो तो उसके पश्चात् जो भाई होता है वह चिरसुखी, दीर्घायु और आरोग्यवान् हो ॥ १५ ॥

सहोदरस्थानपतौ तनुस्थे सलग्नपे सोदरनायके वा ।
गर्भोऽभयोऽनन्तरमस्य जातस्तृतीयराशौ सपतौ तथैव ॥१६॥

यदि तृतीयेश लग्न में हो या तृतीयेश लग्नेश के साथ हो या तृतीयेश तृतीय में हो तो बाद का गर्भ (बच्चा) निर्भय होता है अर्थात् उसको किसी प्रकार का रोग इत्यादि का भय नहीं होता ॥ १६ ॥

भाई बहिन की संख्या

लाभावसानभवनोपगतग्रहेन्द्र-
सङ्ख्यास्तदग्रजजनाः सहजा भवन्ति ।
लग्नात्तृतीयधनयातवियच्चरेन्द्रैः
संख्याजनाः स्युरनुजाः कथयन्ति तज्ज्ञाः ॥१७॥

अब भाई बहिन की संख्या का ज्ञान बताते हैं। लग्न से ग्यारहवें और बारहवें भाव में जितने ग्रह हों उतने बड़े भाई होते हैं। लग्न से द्वितीय और तृतीय भाव में जितने ग्रह हों उतने छोटे भाई होते हैं। इसमें यह तारतम्य कर लेना चाहिये कि पुरुष ग्रह से भाई लेना और स्त्री ग्रह से बहिन लेना ॥ १७ ॥

भ्रातृस्थानपकारकेक्षितयुता वीर्याधिका यद्यदा
तद्युक्तग्रहसंख्ययाऽनुजजनि जातः समेति ध्रुवम् ।
चत्वारो यदि नीचमूढरिपुगा निघ्नन्ति जातानुजां-
स्ते कुर्वन्ति चिरायुरिष्टबलिनः सर्वानुजानां ग्रहाः ॥१८॥

कितने भाई बहिन होंगे ? यह निश्चय करने का एक दूसरा तरीका बताते हैं। चार को देखिये कि बलवान् ग्रह इनको देखते हैं, इनके साथ हैं क्या ? चार कौन ? (१) भ्रातृ स्थान का मालिक (२) भ्रातृ स्थान का कारक। (३) भ्रातृ स्थान में जो ग्रह बैठे हों वह। (४) भ्रातृ स्थान को जो ग्रह देखते हों।

अर्थात् भ्रातृ स्थान के मालिक और कारक को जो ग्रह देखते हों या जो ग्रह साथ हों या भ्रातृ स्थान को जो ग्रह देखते हों या भ्रातृ स्थान में जो ग्रह बैठे हों इनमें जितने ग्रह बलवान् होंगे उतने भाई बहिन होंगे।

यदि यह चारों नीच, शत्रुराशि में या अस्त हों तो यह भाई बहिनों के लिये घातक सिद्ध होते हैं। अगर ये मित्रराशि में बली हों तो भाई बहिनों को दीर्घायु करते हैं ॥ १८॥

भ्रातृस्थानपमुख्यखेचरगणे द्वौ वीर्यवन्तौ यदा
नाशानाशफलप्रदौ समतया वीर्याधिकाश्चेत्त्रयः ।
खेटाः स्वल्पसहोदरक्षयकरा दुःस्थानगाः स्त्रीग्रहा *
यद्यल्पानुजवृद्धिदास्तदनुजस्वाम्यंशसंख्यानुजाः ॥१९॥

(१) भ्रातृस्थान का स्वामी। (२) भ्रातृस्थान में जो ग्रह हों। (३) भ्रातृ स्थान को देखने वाले ग्रह। (४) भ्रातृ स्थान का कारक—इन चारों ग्रहों में यदि दो पूर्ण बली हों, दो कमजोर तो भाइयों की हानि और लाभ बराबर करते हैं। यदि चारों में से तीन बलवान् ग्रह हों तो थोड़े भाइयों का संहार करते हैं। स्त्रीग्रह दुःस्थान में हो तो स्वल्प हानि करें। छोटे भाइयों की संख्या कितनी होती है? कहते हैं कि तृतीयेश के नवांश के तुल्य अर्थात् तृतीयेश जितने नवांश पार कर चुका हो और जिस नवांश में हो ॥ १९ ॥

भूमिजे सहजस्थाने यावतां विद्यते बलम् ।
शत्रुनीचग्रहं त्यक्त्वा तावन्तः सहजाः स्मृताः ॥२०॥

---

*स्त्रीग्रहौ–शशिशुक्रौ द्वावेव, परञ्चाधिकाराधिक्यपरत्वाद्बहुवचनं निर्द्दिष्टम्।

देखिये मंगल के तृतीय स्थान में कितने फल हैं। फल क्या ? मंगल के अष्टक वर्ग में जितने शुभ विन्दु पड़े हों उनमें शत्रु राशि या नीच ग्रह को छोड़कर अन्य ग्रहों में जितने विन्दु प्रदाता हैं उसके समान।

भाई वहिनों की संख्या वास्तव में इन नियमों के अनुसार बताना कठिन है इतने नियम वता दिये गये हैं कि कौनसा उपयोग में लाया जाय ॥ २० ॥

भ्रात्रीदौ स्त्रीग्रहर्क्षस्थौ भ्रातृदौ पुंग्रहर्क्षगौ।
सोदरेशकुजौ स्यातां भ्रातृभ्रात्रीसुखप्रदौ ॥२१॥

तृतीयेश और मंगल यदि स्त्री राशि में हों तो वहिन देते हैं यदि पुरुष राशि में हों तो भाई देते हैं। ये दोनों भाई वहिन का सुख देते हैं ॥ २१ ॥

स्त्रीहोरया वा युवतिग्रहेण
युक्ते यदि भ्रातृगृहे विलग्नात्।
सहोदरीलाभमुपैति जातः
सहोदरं तत्परतोऽन्यथा चेत् ॥२२॥

यदि तृतीय भाव में स्त्री की होरा हो (चन्द्रमा की) या तृतीय स्थान में स्त्री ग्रह बैठा हो तो बहिन पैदा होती है। किन्तु इसके विपरीत स्थिति हो अर्थात् पुरुष की होरा हो (सूर्य की) और पुरुष ग्रह बैठा हो तो भाई होता है। किसी पुरुष के तत्काल बाद भाई होगा या वहिन इसका निर्णय करने का यह तरीका है। सूर्य, मंगल, बृहस्पति पुरुषग्रह हैं; शनि और बुध नपुंसक; शुक्र और चन्द्रमा स्त्रीग्रह ॥ २२ ॥

कारकः सहजाधीशस्तद्दर्शी तत्र संस्थितः।
इष्टानिष्टकरास्तेषां स्वदशान्तर्दशासु च ॥२३॥

(१) कारक। (२) भ्रातृभाव का स्वामी। (३) तृतीय स्थान को देखने वाला और (४) तृतीय स्थान में स्थित ग्रहों की दशा, अन्तर्दशा भ्रातृभाव का इष्ट और अनिष्ट करती है अर्थात् यदि ग्रह अच्छा हुआ तो अच्छा फल और बुरा हुआ तो बुरा फल ॥ २३ ॥

कारकादिचतुःखेटस्फुटयोगांशकानुजाः।
वर्ज्या नीचारिमूढांशाः स्वोच्चांशा द्विगुणीकृताः ॥२४॥

कारक इत्यादि जो ऊपर चार बता चुके हैं उनके ग्रह स्फुट को जोड़िये किन्तु उनको हटा दीजिये जो नीच राशि में हों, शत्रु राशि में हों या अस्त हों और जो उच्च में हों या स्वराशि में हों उनको दुगना कर दीजिये। यह जो योग आयगा वह किस नवांश में पड़ता है वह देखिये। भाई बहिन की संख्या नवांश तुल्य होती है। जातकरत्न में इसी प्रकार का श्लोक है।

तृतीयराशीश्वरसंस्थितांशं भौमान्वितांशं च कुजात्तृतीये।
तदीश्वरांशं च समेन योज्यं त्रिभागलब्धं सहजाः क्रमेण ॥२४॥

तृतीयात्सप्तमर्क्षेण भ्रातृभार्याफलं वदेत्।
लग्नेशकुजसोत्थेशा भ्रात्रनिष्टशुभप्रदाः ॥२५॥

इस श्लोक में दो बातें बताई हैं।

(१) तृतीय से सप्तम अर्थात् जन्म लग्न से नवम से भाई की स्त्री का विचार करना। अतः यह भी तर्कयुक्त है कि नवम से बहिन के पति का विचार करना।

(२) लग्नेश, मंगल तथा तृतीयेश यदि बलवान् हों तो भाई के लिये अच्छे और शुभप्रद और यदि अनिष्ट हों तो भाई के लिये अशुभ होते हैं। यदि कोई शुभ, कोई अशुभ हो तो अच्छे ग्रह की दशा में भाई के लिये अच्छा और अशुभ हो तो भाई के लिये अनिष्ट होते हैं॥ २५ ॥

अन्योन्यमिष्टविपुलं तु सहोदराणां
लग्नाधिपेन सहिते यदि सोदरेशे।
अन्योन्यमिष्टखचरौ यदि तौ बलाढ्यौ
लग्नेऽथवा सहजभे न विभागमाहुः ॥२६॥

यदि लग्नेश और तृतीयेश परस्पर मित्र हों और लग्नाधिप और तृतीयेश साथ हों, ये दोनों बलवान् हों और लग्न अथवा तृतीय में एक साथ बैठें तो परस्पर भाइयों में बहुत प्रेम होता है और आपस में जायदाद का बँटवारा नहीं होता॥२६॥

लग्नेशानुजनायकौ विबलिनावन्योन्यशत्रू ग्रहौ
दुश्चिक्यस्थितकारकौ च यदि वा दुःस्थानगौ दुर्बलौ॥

तत्पाके सहजप्रमादकलहं तन्नाशमर्थक्षयं
तत् खेटोपगकोपहेतुकलहस्नेहादि सर्वं वदेत् ।।२७।।

इसमें तीन बातें बताई हैं।

(१) यदि लग्नेश और तृतीय घर का मालिक कमजोर हो और परस्पर शत्रु हो अथवा (२) तृतीय भाव स्थित ग्रह और कारक दुर्बल हों और दुःस्थान स्थित हों अर्थात् छठे, आठवें, बारहवें हों तो उनकी अन्तर्दशा में प्रमाद, कलह, नाश और धन का क्षय हो। वही अनिष्ट स्थान स्थित दुर्बल ग्रह कलह कराये और वही यदि सुस्थान स्थित और बली हो तो प्रेम करायें ।।२७।।

गुरुदृष्टेऽनुजे शुक्रे भ्रातृरक्षणतत्परः ।।
रविदृष्टे बुधे सोत्थ सुहृन्नाशकरो भवेत् ।।२८।।

(१) यदि तृतीय स्थान में शुक्र हो और बृहस्पति उसको देखता हो तो जातक भाई की रक्षा में तत्पर हो। (२) यदि बुध तृतीय भाव में स्थित हो और रवि से दृष्ट हो तो सुहृत् नाश करे। पहले पंडित लोग लिखते चले जाते थे और उनको यह ध्यान ही नहीं रहता था कि वह जो लिख रहे हैं वह कहाँ तक लागू हो सकता है बुध तीसरे में हो या किसी भी घर में हो सूर्य से किस प्रकार देखा जा सकता है? सूर्य और बुध का परस्पर अन्तर कभी २८° से अधिक नहीं हो सकता है इसलिये सूर्य कभी बुध को नहीं देख सकता और श्लोक का उत्तरांश निष्फल हो जाता है ।। २८ ।।

भ्रातृस्थतन्नायककारकाणां
नीचारिदुःस्थानसमन्वितानाम् ।
भुक्तौ दशायां धनसत्त्वनाशं
पराजयं भ्रातृविनाशमाहुः ।।२९।।

(१) भ्रातृ भाव में जो ग्रह हों। (२) भ्रातृ भाव का जो मालिक हो। (३) कारक यदि नीच राशि के शत्रु ग्रह के राशि में दुःस्थान में हो यानी छठे, आठवें, बारहवें हो तो इन ग्रहों की भुक्ति में (अन्तर्दशा में) धन, सत्त्व का नाश, पराजय और भाइयों का नाश होता है ।। २९ ।।

लग्नेशस्फुटतो विशोध्य सहजस्थानाधिपस्य स्फुटं
तन्नक्षत्रगते शनौ तु मरणं तत्सोदराणां वदेत् ।

तस्माद्धि स्फुटतस्तु मानगृहपे भौमे च संशोधिते
राशौ भानुसुते तथैव च चतुर्योगस्फुटांशेऽथवा ॥३०॥

इस श्लोक में तीन बातें कही गईं हैं-(१) लग्न स्पष्ट से तृतीय भाव स्पष्ट को कम कीजिये जो आये उस नक्षत्र में जब शनि का प्रवेश होता है तो सहोदर भाई की मृत्यु हो। (२) ऊपर जो योग आये उसमें से दशम स्पष्ट और मंगल को घटाये। जब इस स्थान पर शनि आये तो भाई के लिये अनिष्ट होता है। (३) इसके अर्थ में विभिन्नता है। सुब्रह्मण्य शास्त्री कहते हैं इन चारों अर्थात् लग्नेश, तृतीयेश, दशमेश और मंगल इन चारों के योग से जो नक्षत्र आये उसमें शनि के गोचर वश जाने से यही फल होता है। परन्तु यह अर्थ हमें अभिप्रेत नहीं है। चारों का मतलब है कारक, सहजाधीश, तद्दर्शी और वहाँ पर संस्थित अर्थात् चारों का मतलब है जो ग्रह तीसरे में बैठा हो, तीसरे को देखे, तीसरे का मालिक हो और कारक ॥ ३० ॥

चतुःस्फुटाक्रान्तदृकाणराशि गते गुरौ सोदरनाशमाहुः।
तत्तारकानाथदशाऽनुजानामतीव सम्पत्सुखदायिनी स्यात् ॥३१॥

इन चारों का योग कीजिये। किन चारों का? (१) जो तीसरे का मालिक है। (२) जो तीसरे में बैठा है। (३) जो तीसरे को देखता है। (४) जो तीसरे का कारक है। इन चारों के योग से जो राशि आये उसमें जो द्रेष्काण आये उसमें जब गोचर वश बृहस्पति जाये तब भ्रातृ नाश होता है। (ख) इस दृष्काण में जो नक्षत्र हो उसकी दशा भाइयों के लिये बहुत सुख और सम्पत्ति देने वाली होती है ॥ ३१ ॥

भूसूनुस्फुटतो विशोध्य फणिनं शेषत्रिकोणे गुरौ
जातस्यानुजनाशनं क्षितिसुतं राहुस्फुटाच्छोधयेत्।
तद्राशिस्थनवांशकेऽमरगुरौ तज्ज्येष्ठनाशं वदेद्
जन्माधानपकर्मपस्फुटगृहे जीवेऽनुजो जायते ॥३२॥

(१) मंगल के ग्रहस्पष्ट में से राहु स्पष्ट कम करना चाहिये। शेष के त्रिकोण अर्थात् पाचवें, नवें, जब बृहस्पति आता है तब जातक के अनुज के लिये अशुभ।

(२) राहु स्पष्ट में से मंगल स्पष्ट कम कीजिये। शेष में जो नवांश पड़े उसमें गोचर वश बृहस्पति जाता है तो ज्येष्ठ भाई के लिये अशुभ है।

(३) जन्म लग्न स्पष्ट+आधान लग्न स्पष्ट+दशम स्पष्ट निकालिये। इसमें जब गुरु जायेगा तब जातक के अनुज पैदा होगा। गर्भाधान स्पष्ट कैसे निकाला जायेगा ? जन्मकालीन चन्द्र गर्भास्थान लग्न होता है।

यहाँ भ्रातृ प्रकरण समाप्त होता है, प्रकरण समाप्त होने से पहले हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं, किसी-किसी विद्वान् ने तृतीय घर से छोटे भाई लिये हैं लेकिन ग्यारहवें घर से बड़े भाई का विचार किया है।

प्रश्न मार्ग में लिखा है :—

धैर्यं वीर्यं च दुर्बुद्धिः सहोदरपराक्रमौ।
दक्षकर्णसहायौ च चिन्तनीयं तृतीयतः॥

आगे जाकर यह लिखते हैं कि ग्यारहवें भाव से क्या विचार करना। तो लिखते हैं ज्येष्ठ भ्राता का विचार ग्यारहवें से करना।

सर्वाभीष्टागमो ज्येष्ठभ्राता जाता निजात्मजाः।
वामकर्णोर्थलाभश्च चिन्त्या ह्येकादशेन ते॥

इसके अतिरिक्त बृहस्पति किन-किन का कारक है इसके विषय में उत्तर-कालामृत में लिखा है :—

ज्येष्ठभ्रातृपितामहेन्द्रशिशिरर्तू ग्राणि रत्नं वणिग्
देहारोग्यविचित्रहर्म्यनृपसन्मानोरुदेवास्तपः।
दानं धर्मपरोपकारसमदृक्चोदङ्मुखो वर्तुलं
पीतं ग्रामचरोत्तरप्रियसखान्दोलादिवाग्धोरणीः॥

इस प्रकार पाठकों को यह अवगत कराकर कि एकादश से कोई-कोई बड़े भ्रातृ विचार करते हैं और बृहस्पति को ज्येष्ठ भाई का कारक मानते हैं॥३२॥

पराक्रम विचार

विक्रमाधिपतौ स्वोच्चे नाशस्थे पापसंयुते।
चरराशौ चरांशस्थे युद्धात्पूर्वं दृढो भवेत्॥३३॥

यदि तृतीय भावेश अपनी उच्च राशि में पापग्रह के साथ अष्टम में चरराशि और चर नवांश में पड़ा हो तो युद्ध के पूर्व जातक दृढ़ हो जाता है। ग्रंथकार ने लिख तो दिया परन्तु ऊहापोह करने से प्रतीत होगा कि केवल सिंह लग्न में, शुक्र अष्टम में अपनी उच्चराशि में होता है और मीन चरराशि नहीं है। इसलिये ग्रंथकार का यह श्लोक व्यर्थ हो जाता है। जातकरत्न में लिखते हैं:—

शौर्याधिपे तुंगगते बलाढ्ये केन्द्रत्रिकोणे यदि सौम्यदृष्टे ।
मूलत्रिकोणे स्वगृहेष्टगेहे वैशेषिकांशे पुरुषः स धीरः ॥
युद्धाभिलाषी समरे प्रवीणः वीर्येश्वरे सौम्ययुते स्वतुंगे ।
वैशेषिकांशे बलपूर्णयुक्ते मृद्वंशके वा पुरुषः स धीरः ॥३३॥

कारके बलहीने वा क्रूरषष्ट्यंशसंयुते
शुभदृग्योगसम्बन्धे विजयी विक्रमेश्वरे ॥३४॥

यदि भ्रातृ कारक अर्थात् मंगल बलहीन हो और क्रूर षष्टयंश में हो और तृतीयेश शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो विजयी होता है ॥ ३४ ॥

शौर्याधिपे भानुयुतेऽत्र वीरश्चन्द्रान्विते मानसधैर्यजातः ।
दुष्टो जडो भौमयुते प्रकोपी सौम्यान्विते सात्त्विकबुद्धियुक्तः ॥३५॥

जीवान्विते धीरगुणाभिरामः समस्तशास्त्रार्थविशारदः स्यात् ।
कामातुरः शुक्रसमन्विते तु तन्मूलकोपात् कलहप्रवीणः ॥३६॥

जडो भवेद्वासरनाथसूनुयुक्तेऽतिभीतो फणिसंयुते स्यात् ।
बहिर्गदो हृद्गदजाडचयुक्तः केत्वन्विते मान्दियुते तथैव ॥३७॥

तृतीयेश यदि सूर्य से युक्त हो तो वीर हो; चन्द्रमा से युक्त हो तो धैर्य-युक्त हो; मंगल से युक्त हो तो दुष्ट, जड़, और कोपी हो; बुध से युक्त हो तो सात्त्विक बुद्धियुक्त हो । बृहस्पति से युक्त हो तो धीर, गुणयुक्त और समस्त शास्त्र में विद्वान् हो; शुक्र से युक्त हो तो कामातुर और काम (कंदर्प) के कारण कलहप्रवीण हो; शनि से युक्त हो तो जड़ (बुद्धिहीन) हो; राहु से युत हो तो अति डरपोक; केतु से युत हो तो बाहरी बीमारी होगी; अगर मान्दि से युत हो तो हृदय रोग से पीड़ित और जड़ता (बुद्धिहीनता) से युक्त हो ॥३५-३७॥

लग्ने गुरौ विक्रमनाथयुक्ते चतुष्पदानां प्रवदन्ति भीतिम् ।
गवां भयं वा जलराशिलग्ने जलप्रमादं समुपैति जातः ॥३८॥

लग्न में बृहस्पति तृतीयेश के साथ हो चतुष्पद (चौपाए) या गायों से भय हो । यदि लग्न में जल राशि हो तो जल में डूबने का भय होता है ॥ ३८ ॥

कुजेन युक्ते खचरे बलिष्ठे सत्त्वं बलं गानसुखं समेति ।
कुजानुजस्यानुजराशिनाथास्त्रयो बलिष्ठा रणरङ्गशूराः ॥३९॥

तेषां त्रयाणामपहारकाले पाकेऽथवा मूलफलादिसौख्यम् ।
श्रोत्रद्वयं भूषणसत्कथादिसम्पत्करं भ्रातृसुतादिलाभम् ॥४०॥

यदि तृतीयेश बलिष्ठ हो और मंगल के साथ हो तो जातक को पराक्रम और वल प्राप्त होता है । उसको गान सुख भी प्राप्त होता है। मंगल, तृतीय स्थान स्थित ग्रह और तृतीयेश तीनों बलवान् हों तो रणभूमि में शूर होता है।। ३९ ।।

इन तीनों की अर्थात् मंगल, तृतीयेश और तृतीय राशिस्थ ग्रह की दशा, अन्तर्दशा में मूल, फल का सुख होता है । और दोनों कानों में आभूषण प्राप्त हों । सत्कथा, श्रवण का लाभ हो और भ्रातृ, सुतादि का लाभ हो ।। ४० ।।

सात्त्विको भवति सोदराधिपे सौम्यवर्गसहिते बलान्विते ।
नीचमूढरिपुपापराशिगे पापखेचरयुते तु साहसी ॥४१॥

यदि तृतीयेश सौम्य वर्गों में हो और बलिष्ठ हो तो जातक सात्त्विक होता है। परन्तु यदि तृतीयेश (१) नीच (२) अस्त (३) शत्रु राशि में (४) पाप राशि में हो और (५) क्रूर ग्रह के साथ हो तो जातक साहसी होता है।। ४१।।

कण्ठ विचार

शौर्याधिपे राहुसमेतराशिनाथान्विते राहुयुते विलग्ने ।
सर्पाद्भयं विक्रमराशिनाथे बुधेन युक्ते गलरोगभाक् स्यात् ॥४२॥

(१) तृतीयेश राहु स्थित राशिपति से युक्त हो अर्थात् जिस राशि में राहु बैठा है उसके मालिक के साथ हो और लग्न में राहु हो तो सर्प से भय हो । (२) तृतीयेश यदि बुध से युक्त हो तो गले का रोग हो ।। ४२ ।।

पापे तृतीये गलरोगमत्र
वदन्ति मान्द्यादियुते विशेषात् ।
भौमान्विते भानुसुते बलाढ्ये
तृतीयराशौ यदि कण्डुरोगम् ॥४३॥
विक्रमेशगुरू लग्नं गतौ गोभीतिसूचकौ ।
राहुणा वा फणिक्रान्तराशिपेन युतौ यदि ॥४४॥

सबुधो विक्रमपतिर्गलरोगकरो भवेत् ।
सोत्थेऽरिनीचगे पापे सोत्थाभावो विषादिभुक् ॥४५॥

बुधेन जीवेन युतेक्षिते वा तृतीयराशौ बलसंयुते च ।
तत्केन्द्रगे मन्त्रिणि बोधने वा कण्ठस्वरं चारुतरं समेति ॥४६॥

(१) तृतीय में पापग्रह हो तो गले का रोग हो (२) यदि मान्दि इत्यादि तृतीय में हों तो विशेषकर गले में रोग होता है । (३) यदि बलवान् शनि मंगल के साथ तृतीय भाव में हो तो कंडु रोग होता है ॥४३॥

(१) तृतीयेश और बृहस्पति लग्न में राहु के साथ हों तो गायों से भय होता है ।

(२) तृतीयेश और बृहस्पति यदि जिस राशि में राहु हो उसके स्वामी के साथ लग्न में हों तो गायों से भय हो ॥४४॥

(१) यदि तृतीयेश बुध के साथ हो तो गले का रोग हो । (२) यदि कोई क्रूर ग्रह तृतीय में शत्रुराशि का या नीचराशि का हो तो विष आदि के द्वारा भाई का नाश हो ॥४५॥

(१) यदि बुध या बृहस्पति से युत या वीक्षित तृतीय राशि बलवान् हो तो कण्ठ स्वर मधुर होता है । (२) यदि तृतीय राशि बलवान् हो और तृतीय से केन्द्र में अर्थात् तृतीय, षष्ठ, नवम या द्वादश में बुध व बृहस्पति एक साथ या अलग-अलग हों, तो मधुर स्वर होता है ॥४६॥

श्रुतिभूषणविचार

तृतीये सौम्यसंयुक्ते सौम्यखेचरवीक्षिते ।
तदीशे शुभसंयुक्ते कर्णयोर्भूषणं वदेत् ॥४७॥

शुक्रे तृतीये यदि मौक्तिकं तु जीवे तुलस्याभरणं वदन्ति ।
सरक्तमानीलमयं दिनेशे चन्द्रे बहु त्वाभरणं बलाढ्ये ॥४८॥

सौम्ये श्यामं कुजक्षेत्रे विचित्राभरणं वदेत् ।
तत्पतौ स्वोच्चवर्गस्थे दिव्यमाभरणं लभेत् ॥४९॥

(१) तृतीय भवन में शुभ ग्रह हो (२) तृतीय भाव को शुभ ग्रह देखता हो (३) और स्वयं तृतीयेश शुभ ग्रह से युक्त हो तो इन तीनों योगों के होने से कानों में भूषण हो ॥४७॥

तृतीय में शुक्र हो तो मोती का भूषण, गुरु हो तो तुलसी का आभरण, सूर्य हो तो लाल और नीला आभूषण, बलवान् चन्द्रमा हो तो बहुत आभूषण प्राप्त होते हैं ॥४८॥

यदि तृतीय में बुध हो तो श्याम वर्ण का आभरण, यदि तृतीय भाव मंगल का क्षेत्र हो अर्थात् मेष राशि या वृश्चिक राशि तृतीय में पड़े तो बहुत आभरण कहे। यदि तृतीयेश अपने उच्च वर्गों में हो तो दिव्य आभरण प्राप्त होते हैं ॥४९॥

वस्त्रविचार

मानस्थे तुरगेऽथवाऽनुजपतौ सौम्यर्क्षगे तद्युते
दिव्यं वस्त्रमपूर्वमेति सहजे सौम्ये सुवस्त्रं लभेत्।
वीर्याढ्यौ बहुवस्त्रभूषणकरौ शुक्रानुजस्थानपौ
स्यातां धर्मकथारसश्रवणदौ जीवज्ञयुक्तेक्षितौ ॥५०॥

इसमें चार योग कहे हैं। (१) तृतीयेश दसवें या सप्तम में सौम्य राशि में हो या शुभ ग्रह से युक्त हो तो दिव्य वस्त्र की प्राप्ति हो। (२) लग्न से तृतीय बुध हो तो सुन्दर वस्त्र मिलें। (३) यदि शुक्र और तृतीयेश बलवान् हों तो बहुत वस्त्र और भूषण जातक को प्राप्त होते हैं। (४) यदि बुध और बृहस्पति तृतीय स्थान में हों या तृतीय स्थान इनसे वीक्षित हो तो धर्म कथाओं को जातक सुनता है ॥५०॥

धैर्य विचार

धैर्यान्वितो विक्रमेशे सौम्यग्रहनवांशके।
शुभेक्षिते शुभयुते वैशेषिकसमन्विते ॥५१॥

धैर्याधिपे पातयुतेक्षिते वा दुःस्थानगे धैर्यविनाशमेति।
केन्द्रत्रिकोणे शुभखेटयुक्ते शुभेक्षिते वा यदि धैर्यशाली ॥५२॥

अगर तृतीयेश शुभग्रह के नवांश में हो और शुभ ग्रह युत या वीक्षित हो तो जातक धैर्यशाली होता है अथवा अपने वैशेषिक अंश में हो (शुभग्रह से युत या दृष्ट) तब भी यही फल ॥५१॥

(१) यदि तृतीयेश दुःस्थान स्थित हो अर्थात् छठे, आठवें, बारहवें हो और पापग्रह से युत या वीक्षित हो तो अधैर्य होता है।

(२) यदि तृतीयेश केन्द्र या त्रिकोण में हो, शुभ ग्रह के साथ हो, शुभ ग्रह से वीक्षित हो तो जातक धैर्यशाली होता है ॥५२॥

वीर्य वर्ग

वीर्याधिपे भूमिसुतेन युक्ते
पापर्क्षगे वीर्यविनाशहेतुः ।
केन्द्रत्रिकोणे ससिते बलाढ्ये
वीर्याधिको भोगगुणप्रकाशः ॥५३॥

यदि तृतीयेश मंगल से युक्त हो और पाप ग्रह की राशि में हो तो जातक के वीर्य का विनाश होता है और बलवान् तृतीयेश शुक्र के साथ केन्द्र या त्रिकोण में हो तो अधिक वीर्यवान् होता है और अधिक भोग करता है ॥ ५३ ॥

अशन विचार

शुक्रं निशाकरं त्यक्त्वा लग्नात्सोदरभे शुभे ।
शुभराश्यंशगे जातः समेति सुखभोजनम् ॥५४॥

शुक्र और चन्द्रमा को छोड़कर अन्य शुभग्रह (बुध और बृहस्पति) शुभ राशि और शुभ नवांश में हों तो जातक शुभ भोजन प्राप्त करता है । शुभ क्या ? अच्छा भोजन ॥५४॥

जीवस्य राशिनवभागदृकाणसंस्थे
वीर्याधिपे यदि सुरार्चितवीक्षिते वा ।
तत्केन्द्रकोणगृहगेऽवनिजे बलाढ्ये
जातस्तु कन्दफलमूलरसप्रियः स्यात् ॥५५॥

(१) यदि तृतीयेश बृहस्पति की राशि नवांश एवं द्रेष्काण में बलवान् हो या बृहस्पति से देखा जाता हो तो कन्दमूल फल और सुस्वादु रस का प्रिय होता है । (२) तृतीयेश से केन्द्र या त्रिकोण में बलवान् मंगल हो तो यही फल ॥५५॥

सोदराराातिगः शुक्रः शोकरोगभयप्रदः ।
तत्रैव शुभकारी स्यात्पुरतो यदि भास्करात् ॥५६॥

तृतीय या छठे स्थान में शुक्र रोग और भय देता है किन्तु सूर्य से आगे हो तो शुभकारी हो जाता है । सूर्य से आगे क्या ? शुक्र यदि तीसरे हो तो सूर्य

द्वितीय या प्रथम भाव में हो। शुक्र यदि छठे हो तो सूर्य पंचम या चतुर्थ में हो। इस स्थिति में तीसरे और छठे शुक्र शुभ होता है ।।५६।।

गुरुशुक्रयुते भुक्तौ नाथे सौम्ययुतेक्षिते।
बलवच्छुभदृष्टे वा त्वन्नदाता भवेन्नरः ।।५७।।

सौम्ये स्वोच्चं गते भुक्तौ सौम्यग्रहनिरीक्षिते।
नाथे वैशेषिकांशे वा सुखभुक्तिप्रदो भवेत् ।।५८।।

यह दो श्लोक तृतीय भाव के संदर्भ में दिये गये हैं परन्तु ये द्वितीय भाव के संदर्भ में विशेष उपयुक्त होते। बृहस्पति और शुक्र द्वितीय में हों या द्वितीयेश सौम्य ग्रह से युक्त या दृष्ट हों या बलवान् किसी अन्य शुभग्रह से दृष्ट हों तो अन्नदाता हो ।।५७।।

बुध उच्च राशि में होकर द्वितीय में हो और शुभ दृष्ट हो या द्वितीयेश वैशेषिक अंश में हो तो सुख भुक्ति देता है। सुख भुक्ति क्या? सुख पूर्वक भोजन ।।५८।।

चतुर्थ भाव फल

वदन्ति विद्याजननीसुखानि सुगन्धगोबन्धुमनोगुणानि।
महीपयानक्षितिमन्दिराणि चतुर्थभावप्रभवानि तज्ज्ञाः ।।५९।।

अब चौथे भाव से क्या-क्या विचार करना यह कहते हैं। विद्या, माता, सुख सुगन्ध, गाय, बन्धु, मन (मन के सात्त्विक, राजसिक, तामसिक गुण) राज्य, सवारी, भूमि और गृह यह सब चतुर्थ स्थान से विचार करना चाहिये। और सब बातें ठीक हैं। विद्या के संबंध में विचारणीय यह है कि विद्या का विचार चतुर्थ स्थान से करना या पंचम से। उत्तर भारत में पंचम से विचार किया जाता है। दक्षिण भारत में चतुर्थ से और द्वितीय से भी। पहले मौखिक विद्या का अधिक महत्त्व था और शास्त्रार्थ इत्यादि से पांडित्य का निर्णय होता था। अतः द्वितीय से विचार समुपयुक्त था। परन्तु यहाँ प्रश्न है चतुर्थ से विद्या विचार किया जाये या नहीं। दक्षिण भारत में नवम से पिता का विचार करते हैं। उत्तर भारत में दशम से। इस प्रकार कुछ विभिन्नता है ।।५९।।

विद्या विचार

विद्याराशौ निजपतियुते सौम्ययुक्तेक्षिते वा
जातो विद्याविनयचतुरश्चन्द्रसूनौ बलिष्ठे।

दुःस्थे पापद्युचरसहिते पापदृष्टे तदीशे
विद्याहीनो भवति मनुजः पापराशिस्थिते वा ।।६०।।

विद्यास्थानपजीवचन्द्रतनयाः षट्त्रिव्ययायुःस्थिता
विद्याबुद्धिविवेकहीनफलदा नीचारिगा वा यदि ।
स्वोच्चस्वर्क्षगतास्त्रिकोणगृहगाः केन्द्रस्थिता वा यदि
श्रीविद्याविनयादियुक्तिनिपुणो राजाधिराजप्रियः ।।६१।।

(१) निम्नलिखित परिस्थिति में विद्या, विनय और चतुरता में श्रेष्ठ होता है। चतुर्थ भाव का स्वामी अपने स्वामी श्रेष्ठ और शुभ ग्रहों से देखा जाता हो या बुध बलवान् हो। तीन बातें इन्होंने कहीं—अपने स्वामी से वीक्षित होना, शुभ ग्रह से वीक्षित होना और बुध का बलवान् होना। अगर तीनों बातें न हों और दो बातें हों तो विद्या, विनय और चतुरता में श्रेष्ठ हो लेकिन उतना नहीं जितना तीनों बातें हों। मान लीजिये एक ही है तो एक तिहाई फल समझना। (२) अगर चतुर्थ दुःस्थान में हो, पाप ग्रह के साथ हो और पाप ग्रह से दृष्ट हो और पाप राशि में हो तो मनुष्य विद्याहीन होता है। यहाँ चार बातें कहीं हैं (१) दुःस्थान में होना अर्थात् छठे, आठवें और बारहवें होना (२) पापग्रह की राशि में होना (३) पापदृष्ट होना (४) पापग्रह के साथ होना। जितने अधिक योग इनमें से होंगे उतना ही पाप फल होगा ।।६०।।

(१) अगर चतुर्थेश बुध और बृहस्पति तीसरे, छठे, आठवें या बारहवें हों अथवा ये ग्रह अर्थात् चतुर्थेश, बुध, बृहस्पति अपनी नीच राशियों में हों तो जातक विद्या, बुद्धि, विवेक हीन होता है। पाठकों को याद रखना चाहिये कि विद्या कारक बुध है और बृहस्पति ज्ञान का अधिष्ठाता है। (२) अगर ये तीनों ग्रह अपनी अपनी उच्च राशियों में या स्वराशियों में केन्द्र और त्रिकोण में हों तो मनुष्य लक्ष्मी, विद्या, विनय आदि का पात्र होता है और राजाधिराज का कृपापात्र होता है ।।६१।।

मातृ विचार

शुक्रे बलिष्ठे यदि वा शशाङ्के
सौम्येक्षिते शोभनभागयुक्ते ।
चतुष्टये, मातृगृहे बलाढ्ये
मातुश्चिरायुष्ट्वमुदाहरन्ति ।। ६२ ।।

मातृस्थानाधिपे षष्ठे व्यये वा बलवर्जिते ।
लग्ने पापे पापदृष्टे मातृनाशं वदेद् बुधः ।। ६३ ।।

क्षीणे चन्द्रेऽष्टमे षष्ठे व्यये वा पापसंयुते ।
पाताले पापसंयुक्ते मातृहानिर्न संशयः ।। ६४ ।।

मातृस्थानगते मन्दे पापग्रहनिरीक्षिते ।
रन्ध्रनाथेऽरिनीचस्थे मातृनाशं विनिर्दिशेत् ।। ६५ ।।

भ्रातृपुत्रगते पापे पातालेशेऽरिनीचगे ।
चन्द्रे पापसमायुक्ते मातृरोगं विनिर्दिशेत् ।। ६६ ।।

शुक्र वलवान् हो या चन्द्रमा अपने या उच्च के या अधिमित्र के नवांश में हो और केन्द्र में हो और मातृ ग्रह चतुर्थ भाव वलाढ्य हो तो माता दीर्घजीवी हो । शुक्र और चन्द्रमा दोनों स्त्री ग्रह हैं इसलिये दोनों का नाम लिया और चन्द्रमा मातृकारक है इसलिये माता के दीर्घायु होने में कारक का वलवान् होना आवश्यक है । भाव, भावेश, कारक तीनों के वलवान् होने से तत् संवंधी सुख होता है ।

उत्तरपाराशर में भी कहा गया है :—

मातृस्थानेशचन्द्रौ स्वभवनसुहृदन्योन्यतुंगाधिरूढौ
दृष्टौ युक्तौ शुभैश्चेदथ यदि शुभयोर्मध्यभागं प्रयातौ ।
यस्यैवं तस्य मातुर्भवति हि शतायुष्यमित्यर्द्धमायु-
मिश्रे पापग्रहाणामथ यदि मिलितौ पापभिः स्वल्पमायुः ।।६२।।

यदि चतुर्थेश बल वर्जित (निर्बल) हो और छठे या बारहवें घर में बैठा हो और लग्न में पाप ग्रह हो जो पाप दृष्ट हो तो माता का नाश कहे। जातक रत्न में कहा है :—

दुःस्थौ मातृपलग्नपौ सह निशानाथेन राहुध्वजौ
क्षिप्रं मातृमृतिं वदन्ति मुनयो पापेक्षिते मातृभे ।
दुःस्थे मातृपतौ त्रिपंचमगते पापे च तत्क्षेत्रगे
नीचे मन्दगतेथवा शिखियुते चन्द्रे च नाशं वदेत् ।।६३।।

क्षीण चन्द्र छठे, आठवें, बारहवें पापग्रह के साथ बैठा हो और चतुर्थ स्थान में भी पापग्रह हो तो निस्सन्देह मातृ हानि होती है ।।६४।।

यदि शनि चतुर्थ में हो और पाप ग्रह उसे देखता हो और अष्टमेश अपनी नीच राशि में या शत्रु राशि में हो तो माता की हानि होती है ।।६५।।

यदि तीसरा और पाँचवां भाव दोनों पाप ग्रहों से युक्त हों और चतुर्थेश अपनी नीच राशि या शत्रु राशि में हो तो माता को रोग कहना ।

चतुर्थ माता का स्थान है । तीसरे, पाँचवें पापग्रह हों तो पापकर्तरी योग होगा । अर्थात् चौथे भाव के दोनों ओर पापग्रह हो जायेंगे । इसके साथ-साथ चतुर्थेश और माता का कारक चन्द्रमा भी कमजोर हो गया ।।६६।।

षष्ठेश्वरेण सहितः सुखराशिनाथो
धर्मस्थितो जनकमत्र विटं करोति ।
भाग्याधिपेन सहितो यदि मातृनाथः
सौख्यस्थितो जनकमत्र विटं करोति ।। ६७ ।।

षण्मातृपौ पितृस्थाने पितुश्च व्यभिचारदौ ।
मातृतातारिदेहेशैरेकस्थैः परजातकः ।। ६८ ।।

(१) यदि चतुर्थेश षष्ठेश के साथ नवम भाव में हो तो उसका पिता व्यभिचारी होता है यदि नवमेश के साथ चतुर्थेश के सुखस्थान में हो (सुखस्थान चतुर्थ को कहते हैं) तो वही फल ।।६७।।

६७(१)

६७(२)
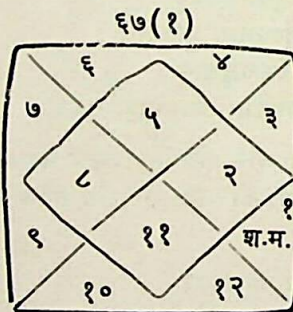
(१) षष्ठेश और चतुर्थेश एक साथ नवम में हों तो जातक का पिता व्यभिचारी होता है ।

(२) लग्नेश, चतुर्थेश, षष्ठेश और नवमेश एक साथ हों तो जातक अपने पिता के अतिरिक्त किसी और पुरुष से उत्पन्न समझना चाहिये ।।६८।।

६८(१)

६८(२)
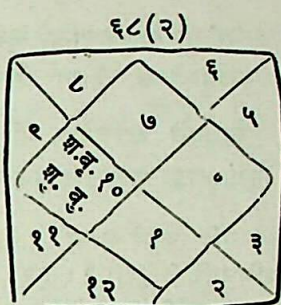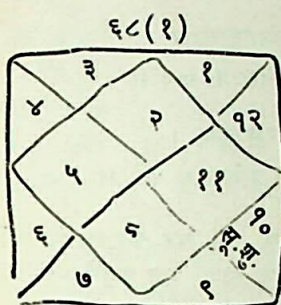
पापेक्षिते पापयुते शशाङ्के दिवाकरे वा यदि केन्द्रराशौ ।
क्रूरे सुखे वा यदि पापदृष्टे जातो नरः स्याद्यदि मातृगामी ॥६९॥

चन्द्रे भृगौ वा केन्द्रस्थे पापदृष्टेऽथवा द्वयोः ।
क्रूरे सुखे मातृगामी यदि वा गुरुदारभाक् ॥ ७० ॥

(१) चन्द्र या सूर्य पाप दृष्ट केन्द्र में हों तो मातृगामी होता है ।

(२) चतुर्थ स्थान में यदि क्रूर ग्रह हो और पाप दृष्ट हो तो मातृगामी होता है ।

मातृगामी से केवल मातृगामी नहीं समझना क्योंकि यह प्रायः होता नहीं । यदि किसी ऐसी स्त्री से व्यभिचार करे जो ताई, चाची, बुआ, मामी इत्यादि लगती हो तो भी इस योग को पूरा समझना ॥६९॥

(i) यदि केन्द्र में शुक्र या चन्द्र हो और पाप दृष्ट हो या शुक्र और चन्द्र दोनों केन्द्र में हों और चतुर्थ स्थान में क्रूर ग्रह हो तो जातक मातृगामी या गुरु-पत्नी गमन करता है ।

(ii) चन्द्रमा व शुक्र केन्द्र में हों, उन्हें पाप ग्रह देखता हो और चन्द्रमा और शुक्र दोनों से चतुर्थ में क्रूर ग्रह हों तो उपर्युक्त योग होता है ।

सुब्रह्मण्य शास्त्री ने श्लोक का यह अर्थ दिया है कि यदि चतुर्थ पाप ग्रह की राशि हो, चन्द्रमा या शुक्र केन्द्र में हों और पाप दृष्ट हों तो मनुष्य गुरु-पत्नी गमन करे । इसी प्रकार क्रूर राशि में चतुर्थ में चन्द्रमा और शुक्र हों और पाप दृष्ट हों तो यही फल ॥७०॥

सुखस्थे सारषष्ठेशे चन्द्रे माताऽन्यमैथुनी ।
व्यभिचारप्रदो मातुः सराहुर्दिननायकः ॥ ७१ ॥

शीतांशौ राहुकेतुभ्यां युक्ते नीचेन सङ्गमः ।
मन्दयुक्ते च शूद्रेण वैश्येन बुधयोगतः ।। ७२ ।।

रवियुक्ते क्षत्रियेण मन्त्रिभ्यां द्विजसङ्गमः ।
एवं चन्द्रः कुजारीशयुक्तस्तत्फलदो भवेत् ।। ७३ ।।

(१) यदि चतुर्थ स्थान में मंगल के साथ छठे घर का स्वामी बैठे तो माता व्यभिचारिणी होती है। (२) यदि सूर्य के साथ राहु चतुर्थ स्थान में हो तो माता व्यभिचारिणी होती है ।।७१।।

जब ऊपर ७१ में कही गयी परिस्थिति में चन्द्रमा, राहु या केतु के साथ हो तो माता नीच पुरुष के साथ व्यभिचार करती है। यदि चन्द्रमा शनि के साथ हो तो शूद्र के साथ। यदि चन्द्रमा के साथ बुध हो तो वैश्य के साथ ।।७२।। सूर्य से चन्द्रमा युक्त हो तो क्षत्रिय के साथ। यदि बृहस्पति या शुक्र के साथ हो तो ब्राह्मण के साथ। प्रत्येक अवस्था में मंगल और षष्ठेश के साथ चन्द्रमा का चतुर्थ स्थान में रहना आवश्यक है

इस प्रसंग में जातकरत्न में निम्नलिखित श्लोक दिये गये हैं:
सहोदरीसंगममाहुरन्ये दारेश्वरे शुक्रयुते सुखस्थे ।
पापेक्षिते पापसमागमे वा क्रूरादिषष्ठ्यंशसमन्वितेऽपि ।।
लग्नेश्वरे राहुयुते सपापे शनैश्चरेणापि दिवाकरेण ।
मातान्यसक्ता सुखराशिनाथसंयुक्तभांशाधिपतौ तथैव ।।
सुखेश्वरे लग्नगते बलाढ्ये गुर्विन्दुसौम्यास्फुजितैश्च दृष्टे ।
वैशेषिकांशे शुभदृष्टियोगे पतिव्रता तस्य भवेत्सवित्री ।।
तथाविधे शीतकरे सराहौ केतौ सवित्री यदि नीचसक्ता ।
मन्देन युक्ते सति नीचसक्ता वैश्येन सक्ता शशिसूर्ययुक्ते ।।
रव्यान्विते क्षत्रियजातियुक्ता जीवेन युक्ते द्विजपुंगवेन ।
भृगोः सुतेनापि तथाविधेन सक्तरूलं तादृशमत्र सत्यम् ।।७३।।

चन्द्रोऽनिष्टस्थानगः सानुजेशो
जातस्यान्यस्तन्यपानं करोति ।
दुःस्थानस्थौ मातृपितृक्षनाथौ
पित्रोर्मृत्युर्लग्ननाथे बलाढ्ये ।। ७४ ।।

(१) यदि चन्द्रमा तृतीयेश के सहित लग्न से अनिष्ट स्थान में हो तो जातक अपनी माता के अतिरिक्त अन्य स्त्री का स्तन पान करता है। यह उस

समय की बात है जब बालक प्रायः अपनी माता का स्तन पान करता था और केवल माता के न होने या रुग्ण होने पर अन्य स्त्री का स्तन पान करता था। अब तो भिन्न बात है बहुत से बालक अपनी माता का दूध ही नहीं पीते।

(२) यदि चतुर्थेश और नवमेश दोनों ही दुःस्थान में हों यानी छठे, आठवें और बारहवें हों और लग्न बलवान् हो तो माता पिता की मृत्यु होती है ॥७४॥

पितृकर्माधिपे दुःस्थे लग्नेशे बलसंयुते।
पित्रोरनिष्टकारी स्यात् सीमन्तरहितोऽथवा ॥ ७५ ॥

पितृ स्थान नवम—उससे दशम छठे स्थान का मालिक दुःस्थान में हो और लग्नेश बलाढ्य हो तो माता पिता के लिये जातक अनिष्टकारी होता है या सीमन्त संस्कार से रहित होता है। सीमन्त संस्कार का प्रायः लोप हो गया है ॥७५॥

मातृस्थानेशलग्नेशौ तत्र कोणगतौ यदि।
तदीशो लग्नगो माता पित्रा सह मृता भवेत् ॥ ७६ ॥

यदि चतुर्थेश त्रिकोण (५, ९) में हो और उस त्रिकोण का स्वामी लग्न में हो तो जातक के माता पिता की मृत्यु होती है ॥७६॥

मातृलग्नेशपितृपाः केन्द्रकोणस्थिता यदि।
तद्दशान्तर्द्दशाकाले जनन्यास्त्वनुमृत्युदाः ॥ ७७ ॥

मातृ स्थान का स्वामी और लग्नेश एवं पितृ स्थान का स्वामी अर्थात् प्रथम, चतुर्थ और नवम का स्वामी यदि केन्द्र, त्रिकोण (१, ४, ७, १०, ५, ९) में हो तो उनकी दशा अन्तर्दशा में पहले माता की और पिता की मृत्यु होती है। इन श्लोकों में (७६, ७७) में साधारणतया माता और पिता की मृत्यु का हेतु समझ में नहीं आता। बचपन में मृत्यु होती है या आगे चलकर इस योग के पूरे सही उतरने में सन्देह है ॥७७॥

रवीन्दू पितृमातृस्थौ यदि तावनुमृत्युदौ।
तदीशेक्षितयुक्ता वा रविसम्बन्धिनस्तथा ॥ ७८ ॥

(१) यदि सूर्य और चन्द्रमा नवें और चौथे हों तो माता पिता की मृत्यु कारक होते हैं। पहले माता की फिर पिता की मृत्यु होती है।

(२) चतुर्थेश अथवा नवमेश की दृष्टि या युति सूर्य के साथ हो तो माता की मृत्यु होती है या इनका अन्य प्रकार से सूर्य से सम्बन्ध हो ॥७८॥

ये मातृभावपतिकारकतत्समेता–
स्तन्मातृराशिगतवीक्षितखेचरेन्द्राः ।
तेषामनिष्टकरखेटदशापहारे
जातस्य मातृमरणं प्रवदन्ति सन्तः ॥ ७९ ॥

(१) चतुर्थेश, (२) कारक चन्द्रमा (३) जो चौथे भाव में ग्रह बैठे हों (४) जो मातृ स्थान गत अर्थात् चतुर्थस्थ ग्रह से वीक्षित हों उनमें जो अनिष्ट ग्रह हों उनकी दशा, अन्तर्दशा में माता की मृत्यु होती है ऐसा पंडित कहते हैं ॥७९॥

मार्तण्डस्फुटतो विशोध्य शशिनं तच्छेषराश्यंशके
जीवे भानुसुते च मातृमरणं तत्कोणगे वा नृणाम् ।
संशोध्यं यमकण्टकं हिमकराद्रन्ध्राधिपस्य स्फुटं
तद्राशौ रविनन्दने मृतिमुपैत्यम्बा तदंशे रवौ ॥ ८० ॥

(१) सूर्य स्पष्ट में से चन्द्र स्पष्ट घटायें जो शेष हो उस राशि और नवांश में या उनसे त्रिकोण में जब शनि व बृहस्पति जाते हैं तब माता का मरण होता है ।

(२) चन्द्रमा से अष्टम स्थान के स्वामी के स्पष्ट में से यम कंटक घटाये जब उस राशि में गोचर वश शनि जाये और उस अंश में जब सूर्य जाये तो माता की मृत्यु होती है । यम कंटक निकालना अध्याय २, श्लोक ६ में बताया जा चुका है ॥८०॥

सुख विचार

गोपुराद्यंशके जीवे सुखस्थानगतेऽपि वा ।
धनायवृद्धिभावेषु खेटेषु च सुखी भवेत् ॥ ८१ ॥
बुधदृष्टियुते सौख्ये सौम्यमध्यगतेऽथवा ।
जीवराश्यंशके वाऽपि पुण्यकर्मरतः सदा ॥ ८२ ॥

सुखस्थितः शोभनराशिगो बली
विलग्नसम्बन्धगुणाधिको यदि ।
तज्जातिवर्गेण सुखं निरन्तरं
तदीयधातुश्रियमेति मानवः ॥ ८३ ॥

चतुर्थगो नीचसपत्नयात-
स्त्वनिष्टभावाधिपतिर्विलग्नात् ।
लग्नेशशत्रुर्यदि तत्प्रकोपात्
शरीरसौख्यादिविनाशमाहुः ॥ ८४ ॥

चतुर्थभावस्थितदर्शिकारका
बलान्विता यद्यतिसौख्यहेतुकाः ।
अनिष्टदा नीचसपत्नमूढगाः
सुखं शुभेनाशुभमन्यखेचरैः ॥ ८५॥

चतुर्थगे भाग्यपतौ सशुक्रे
बलाधिके स्याच्चिरकालभोगी ।
शुभान्विते रन्ध्ररिपुव्ययस्थे
जातोऽल्पकालं समुपैति सौख्यम् ॥ ८६ ॥

यदि बृहस्पति गोपुरांश आदि में हो अथवा सुख (४) स्थान में हो और धन, आय, वृद्धि में ग्रह हों तो जातक सुखी होता है। गोपुरांश के लिये देखिये अध्याय १, श्लोक ४४। धन (२) आय (११) वृद्धि (४) भाव में ग्रह अच्छे कहे हैं परन्तु हमारे विचार से पाप ग्रह अपनी राशि में या अपनी उच्च राशि में हों तभी शुभ फल दिखाता है। इसलिये शुभ ग्रह की स्थिति इन भावों में अभिप्रेत है। शुभ ग्रह भी तभी पूर्ण फल करेगा जब अपनी राशि, नवांश में बलवान् होगा ॥८१॥

बुध की चौथे भाव पर दृष्टि हो अथवा दो सौम्य ग्रह के बीच में हो अर्थात् तृतीय और पंचम में चतुर्थ के दोनों तरफ अव्यवहित सान्निध्य में—दोनों ओर सौम्य ग्रह हों या चतुर्थ भाव बृहस्पति के राशि, अंश में हो तो सदैव पुण्य कर्मरत रहता है ॥८२॥

शुभ स्थान में अर्थात् चौथे स्थान में शुभ राशि का बलवान् ग्रह हो और लग्नेश से संबंध करके और भी अधिक गुणान्वित हो जाय तो जो ग्रह चतुर्थ में हो उस वर्ग से और उस धातु से लक्ष्मी प्राप्त करता है। यथा सूर्य बलवान् हो तो राजाओं से और क्षत्रियों से धन प्राप्त करे, बुध हो तो वैश्यों से लिखने पढ़ने से धन प्राप्त करे। किस ग्रह से किन लोगों का विचार करना और किस ग्रह से किन वस्तुओं का विचार करना यह अध्याय १ के श्लोक २० और २२ में बताया गया है ॥८३॥

चतुर्थ स्थान में नीच राशि का, शत्रु राशि का या लग्न से अनिष्ट भाव का या लग्नेश का शत्रु यदि बैठा हो तो उसके प्रकोप से शरीर सौख्य आदि का नाश करता है ॥८४॥

चतुर्थ भाव में जो ग्रह स्थित होते हैं, चतुर्थ भाव को जो ग्रह देखते हैं और इसका कारक यदि बलवान् हो तो अत्यन्त सौख्य का हेतु होता है। इसके विपरीत नीच राशि का ग्रह, शत्रु राशि का ग्रह, अस्तंगत ग्रह अनिष्ट होते हैं। सिद्धान्त यह है कि शुभ ग्रहों से शुभ फल प्राप्ति होती है, अशुभ ग्रह से अशुभ फल प्राप्ति ॥८५॥

चतुर्थ स्थान में भाग्येश के साथ शुक्र बैठा हो तो चिरकाल तक भोगी होता है। किन्तु यदि भाग्येश शुभ ग्रह के साथ छठे, आठवें, बारहवें हो तो अल्पकाल तक सुख प्राप्त करता है ॥८६॥

सुखादिविचारनिर्णय

सुखचिन्ता गृहेज्याभ्यां मातृचिन्ता सुखेन्दुतः।
सुगन्धं गृहशुक्राभ्यां वस्त्रवाहनभूषणम् ॥ ८७ ॥

इसमें यह बताया है कि सुख की चिन्ता चतुर्थ भाव और बृहस्पति से करना। बार-बार कारक शब्द आया है तो सुख का कारक बृहस्पति को समझना। माता के विषय में विचार चतुर्थ भाव और चन्द्र से करना अर्थात् चन्द्रमा मातृ कारक हुआ। सुगन्धि का विचार और वस्त्र, वाहन, भूषण का विचार चौथे भाव तथा शुक्र से करना। श्लोक में यह नहीं लिखा है कि विद्या का विचार चतुर्थ भाव और बुध से करना। सर्वार्थचिन्तामणि में भी लिखा है :—

सुवर्णवस्त्राभरणादियानं शुक्राद्वदेत्तत्सुखराशितो वा ॥८७॥

सुगन्ध विचार

सुखेश्वरे शोभनराशिक्ते शुक्रेण दृष्टे सति संयुते वा।
अरातिनीचग्रहदृष्टिहीने सुगन्धमाल्यादिसुखं समेति ॥८८॥

चतुर्थेश शुभ राशि में हो और वहां पर शुक्र से दृष्ट हो या युत हो तथा शत्रु ग्रह या नीच ग्रह की दृष्टि उन पर न पड़ती हो तो सुगन्ध, माला आदि प्राप्त होते हैं ।।८८।।

वस्त्र विचार

वीर्यान्विते शीतकरे सुवस्त्रं साहिध्वजे जीर्णांतरं समेति ।
कौशेयकं जीवयुते च रत्नचित्रं सशुक्रे सशनौ तु कृष्णम् ।।८६।।

यहाँ पर यह कहना आवश्यक है कि ऊपर ग्रंथकार ने यह लिखा है कि शुक्र से वस्त्र, वाहन, भूषण का विचार करना परन्तु इस श्लोक में चन्द्रमा से वस्त्र का विचार करते हैं । चन्द्रमा यदि पूर्ण बली हो तो सुवस्त्र मिलें । चन्द्रमा यदि राहु या केतु के साथ हो तो जीर्ण (पुराना) वस्त्र प्राप्त हो । बृहस्पति के साथ चन्द्रमा हो तो कौशेयक (रेशमी) वस्त्र प्राप्त हो । चन्द्रमा शुक्र के साथ हो तो रत्नादि से अलंकृत वस्त्र प्राप्त हो । और शनि के साथ हो तो काले वस्त्र मिलें । सूर्य, मंगल तथा बुध के साथ चन्द्रमा हो, यह ग्रंथकार ने नहीं लिखा है । हम समझते हैं कि सूर्य के साथ हो तो स्फुटित, मंगल के साथ हो तो जला हुआ और बुध के साथ हो तो विचित्र शिल्पयुक्त वस्त्र प्राप्त हों । यह पुराने जमाने की बात है अब तो जो कम वेतन पाते हैं वह भी टेरीलिन और रेशमी वस्त्र पहनते हैं ।।८९।।

पशुविचार

शुक्रेन्दुवर्गसहिते सुखराशिनाथे
शुक्रेण शीतरुचिना सहितेक्षिते वा ।
नीचारिपापगगनाटनदृष्टिमुक्ते
पश्वादिवित्तमखिलं लभते मनुष्यः ।। ९० ।।

यदि चतुर्थेश शुक्र या चन्द्रमा के वर्ग में हो या शुक्र और चन्द्रमा से देखा जाता हो और उस पर किसी ऐसे ग्रह की दृष्टि न हो जो नीच हो या शत्रु राशि का हो या पाप राशि में हो तो जातक बहुत पशु और वित्त का मालिक हो ।।९०।।

बन्धु विचार

बन्धुस्थानेश्वरे सौम्ये सौम्यग्रहनिरोक्षिते ।
कारके बलसम्पूर्णे बन्धुपूज्यो भवेन्नरः ।। ९१ ।।

बन्धूपकर्ता तन्नाथे केन्द्रकोणायसंयुत ।
वैशेषिकांशसंयुक्ते पापदृग्योगवर्जिते ॥ ९२ ॥

बन्धुद्वेषी भवेन्नित्यं पापक्रान्ते रसातले ।
नीचास्तखेटसंयुक्ते शुभदृग्योगवर्जिते ॥ ९३ ॥

जब चौथे स्थान का स्वामी शुभ ग्रह हो और दूसरे शुभ ग्रह से देखा जाता हो और चतुर्थ भाव का कारक सम्पूर्ण वलयुक्त हो तो जातक का बन्धु लोग आदर करते हैं। पराशर ने भी कहा है :—

बन्धुस्थानेश्वरे सौम्ये शुभग्रहनिरीक्षिते ।
शशिजे लग्नसंयुक्ते बन्धुपूज्यो भवेन्नरः ॥

जातकरत्न में भी इसी भाव का श्लोक है :—

लग्नेश्वरे लग्नगते सबन्धुनाथेन युक्ते परमोच्चभागे ।
केन्द्रस्थिते शोभनदृष्टियुक्ते निरीक्षिते वापि स बन्धुपूज्यः ॥९१॥

यदि चतुर्थ भाव का स्वामी केन्द्र, त्रिकोण या ग्यारहवें हो और वैशेषिकांश में हो और पाप ग्रह के योग व दृष्टि से रहित हो तो जातक अपने बन्धुओं का उपकार करता है ॥९२॥

यदि चतुर्थ भाव पापाक्रान्त हो या नीच अस्तंगत ग्रह से युक्त हो, शुभ ग्रह की दृष्टि उस पर न पड़े तो मनुष्य निरन्तर अपने बन्धुओं से द्वेष करे। जातकरत्न में भी इसी प्रकार का श्लोक है :—

पापान्विते पापखगे च बन्धौ नीचान्विते वाद्यसबन्धुनाथे ।
पापग्रहैर्वीक्षणयोगतश्च विद्वेषकृद्धूमग्रहादियोगात् ॥९३॥

मनोविचार

सपापे रन्ध्रपे सौख्ये कपटी पापसंयुते ।
स्वोच्चमित्रस्ववर्गस्थे निष्कापटयं शुभेक्षिते ॥ ९४ ॥

विशुद्धहृदयः शान्तो हृदयेशे बलान्विते ।
गोपुराद्यंशके वाऽपि मृद्वंशादिसमन्विते ॥ ९५ ॥

यदि अष्टमेश पाप ग्रह से संबंध करता हो और चतुर्थ भाव में पाप ग्रह हो तो जातक कपटी होता है और अष्टमेश यदि उच्च, स्वगृही या मित्र या स्ववर्ग

में हो और शुभ ग्रह उसको देखता हो तो निष्कपटी होता है । श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने इसके अर्थ में लिखा है कि यदि अष्टमेश उच्च, मित्रक्षेत्री, या स्ववर्ग या मित्र वर्गी हो और चतुर्थ स्थान को शुभ ग्रह देखता हो तो निष्कपटी होता है ।।९४।।

यदि चतुर्थेश बलवान् हो और गोपुरांश आदि में हो या मृदु षष्टि-अंश में हो तो मनुष्य विशुद्ध हृदय का और शान्त होता है ।।९५।।

वाहन विचार

वाहनेशे बलयुते यानराशौ बलान्विते ।
शुभग्रहेण संदृष्टे वाहनादि फलं वदेत् ।। ९६ ।।

वाहनेशे वाहनस्थे सेन्दुजे शुभवीक्षिते ।
शुभखेचरराश्यंशे वाहनादि फलं वदेत् ।। ९७ ।।

चन्द्रो विलग्नसम्बन्धी वाहनेशसमन्वितः ।
तुरङ्गवाहनं तस्य वदन्ति मुनिपुङ्गवाः ।। ९८ ।।

द्वितीये वा चतुर्थे वा चन्द्रे शोभनराशिगे ।
शुभखेचरसंयुक्ते समुपैत्यश्ववाहनम् ।। ९९ ।।

सेन्दौ चतुर्थाधिपतौ विलग्ने
लग्नेश्वरेणापि युतेऽश्वलाभम् ।
शुक्रेण युक्ते यदि वाहनेशे
देहान्विते वा नरवाहनं स्यात् ।। १०० ।।

आन्दोलिकाभरणदौ सितपूर्णचन्द्रौ
केन्द्रत्रिकोणगृहगौ बलिनौ भवेताम् ।
रक्ताम्बराभरणदः सुरपूजितर्क्षे
चन्द्रे सुरेन्द्रसचिवेक्षितसंयुते वा ।। १०१ ।।

आन्दोलिकातुरगलाभमुपैति जातः
शुक्रेन्दुयानपतयस्तनुनाथयुक्ताः ।
एकत्र देवगुरुयानपचन्द्रशुक्राः
केन्द्रत्रिकोणगृहगाश्चतुरङ्गयानम् ।। १०२ ।।

वाहनेशे गुरुयुते चतुरङ्गाख्यवाहनम् ।
यानेशे सशुभे माने चामरच्छत्रसंयुतः ।। १०३ ।।

सुखेश्वरे केन्द्रगते तदीशे लग्नस्थिते वाहनयोगवन्तः ।
कर्मेश्वरे लाभगते तदीशे कर्मस्थिते भूषणयानवन्तः ।। १०४ ।।

यदि चतुर्थेश राशि का स्वामी और चतुर्थ राशि दोनों वलवान् हों और शुभ ग्रह उनको देखते हों तो जातक को वाहन (सवारी) आदि का सुख प्राप्त होता है ।।९६।।

यदि चतुर्थेश चतुर्थ में शुभ नवांश में हो, वुध के साथ हो और शुभ ग्रह से वीक्षित हो तो सवारी आदि का सुख होता है ।।९७।।

यदि चन्द्रमा और लग्न का संवंध होता हो और चतुर्थेश का संवंध हो तो जातक को घोड़े की सवारी का सुख होता है । लग्न का संवंध क्या ? चन्द्रमा लग्न में हो और चतुर्थेश से युक्त हो तो यह शुभ फल कहना ।।९८।।

द्वितीय या चतुर्थ में शुभ राशि में चन्द्रमा हो और शुभ ग्रह के साथ हो तो घोड़े की सवारी मिलती है । यह उस समय की वात है जव घोड़े की सवारी उत्तम समझी जाती थी ।।९९।।

(१) जव चन्द्रमा चतुर्थेश, लग्नेश के साथ लग्न में हो तो घोड़े का लाभ हो ।

(२) किन्तु यदि चतुर्थेश शुक्र के साथ लग्न में हो तो जातक को हाथी की सवारी मिलती है ।।१००।।

(१) वलवान् शुक्र तथा पूर्ण चन्द्रमा केन्द्र या त्रिकोण में हो तो जातक को पालकी की सवारी मिलती है। (२) ये दोनों वृहस्पति की राशि में हों तो रक्त वस्त्र तथा भूषण का लाभ कराते हैं । (३) यदि चन्द्रमा वृहस्पति से युक्त या दृष्ट हो तो यही फल ।।१०१।।

(१) यदि शुक्र, चन्द्रमा, चतुर्थेश और लग्नेश एकत्रित हों तो जातक को पालकी की सवारी या घोड़े की सवारी प्राप्त होती है ।

(२) यदि वृहस्पति, चतुर्थेश, चन्द्रमा और शुक्र एक साथ केन्द्र या त्रिकोण में हों तो उसे चतुरन्तयान प्राप्त होता है । चतुरन्तयान से क्या अभिप्राय है अर्थात् जो सवारी चारों ओर से घिरी हुई हो उसे चतुरन्तयान कहते हैं। पराशर कहते हैं :—

चतुर्थपभृगुशुभप्रमिलितौ शुभेनेक्षितौ
परस्परसुहृद्गतौ स्वभवनोच्चभावस्थितौ ।
सुखाच्चतुरमन्दिरं द्विपतुरंगमान्दोलिका
भवत्यशुभमिश्रिते तदधिके फलं पूर्ववत् ।।

लग्नवाहेशधर्मेशसंबन्धे चाश्ववाहनम् ।
शुक्रेणान्दोलिकाप्राप्तिगुरुणा गजवाहनम् ।।

केन्द्रायस्वविलग्नकोणसहजस्थौ काव्यवाहेश्वरौ
देवेढयेन्दुविलग्ननाथसहितावन्योन्यभावाश्रितौ ।
अन्योन्यं मतिभाग्यकण्टकगतौ सुस्थानगौ स्वगृहं
पश्यन्तौ यदि दीनवंशजनितोपि स्याच्चतुर्वाहनः ।।१०२।।

(१) यदि चतुर्थेश और वृहस्पति एक साथ हों तो जातक को चतुरान्त (चारों ओर से घिरा हुआ) वाहन प्राप्त होता है ।

(२) जब चतुर्थेश शुभ ग्रह के साथ दशम में हो तो जातक को छत्र और चामर प्राप्त होते हैं । छत्र और चामर राजा के उपलक्षण हैं ।।१०३।।

(१) चतुर्थेश केन्द्र में हो और उस केन्द्र का स्वामी दशम में हो तो यह वाहन योग है ।

(२) कर्मेश्वर अर्थात् दशमेश लाभ में (११वें) हो और उसका स्वामी अर्थात् ११वें का स्वामी दशम स्थान में हो तो भूषण और सवारी प्राप्त होते हैं । किसी-किसी पुस्तक में पाठ प्राप्त होता है "कर्मेश्वरे लग्नगते तदीशे" उस पाठ का अर्थ होगा यदि दशमेश लग्न में हो और लग्नेश दशम स्थान में हो तो भूषण और वाहन प्राप्त होते हैं ।।१०४।।

राज्य विचार

यानेशे लाभराशिस्थे सुखे वा लाभगे कुजे ।
अथवा भौमराशिस्थे राज्यप्राप्तिर्न संशयः ।। १०५ ।।

(१) चतुर्थेश सुख (४) या लाभ में हो अर्थात् ११वें हो; मंगल चतुर्थ या लाभ में स्वराशि का हो तो राज्य प्राप्त हो

(२) चतुर्थेश लाभ में हो या सुख स्थान (चौथे) में हो, मंगल की राशि में हो तो राज्य प्राप्ति होती है । सर्वार्थचिन्तामणि में भी कहा है :—

क्षेत्रेश्वरे लाभगते बलाढये बन्धौ भवे वा क्षितिसूनुयुक्ते ।
भूसूनुराशौ यदि वा सुखेशे राज्यार्थसौख्याभरणादियानम् ।।१०५।।

लग्नाद्वाहनराशिगस्तदधिपस्तद्वीक्षकश्च त्रयः
स्वोच्चस्वर्क्षसुहृद्गृहेषु बलिनः केन्द्रत्रिकोणायगाः ।
दीर्घायुः शयनासनाम्बरबहुक्षेत्राणि सन्मन्दिरं
बन्धुस्नेहमनोज्ञवाहनयशःसौख्यानि कुर्वन्ति ते ।।१०६।।

जन्म लग्न से (१) चौथे का स्वामी (२) चौथे में जो ग्रह बैठे हों और (३) चौथे को जो देखते हों—ये तीनों यदि स्वराशि में हों, उच्च राशि में हों, मित्र राशि में होकर केन्द्र, त्रिकोण या लाभ गृह में बली हों तो जातक को निम्नलिखित प्राप्त होते हैं :—

दीर्घायु, शयन सुख, आसन सुख, अम्बर (वस्त्र), बहुत खेत, मकान, बन्धु स्नेह, मनोज्ञ वाहन, यश और समस्त प्रकार के सुख ।।१०६।।

स्वोच्चराशिगतश्चान्द्रिः केन्द्रकोणसमन्वितः ।
विद्यावाहनसम्पत्तिं करोति विपुलं धनम् ।।१०७।।

बुध यदि केन्द्र या त्रिकोण में अपनी उच्च राशि का हो तो विद्या, वाहन सम्पत्ति, विपुल धन देता है ।

पराशर ने भी लिखा है :—

विद्यास्थानाधिनाथामृतकिरणसुतौ दुष्टभावान्विहाय
स्वोच्चान्योन्याधिमित्रस्थितिनिलयगतौ वीक्षितौ चेच्छुभैर्वा ।
दृष्टौ युक्तौ क्रमेणामरगुरुभृगुचन्द्रे तरैर्भूरिविद्यः
शूराध्यायी कवीन्द्रः प्रभवति नितरां मान्त्रिकः कौशली च ।।१०७।।

लग्नेशात्सुखनाथतद्भुवनगौ भाग्येशभाग्यस्थितौ
चत्वारः शुभवर्गगाः सुबलिनस्ते लग्नसम्बन्धिनः ।
अन्योन्याश्रितवीक्षिता यदि महीपालश्चिरायुः सुखी
तेजस्वी चतुरङ्गयानविपुलश्रीराजचिह्नाङ्कितः ।।१०८।।

लग्नेश से (१) चतुर्थेश (२) चतुर्थ स्थानगत ग्रह (३) नवमेश (४) नवम स्थानगत ग्रह (याद रखिये यह सब लग्नेश जहाँ स्थित हों वहाँ से गणना करनी चाहिये लग्न से नहीं)—ये चार ग्रह शुभ वर्गों में हों और पूर्ण वली हों (मूल में आया है 'सुवलिनः,) और लग्न से संबंध करें, एक दूसरे के स्थान में वैठें, एक

दूसरे को देखते हों तो वहुत बड़ा राजयोग है। लग्न से संवंध करें इसका क्या अर्थ ? लग्न में हों, लग्न को देखें, लग्नेश के साथ हों, लग्नेश को देखें। इस राजयोग का फल है महीपाल हो, चिरायु और सुखी हो, तेजस्वी हो, चारों ओर से घिरी हुई सवारी प्राप्त हो और विपुल, लक्ष्मी तथा राजचिह्नों से अंकित हो ॥१०८॥

ग्रहत्रयं स्थानबलाधिकं चेद्विचित्ररत्नाभरणादि यानम् ।
खेटद्वये वीर्ययुते विलग्ने तदीयपाके समुपैति सौख्यम् ॥१०९॥

ऊपर चार ग्रह गिनाये हैं। यदि तीन ग्रह स्थानवल में वली हों तो विचित्र रत्न, आभरण आदि का सुख प्राप्त होता है। यदि ऊपर जो ग्रह गिनाये हैं उनमें दो भी वलवान् होकर लग्न में वैठें तो उनकी दशा में जातक सुख प्राप्त करता है ॥१०९॥

उक्तस्थानत्रयेष्वेको बली वाहनराशिपः ।
लग्नलग्नेशसम्बन्धी तद्दशा वाहनप्रदा ॥११०॥

यदि एक भी वली ग्रह प्रथम, चतुर्थ या नवम में वैठे और लग्न या लग्नेश का संवन्धी हो (लग्न में स्थिति लग्न को देखना लग्नेश से चार प्रकार का सम्बन्ध–एक साथ वैठना, एक दूसरे को पूर्ण दृष्टि से देखना अन्योन्याश्रित सम्बन्ध या एकतर दृष्टि सम्बन्ध) तो उसकी दशा वाहन देती है ॥११०॥

चतुर्थधर्मायधनाधिनाथा विलग्नसम्बन्धिबलाधिकाश्चेत् ।
तदीयपाके समुपैति राज्यं क्रमेण भाग्यं धनलाभमर्थम् ॥१११॥

यदि चतुर्थेश, नवमेश, एकादशेश और धनेश पूर्ण वली हों और लग्न से संवंध करें तो क्रमशः उनकी दशा में राज्यप्राप्ति, भाग्योदयलाभ और धन लाभ होता है। अर्थात् चतुर्थेश की दशा में राज्य प्राप्ति, भाग्येश की दशा में भाग्योदय एवं लाभेश की दशा में लाभ और धनेश की दशा में धन प्राप्ति ॥१११॥

ते चत्वारोऽधिकबलयुता देहसम्बन्धिनश्चे-
देतत्सर्वं भवति विपुलं दुर्बला दुःखदाः स्युः ।
मिश्रं मिश्रैस्तनुपरिभवः कारको भावनाथो
भावाक्रान्तो विगतबलिनश्चेदतिक्लेशदास्ते ॥११२॥

ऊपर जो चार ग्रह बताये गये हैं वे यदि अधिक बली हों और लग्न से सम्बन्ध करें तो ये चार—राज्य प्राप्ति, भाग्योदय, लाभ और धन विपुल मात्रा में होते हैं। यदि ये दुर्बल हों तो दुःखदायी होते हैं। यदि कुछ बलवान् और कुछ दुर्बल हों तो मिला-जुला फल होता है। अर्थात् जो ग्रह बलवान् हो उसका अच्छा फल, जो कमजोर हो उसका अनिष्ट फल। या न कमजोर हो न बलवान् हो तो सामान्य फल। न उत्कृष्ट मात्रा में अभ्युदय न हानि। कारक (भाव का) भावनाथ भावगत ग्रह यदि दुर्बल हों तो विशेष कष्टदायक होते हैं। यदि ये लग्नेश के शत्रु हों तो और भी कष्टदायक होते हैं ॥११२॥

वाहनेशेऽरिनीचस्थे दुःस्थे धर्माधिपेक्षिते ।
सद्दुर्वाहनसम्प्राप्तिश्चलवाहनताऽपि वा ॥११३॥

धर्मकर्मविलग्नस्थास्तुङ्गोपगशुभग्रहाः ।
लग्नाधिपेन संदृष्टा यानान्ते दुःखमाप्नुयात् ॥११४॥

चतुर्थ स्थान का स्वामी यदि दुःस्थान में हो अर्थात् छठे, आठवें, बारहवें हो और नीचराशि या शत्रु राशि का हो और नवमेश से दृष्ट हो तो खराब वाहन मिलता है या अच्छी सवारी मिलती है तो थोड़े दिनों के लिये। सर्वार्थ-चिन्तामणि में भी लिखा है :—

दुःस्थे विमूढे यदि वाहनेशे भाग्येश्वरेणापि समीक्षिते वा ।
दुर्वाहिनी चंचलवाहिनी वा लाभाधिपेनापि समीक्षिते वा ॥११३॥

उसी ग्रंथ में लिखा है :—

कर्मभाग्यविलग्नेषु स्वोच्चे सौम्यग्रहाः स्थिताः ।
दृष्टेषु वा लग्नपेन यानान्ते दुःखमाप्नुयात् ॥

अर्थात् कर्म, भाग्य और लग्न में स्वोच्च में यदि सौम्य ग्रह स्थित हों और लग्नेश उनको देखे तो सवारी का जब अन्त हो जाये तो दुःख पाये। प्रायः इसी आशय का श्लोक ११४ है। निश्चय ही जातकपारिजातकार ने उपर्युक्त श्लोक ११४ सर्वार्थचिन्तामणि से लिया है परन्तु नवम, दशम और लग्न इनमें बलवान् शुभ ग्रह स्वोच्च में हों और लग्नेश उनको देखे तो शुभ योग बनता है और ग्रन्थकारों ने जो अशुभ फल प्राप्ति कही है वह हमारी समझ में नहीं आती ॥११४॥

जीवे वा सुखपे शुभग्रहयुते लग्नात्तपःस्थानगे
सौम्यर्क्षे नरवाहनं चिरतरं राजप्रतापान्वितम् ।
दुःस्थे पापयुतेऽस्तनीचरिपुगे यानादिभाग्यं नहि
स्वर्क्षे सर्वबलाधिके चिरसुखं चान्दोलिकारोहणम् ।।११५।।

बन्धुकर्मगृहाधीशौ लाभस्थानगतेक्षकौ ।
बलवन्तौ यदि स्यातां सर्वभाग्यफलप्रदौ ।।११६।।

लाभस्थौ सुखभाग्येशौ पश्यन्तौ वा सुखस्थलम् ।
वाहिनीसर्वभाग्याढ्यो राजप्रीतिकरो भवेत् ।। ११७ ।।

धर्मवाहनराशीशौ लग्नसम्बन्धिनौ यदि ।
जीवदृष्टियुतौ तस्य राजवश्यादिभूषणम् ।। ११८ ।।

शुभवाहनराशीशौ शुभखेचरसंयुतौ ।
बहुसेनाधिपः श्रीमान् बलिनौ यदि जायते ।। ११९ ।।

भाग्यस्थिते वाहनराशिनाथे सशुक्रजीवे शुभखेटराशौ ।
भाग्याधिपे कोणचतुष्टये वा बहुत्वदेशाभरणार्थयानम् ।।१२०।।

कामारियानसहजतपोलग्नव्ययेश्वराः ।
सुखाधिपेन संयुक्तास्त्वसंख्याकरदेशभाक् ।। १२१ ।।

सुखाधिपो देवगुरुः सितो वा बली विलग्नान्नवमोपयातः ।
त्रिकोणकेन्द्रोपगतः शुभेशः समेति जातो बहुवाहनानि ।।१२२।।

सशुक्रजीवो गेहेशो भाग्यस्थो भाग्यपे सुखे ।
केन्द्रत्रिकोणयोर्वाऽपि बहुवाहनदेशभाक् ।।१२३।।

(१) अगर बृहस्पति और चतुर्थेश शुभग्रह के साथ सौम्य राशि में नवम में हों तो जातक को नरवाहन (पालकी) मिलता है और अपने जीवन में अधिक काल तक राज प्रताप के साथ रहता है ।

(२) यदि जिन ग्रहों का जिक्र ऊपर किया गया है वे दुःस्थान में हों अर्थात् ६, ८, १२ में हों, अस्त हों, नीचराशि में, शत्रु राशि में हों तो उसको सवारी प्राप्त नहीं होती ।

(३) यदि ये ग्रह अपनी राशि में हों और बलवान् हों तो लम्बे अरसे तक पालकी का सुख उसको मिलता है ॥११५॥

यदि चतुर्थ स्थान और कर्म स्थान (१०वाँ) का स्वामी लाभ स्थान में हो या ११वें भाव को देखे और बलवान् हो तो सम्पूर्ण भाग्य देने वाले होते हैं ॥११६॥

यदि चतुर्थ और नवम के स्वामी दोनों ११वें घर में बैठें या दोनों चतुर्थ स्थान को देखें तो जातक के पास वहुत से वाहन होते हैं और हरएक प्रकार से उसका भाग्य उदय होता है और राजा का कृपापात्र होता है ॥११७॥

नवम और चतुर्थ के स्वामी यदि बृहस्पति से युत या दृष्ट हों और लग्न से सम्बन्ध करें तो जातक राजा का कृपापात्र होता है। लग्न से सम्बन्ध क्या ? लग्न को देखें, लग्न में हों, लग्नेश से स्थान परिवर्तित करें, लग्नेश को देखें, लग्नेश के साथ हों ॥११८॥

यदि नवमेश और चतुर्थेश दोनों बलवान् हों और शुभ ग्रहों से युत हों तो जातक बहुत बड़ी सेना का स्वामी और लक्ष्मीवान् होता है। पहले हजार, दो हजार, दस हजार की सेना होती थी इसलिये वड़ी सेना का अर्थात् आज कल की सी वड़ी सेना नहीं समझना चाहिये। जातकरत्न में भी लिखा है :—

सौख्याधिपे शोभनखेचरेण भाग्येश्वरेणापि युतेऽथवा स्यात् ।
सेनाबहुत्वं समुपैति जातो बहुत्वदेशाभरणार्थयानम् ॥११९॥

यदि वाहन राशिनाथ (चतुर्थेश) शुभराशि में अर्थात् शुभग्रह की राशि में बृहस्पति और शुक्र के साथ वैठा हो और नवम का स्वामी त्रिकोण या केन्द्र में हो तो बहुत प्रदेशों का मालिक होता है। आभरण, धन तथा सवारियाँ उसको प्राप्त होती हैं ॥१२०॥

यदि पहले, तीसरे, चौथे, छठे, सातवे, नवें और बारहवें भाव के स्वामी चतुर्थ स्थान के स्वामी के साथ हों (चतुर्थ पहले भी आ चुका है) तो जातक असंख्य देशों को प्राप्त करे। दो अन्य पुस्तकों में पाठ है 'सुताधिप' उसका अर्थ हुआ ५वें भाव के स्वामी से ॥१२१॥

यदि चतुर्थेश बृहस्पति या शुक्र हो, बलवान् हो और नवमेश त्रिकोण या केन्द्र में हो तो जातक बहुत से वाहन प्राप्त करता है ॥१२२॥

यदि चतुर्थेश, बृहस्पति और शुक्र के साथ और नवमेश चतुर्थ में हो या किसी भी केन्द्र या त्रिकोण में हो तो वहुत सवारी और भूसम्पत्ति प्राप्त होती है ॥१२३॥

राजयोग

लग्नकेन्द्रस्थिते सौम्ये धर्मे तुङ्गगृहाश्रिते ।
धनेशे केन्द्रभावस्थे योगः सिंहासनप्रदः ॥ १२४ ॥

भाग्ये शुभेक्षिते केन्द्रे शुभैः सह धनाधिपे ।
उच्चग्रहे द्वितीयस्थे जन्म सिंहासनप्रदम् ॥ १२५ ॥

लग्नवाहनभाग्येशाः कर्मस्थाः कर्मपस्तनौ ।
लग्नं पश्यति या खेटः सिंहासनफलप्रदः ॥ १२६ ॥

कर्मलग्नसुखाधीशाः कर्मस्थानगता यदि ।
कर्मपो लग्नसम्बन्धी सिंहासनपतिर्भवेत् ॥ १२७ ॥

गुरुशुक्रशुभाधीशाः केन्द्रकोणायगा यदि ।
अनेकयानसम्पन्नो मण्डलाधिपतिर्भवेत् ॥ १२८ ॥

यानेशकर्मोपगतौ बलिष्ठौ धर्मेशदृष्टौ यदि तद्युतौ वा ।
परस्परक्षेत्रसमागतौ वा सिंहासनप्राप्तिकरौ भवेताम् ॥१२९॥

तद्दशान्तर्दशाकाले तद्राशिपदशागमे ।
तदीशभुक्तिसम्प्राप्तौ सिंहासनपतिर्भवेत् ॥१३०॥

शुभग्रह लग्न केन्द्र में हो, नवम स्थान में उच्चगत ग्रह हो, धनेश केन्द्र भाव में हो तो यह योग सिंहासन दिलाने वाला है ॥१२४॥

नवम भाव शुभ दृष्ट हो, शुभ ग्रहों के साथ धनेश केन्द्र में हो, द्वितीय में उच्च ग्रह हो तो यह योग सिंहासन दिलाने वाला है ॥१२५॥

लग्नेश, चतुर्थेश, नवमेश—ये तीनों ग्रह दशम भाव में हों और दशमेश लग्न में हो या लग्न को देखता हो तो यह योग सिंहासन दिलाने वाला है ॥१२६॥

दशमेश, लग्नेश और चतुर्थेश—तीनों ग्रह दशम में हों और दशमेश लग्न से संबंध करे तो सिंहासनप्रद है। लग्न से सम्बन्ध क्या? लग्न में बैठा हो, लग्न को देखे, लग्नेश के साथ बैठा हो, लग्नेश को देखे, लग्नेश से स्थान परिवर्तन करे ॥१२७॥

बृहस्पति, शुक्र और नवम का मालिक ये तीनों केन्द्र, कोण, आय, (१, ४, ७, १०, ५, ९, ११) में हों तो वह व्यक्ति अनेक यान (सवारी) से सम्पन्न मंडलाधीश होता है। मंडलाधीश राजा को कहते हैं ॥१२८॥

चतुर्थेश और दशम में बैठा हुआ ग्रह बलवान् हो और नवमेश के साथ हो या दृष्ट हो या परस्पर क्षेत्र में हो तो सिंहासन प्राप्त करता है ॥१२९॥

चतुर्थेश जिस राशि में हो उस राशि के अधिपति की दशा में अथवा चतुर्थेश की महादशा में जब उसके शुभ संबंधी की अन्तर्दशा आती है और उसमें दशमेश का प्रत्यन्तर आता है तब सिंहासन प्राप्त होता है ॥१३०॥

भाग्यविचार

शुभोदयेशौ सुखराशियातौ
सुखाधिपो लग्नगतः शुभर्क्षे ।
अतीव सौख्यं समुपैति नित्यं
सपत्नयातो यदि शत्रुभाग्यम् ॥ १३१ ॥

यदि लग्नेश और नवमेश चतुर्थ में हों और चौथे का मालिक शुभ राशि में लग्न में हो तो जातक बहुत सुख प्राप्त करता है। यदि चतुर्थेश छठे भाव में हो तो जातक का भाग्य शत्रुहस्तगत होता है ॥१३१॥

सपत्नभावाधिपतौ तपःस्थे
शुभैरदृष्टे बलसंयुते वा ।
स्वकीयभाग्यादिकमल्पकालं
ददाति शत्रौ सुखनाथदाये ॥ १३२ ॥

यदि छठे भाव का मालिक नवम भाव में हो, शुभ ग्रहों से दृष्ट न हो व बलवान् हो तो थोड़े समय के लिये चतुर्थेश की दशा में अपना भाग्य शत्रु को दे देता है अर्थात् वह सुख जो जातक को मिलना चाहिये वह किंचित् काल के लिये शत्रु उपभोग करता है ॥१३२॥

सुखाधिपे शोभनखेटयुक्ते
तदीयपाकान्तमरातिगं तत् ।
पापान्विते तस्य दशावसाने
पुनः स्वभाग्यं समुपैति सर्वम् ॥ १३३ ॥

चतुर्थेश शुभ ग्रह के साथ हो तो उसकी दशा में उसका भाग्य शत्रु के साथ सम्बद्ध रहता है। किन्तु पाप ग्रह के साथ युति होती हो तो चतुर्थेश की दशा समाप्त होने पर उसका भाग्य फिर चमकता है। अर्थात् पुनः अपने भाग्य को प्राप्त करता है। इस श्लोक का पूर्व के श्लोक से सम्बन्ध है ।।१३३।।

क्षेत्र विचार

क्षेत्रस्थाने शुभक्षेत्रे तदीशे शुभसंयुते।
तत्कारके तथा प्राप्ते बहुक्षेत्रधनान्वितः ।। १३४ ।।

क्षेत्रेश्वरे नीचसपत्नभागे
कालाग्निशूलान्तकषष्टिभागे।
पापान्विते पापसमीक्षिते वा
क्षेत्रादिनाशं कथयन्ति तज्ज्ञाः ।। १३५ ।।

चौथे भाव में शुभ राशि हो और चतुर्थेश शुभ ग्रह से युत हो और चतुर्थ भाव का कारक भी शुभ स्थान में स्थित हो तो बहुत खेत और धन होते हैं। ।।१३४।।

चतुर्थेश नीच राशि या भाग (वर्ग) या शत्रु राशि और शत्रु भाग (वर्ग) में हो, कालाग्नि, शूल अन्तक के षष्टि-अंश में हो, पापग्रह के साथ हो तो ज्योतिषी को कहना चाहिये कि खेतों का नाश होगा ।।१३५।।

लग्नाधिपस्य गृहपो यदि शत्रुखेट-
स्तत्पाकभुक्तिसमये गृहभूमिनाशम्।
यानेशभुक्तिसमये निजबन्धुहानिः
शन्यारमान्दियुतभुक्तिरनर्थहेतुः ।। १३६ ।।

चतुर्थेश यदि लग्न के स्वामी का शत्रु हो तो उसकी दशा अन्तर्दशा में गृह और भूमि का नाश हो। चतुर्थेश की अन्तर्दशा में अपने बन्धु की हानि हो। विशेषकर शनि, मंगल और मान्दि के साथ जो ग्रह बैठे होते हैं उनकी दशा अत्यन्त अनर्थ (पीड़ा) करती है ।।१३६।।

वित्तेशः ससुखाधिपो नवमगः सौम्यान्वितः सौम्यभे
निक्षेपं समुपैति लाभधनपौ पातालराशिस्थितौ।

तन्नाथः शुभराशिगः शुभयुतो निक्षेपसिद्धिर्भवे-
ल्लाभेशः सुखराशिगः शुभयुतो निक्षेपवित्तप्रदः ।।१३७।।

(१) यदि धनेश और चतुर्थेश शुभ ग्रह के साथ नवम में बैठे हों और नवम शुभ ग्रह की राशि हो तो जातक को जमीन में गड़ा हुआ धन मिलता है।

(२) अगर ११वें और दूसरे भाव का स्वामी चतुर्थ में हो और चतुर्थेश शुभराशिगत और शुभान्वित हो तो उसको गड़ा हुआ धन मिलता है।

(३) यदि लाभेश (११वें का स्वामी) शुभ ग्रह के साथ चतुर्थ में बैठा हो तो गड़ा हुआ धन मिलता है।

पहले धन गाड़ने की प्रथा थी अब नहीं है ।।१३७।।

गृहविचार

अर्थव्ययगृहाधीशा नाशगाः पापसंयुताः ।
यावद्भिरशुभैर्युक्तास्तावद्‌गेहालसत्वदाः ।।१३८।।

पापेऽहौ वा पापदृष्टे सुखे गेहसुखार्तिभाक् ।
नीचेऽरातौ कुजेऽर्के वा सुखे स्यादगृहो नरः ।।१३९।।

नीचेऽस्तगे वा गेहस्थे दुःखाम्भोधौ पतिष्यति ।
सुखे पापे पापभाक् स्यात् सुखे मन्दे सुखक्षयः ।।१४०।।

गृहेशे व्ययगे लग्नादन्यगेहोऽन्यदेशगः ।
रन्ध्रे गृहाद्यभावो वा षष्ठे ज्ञात्यादिसंग्रहः ।।१४१।।

अयत्नतो मन्दिरलाभदः स्यात् चतुर्थपस्तत्र बलाधिको वा ।
दुःस्थानगो दुष्टबलान्वितश्चेदालस्यगेहं ग्रहपीडितं वा ।।१४२।।

षट्त्रिव्ययाष्टमोपेता व्ययवित्तगृहाधिपाः ।
यावत्पापसमोपेतास्तावद्‌गृहविनाशदाः ।।१४३।।

लग्नत्रिकोणकेन्द्रस्था यावद्‌बलसमन्विताः ।
तावत्संख्याकगेहानां सामीचीन्यं वदेद् बुधः ।।१४४।।

चतुर्थभावाधिपतौ विलग्नाद्व्ययस्थिते जीर्णगृहं समेति ।
त्रिकोणकेन्द्रोपगते बलाढ्ये विचित्रगेहं रुचिरं तदाहुः ।।१४५।।

तृतीये सौम्यसंयुक्ते गेहेशे बलसंयुते ।
गोपुराद्यंशगे वाऽपि समेति दृढमन्दिरम् ॥१४६॥

आज्ञाक्रियाक्षेत्रविनाशमाहुराज्ञेश्वरे गेहगते सपापे
क्रूरांशके मृत्युकरादिभागे रंध्रेश्वरेणापि युते तथैव ॥१४७॥

तृतीये सौम्यसंयुक्ते गेहेशे स्वबलान्विते ।
लग्नेशे बलसंपूर्णे हर्म्यं प्राकारसंयुतम् ॥१४८॥

पारावतांशके गेहनाथे गुर्विन्दुवीक्षिते ।
गोपुराद्यंशके वाऽपि दैविकं गृहमादिशेत् ॥१४९॥

अर्थ (२) व्यय (१२) गृह (४) के मालिक पाप ग्रह के साथ अष्टम में पड़े हों तो उतने ही घरों का नाश होता है जितने पापग्रह साथ में पड़े हों । मूल में आया है उतने ही मकान 'आलसप्रद' होते हैं अर्थात् उतने ही मकान नाश को प्राप्त होते हैं या कष्टकारक होते हैं ॥१३८॥

(१) यदि चतुर्थ स्थान में पाप ग्रह हो या राहु हो और उन पर पापग्रह की दृष्टि हो तो जातक को मकान संबंधी कष्ट होता है ।

(२) अगर मंगल या सूर्य शत्रु राशि के या नीच राशि के चतुर्थ में हों तो उस मनुष्य को गृह प्राप्त नहीं होता ॥१३९॥

(१) अगर चतुर्थ में नीच राशि का या अस्त ग्रह हो तो जातक कुएं में या जल में गिरता है ।

(२) यदि चतुर्थ में कोई पापग्रह हो तो मनुष्य पापी होता है ।

(३) यदि चतुर्थ में शनि हो तो सुखक्षय होता है अर्थात् जातक को सुख नहीं मिलता ॥१४०॥

(१) अगर चतुर्थ स्थान का स्वामी व्यय में जाकर पड़े (लग्न से व्यय में हो) तो जातक दूसरे के घर में रहता है या परदेश में रहता है ।

(२) अगर चतुर्थेश अष्टम में जाये तो कोई अपना मकान नहीं होता ।

(३) यदि चतुर्थेश छठे में जाये तो वह अपने किसी रिश्तेदार के घर में रहता है। पहले चाचा या उसके लड़के वगैरह के यहाँ कोई-कोई लोग रहते थे। अब आजकल की मँहगाई में दो चार दिन से ज्यादा कोई मेहमान नहीं रखता ॥१४१॥

(१) यदि चतुर्थेश चतुर्थ में हो या बहुत बलवान् हो तो बिना यत्न किये घर का लाभ होता है । जातक अलंकार में योग दिया है कि यदि लग्नेश चतुर्थेश के साथ चतुर्थ में बैठे तो बिना यत्न किये मकान मिलता है ।

(२) अगर चतुर्थेश दुःस्थान में पड़े या चतुर्थ में ऐसा ग्रह पड़ा हो जो दुष्ट हो और दुष्टता के लिये बलान्वित हो (पापी, नीच राशि का, शत्रु राशि का, पाप ग्रह से दृष्ट) तो पीड़ाकारक गृह मिलता है या भूताविष्ट मकान प्राप्त होता है ।।१४२।।

अगर १२वें, २रे और ४थे के स्वामी छठे, ३रे, १२वें, आठवें पड़े हों और इनके साथ पापग्रह भी हो तो जितने पापग्रह से युति होती हो उतने ही घरों का नाश होता है । पहले भी इस बात को श्लोक १३८ में कह चुके हैं ।।१४३।।

लग्न से केन्द्र या त्रिकोण में जितने बली ग्रह हों उतने समीचीन गृह जातक को प्राप्त होते हैं । पराशर ने भी कहा है :—

केन्द्रत्रिकोणेषु शुभग्रहेण युते समीचीनगृहाभिलब्धिः ।।१४४।।

(१) यदि चौथे भाव का स्वामी लग्न से द्वादश में पड़े तो जातक को पुराना मकान प्राप्त होता है ।

(२) यदि चौथे भवन का स्वामी त्रिकोण किंवा केन्द्र में बलवान् हो तो जातक को सुन्दर घर की प्राप्ति होती है ।।१४५।।

(१) तृतीय भाव का स्वामी शुभ ग्रह से युक्त हो और चतुर्थेश बलवान हो तो पक्का मकान मिले ।

(२) यदि चतुर्थेश गोपुरांश में हो तो भी यही फल ।।१४६।।

(१) यदि दशमेश पापग्रह के साथ चतुर्थ में हो तो आज्ञा-क्रिया तथा खेत का नाश होता है ।

(२) यदि दशमेश क्रूरांश में हो—मृत्युकर आदि निकृष्ट, षष्टि-अंश में हो और अष्टमेश के साथ हो तो यही फल ।।१४७।।

यदि तृतीय भाव में शुभ ग्रह हो, चतुर्थेश बलवान् हो और लग्नेश सब प्रकार के बल से युक्त हो तो जातक को ऐसा मकान मिलता है जो सुन्दर हो और जिसके चारों तरफ अहाता खिंचा हो ।।१४८।।

(१) चतुर्थेश पारावतांश में हो और बृहस्पति और चन्द्रमा से देखा जाता हो तो जातक को दैविक (मन्दिर) मकान प्राप्त हो ।

(२) यदि चतुर्थेश गोपुर आदि अंश में हो तो भी यही फल ।।१४९।।

इति श्रीनवग्रहकृपया वैद्यनाथविरचिते जातकपारिजाते
द्वादशोऽध्यायः ।। १२ ।।

अध्याय १३

पंचमषष्ठभावफल

पञ्चम भावफल

पुत्राद्देवमहीपपुत्रपितृधीपुण्यानि सञ्चिन्तये-
द्यात्रामस्तसुतस्वकर्मभवनैर्दूराटनं रिष्फतः ।
लग्नाद्बन्धुदिनेशतः पितृसुखं जीवात्मजस्थानतः
पुत्रप्राप्तिरनङ्गवित्तपसितैः स्त्रीसम्पदश्चिन्तयेत् ।।१।।

पंचम भाव से देवता, राजा, पुत्र, पिता, बुद्धि (शीघ्र समझने की मानसिक क्षमता) पुण्यों का विचार करें। सप्तम भाव, पंचम, द्वितीय और दशम से यात्रा का विचार करें। दूर देश में भ्रमण करना बारहवें से विचार करना चाहिए। लग्न, चतुर्थ और दशम से पिता का सुख और पंचम तथा बृहस्पति से पुत्र का विचार करें। सप्तमेश, द्वितीय तथा शुक्र से स्त्री सम्पत्ति का विचार करें अर्थात् कैसी स्त्री प्राप्त होगी।

जातकाभरण में लिखा है :—

बुद्धिप्रबन्धात्मजतन्त्रविद्याविनेयगर्भस्थितिनीतिसंस्थः ।
सुताभिधाने भवने नराणां होरागमज्ञैः परिचिन्तनीयम् ।।

यहाँ यह बताया गया है कि किसी एक भाव से वस्तु का विचार नहीं होता। अनेक भावों का विचार करना चाहिए। पंचम भाव से कितनी सारी बातें लिख दीं। यात्रा के लिए चार भवनों का विचार आवश्यक है। और यदि दूर देश की यात्रा हो तो द्वादश भाव भी देखना चाहिए। इसके साथ कारक की भी प्रधानता है। लग्न और चतुर्थ के साथ-साथ पिता सुख के लिए सूर्य का भी विचार करे। पुत्र के लिए पंचम भाव के अतिरिक्त इसके कारक बृहस्पति का भी विचार आवश्यक है। लग्न के लिए द्वितीय कुटुम्ब, स्थान तथा सप्तम जाया स्थान के अतिरिक्त शुक्र का भी विचार आवश्यक है। कोई-कोई पत्नी में एकादश स्थान को भी देखते हैं।।१।।

देवता विचार

लग्नादात्मनि पुंग्रहेक्षितयुते पुन्देवताराधनं
युग्मे शुक्रनिशाकरेक्षितयुते स्त्रीदेवतामिच्छति ।
भानौ भास्करमुख्यमिन्दुसितयोर्गौरीं कुमारं कुजे
विष्णुं चन्द्रसुते गुरौ शशिधरं शन्यादियोगे परान् ॥२॥

लग्न से पंचम स्थान को यदि पुरुष ग्रह देखे या उसमें बैठे तो जातक पुरुष देवता की आराधना करे । सूर्य, मंगल और बृहस्पति पुरुष ग्रह हैं । इसलिए इनसे सम्बन्ध होने से पुरुष देवता विष्णु, शिव, सूर्य, हनुमान् आदि की उपासना होती है । यदि पंचम में समराशि (वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर या मीन हो) उसको चन्द्रमा या शुक्र देखे या इनमें से कोई एक या दोनों बैठे हों तो स्त्री देवता की आराधना करता है । स्त्री देवता कौन ? लक्ष्मी, गौरी, सीता, दुर्गा, चामुंडा आदि । पंचम ग्रह सूर्य हो या देखता हो तो सूर्य की, चन्द्रमा से या शुक्र से गौरी की, मंगल से स्वामी कार्त्तिक, बुध से विष्णु की, बृहस्पति से शिव की और शनि राहु या केतु हो तो अन्य क्षुद्र देवताओं की उपासना करे ।

इन्होंने क्षुद्र देवता लिख दिया परन्तु शनि से काली, राहु से चामुंडा आदि का ग्रहण होता है ॥२॥

लग्नाधिपस्यात्मपतौ सपत्ने तद्देवभक्तिः सुतनाशहेतुः ।
समानता साम्यतरे सुहृत्त्वे तद्देवताऽपारकृपामुपैति ॥३॥

पंचम का स्वामी यदि लग्न के स्वामी का शत्रु हो तो उस देवता की आराधना से पुत्र का नाश होता है । यदि लग्न के स्वामी का सम हो तो समानता होती है । अर्थात् उसकी आराधना से भलाई नहीं होती तो नुकसान नहीं होता यदि पंचमेश का मित्र हो तो उसकी आराधना से कार्य सिद्ध होता है ॥३॥

राज्य विचार

राजस्थाने गुरुबुधसितैरीक्षिते संयुते वा
तद्राशीशे बलवति नृपप्रीतिसम्पत्तिमेति ।
पापाक्रान्ते विगतबलिनि स्वामिनि क्रूरभागे
जातो विद्याविनयगुणधीराजसम्मानहीनः ॥४॥

(१) यदि पंचम स्थान में बुध, बृहस्पति, शुक्र एक या अधिक बैठा हो या उनकी दृष्टि हो और पंचम भाव का स्वामी बलवान् हो तो राजा की कृपा से धन प्राप्त होता है ।

(२) यदि पंचमेश बलहीन हो और क्रूर भाग में हो और पंचम भाव क्रूर ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो विद्या, विनय, गुण, बुद्धि और राज्य सम्मान से हीन हो ॥४॥

जन्म विचार

लग्ने यानपतौ सुखे तनुपतौ दृष्टेऽथवा खेचरैः
संयुक्ते तु चतुष्पदस्य जननं राहुध्वजाभ्यामजः ।
गोजन्मार्यसितेन्दुभिश्च महिषी मन्देन दृष्टे युते
जातः पादपुरःसरं तनुपतिर्मानि तनौ भोगिराट् ॥५॥

चतुर्थ स्थान का स्वामी लग्न में हो, लग्न स्थान का स्वामी चतुर्थ स्थान में हो और उनको अन्य ग्रह देखते हों या सम्बन्ध करते हों तो चतुष्पद का जन्म हो । यदि राहु-केतु से सम्बन्ध हो तो अज (बकरा) का जन्म कहे । चन्द्रमा, बृहस्पति, शुक्र से गौ का जन्म और शनि से युत या दृष्ट हो तो भैंस का जन्म । यदि लग्नेश दशम में हो और लग्न में राहु हो तो जातक पादजात होता है । जो जन्म के समय पैरों से उत्पन्न होता है, अर्थात् माता के गर्भ से पैर पहले निकले उसे पादजात कहते हैं ॥५॥

वित्तास्तगौ पञ्चमयाननाथौ पापेक्षितौ पापसमन्वितौ वा ।
पुंसस्त्रिभागे पुरुषग्रहेन्द्रे जाताः कपिक्रोडबिडालकाद्याः ॥६॥

द्वितीय स्थान और सप्तम स्थान में पंचमेश तथा चतुर्थेश हो, पापग्रह से युत या दृष्ट हो, पुरुष द्रेष्काण में पुरुष ग्रह हो तो वानर, शूकर, मार्जार का जन्म जाने । पुरुष ग्रह सूर्य, मंगल, बृहस्पति हैं । पुरुष द्रेष्काण मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ हैं ॥६॥

तस्मिन्मन्दबुधेक्षिते तु जननं पिण्डाकृतिर्वाक्पतिः
साहिर्दुर्बलवीक्षितो यदि महीदेवान्वयो नीचकृत् ।
एकस्था गुरुराहुभानुतनयाः शुक्रेन्दुपुत्रेक्षिताः
शूद्रोऽपि द्विजतौल्यमेति निखिलां विद्यामुपैति द्विजः ॥७॥

यदि पूर्व कथित योग में पंचमेश, चतुर्थेश, बुध और शनि दृष्ट हों तो पिंड के समान जन्म हो अर्थात् शरीर के अवयव (अंग) प्रकट न हों। यदि बृहस्पति राहु युत हो या बलहीन ग्रह से देखा जाये तो ब्राह्मण भी नीच कर्म करनेवाला हो। ब्राह्मण से प्राय: नीच कर्म की आशा नहीं की जाती और जब ब्राह्मण भी नीच कर्म करनेवाला हो तो अन्य जाति के मनुष्यों की क्या कथा। यदि बृहस्पति, राहु और शनि एक साथ हों और बुध, शुक्र से देखे जाते हों तो शूद्र होने पर भी उच्च आचरण करने वाला हो। यदि इस योग में ब्राह्मण जन्म ले तो सभी विद्याओं में पारंगत होता है ॥७॥

लग्नात्पुत्रकलत्रभे शुभपतिप्राप्तेऽथवाऽऽलोकिते
चन्द्राद्वा यदि सम्पदस्ति हि तयोर्ज्ञेयोऽन्यथाऽसम्भवः।
पाथोनोदयगे रवौ रविसुते मीनस्थिते दारहा
पुत्रस्थानगतश्च पुत्रमरणं पुत्रोऽवनेर्यच्छति ॥८॥

(१) लग्न से पंचम भाव में शुभ ग्रह का योग या पंचमेश में पंचम में हो या पंचम भाव को उसका स्वामी देखता हो या शुभ ग्रह देखता हो तो पुत्र का सुख अच्छा हो।

(२) यदि सप्तम स्थान में उसका स्वामी हो या शुभ ग्रह हो या सप्तम भाव को उसका स्वामी देखता हो या शुभ ग्रह देखते हों तो स्त्री सुख अच्छा होता है।

(३) यदि चन्द्र स्थान से पंचम भाव का स्वामी अपने स्थान को देखता हो अथवा वहाँ बैठा हो, या शुभ ग्रह उस स्थान को देखते हों तो पुत्र सुख अच्छा होता है।

(४) यदि चन्द्रमा से सप्तम स्थान का स्वामी अपने स्थान या शुभ ग्रह से युत हो या शुभ ग्रह देखते हों तो स्त्री सुख अच्छा होता है।

ऊपर योग (१) और (२) न हों तो पुत्र सुख नहीं होता और योग (३) और (४) न हों तो स्त्री सुख नहीं होता।

(५) यदि कन्या लग्न में सूर्य हो और सप्तम स्थान में मीन में शनि हो तो उस जातक की स्त्री की मृत्यु हो जाती है।

(६) यदि कन्या लग्न में सूर्य और पंचम स्थान में मंगल हो तो पुत्र का नाश हो जाता है।

सारावली में एक श्लोक है :—

भौमः पञ्चमभवने जातं जातं विनाशयति पुत्रम् ।
दृष्टे गुरुणा प्रथमं सितेन न च सर्वसंदृष्टः ।।

इस श्लोक के अनुसार पंचम में मंगल हो तो जो पुत्र होते हैं वे नष्ट हो जाते हैं किन्तु बृहस्पति यदि देखता हो तो केवल ज्येष्ठ पुत्र का नाश होता है। परन्तु सारावली में केवल पंचमस्थ मंगल का फल दिया है और जातक पारिजात में कन्या लग्न में सूर्य और पंचम में मंगल का ।।८।।

इस प्रकार इस श्लोक में छः योग दिये हैं ।

पुत्रस्थानपतौ तु वा नवमपे लग्नात्कलत्रेऽथवा
युग्मर्क्षे शशिशक्रवीक्षितयुते पुत्रीजनो जायते ।
पुंवर्गे पुरुषग्रहेक्षितयुते जातस्तु पुत्राधिको
जीवात्पञ्चमराशितश्च तनयप्राप्ति वदेद् दैशिकः ।।६।।

इसमें चार योग कहे हैं :—

(१) पंचम भाव का स्वामी लग्न से सप्तम हो या समराशि में हो और चन्द्रमा और शुक्र से दृष्ट हो तो जातक के अनेक कन्या होती हैं ।
(२) यदि लग्न से नवें भाव का स्वामी सप्तम में हो या समराशि में हो और शुक्र और चन्द्रमा से दृष्ट हो तो अनेक कन्याओं का जन्म होता है ।
(३) यदि पंचमेश अथवा नवमेश पुरुष ग्रह के वर्ग में हो और पुरुष ग्रह से देखा जाये तो जातक के वहुत पुत्र होते हैं ।
(४) पुत्रकारक बृहस्पति है अतः बृहस्पति से और पंचम स्थान से पुत्र का विचार करे ।

फलदीपिका में कहा है :—

पुंराश्यंशे धीश्वरे पुंग्रहेन्द्रैर्युक्ते दृष्टे पुंगृहे पुंप्रसूतिः ।
स्त्रीराश्यंशे स्त्रीग्रहैर्युक्तदृष्टे स्त्रीणां जन्म स्यात्सुतर्क्षे सुतेशे ।।

वलभद्र ने भी कहा है :—

जीवस्थितस्य राशेः पञ्चमभे पापसंयुक्ते ।
पुत्रविनाशं विन्द्यात् सौम्यक्षेत्रं तु शुभदं स्यात् ।।६।।

शुक्रेन्दुवर्गे सुतभे विलग्नाच्छुक्रेण चन्द्रेण युतेऽथ दृष्टे ।
पापैरयुक्ते बहुपुत्रशाली शन्यारदृष्टे सति पुत्रहीनः ।।१०।।

लग्न से पंचम भाव शुक्र या चन्द्रमा के वर्ग में हो और शुक्र और चन्द्रमा से युक्त हो या दृष्ट हो, पापग्रह से युक्त न हो तो जातक के बहुत पुत्र होते हैं। किन्तु इस योग में यदि शनि और मंगल देखते हों तो जातक पुत्रहीन होता है। ॥१०॥

पौत्रप्राप्तिरनङ्गभे सुतगृहात्सौम्यस्य राश्यंशके
तन्नाथे शुभखेटवीक्षितयुते केन्द्रत्रिकोणेऽथवा।
स्वक्षेत्रोपगते तु पुत्रगृहपे जातोऽल्पपुत्रो भवेत्
पुत्रेशांशपतिः स्वभांशकगतो यद्येकपुत्रं वदेत् ॥११॥

इस श्लोक में तीन योग कहे हैं :—

(१) यदि एकादश भाव में सौम्य ग्रह की राशि और नवांश पड़े तो उसका स्वामी सूर्य ग्रह से युक्त या दृष्ट हो या केन्द्र त्रिकोण में हो तो पौत्र की प्राप्ति हो।

(२) यदि पंचमेश पंचम में हो तो थोड़े पुत्र हों।

(३) पंचम स्थान का स्वामी जिस नवांश में हो उस नवांश का स्वामी अपने नवांश में हो तो एक पुत्र होता है ॥११॥

पुत्रस्थे मदनाधिपे वितनयो जायाविहीनोऽथवा
पुत्रादष्टमशत्रुरिष्फगृहगाः पापाः कुलध्वंसकाः।
राहौ नन्दनराशिगे तदधिपे दुःस्थानगे पुत्रहा
पुत्रस्थे तनुपे तनौ सुतपतौ गृह्णाति दत्तात्मजम् ॥१२॥

इस श्लोक में चार योग कहे हैं :—

(१) यदि पंचम भाव का स्वामी सप्तम स्थान में हो तो जातक पुत्रहीन या भार्याविहीन होता है।

(२) यदि दशम स्थान और द्वादश स्थान में पापग्रह हो तो जातक कुलध्वंसक होता है अर्थात् उसके सन्तान नहीं होती।

(३) राहु पंचम में हो और पंचमेश छठे, आठवें या बारहवें हो तो पुत्र का नाश करता है।

(४) लग्नेश पुत्र स्थान में हो अर्थात् पंचम में हो और पंचमेश लग्न में हो तो जातक बेटा गोद लेता है ॥१२॥

दुःस्थौ विलग्नसुतपौ समुपैति पुत्रं
दत्तात्मजं च शुभखेचरवीक्षितौ चेत् ।
तद्भावराशियुतकारकवर्गमूलाद्
गृह्णाति दत्ततनयं परतस्स्वखेटात् ।।१३।।

लग्नेश और पंचमेश छठे, आठवें या बारहवें हों (उनका एक साथ बैठना आवश्यक नहीं) और शुभग्रह से दृष्ट हो तो जातक बेटा गोद लेता है ।

पंचम भाव में जो ग्रह हो (यदि कोई ग्रह हो) उसको बृहस्पति के षष्ट्वर्ग देखिये । जिस स्थान में (षट्वर्ग में से जो वर्ग) राहु युक्त न हो, उस वर्ग से जिस जाति का बोध होता हो उस जाति से बालक गोद लेता है ।

यहाँ पर पंचम भावगत और बृहस्पति दो ग्रह कहे गये हैं, इनमें से कौन सा लेना ? इनमें जो बलवान् हो वह लेना ।।१३।।

केन्द्रत्रिकोणगृहगः सुतपः शुभर्क्षे
सौम्यान्वितो यदि सुतं समुपैति बाल्ये ।
भोगीशयुक्तसुतराशिपभुक्तिजातः
स्वल्पायुरेति फणिभुक्तिभवश्चिरायुः ।।१४।।

इसमें तीन योग कहे हैं :—

(१) पंचम स्थान का स्वामी केन्द्र, त्रिकोण में हो, शुभग्रह की राशि में हो, सूर्य युक्त हो तो कम अवस्था में ही पुत्र होता है ।

(२) राहु से युक्त पांचवे स्थान का स्वामी हो और उस पंचमेश की अन्तर्दशा में पुत्र हो तो वह अल्पायु होता है ।

(३) पंचमेश के साथ यदि राहु हो तो उस राहु की अन्तर्दशा में पुत्र हो तो वह दीर्घायु होता है ।।१४।।

पुत्रस्थानपवित्तपौ गतबलौ पापेक्षिते पुत्रभे
जातोऽनेककलत्रवानपि सुताभावं समेति ध्रुवम् ।
तज्जाया यदि पुत्रयोगजनिता सौम्येन वा पञ्चमात्
षष्ठेशेन निरीक्षिते सुतवती जारेण सञ्जायते ।।१५।।

यदि पाँचवे घर का स्वामी और दूसरे घर का स्वामी बल रहित हो और पाँचवाँ स्थान पापग्रह से देखा जाता हो तो जातक के अनेक पत्नियाँ होने पर

भी सन्तान नहीं होती। यहाँ शंका यह उठती है कि दूसरे स्थान को क्यों सम्मिलित किया ? क्या दूसरे स्थान से सन्तान देखी जाती है ? नहीं। दूसरा स्थान कुटुम्ब का स्थान है जिसके पुत्र ही नहीं होगा उसके कुटुम्ब बढ़ने की क्या आशा ? सन्तान होगी तो परिवार भी बढ़ेगा। सन्तान नहीं होगी तो परिवार सीमित रहेगा। इसलिए ग्रंथकार ने पुत्रेश, द्वितीयेश का निर्बल होना कहा। आगे कहते हैं कि अनेक पत्नियों के होने पर भी सन्तान नहीं होती तो क्या सब स्त्रियाँ बाँझ होती हैं। इसलिये लिखते हैं कि यदि जातक की कोई पत्नी सन्तान योगवाली हो तो उसको और पंचम भाव किसी शुभग्रह से देखा जाता हो या षष्ठेश से दृष्ट हो तो अन्य पुरुष से पुत्र हो अर्थात् अपने पति से पुत्र न हो, व्यभिचार से पुत्र उत्पन्न हो। काशी की एक टीका में :—'सौम्येन' का अर्थ किया है कि बुध से वीक्षित हो किन्तु संस्कृत टीकाकार ने लिखा है कि किसी भी शुभग्रह से दृष्ट हो। हमें संस्कृत टीका मान्य है ॥१५॥

पुत्रस्थाने तदीशे वा गुरौ वा शुभवीक्षिते।
शुभग्रहेण संयुक्ते पुत्रप्राप्तिर्न संशयः ॥१६॥

लग्नेशे पुत्रभावस्थे पुत्रेशे बलसंयुते।
परिपूर्णबले जीवे पुत्रप्राप्तिर्न संशयः ॥१७॥

पुत्रस्थानगते जीवे परिपूर्णबलान्विते।
लग्नाधिपेन संदृष्टे पुत्रप्राप्तिर्न संशयः ॥१८॥

वैशेषिकांशके जीवे पुत्रेशे च तथास्थिते।
शुभनाथेन संदृष्टे पुत्रे तत्प्राप्तिमादिशेत् ॥१९॥

पंचम भाव वा पंचम भाव का स्वामी वा गुरु शुभग्रह दृष्ट हो तथा शुभ ग्रह युक्त हो तो निःसन्देह पुत्र प्राप्ति होती है ॥१६॥

लग्नेश पाँचवें घर में हो और पंचम भाव का स्वामी बलवान् हो और बृहस्पति पूर्ण बली हो तो अवश्य पुत्र प्राप्ति होती है ॥१७॥

पूर्ण बली बृहस्पति पंचम भाव में हो उसे लग्नेश देखता हो तो निःसन्देह पुत्र प्राप्ति का योग बनता है ॥१८॥

बृहस्पति वैशेषिकांश में हो और इसी भाँति पंचम भाव का स्वामी वैशेषिकांश में हो और पंचम भाव को नवमेश देखता हो तो निःसंदेह पुत्र प्राप्ति होती है। वैशेषिकांश के लिए देखिये अध्याय १, श्लोक ४५, ४६ ॥१९॥

दशमे शीतगुर्द्यूने भृगुजः पापिनः सुखे ।
तस्य सन्ततिविच्छेदो भविष्यति न संशयः ॥२०॥

षष्ठाष्टमस्थो लग्नेशः पापयुक्तः सुताधिपः ।
दृष्टो वा शत्रुनीचस्थैः पुत्रहानिं वदेद् बुधः ॥२१॥

लग्नसप्तमधर्मान्त्यराशिगाः पापखेचराः ।
सपत्नराशिवर्गस्था वंशविच्छेदकारिणः ॥२२॥

चन्द्रमा दसवें घर में हो, शुक्र सातवें और पाप ग्रह में सुख स्थान अर्थात् चतुर्थ में हो तो उसका वंश विच्छेद होता है, अर्थात् सन्तान नहीं होती या होकर नष्ट हो जाती है ॥२०॥

लग्नेश छठे भाव या आठवें भाव में हो, पाँचवें भाव का स्वामी पाप युक्त हो या उसका शत्रु किंवा कोई नीच ग्रह उसको देखता हो तो पुत्र हानि होती है अर्थात् पुत्र नष्ट होने का योग है ॥२१॥

पाप ग्रह शत्रु की राशि में हो या शत्रु के वर्ग में लग्न सप्तम, नवम, द्वादश में हो तो वंशविच्छेद करते हैं ॥२२॥

वन्ध्या वृद्धा कृशा बाला रोगिणी पुष्पवर्जिता ।
कर्कशा स्थूलदेहा च नार्योऽष्टौ परिवर्जिताः ॥२३॥

ऊपर जो योग कहे हैं उनको उस पुरुष की कुण्डली में लागू नहीं करना जिसकी स्त्री नीचे लिखे आठ प्रकारों में से किसी प्रकार की हो :—

बाँझ, वृद्धा, बाला (बहुत कम उम्र की) कृशा (बहुत दुर्बल), रोगिणी, पुष्पवर्जिता (जिसको मासिक धर्म न होता हो), कर्कशा (दुर्व्यवहार वाली) और स्थूल-देहा (बहुत मोटी) हो ॥२३॥

गुरुलग्नेशदारेशपुत्रस्थानाधिपेषु च ।
सर्वेषु बलहीनेषु वक्तव्या त्वनपत्यता ॥२४॥

पुत्रस्थानं गते पापे तदीशे नीचराशिगे ।
शुभदृष्टिविहीने तु वक्तव्या त्वनपत्यता ॥२५॥

गुरुलग्नहिमांशूनां पञ्चमस्थैरशोभनैः ।
शुभदृग्योगरहितैर्वक्तव्या त्वनपत्यता ॥ २६ ॥

पुत्रस्थानगते पापे तदीशे पापमध्यगे ।
सौम्यदृग्योगरहिते वक्तव्या त्वनपत्यता ॥२७॥

पापमध्यगते जीवे पुत्रेशे बलवर्जिते ।
सौम्यदृग्योगरहिते वक्तव्या त्वनपत्यता ॥२८॥

बृहस्पति, लग्न का मालिक, पंचम का मालिक वा सप्तम का मालिक यदि सब निर्बल हों तो संतान रहित होता है ॥२४॥

पाप ग्रह पांचवें घर में पड़े हों और पांचवें घर का स्वामी नीच राशि में हो, शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तो सन्तान रहित होता है ॥२५॥

बृहस्पति, लग्न व चन्द्रमा इनसे पांचवें घर से संतान देखते हैं इसलिए इन तीनों से पंचम पाप ग्रह हो और शुभ ग्रह दृष्ट न हो या शुभ ग्रह युक्त न हो तो संतान रहित होता है ॥२६॥

पांचवें घर में पाप ग्रह हो, पांचवें घर का स्वामी पाप ग्रह के मध्य में हो, उन पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो संतान रहित होता है ॥२७॥

पाप ग्रह के बीच बृहस्पति हो, पुत्रेश बली न हो और शुभ ग्रह से न युक्त न दृष्ट हो तो संतान रहित होता है। इन पांचों श्लोकों में 'अनपत्यता' लिखा है इसलिए इसका अर्थ सन्तान रहित किया गया है ॥२८॥

पुत्रस्थाने बुधक्षेत्रे मन्दक्षेत्रेऽथवा यदि ।
मान्दिमन्दयुते दृष्टे तदा दत्तादयः सुताः ॥२९॥

पहले श्लोक का अर्थ दिया जाता है फिर व्याख्या की जायेगी। यदि पाँचवें घर में मिथुन, कन्या, मकर या कुम्भ हो और उसमें गुलिक हो या शनि की दृष्टि पड़े या शनि बैठा हो तो गोद का बेटा होता है। मूल में लिखा है कि दत्तक आदि पुत्र होते हैं, औरस पुत्र नहीं होता।

पराशर के मत से मकर का शनि या कुम्भ का शनि पंचम स्थान में हो तो तीन पुत्र होते हैं। (मकर में शनि होने से) पाँच पुत्र होते हैं, कुम्भ में शनि होने से तीन।

इस श्लोक का पराशर से विरोध होता है। इसलिए हमें फलदीपिका का मत विशेष मान्य है, यहाँ लिखा है :—

मान्दं सुतर्क्षं यदि वाऽथवौघं मान्द्यर्कपुत्रान्वितवीक्षितं चेत् ।
दत्तात्मजः स्यादुदयास्तनाथसम्बन्धहीनो विबलः सुतेशः ॥

फलदीपिका के मत में और जातक पारिजात के मत में अंतर है ॥२९॥

मीनस्थोऽत्यल्पसन्तानश्चापस्थः कृच्छ्रसन्ततिः ।
असन्ततिः कुलीरस्थो जीवः कुम्भे न सन्ततिः ॥३०॥

पुत्रस्थाने कुलीरे वा मीने कुम्भे शरासने ।
स्थितो यदि सुराचार्यस्तत्फलं कुरुते नृणाम् ॥३१॥

यदि पंचम भाव में कर्क का बृहस्पति हो तो सन्तान नहीं होती । यदि पंचम भाव में कुम्भ का बृहस्पति हो तो संतान नहीं होती । यदि पंचम भाव में धनु का वृहस्पति हो तो कठिनता से सन्तान होती है । यदि पंचम भाव में मीन का वृहस्पति हो तो अल्प सन्तान होती है ॥३०-३१॥

पापग्रहेण संदृष्टे देवशापात्सुतक्षयः
षष्ठाधिपयुते दृष्टे विप्रशापात्सुतक्षयः ॥३२॥

सुतेशे कुजसंयुक्ते रिपुनाथेन वीक्षिते ।
शुभदृष्टिविहीने च रिपुदोषात्सुतक्षयः ॥३३॥

नवमे पापसंयुक्ते मन्दयुक्ते सुताधिपे ।
त्रिकोणे मान्दिसंयुक्ते पितृदोषात्सुतक्षयः ॥३४॥

मातृस्थानगते पापे सुतेशे मन्दसंयुते ।
व्ययनाशगते पापे मातृदोषात्सुतक्षयः ॥३५॥

राहुकेतुयुते दृष्टे पञ्चमे बलवर्जिते ।
तदीशे वा तथा प्राप्ते सर्पदोषात्सुतक्षयः ॥३६॥

गुरुपुत्रेशदारेशभूमिजाः संयुता यदि ।
दुर्दैवपीडया पुत्रीपुत्रनाशं वदेद् बुधः ॥३७॥

पंचम भाव, पंचम भाव का स्वामी और बृहस्पति पाप ग्रह से दृष्ट हो तो देवता के शाप से सुतक्षय होता है । विप्र के शाप से सुतक्षय होता है ॥३२॥

पंचमेश मंगल से युक्त हो और षष्ठेश उसको देखे और शुभग्रह दृष्ट न हो तो शत्रु के शाप से सुतक्षय होता है ॥३३॥

यदि नवम भाव पाप ग्रह से युक्त हो, पंचमेश शनि से युक्त हो और त्रिकोण में (नवम या पंचम) में मान्दि हो तो पिता के दोष से अर्थात् पिता के शाप से सुतक्षय होता है। यह आवश्यक नहीं है कि पिता शाप दे। पिता के प्रति अपना कर्त्तव्य इस जातक ने नहीं किया यह समझना चाहिए ।।३४।।

चतुर्थ स्थान में पाप ग्रह हो, पंचमेश शनि के साथ होकर अष्टम या द्वादश स्थान में हो तो माता के कारण सन्तान का क्षय होता है अर्थात् माता के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन नहीं करने से माता के चित्त को जो ठेस पहुंचती है उसके परिणामस्वरूप सुतक्षय होता है ।।३५।।

पंचम स्थान राहु या केतु से युक्त हो या दृष्ट हो और निर्बल हो और उसका स्वामी भी राहु या केतु से युक्त हो या दृष्ट हो और निर्बल हो तो सर्प दोष से सुतक्षय होता है। इसलिए लोक परम्परा है कि काले सांप को नहीं मारते ।।३६।।

यदि बृहस्पति, पंचम भाव का स्वामी और सप्तम भाव का स्वामी तथा मंगल एक साथ हो तो दुर्दैव पीड़ा से पुत्री, पुत्र का नाश होता है ।।३७।।

पुत्रस्थानगतः कश्चित्परिपूर्णबलान्वितः ।
अदृष्टः पुत्रनाथेन तदा दत्तादयः सुताः ।।३८।।

पापक्षेत्रगते चन्द्रे पुत्रेशे धर्मराशिगे ।
दत्तपुत्रस्य सम्प्राप्तिर्लग्नेशस्तु त्रिकोणगः ।।३९।।

युग्मोदये पुत्रनाथश्चतुर्थस्थानगोऽपि वा ।
मन्दांशकसमारूढो दत्तपुत्रो भविष्यति ।।४०।।

युग्मांशे भानुजांशे वा पुत्रेशोऽर्केन्दुजान्वितः ।
दत्तपुत्रस्य सम्प्राप्तिस्तस्मिन्योगे भविष्यति ।।४१।।

मन्दांशे पुत्रराशीशः स्वराशौ गुरुभार्गवौ ।
पूर्वं दत्तसुतप्राप्तिः पुनर्नार्याः पुनः सुतः ।।४२।।

मन्दांशकस्थिताः खेटाः शुक्लपक्षबलाधिकाः ।
गुरुर्यदि सुखस्थाने दत्तपुत्रेण सन्ततिः ।।४३।।

अब दत्तक पुत्र कहते हैं :—

पुत्र स्थान में पूर्वोक्त सकल बलशाली कोई ग्रह हो और पंचमेश अस्त

हो तो गोद का बेटा होता है। मूल में दत्तक आदि लिखा है, जिससे अर्थ यह निकलता है कि औरस पुत्र न हो। बाकी ग्यारह प्रकार के पुत्रों में से क्षेत्रज आदि पुत्र हो ॥३८॥

चन्द्रमा पाप ग्रह की राशि में हो, पंचम भाव का स्वामी नवम में हो और लग्नेश त्रिकोण में हो तो दत्तक पुत्र होता है ॥३९॥

पंचमेश समराशि में हो (वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन) और चौथे स्थान में हो तथा शनि के नवांश में हो तो दत्तक पुत्र होता है ॥४०॥

वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन यह सम राशि हैं। सम राशि के नवांश में या कुम्भ के नवांश में सूर्य, चन्द्रमा के साथ पुत्रेश हो अर्थात् पंचम भाव का स्वामी हो तो इस योग में दत्तक पुत्र होता है ॥४१॥

पंचम भाव का स्वामी मकर या कुम्भ नवांश में हो, अपनी-अपनी राशि में वृहस्पति और शुक्र हो तो पहले दत्तक पुत्र हो और कुछ दिन के बाद जातक को अपनी स्त्री से पुत्र हो ॥४२॥

मकर या कुम्भ नवांश में यदि शुक्ल पक्ष में अधिक बलशाली ग्रह हो, बृहस्पति पंचम भाव में हो तो दत्तक पुत्र होता है ॥४३॥

विलग्नस्थे धरासूनौ निधनस्थे दिवाकरे।
सुखे वा शुभसंदृष्टे पुत्रः कालान्तरे भवेत् ॥४४॥

लग्ने दिनेशतनये रन्ध्रस्थानगते गुरौ।
पञ्चमे दुर्बले रिष्फे भौमे कालान्तरे सुतः ॥४५॥

अब कालान्तर अर्थात् देर से पुत्र होने के योग कहते हैं :—

लग्न में मंगल हो और सूर्य चतुर्थ या अष्टम हो उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो कालान्तर में—देर से पुत्र होता है।

होरारत्न में एक योग है :—

लग्ने दिनकृततनये अष्टमसंस्थे गुरौ च यदि भौमे।
पंचमगेऽल्पसुतर्क्षे पुत्रः कालान्तरे भवति ॥

पाराशर ने लिखा है कि :—

लग्ने मन्दे गुरौ रन्ध्रे व्यये भौमसमन्विते।
शुभदृष्टे स्वतुङ्गे वा चिरात् पुत्रमुपैति सः ॥

लग्न में शनि हो, अष्टम में बृहस्पति हो और द्वादश में बलहीन मंगल हो तो कालान्तर में पुत्र होता है ।।४४-४५।।

पुत्रान् पञ्चमभात्तृतीयभवनाद् भ्रातॄन् कलत्रात् स्त्रियो
दासीश्च क्षितिराशितः स्वभवनाद्दासांश्च मित्राणि च ।।
यातांश्चैव नवांशकाञ्छुभदृशा हत्वा तथा रोपयेद्
व्योमव्योमकरैर्विभज्य तु तथा भूताश्च पुत्रादयः ।।४६।।

पुत्र का पंचम भाव से, भाइयों का तृतीय भाव से, स्त्रियों का सप्तम भाव से, दासियों का चतुर्थ भाव से और दूसरे भाव से दास तथा मित्रों का विचार करना चाहिए।

इसका प्रकार यह है कि भाव पर जितने नवांश की संख्या बीती हो और उस पर जितने शुभ ग्रहों की दृष्टि हो उनका गुणा कर लें। शुभग्रह की दृष्टि के लिए देखिये शुभ दृग्बल अध्याय २, श्लोक ३०-३१। गुणा करने के बाद उनको २०० से भाग करें जो लब्धि आये उसके अनुसार पुत्र आदि की संख्या होती है। पंचम से पुत्र, तृतीय से भाई इत्यादि पहले बता चुके हैं ।।४६।।

पुत्रं सोदरभं कलत्रमुदयं यानं च राशिं विना
तल्लिप्ताः शुभखेटदृग्बलहताः षष्ट्या विभक्ताः क्रमात् ।
व्योमाकाशकराप्तपुत्रसहजस्त्रीदासदासीसुहृत्
सङ्ख्याः पापनभोगदृग्बलभवाः पुत्रादिनाशप्रदाः ।।४७।।

पंचम भाव, तृतीय भाव, सप्तम भाव और चतुर्थ भाव की राशि संख्या छोड़कर जो अंश आये उनकी कला बना दे। शुभ ग्रह की दृष्टि बल से गुणा करें। जो गुणनफल आये उसे ६० से भाग दें और फिर २०० से भाग दें। ऊपर जो पांच भाव गिनाये गये हैं, उनसे यथाक्रम पुत्र, भाई, स्त्री, दास, दासी और मित्र होते हैं। पाप ग्रह की दृष्टि से भाव की संख्या (राशि को छोड़कर) अर्थात् कलापर पाप ग्रह की दृष्टि गुणा करने से ६० का भाग और २०० का भाग दें जो लब्धि आये तत्तुल्य भाई, पुत्र आदि नाश होते हैं।

यह तो हुआ श्लोक का अर्थ। अब इसकी आलोचना की जाती है। पुत्र भाव, तृतीय भाव, सप्तम भाव ठीक हैं। ऊपर श्लोक ४६ में चतुर्थ भाव से दासी बताया गया है और द्वितीय भाव से मित्र बताया गया है, इसमें लग्न और चतुर्थ कहा। इस प्रकार श्लोक ४६-४७ में सामञ्जस्य नहीं होता ।।४७।।

पुत्रस्थानपलग्नपस्फुटयुते राश्यंशकोणे गुरौ
पुत्राप्तिः सचिवेन्द्विनस्फुटयुते राश्यंशसंख्याः सुताः ।
धीधर्मावनिनायकस्फुटचयप्राप्तांशसंख्याऽथवा
धीधर्मक्षितिगस्फुटैक्यभवने यातांशतुल्याः सुताः ॥४८॥

इसमें चार बातें कही गई हैं :—

(१) स्पष्ट पंचमेश और स्पष्ट लग्नेश को जोड़ने से जो राशि अंश आये उसमें या उसके त्रिकोण में जब बृहस्पति जाता है तब पुत्र होता है ।

(२) चन्द्र स्पष्ट, सूर्य स्पष्ट और बृहस्पति स्पष्ट के योग से जो राशि नवांश आये उसमें राशियों का परित्याग कर देखिये नवांश संख्या, तत्तुल्य पुत्र होते हैं ।

(३) पंचमेश, नवमेश, चतुर्थेश को जोड़ लें । जो स्पष्ट आये वह देखिये कौन सा नवांश है, तत्तुल्य पुत्र होते हैं ।

(४) पंचम, नवम और चतुर्थ स्थान में जो ग्रह बैठे हों उनको स्पष्ट जोड़ लें । देखिये कौनसा नवांश है तत्तुल्य पुत्र होते हैं ।

आलोचना :—

ऊपर चार में बताया है कि चतुर्थ स्थान में पंचम और नवम ग्रह हों परन्तु बहुतों के होते ही नहीं तो क्या उनके पुत्र नहीं होंगे ? इतने पुत्र होने के निर्णय करने के प्रकार बता दिये कि कौन प्रकार काम में लाया जाये यह निर्णय करना कठिन है ॥४८॥

जीवाच्चन्द्रमसो विलग्नभवनात्पुत्रप्रदं पञ्चमं
तस्माद्धर्मगृहं च तत्पतिदशाभुक्तौ सुताप्तिं वदेत् ।
पुत्रस्थानपकामपस्फुटयुते यत्तारका तद्दशा
तत्खेटान्वितवीक्षकग्रहदशाभुक्तिश्च पुत्रप्रदा ॥४९॥

बृहस्पति, चन्द्रमा और लग्न से पाँचवें स्थान से पुत्र स्थान है । इनसे नवम स्थान भी पुत्रप्रद है । इसलिए इन राशियों के स्वामी की दशा में पुत्र प्राप्ति कहे ।

पंचमेश और सप्तमेश को जोड़ लें । इस योग में जो स्फुट हो उस नक्षत्र से जो दशा आती हो उसकी दशा में पुत्र प्राप्ति होती है । उस स्फुट राशि स्वामी से जो युक्त हो या दृष्ट हो उसमें भी पुत्र प्राप्ति का योग होता है ।

उदाहरण के लिए पंचम स्फुट ४-७ है और सप्तम स्फुट ६-७ है। दोनों का योग किया तो १०-१४ आया। १०-१४ से चन्द्र स्पष्ट से श्रवण नक्षत्र हुआ तो चन्द्रमा की दशा में पुत्र प्राप्ति कहना। या चन्द्रमा के साथ कोई ग्रह बैठा हो या उस चन्द्रमा को देखता हो तो उस दशा में पुत्र प्राप्ति कहना। केवल दशा ही नहीं उसकी अन्तर्दशा में भी पुत्र होता है ।।४९।

पुत्रस्थानपकारकेक्षकयुता दुःस्थानपा दुर्बला
दुःस्थास्तत्परिपाकभुक्तिसमये पुत्रस्य नाशं वदेत् ।
चत्वारो बलशालिनो यदि शुभास्तत्पाकभुक्त्यन्तरे
पुत्राप्तिं सुतसम्पदः प्रभुजनप्रीतिं च कुर्वन्ति ते ।। ५० ।।

पुत्रप्रद चार ग्रह हैं। (१) पंचम स्थान का स्वामी। (२) पुत्र कारक अर्थात् बृहस्पति (३) पंचम स्थान को जो ग्रह देखता हो। (४) पुत्र स्थान में जो ग्रह बैठा हो। ये ग्रह या इनमें से कोई ६-८-१२ का स्वामी भी हो या निर्बल हो या ६-८-१२ में बैठा हो तो उसकी दशा अन्तर्दशा में पुत्र का नाश कहे। यदि यह चारों पूर्ण बली हों, शुभ ग्रह हों तो उनकी दशा अन्तर्दशा में पुत्र लाभ, पुत्र की समृद्धि और राजा की कृपा करते हैं ।।५०।।

पुत्रेशकारकयुतेक्षकखेचराणां
तत्कालजस्फुटयुतांशकराशियातौ ।
वागीशभानुतनयौ यदि गोचरेण
जातस्य पुत्रजनिमृत्युकरौ भवेताम् ।। ५१ ।।

जन्म काल में पांचवें भाव का स्वामी, बृहस्पति, पुत्र भाव में स्थित और पंचम भाव को जो ग्रह देखते हों इन चारों के स्पष्ट जोड़िये। जो योग आये उसमें क्या नवांश है यह देखिये। उस नवांश में या उस राशि नवांश में जब बृहस्पति जाता है तो पुत्र लाभ होता है। जब शनि जाता है तब पुत्र का नाश कहना चाहिए ।।५१।।

पितृ विचार

पितृस्थानेश्वरे सौम्ये कारके शुभसंयुते ।
भावे वा शुभसंयुक्ते पितृसौख्यं विनिर्दिशेत् ।। ५२ ।।

श्लोक ५२-५७ सर्वार्थचिन्तामणि में नवम भाव के अन्तर्गत दिये गये हैं। जहां नवम भाव से पिता का विचार किया गया है। किन्तु इस अध्याय

में पंचम भाव के प्रसंग दिये गये हैं, और ग्रन्थकार लिखते हैं "पुत्राद्देवमहीपपुत्रपितृधीपुण्यानि सञ्चिन्तयेत्" इस प्रकार पंचम से पिता का विचार किया गया है। नवम भाव के प्रसंग में चतुर्थ अध्याय में लिखते हैं "भाग्यप्रभाव गुरुधर्मतपःशुभानि संचिन्तयेन्नवमदेवपुरोहिताभ्याम्।" वहाँ नवम भाव में पिता का कोई जिक्र नहीं है। इसलिए पितृ स्थान का अर्थ सर्वार्थचिन्तामणिकार नवम स्थान का स्वामी करते हैं। किन्तु पंचम भाव के प्रसंग में यह श्लोक होने से हम पितृस्थानेश्वर का अर्थ पंचमाधिपति कर रहे हैं।

पांचवें स्थान का स्वामी सौम्य ग्रह और पितृकारक अर्थात् सूर्य शुभ संयुक्त हो या पंचम भाव शुभ संयुक्त हो तो पिता का सुख कहे ।।५२।।

पारावतादौ तन्नाथे कारके च तथा स्थिते।
स्वोच्चमित्रांशके वाऽपि पितृदीर्घायुरादिशेत् ।। ५३ ।।

क्रूरनीचांशकस्थे वा भावनाथे च कारके।
मन्दमान्द्यगुसंयुक्ते पितृदुःखं विनिर्दिशेत् ।। ५४ ।।

सौम्ये तदीश्वरे वाऽपि नीचमूढारिराशिगे।
क्रूरषष्टचंशके वाऽपि पितृदुःखं विनिर्दिशेत् ५५ ।।

पंचम भाव का स्वामी और सूर्य पारावत आदि वैशेषिकांश में हो (देखिये अध्याय २, श्लोक ३०-३१) या अपने उच्च नवांश अथवा मित्र नवांश में हो तो पिता की दीर्घ आयु कहे ।।५३।।

अगर पंचम भाव का स्वामी और कारक (सूर्य) क्रूर अंश वा नीच अंश में हो, शनि, राहु या गुलिक के साथ हो तो पिता का दुःख कहे। पिता के दुःख से तात्पर्य है कि पिता अल्पजीवी हो ।।५४।।

यदि पंचमेश सौम्यग्रह भी हो किन्तु यदि नीच राशि में बैठे या अस्त हो या शत्रु राशि में बैठे अथवा क्रूर षष्टचंश में हो तो पिता का दुःख कहे अर्थात् पिता अल्पजीवी हो ।।५५।।

पितृकर्मगृहे जातः पितृतुल्यगुणान्वितः।
पितृजन्मतृतीयर्क्षे जातः पितृवशानुगः ।। ५६ ।।

पितृषष्ठाष्टमे जातः पितृशत्रुर्भविष्यति।
तद्भावपे विलग्नस्थे पितृश्रेष्ठो भवेत्सुतः ।। ५७ ।।

पिता के जन्म लग्न से दसवें लग्न में यदि पुत्र का लग्न हो तो वह पिता के सदृशगुण वाला होता है। पिता के लग्न से तृतीय में जिस जातक का जन्म लग्न हो वह पिता की आज्ञानुसार चलता है ।।५६।।

पिता के लग्न से ६-८ वें जिसका जन्म लग्न हो वह पुत्र अपने पिता से शत्रुता करता है। जातक के पांचवें भाव का मालिक यदि लग्न में बैठा हो तो पिता से श्रेष्ठ होता है। सुब्रह्मण्यशास्त्री ने इसका अर्थ यह किया है कि यदि पिता के जन्म से छठे या आठवें का मालिक लड़के के लग्न में बैठा हो तो वह पिता से श्रेष्ठ होता है ।।५७।।

लग्नादायतपःस्थिताः शनिमहीपुत्रागवो मृत्युदा-
स्तातस्यार्कजभूसुतौ निधनदौ बालस्य रन्ध्रास्तगौ ।
माने वा यदि पञ्चमे कुजरविच्छायाकुमारेन्दवः
सद्यो मातुलतातबालजननीनाशं प्रकुर्वन्ति ते ।। ५८ ।।

इस श्लोक में ६ योग बताये गये हैं :—

(१) यदि शनि, मंगल, राहु जन्म लग्न से नवमें या एकादश हों, चाहे एक साथ या अलग-अलग—तो पिता की मृत्यु कहते हैं।

(२) यदि शनि व मंगल ८वें, ७वें हों तो जातक के पुत्र की मृत्यु कहते हैं। मूल में 'बालस्य' शब्द है इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि स्वयं की मृत्यु हो।

(३) यदि दशम या पंचम में मंगल हो तो शीघ्र ही मामा की मृत्यु करता है।

(४) यदि सूर्य दशम या पंचम में हो तो पिता की मृत्यु करता है।

(५) यदि शनि दशम या पंचम में हो तो पुत्र की मृत्यु करता है।

(६) यदि चन्द्रमा दसवें या पांचवें हो तो माता की मृत्यु करता है।

हमारे विचार से उपर्युक्त ठीक नहीं है, जब तक शनि, मंगल, सूर्य, चन्द्र पापाक्रान्त नहीं होंगे तब तक यह योग सही नहीं होगा। सर्वार्थचिन्तामणि में लिखा है :—

लाभे शुभे वा यदि मन्दभौमौ फणीन्द्रयुक्तौ पितुरस्त्यपायः ।
लग्नाच्छुभे कर्मणि भूमिपुत्रे पापेक्षिते मातुलमृत्युमाहुः ।।
मन्देन युक्ते यदि पुत्रमृत्युं चन्द्रे हि तन्मातृमृतिं सपापे ।
पितुर्मृतिर्वासरनायकेऽत्र न संशयः पापदृशा समेते ।।

इस प्रकार इस श्लोक की व्याख्या समाप्त हुई ॥५८॥

सबले पितृभावेशे लग्नेशेन्दुचतुर्थपाः ।
दुर्बला यदि तन्मातुर्गर्भतो मरणं विदुः ॥ ५९ ॥

यदि पंचमेश बली हों और लग्नेश चन्द्रमा और चतुर्थ स्थान का स्वामी तीनों दुर्बल हों तो उसकी माता का मरण गर्भावस्था में हो ॥५९॥

नवमादष्टमाधीशो नवमात्खरपोऽथवा ॥
शनिर्वेधेषु यः क्रूरः संभवेत् पितृमृत्युदः ॥ ६० ॥

यदि नवम भाव से अष्टमेश अर्थात् चतुर्थेश शनि हो अथवा नवम भाव से २२वें द्रेष्कोण का स्वामी शनि हो तो क्रूर ग्रह विद्ध होने पर पिता का मृत्यु कारक होता है। वेधग्रह नीचे बताये जाते हैं :—

वेधस्थान बोध चक्र

ग्रह	I	II	III	IV	V	VI	VII	VIII	IX	X	XI	XII
सूर्य	1	2	9	3	6	12	7	8	10	4	5	11
चन्द्र	5	1	9	3	6	12	2	7	10	4	8	11
मं०श०रा०	1	2	12	3	4	9	6	7	8	10	5	11
बुध	2	5	4	3	7	9	6	1	8	10	12	11
बृहस्पति	1	12	2	5	4	6	3	7	10	3	8	11
शुक्र	8	7	1	10	9	12	2	5	11	4	3	6

अब वेध कैसे देखना है, यह समझाया जाता है। जन्म कालीन चन्द्रमा से सूर्य प्रथम भाव में है तो शनि के अतिरिक्त और कोई ग्रह प्रथम भाव में हो तो सूर्य के गोचर से वेध होता है। वेध होने पर ग्रह अपना प्रभाव नहीं दिखाता। सूर्य

जब गोचर में हो तो अन्य ग्रह वेध कर सकते हैं, परन्तु शनि नहीं करता क्योंकि पिता, पुत्र का वेध नहीं होता । सूर्य पिता है, शनि पुत्र है । इस प्रकार सूर्य का वेध न शनि करता है, न शनि का वेध सूर्य करता है । उसी प्रकार चन्द्रमा और बुध का वेध नहीं होता । क्योंकि चन्द्र और बुध पिता-पुत्र हैं । चन्द्रमा पिता है, बुध पुत्र है । न चन्द्रमा का वेध बुध करता है न बुध का चन्द्रमा । प्रस्तुत विषय पर आइये । सूर्य तृतीय भाव में हो चन्द्रमा से गिनने पर नवम भाव में शनि के अतिरिक्त कोई ग्रह हो तो सूर्य का वेध होगा । सूर्य गोचर से छठे जा रहा है तो बारहवें कोई ग्रह शनि के अलावा हो तो वेध होगा ।

अन्य उदाहरण देखिये । बृहस्पति जन्म राशि का गोचर से है तो बृहस्पति के साथ कोई ग्रह होगा तो वेध होगा । बृहस्पति चन्द्रमा गोचर से दूसरे जा रहा है तो चन्द्रमा से बारहवें कोई ग्रह जा रहा हो तो बृहस्पति का वेध होगा । यही बात ऊपर कोष्ठक में समझाई गई है ।।६०।।

दिनेशस्थितराश्यंशप्राणितः कोणगे रवौ ।
पितृमृत्युर्मातृमृत्युरिन्दुस्थांशर्क्षयोर्बलात् ।। ६१ ।।

इसमें दो बातें बताई गई हैं । माता-पिता का निधन, वर्ष स्थिर हो जाने पर मास कैसे निकालना :—

(१) सूर्य जिस राशि और नवांश में हो उनमें जो बली हो उससे त्रिकोण में (५ ,९) सूर्य जब गोचर में जाये तब पिता की मृत्यु हो ।

(२) चन्द्रमा जिस राशि में हो और नवांश में हो उनमें जो बली हो उससे त्रिकोण में जब सूर्य जाये तब माता की मृत्यु होती है ।।६१।।

भानुस्थितांशपारूढनवांशद्वादशांशभम् ।
गते चन्द्रे भवेन्मृत्युर्मातापित्रोर्यथाक्रमम् ।। ६२ ।।

(१) सूर्य जिस नवांश में हो, उसका स्वामी जिस नवांश में हो, उस राशि में जब चन्द्रमा गोचर से जाता है तब माता की मृत्यु होती है ।

(२) सूर्य जिस नवांश में हो, उसका स्वामी जिस द्वादशांश में हो, उस राशि में जब चन्द्रमा जाता है तब पिता की मृत्यु होती है ।।६२।।

दुष्टस्थानगते भानौ सिंहान्त्यद्वादशांशके ।
जातश्चेज्जननात्पूर्वं पितृमृत्युं प्रयच्छति ।। ६३ ।।

सूर्य छठे, आठवें, बारहवें में हो और यदि सिंह या मीन के द्वादशांश में हो तो जातक के जन्म के पहले ही पिता की मृत्यु होती है।
जातकरत्न में यह योग दिया है :—

क्षीणे शशाङ्के तनुभावयुक्तमूढान्विते मन्दगृहेसुरेज्ये।
त्रिकोणगे पापखगैश्च सर्वैः प्रागेव पुत्रस्य मुखाद्विनाशः ॥६३॥

मार्तण्डे गुलिकस्फुटादपहृते राशित्रिकोणे शनौ
रोगं तज्जनकस्य देवसचिवे मृत्युस्तदंशोपगे।
आदित्ये यमकण्टकस्फुटयुते तद्राशिकोणे गुरौ
रोगं तद्भवनांशकेऽमरगुरौ तातस्य नाशं वदेत् ॥ ६४ ॥

इसमें चार योग बताये गये हैं :—

(१) स्पष्ट गुलिक में से स्पष्ट सूर्य को घटाइये जो शेष बचे उस राशि में या उस त्रिकोण में गोचर वर्ष जब शनि जाता है तब पिता को बीमार करता है।

(२) स्पष्ट गुलिक में से सूर्य स्पष्ट घटाइये जो शेष रहे राशि के उस नवांश में गोचर वश बृहस्पति के जाने से पिता की मृत्यु होती है।

(३) सूर्य स्पष्ट में यमकण्टक स्पष्ट जोड़िये। उसमें गोचर वश बृहस्पति के जाने से पिता को रोग होता है।

(४) सूर्य स्पष्ट में यमकण्टक स्पष्ट जोड़िये। जो नवांश आये उसमें बृहस्पति के जाने से पिता की मृत्यु होती है।

शनि ३० वर्ष में भचक्र का भ्रमण कर लेता है और गुरु बारह वर्ष में। इसलिए यह आवश्यक नहीं कि शनि और बृहस्पति जब उपर्युक्त स्थानों में जायें तो पिता की मृत्यु होती है, अन्य हेतुओं से ज़ब मरणकाल आसन्न हो तब यह सिद्धान्त लागू करना चाहिए। जातकरत्न में भी लिखा है :—

आदित्ये यमकण्टकस्फुटहृते राशित्रिकोणे शनौ ॥६४॥

केन्द्रे चरेऽर्के चन्द्रे वा पितरौ न दहेत्सुतः।
केन्द्रे द्विदेहगौ तौ चेन्मृत्युदाहौ द्विकालगौ ॥ ६५ ॥

(१) केन्द्र में चर राशि हो और उसमें सूर्य या चन्द्रमा हो तो जातक अपने माता-पिता के मरने के समय उस स्थान पर नहीं होता।

(२) केन्द्र में यदि द्विस्वभाव राशि हो और उनमें यदि सूर्य या चन्द्रमा हो तो माता-पिता के मरण के बाद दाह नहीं होता, कुछ काल (एक आध दिन) बाद होता है।

मेष, कर्क, तुला और मकर चर राशि हैं। मिथुन, कन्या, धनु और मीन द्विस्वभाव राशियां हैं ॥६५॥

अदृश्ययातौ पितृमातृनाथौ पित्रोर्मुखादर्शनदौ भवेताम् ।
पुत्राधिपोऽदृश्यगृहोपगश्चेत्पुत्राननादर्शनदोऽन्त्यकाले ॥ ६६ ॥

(१) पंचम भाव का स्वामी और चतुर्थ भाव का स्वामी यदि लग्न की राशि से प्रारम्भ कर सप्तम स्पष्ट पर्यन्त हो तो पुत्र अपने माता-पिता के मरने के समय उनका मुख नहीं देखता, यह अदृश्य चक्रार्द्ध कहलाता है। लग्न स्पष्ट से प्रारम्भ कर द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ एवं सप्तम स्पष्ट तक जो आकाश का भाग जन्म काल में पृथ्वी के नीचे होता है और दिखाई नहीं देता वह अदृश्य चक्रार्द्ध कहलाता है और आकाश का जो भाग दिखाई देता है अर्थात् लग्न स्पष्ट से प्रारम्भ कर बारहवां, ग्यारहवां, दसवां, नवां, आठवां और सप्तम स्पष्ट तक दृश्य चक्रार्द्ध कहलाता है। इन्होंने कहा है कि "पितृ-मातृ-नाथौ" अर्थात् चौथे और पांचवें के मालिक दिखाई न दें अदृश्य चक्रार्द्ध में हों।

(२) पंचमेश अदृश्य चक्रार्द्ध में हो तो मरने के समय माता-पिता अपने पुत्र का मुख नही देखते। इन दोनों लग्नों में यह समझना चाहिए कि मरते समय माता-पिता के पास पुत्र नहीं होता ॥६६॥

बुद्धि विचार

दुःस्थे बुद्धिस्थानपेऽदृश्यगे वा
जातो मन्दप्रायबुद्धिं समेति ।
केन्द्रे कोणे सौम्यवागीशयुक्ते
वीर्योपेते बुद्धिमानिङ्गितज्ञः ॥ ६७॥

त्रिकालज्ञो भवेज्जीवे स्वांशे मृद्व शसंयुते
गोपुराद्यंशके वाऽपि शुभांशे शुभवीक्षिते ॥ ६८ ॥

(१) यदि पंचम भाव का स्वामी छठे, आठवें, बारहवें या अदृश्य भाग में बैठे

तो जातक मन्द बुद्धि होता है । अदृश्य भाग लग्न स्पष्ट से दूसरा, तीसरा सप्तम स्पष्ट तक होता है ।

(२) यदि पंचम भाव का स्वामी बुध और गुरु से युत होकर लग्न से केन्द्र में या त्रिकोण में बैठे और बलवान् हो तो जातक बुद्धिमान् और दूसरों के आशय को समझने वाला हो ॥६७॥

बृहस्पति अपने नवांश में या शुभषष्टचंश में या वैशेषिकांश में हो या शुभ ग्रह के नवांश में हो और शुभ ग्रह दृष्ट हो तो जातक भूत, भविष्य, वर्तमान का जानने वाला होता है ॥६८॥

हृद्रोगी पञ्चमे पापे सपापे च रसातले ।
क्रूरषष्टयंशसंयुक्ते शुभदृग्योगवर्जिते ॥ ६९ ॥

यदि चतुर्थ व पंचम स्थान में पाप ग्रह हो और पाप षष्टचंश में हो तो जातक को हृदय रोग होता है किन्तु शुभ ग्रह का योग हो तो ऐसा नहीं होता ॥ ६९ ॥

पुण्य विचार

अन्नदानपरो नित्य पञ्चमेशे शुभांशके ।
शुभखेचरसंयुक्ते भूमिजे केन्द्रमाश्रिते ॥ ७० ॥

इस श्लोक में अन्नदान का योग दिया है । पाँचवें स्थान का स्वामी शुभ ग्रह के नवांश में हो, शुभ ग्रह से युक्त हो, और मंगल केन्द्र में हो तो नित्य अन्न दान करता है ॥ ७० ॥

षष्ठ भाव फल

रोग विचार—

रोगारिव्यसनक्षतानि वसुधापुत्रारितश्चिन्तये-
दुक्तं रोगकरं तदेव रिपुगे जीवे जितारिर्भवेत् ।
षण्ढोऽरीशबुधौ विधुन्तुदयुतौ लग्नेशसम्बन्धिनौ
लिङ्गस्यामयकृद् व्रणेन रुधिरः षष्ठे सलग्नाधिपः ॥ ७१ ॥

छठे भाव से क्या-क्या विचार करना यह कहते हैं ? छठे स्थान से और मंगल से, क्योंकि मंगल इस स्थान का कारक है । निम्नलिखित बातों का विचार करना चाहिए :—

रोग, शत्रु, दुराचरण, क्षत (चोट या घाव)। इस श्लोक में तीन योग कहे गये हैं :—

(१) यदि बृहस्पति छठे भाव में हो तो वह मनुष्य अपने शत्रुओं को जीतता है।

(२) छठे स्थान का स्वामी, बुध और राहु यह तीनों यदि लग्नेश से सम्बन्ध करें तो पुरुष नपुंसक होता है।

(३) मंगल लग्नेश के साथ छठे भाव में हो तो उस मनुष्य के लिंग में घाव होता है और इस कारण बीमार रहता है ।।७१।।

पत्नी षण्ढत्वमेति क्षतभवनगते कामपे सासुरेज्ये
भौमे मन्देन दृष्टे रिपुभवनगते शत्रुभार्यामुपैति ।
सौम्यैर्दृष्टे युते वा न भयमरिजनाच्छत्रुभे जन्मलग्नात्
पापैः शत्रुक्षतादिव्रणभयविपुलं जायते लाञ्छनं वा ।।७२।।

इसमें चार योग बताये गये हैं :—

(१) यदि सप्तम भाव का स्वामी और शुक्र एक साथ छठे घर में बैठे तो उसकी स्त्री योषित्, धर्म रहित अर्थात् क्लीव होती है। सुब्रह्मण्य शास्त्री इसकी व्याख्या में लिखते हैं कि वह पुरुष अपनी स्त्री के पास जाता है तो उसमें क्लीवता आ जाती है। बहुत से पुरुष नपुंसक नहीं होते, अन्य स्त्रियों के साथ रमण कर सकते हैं परन्तु अपनी स्त्री के साथ नहीं। बहुत से पुरुष अपनी स्त्री के साथ रमण कर सकते हैं, पर अन्य स्त्रियों के साथ नहीं।

(२) यदि मंगल छठे हो और शनि से देखा जाय तो शत्रु की स्त्री को प्राप्त करता है। मूल में आया है, "शत्रुभार्यामुपैति" इसका अर्थ यह हुआ कि शत्रु की भार्या से सम्भोग करता है।

(३) यदि छठे स्थान में शुभ ग्रह हो या देखते हों तो शत्रु का भय नहीं होता।

(४) यदि छठे स्थान में पाप ग्रह हों या देखते हों तो घाव और लांछन होता है। लांछन से तात्पर्य यह है कि झूठा अपराध लगे ।। ७२ ।।

षष्ठे भास्वति लग्ननायकरिपौ नीचारिगे दुर्बले
जातस्तत्पितृवर्गशत्रुसहितो लग्नेशमित्रग्रहे ।

इष्टस्थानगते निजोच्चसुहृदां वर्गोपयाते सति
ज्ञातीनां बहुलं वदन्ति मुनयः शत्रुव्रणाभावभाक् ॥ ७३ ॥

(१) यदि छठे घर में सूर्य नीच या शत्रु राशि का हो और लग्नेश का शत्रु हो तो जातक उन लोगों से ही शत्रुता करे जो उसके पिता के शत्रु हैं या थे ।

(२) लग्नेश का मित्र ग्रह यदि त्रिकोण केन्द्र या शुभ स्थान में हो और अपनी उच्च राशि या मित्र राशि में बैठा हो तो उस पुरुष के अनेक दायाद होते हैं और वह शत्रु तथा रोग से रहित होता है ॥ ७३ ॥

शत्रुस्थानगतोऽरिनीचगृहगो वक्रं गतो वाऽस्तगो-
ऽनेकारातिजनो बहुक्षततनुः षष्ठाधिपो वा तथा ।
षष्ठस्थानगतेषु भास्करमुखव्योमाटनेषु क्रमात्
तत्तत्कारकखेटवर्गरिपुणा सम्पीडितः सन्ततम् ॥ ७४ ॥

(१) कोई भी ग्रह अपने शत्रु ग्रह में या नीच राशि में या वक्री या अस्त होकर छठे भाव में हो तो जातक शत्रुओं से युत हो और उसके शरीर में घाव हो ।

(२) यदि षष्ठेश अपने शत्रु ग्रह में बैठे या नीच राशि में हो या वक्री हो या अस्त हो तो उसके वहुत शत्रु हों और घाव आदि विशेष मात्रा में हों ।

(३) सूर्य आदि ग्रह यदि छठे भाव में बैठे तो उनके वर्ग के शत्रु से जातक पीड़ित रहता है । सूर्य का वर्ग है पिता, राजा आदि । चन्द्रमा का वर्ग है माता, राजमहिषी आदि । मंगल का वर्ग है भ्राता आदि । बुध का वर्ग है मित्र, व्यापारी आदि। बृहस्पति का वर्ग है पुत्र, गुरु, ब्राह्मण आदि । शुक्र का वर्ग है स्त्री आदि । शनि का वर्ग है भृत्य आदि । जिस भाव का स्वामी छठे घर में बैठता है उस भाव से जिसका विचार किया जाता है वह शत्रु होता है इसका भी विचार कर लेना चाहिए ॥७४॥

पापव्योमचरास्त्रयोऽरिपतितत्प्राप्तेक्षका दुर्बला
गोवित्तक्षयमामयं रिपुभयं कुर्वन्ति जन्मादितः ।
ते सर्वे बलशालिनो यदि शुभा गोवित्तमश्वादिकं
राजान्नं सकलोपदंशसहितं रोगारिनाशं वदेत् ॥ ७५ ॥

इसमें दो योग बताये हैं :—

(१) छठे घर का मालिक, छठे घर में जो ग्रह बैठे हों, और छठे को देखने वाले, यह तीनों ग्रह यदि पापी और दुर्बल हों, तो जन्म से ही रोग और गोधन का नाश होता है और शत्रु से पीड़ा होती है ।

(२) यदि तीनों—छठे में बैठा ग्रह, छठे का मालिक और छठे को देखने वाले ग्रह शुभ-ग्रह हों और बली हों तो गाय, धन, अश्व आदि प्राप्त होते हैं । राजा से धन मिलता है और रोग तथा शत्रु का नाश होता है । ॥७५॥

तेषामम्बरचारिणामतिशुभौ केन्द्रत्रिकोणायगौ
द्वावेतौ बलशालिनौ यदि लघुव्याध्यादिनाशं नृणाम् ।
एकोऽपि प्रबलो यदि व्रणरिपुक्लेशादि किञ्चित् फलं
यत्तत्कारकवर्गमूलमखिलं मोदं प्रमादं तु वा ॥ ७६ ॥

ऊपर तीन ग्रह बताये गये हैं । छठे घर का मालिक, छठे घर को देखने वाले ग्रह और छठे घर में बैठा हुआ ग्रह । इन तीनों में से कोई दो ग्रह भी अत्यन्त शुभ ग्रह हों और लग्न से केन्द्र या त्रिकोण में बैठे हों, बलवान् हों तो छोटे-छोटे रोगों का नाश करते हैं । यदि इन तीनों में कोई एक भी ग्रह बलवान् हो तो अल्प मात्रा में रोग, व्रण आदि कहने चाहिएं और ऊपर जो यह कहा गया है कि जिसका यह ग्रह कारक है उससे कष्ट होता है तो वह सब आमोद या प्रमोद की ग्रह की स्थिति में है ॥७६॥

पापे लग्नगते सपत्नपयुते देहव्रणं देहिनां
पुत्रस्थे पितृपुत्रयोः सुखगते मातुः कलत्रे स्त्रियाः ।
धर्मस्थे सति मातुलस्य सहजे तस्यानुजस्य व्रणं
लाभस्थे तु तदग्रजस्य निधने जातो गुदार्तो भवेत् ॥ ७७ ॥

इसमें सात योग बताये गये हैं :—

(१) षष्ठेश से युक्त पापग्रह यदि लग्न में हो तो शरीर में घाव होता है । यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि सूर्य, मंगल, शनि व राहु तथा केतु पापग्रह हैं । जहां भी पापग्रह की चर्चा हो वहाँ इन्हीं पाँच ग्रहों को पापी मानना । क्योंकि चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति तथा शुक्र शुभग्रह हैं । यहाँ पर यह भेद नहीं है कि कृष्णपक्ष का चन्द्रमा अशुभ (पाप) और शुक्लपक्ष का शुभ होता है । न यह भेद है कि पाप सहित बुध पाप

और शुभ सहित बुध शुभ होता है। चन्द्रमा व बुध को सदैव शुभ माना है।

(२) यदि छठे घर का स्वामी पापग्रह के साथ पाँचवें स्थान में हो तो पिता और पुत्र के शरीर में घाव हो।

(३) यदि छठे घर का स्वामी पापग्रह के साथ चौथे घर में हो तो माता के शरीर में व्रण हो।

(४) यदि छठे घर का स्वामी और पापग्रह दोनों नवम में हों तो मामा के शरीर में व्रण हो।

(५) यदि षष्ठेश पापग्रह के साथ तृतीय भवन में बैठे तो छोटे भाई के शरीर में व्रण हो।

(६) यदि छठे घर का मालिक पापग्रह के साथ ग्यारहवें स्थान में बैठे तो बड़े भाई के शरीर में घाव हो।

(७) यदि छठे घर का स्वामी पापग्रह के साथ आठवें घर में बैठे तो जातक गुदा के रोग से पीड़ित होता है।

गुदा के रोग—बवासीर, भगन्दर, कांच निकलना आदि।

हमारा अनुभव है कि अष्टम में कोई पापग्रह बैठे यह आवश्यक नहीं कि छठे का मालिक भी साथ में हो तो गुदा के रोग होते हैं। यह श्लोक जातक रत्न में भी है ।।७७।।

भानुर्मूर्ध्नि शशी मुखेऽवनिसुतः कण्ठे तु नाभेरध-
श्चान्द्रिः सूरिरनामयं प्रकुरुते नेत्रामयं भार्गवः।
मन्दो वातमहिश्च केतुरुदरव्याधिं बुधक्षेत्रगो
लग्नेशः शशिजेन वीक्षितयुतो गुह्यव्रणं यच्छति ।। ७८ ।।

इस श्लोक में ९ योग बताये गये हैं :—

(१) षष्ठेश से युक्त छठे, आठवें में सूर्य बैठे तो सिर में रोग हो।

(२) छठे घर का मालिक चन्द्रमा के साथ छठे, आठवें बैठे तो मुख में रोग हो।

(३) षष्ठेश से युक्त मंगल अगर छठे, आठवें बैठे तो कंठ में अर्थात् गले में रोग करता है।

(४) यदि षष्ठेश युक्त बुध छठे, आठवें बैठे तो नाभि के नीचे रोग हो।

(५) यदि षष्ठेश से युक्त बृहस्पति छठे, आठवें हो तो कोई रोग नहीं होता।

(६) यदि षष्ठेश से युक्त शुक्र छठें, आठवें बैठे तो नेत्र रोग करता है ।

(७) यदि षष्ठेश शनि सहित छठे, आठवें बैठे या राहु के साथ छठे का मालिक, छठे, आठवें हो तो वात-व्याधि करता है ।

(८) यदि छठे का मालिक केतु के साथ छठे, आठवें घर में हो तो पेट में रोग करे ।

(९) यदि लग्नेश बुध के घर में हो अर्थात् मिथुन और कन्या में हो और बुध से देखा जाता हो तो गुप्त स्थान में अर्थात् जननेन्द्रिय में रोग करता है ।

पराशर ने लिखा है :—

षष्ठाधिपोऽपि पापश्चेद्देहे वाऽप्यष्टमे स्थितः ।
तदा व्रणो भवेद्देहे कर्मस्थानेऽप्ययं विधिः ॥
एवं पित्रादिभावेशास्तत्तत्कारकसंयुताः ।
व्रणाधिपयुताश्चापि षष्ठाष्टमयुता यदि ॥
तेषामपि व्रणं वाच्यमादित्येन शिरोव्रणम् ।
इन्दुना च मुखे कण्ठे भौमेन ज्ञेन नाभिषु ॥
गुरुणा नासिकायां च भृगुणा नयने पदे ।
शनिना राहुणा कुक्षौ केतुना च तथा भवेत् ॥

पराशर के मत में थोड़ी भिन्नता है। वह कहते हैं कि छठे घर का मालिक यदि पापी हो और लग्न में, अष्टम में किंवा दशम में स्थित हो तो व्रण करता है। इसी प्रकार पित्रादि के भावेश या पिता आदि के कारक षष्ठेश के साथ छठे, आठवें हों तो उनके शरीर में व्रण कहना। गुरु के दाहिने नासिक में रोग कहना और शुक्र रहने से नेत्र में, पैर में, शनि राहु और केतु से काँख में रोग कहना ॥ ७८ ॥

लग्नादियद्राशिगते फणीशे शुक्रक्षिते तत्तनुचिह्नमेति ।
मन्दाहियुक्ते रिपुराशिनाथे तुरङ्गपश्वादिभयं वदन्ति ॥७९॥

इसमें दो योग बताये हैं :—

(१) लग्न आदि जिस राशि में राहु हो तथा शुक्र उसे देखता हो तो वह राशि कालपुरुष के जिस अंग में पड़ती है उस स्थान में चिह्न करता है अर्थात् व्रण का चिह्न होता है। राशि कालपुरुष के

किस अंग में है यह पहले बताया गया है, जैसे मेष से सिर, वृष से चेहरा, मिथुन से बाहु और वक्ष-स्थल, कर्क से हृदय आदि।

(२) छठे स्थान का मालिक शनि या राहु से युक्त हो तो घोड़ा आदि पशुओं से भय होता है अर्थात् चोट लगने का अन्देशा होता है ॥ ७९ ॥

पापग्रहेण संदृष्टे बलहीनेऽरिनायके ।
पापान्तरगते वाऽपि शत्रुपीडा भविष्यति ॥ ८० ॥

शत्रु स्थान का मालिक निर्बल हो और पाप ग्रह से देखा जाता हो या पाप ग्रह के बीच में हो तो जातक शत्रुओं से पीड़ित होता है ॥ ८० ॥

शत्रुस्थानाधिपे दुःस्थे नीचमूढारिराशिगे ।
लग्नेशे बलसंयुक्ते शत्रुनाशं वदेद्बुधः ॥ ८१ ॥

शत्रु स्थान का मालिक छठे, आठवें, बारहवें हो, नीच राशि में हो, शत्रु स्थान में हो या अस्त हो और लग्नेश बलवान् हो तो शत्रुनाश हो।

पराशर ने लिखा है :—

षष्ठेशारौ तु दुःस्थावशुभतरयुतौ वीक्षितो वा शुभैश्चे-
च्छत्रुर्नैवास्य दृष्टौ यदि शुभमिलितौ शत्रुवृद्धिर्भुवीह ।
एवं चेदष्टमेशो न भवति हि रुजा रोगयुक्तः शुभैश्चेद्
दृष्टौ षष्ठाष्टमेशावशुभतरयुतौ कुन्तखड्गासिघातम् ॥

षष्ठाष्टमेशविधुराश्यधिपः समेता दृष्टा मिथो धनपमीलितपापभुक्तौ ।
तद्दृष्टभुक्तिषु भवन्ति हि मेहकृच्छ्रक्रूरव्रणज्वरसमीरणमुख्यरोगाः ॥

एवं स्थिते दिनकरेऽपि पुरा यदुक्ता-
स्ते संभवन्ति हि भिषग्भिरसाध्यरोगाः ।
दृष्टाश्च ते हि गुरुणा भृगुणा युताश्चेत्
शान्ता भवन्ति सहसैव समस्तरोगाः ॥८१॥

षष्ठेशे गोपुरांशादौ दिवाकरनिरीक्षिते ।
लग्नेशे बलसम्पूर्णे ज्ञातीनामुपकारकृत् ॥ ८२ ॥

षष्ठेश यदि गोपुरादि अंश में हो (देखिये अध्याय श्लोक ४५,४६,४७) और सूर्य से दृष्ट हो एवं लग्नेश पूर्ण बली हो तो जातक जाति जन का उपकार करने वाला होता है ॥ ८२ ॥

इति नवग्रहकृपया वैद्यनाथविरचिते जातकपारिजाते त्रयोदशोऽध्यायः ।

इस प्रकार श्री नवग्रह की कृपा से वैद्यनाथ विरचित जातक पारिजात का तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

चौदहवां अध्याय

सप्तम अष्टम नवम भावफल

सप्तम भावफल

यात्रापुत्रकलत्रसौख्यमखिलं सञ्चिन्तयेत्सप्तमा-
दुक्तं पुत्रसुखासुखागमफलं सर्वं च यत्तद्वदेत् ।

सप्तम भाव से यात्रा, पुत्र, स्त्री-सुख इन समस्त का विचार करे । जो कुछ पहले पुत्र आदि के सुख या असुख के वर्णन कर आये हैं वह सब सप्तम भाव से कहना चाहिए। जातकाभरण में कहा है :—

रणाङ्गणं चापि वणिक्क्रियाश्च जायाविचारागमनप्रयाणम् ।
शास्त्रप्रवीणैर्हि विचारणीयं कलत्रभावे किल सर्वमेतत् ।।

जातकरत्न में लिखा है :—

युवतिपदादुद्वाहं भार्यापतिसूपदधिगुडक्षीरम् ।
आगमनं सरिदाप्तिं मूत्राशयं च नष्टधनम् ।।

इस प्रकार सप्तम भाव से अनेक बातों का विचार किया जाता है ।

जारः कामगते सिते मदनपे साहिध्वजे वा तथा
कामे जीवयुगीक्षिते शुभगृहे जातो न जारो भवेत् ।। १ ।।

इसमें तीन योग बताये गये हैं :—

(१) शुक्र सप्तम भाव में हो तो मनुष्य जार होता है अर्थात् दूसरी स्त्री से सम्बन्ध होता है ।

(२) यदि सप्तमेश राहु से या केतु से युक्त हो तो जातक परस्त्रीगामी होता है ।

(३) यदि सप्तम में बृहस्पति हो या सप्तम को बृहस्पति देखे और सप्तम

स्थान में शुभ ग्रह की राशि हो तो जातक परस्त्रीगामी नहीं होता ॥ १ ॥

> दुःस्थे कामपतौ तु पापगृहगे पापेक्षिते तद्युते
> तज्जायाभवनस्य मध्यमफलं सर्वं शुभं चान्यथा ।
> कामस्थानपतौ सितेन सहिते पापर्क्षगे कामधीः
> सौम्यर्क्षे शुभखेटवीक्षितयुते जातः सितच्छत्रवान् ॥ २ ॥

इस श्लोक में चार योग बताये गये हैं :—

(१) सप्तमेश पाप ग्रह में होता हुआ अर्थात् पाप ग्रह के घर में बैठा हुआ छठे, आठवें, बारहवें हो और पाप ग्रह से युक्त या वीक्षित हो तो सप्तम भाव का फल मध्यम कहे अर्थात् पूर्ण सुख नहीं होता।

(२) यदि उपर्युक्त लक्षण घटित न हो तो दुष्ट फल नहीं होता, अच्छा फल होता है ।

(३) शुक्र यदि सप्तमेश के साथ पाप ग्रह की राशि में हो तो जातक कामी होता है ।

(४) शुभ राशि में शुभ ग्रह युक्त सप्तमेश हो या सप्तमेश शुभ राशि में हो और शुभग्रह उसे देखता हो तो जातक सफेद छत्र वाला होता है अर्थात् उच्च पद आसीन होता है ॥२॥

> वित्तास्तारिपभार्गवास्तनुगता पापान्विताः कामुकः
> पापव्योमचरान्वितौ तनुरिपुस्थानाधिपौ चेत्तथा ।
> कामस्थे रिपुवित्तलग्नपयुते पापे परस्त्रीरतः
> पापारातिकलत्रपा नवमगाः कामातुरो जायते ॥ ३ ॥

इसमें चार योग बताये हैं :—

(१) द्वितीयेश, सप्तमेश, षष्ठेश और शुक्र यदि पाप ग्रह से युक्त हों तो मनुष्य बहुत कामी होता है ।

(२) षष्ठेश पाप ग्रह से युक्त हो और लग्नेश भी पाप ग्रह से युक्त हो तो मनुष्य बहुत कामी होता है ।

(३) यदि शत्रु स्थान का स्वामी अर्थात् षष्ठेश, लग्नेश तथा द्वितीयेश के साथ सप्तम भाव में हो तो जातक परस्त्रीगामी होता है ।

(४) षष्ठेश और सप्तमेश पाप ग्रह के साथ नवम में बैठे तो जातक कामातुर होता है । सर्वार्थचिन्तामणि में भी कहा गया है :—

लग्नस्थिता वित्तकलत्रशत्रुनाथाः सशुक्रा यदि पापयुक्ताः।
जातः परस्त्रीषु रतः कुमार्गी शुभेक्षिताश्चेन्न तथा भवेच्च ॥
लग्नारिपौ पापयुतौ यदि स्याज्जातः परस्त्रीषु रतः कुमार्गी।
लग्नेश्वरे शत्रुकुटुम्बनाथे पापैर्युते वा यदि दारराशौ ॥
जातः परस्त्रीषु रतः ॥३॥

जारः कर्मधनास्तपा दशमगाः पुत्रादिकारग्रहा-
दुःस्था धीगुरुकामपाः सुतगृहे पापेक्षितेऽनात्मजः।
जीवज्ञौ यदि वा निशाकरसितौ कामे बहुस्त्रीरतः
शुक्रे मन्मथराशिगे बलवति स्त्रीणां बहूनां पतिः ॥ ४ ॥

इसमें चार योग बताये गये हैं :—

(१) यदि दशम स्थान का स्वामी, द्वितीय स्थान का स्वामी ओर सप्तम स्थान का स्वामी तीनों दशम घर में बैठें तो मनुष्य जार हो।
(२) यदि पंचमेश, सप्तमेश, नवमेश में से कोई बृहस्पति हो ओर यह तीनों छठे, आठवें, बारहवें हों अर्थात् छठे, आठवें, बारहवें घर में बैठें और पांचवें घर को कोई पाप ग्रह देखता हो तो जातक के लड़का नहीं होता।
(३) यदि बुध ओर बृहस्पति सातवें घर में बैठें या चन्द्रमा ओर शुक्र सातवें घर में बैठें तो बहुत सी स्त्रियों में रत हो।
(४) यदि बलवान् शुक्र सप्तम भाव में बैठे तो बहुत सी स्त्रियों का पति हो। सर्वार्थचिन्तामणि में कहा है :—

कर्मेशवित्तेशकलत्रनाथमानस्थिता जारमुदाहरन्ति।
धीधर्मनाथौ सकलत्रनाथौ दुःस्थानगौ हीनबलौ शुभैर्न।
दृष्टे सुते दारबहुत्वयोगे त्वपुत्रयोगं मुनयो वदन्ति ॥४॥

शुक्रारौ मदगौ कलत्ररहितो धर्मात्मजस्थौ तथा
शत्रुस्थानगतौ निशाकरसितौ यद्येकपुत्रो भवेत्।
लग्नास्तव्ययगेषु पापखचरेष्विन्दौ सुते दुर्बले
वन्ध्यास्त्रीपतिरेव जातमनुजो जायाविहीनोऽथवा ॥ ५ ॥

इसमें चार योग बताये हैं :—

(१) शुक्र ओर मंगल सप्तम स्थान में हों तो जातक स्त्री रहित हो अर्थात्

उसकी स्त्री मर जाय या विवाह ही न हो। हमने बहुत से जन्म पत्र देखे जिनमें शुक्र और मंगल सप्तम, नवम, पंचम में होते हैं और जातक विवाहित होता है। वहाँ यह आवश्यक है कि पुरुष अन्य स्त्रीगामी होता है।

(२) अगर मंगल व शुक्र नवम या पंचम स्थान में हो तो यही फल।

(३) यदि चन्द्रमा और शुक्र छठे भाव में हों तो जातक के केवल एक पुत्र हो।

(४) लग्न सप्तम और द्वादश में पाप ग्रह हो और यदि पंचम स्थान में दुर्बल चन्द्रमा हो तो मनुष्य का विवाह नहीं होता या उसकी स्त्री बाँझ होती है ॥५॥

वन्ध्यापतिः सितरवी मदनोदयस्थौ
चन्द्रोदये समगृहे ललनाकृतिः स्यात्।
पुंराशिगे पुरुषभावयुतं कलत्रं
स्त्रीपुंग्रहेक्षितयुते सति मिश्ररूपम् ॥ ६ ॥

इसमें चार योग बताये गये हैं :—

(१) अगर शुक्र और सूर्य एक साथ लग्न में या सप्तम में हों तो जातक की स्त्री बाँझ होती है।

(२) यदि चन्द्रमा सम राशि में लग्न में हो तो जातक स्त्री की आकृति का हो।

(३) अगर चन्द्रमा पुरुष राशि में हो तो जातक की स्त्री पुरुष की आकृति की हो।

(४) यदि चन्द्रमा मिश्र ग्रह से दृष्ट या युक्त हो तो मिली-जुली आकृति की होती है अर्थात् कुछ पुरुष ग्रह देखे या युक्त हो, कुछ स्त्री ग्रह देखे या युक्त हो तो कुछ बातें पुरुष की सी और कुछ स्त्री जैसी।

मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु, कुम्भ पुरुष राशियाँ हैं। वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन स्त्री राशियाँ हैं ॥६॥

भौमांशे वा भौमराशौ विलग्नात्
कामस्थाने जन्मभे वा वधूनाम्।
जाया दासी नीचमूढग्रहांशे
दुष्टा वा स्याद्यौवने भर्तृहीना ॥ ७ ॥

(१) पुरुष के लग्न में मंगल की राशि या अंश हो अथवा स्त्री की कुण्डली में सप्तम भाव में मंगल की राशि या अंश हो तो स्त्री दासी हो ।

(२) यदि उसमें नीच ग्रह या अस्त ग्रह का नवांश हो तो स्त्री दुष्टा होती है या युवावस्था में विधवा हो जाती है ।।७।।

शुभांशराशौ यदि सद्‌गुणाढ्या
शुभेक्षिते चारुतरं कलत्रम् ।
चन्द्रांशके दुर्बलचन्द्रराशौ
जाता पतिघ्नी सबले तु साध्वी ।। ८ ।।

इसमें चार योग वताये गये हैं :—

(१) पुरुष के सप्तम भाव या स्त्री के प्रथम भाव में शुभ राशि या शुभ नवांश हो तो सद्‌गुण सम्पन्न होती है ।

(२) यदि उसे शुभ ग्रह देखते हों तो वहुत सुन्दर स्त्री मिले ।

(३) यदि चन्द्रमा के नवांश या निर्वल चन्द्रमा की राशि में उत्पन्न स्त्री हो तो पतिघातिनी होती है ।

(४) यदि स्त्री के जन्म के समय चन्द्रमा वलवान् हो तो साध्वी होती है ।।८।।

अर्कांशे कुलटा निजोच्चगृहगे साध्वी शुभालोकिते
लग्ने शीतकरेऽथवा मदनभे नीचारिमूढान्विते ।
पापव्यालविहङ्गपाशनिगलद्रेक्काणभागान्विते
सन्ध्यंशे विगतव्रता च विधवा जातस्य जाया भवेत् ।।९।।

इसमें तीन योग वताये गये हैं :—

(१) चन्द्रमा लग्न में अथवा सप्तम में सिंह नवांश का हो तो स्त्री व्यभिचारिणी होती है ।

(२) लग्न में अथवा सप्तम में चन्द्रमा यदि कर्क राशि का हो या वृष राशि का हो और शुभ ग्रह देखते हों तो स्त्री अच्छे चरित्रवाली पतिव्रता होती है ।

(३) लग्न में अथवा सप्तम में वृश्चिक राशि का या सूर्य के साथ अस्तगत या शत्रु राशि का या पाप—व्याल विहंग, पाश या निगड द्रेष्काण में

या कर्क, मीन, वृश्चिक की सन्धि में जन्म हो तो पतिव्रता नहीं होती और विधवा होती है। निगड आदि द्रेष्काण के लिए देखिये अध्याय ५, श्लोक ५५ ॥९॥

कामस्थे तनुपे शुभग्रहयुते सद्वंशजामिच्छति
क्रूरर्क्षे मदगे विलग्नरमणे दुर्वंशजाताङ्गनाम्।
वर्णं रूपगुणाकृतिं च सकलं यत्तद्गृहोक्तं वदेद्
दुर्व्यापारकरग्रहाकृतिनरप्रीतिं प्रयात्यङ्गना ॥ १० ॥

इसमें चार योग बताये गये हैं :—

(१) यदि पुरुष की कुण्डली में लग्नेश सप्तम घर में बैठे और शुभ ग्रह के साथ हो तो अच्छे वंश की कन्या से उसका विवाह होता है।

(२) लग्नेश पाप घर में सातवें बैठे तो उसकी स्त्री खराब कुल की होती है।

(३) स्त्री का रूप, वर्ण, गुण आकृति सब सातवें घर के अनुसार होता है।

(४) व्यभिचार योग में जो योग कहे गये हैं, उसमें जो चार कारक ग्रह हैं उन कारक ग्रहों के अनुरूप पुरुष से व्यभिचार करती है ॥१०॥

पापाप्रकाशसंयुक्ते कलत्रे दुष्टचारिणी।
रवौ वन्ध्या तु शीतांशौ क्षीणे तु व्यभिचारिणी ॥ ११ ॥

कुजे तु म्रियते मन्दे दुर्भगा राहुसंयुते।
परदारोऽरतिः स्वीयां निषेकाभावकोऽसुतः ॥ १२ ॥

धूमे विवाहहीनः स्यान्म्रियते कार्मुके सति।
परिवेषे तु दुःशीला केतौ वन्ध्या सती भवेत् ॥ १३ ॥

काले विदारः पापे तु गर्भस्रावेण संयुता।
सुशीला स्त्री प्रसूता च पूर्यमाणे सुधाकरे ॥ १४ ॥

बुधे सुपुत्रा वागीशे गुणयुक्ता सुपुत्रिणी।
शुक्रे सौभाग्यसंयुक्ता श्रीमती च बलान्विते ॥ १५ ॥

इनमें १६ योग बताये गये हैं :—

(१) सप्तम भाव में पाप ग्रह या अप्रकाश ग्रह धूम इत्यादि हो तो जातक की स्त्री व्यभिचारिणी होती है।

(२) यदि सप्तम स्थान में सूर्य हो तो वन्ध्या हो।
(३) यदि सप्तम स्थान में चन्द्रमा हो तो व्यभिचारिणी हो।
(४) यदि सप्तम स्थान में मंगल हो तो मर जाती है।
(५) यदि सप्तम स्थान में शनि हो तो दुर्भगा हो।
(६) यदि सप्तम स्थान में राहु हो तो दूसरी स्त्री में रत हो। अपनी स्त्री से प्रेम न हो। और गर्भाधान का अभाव हो तथा पुत्रहीन हो।
(७) सप्तम में धूम हो तो विवाह न हो।
(८) यदि सप्तम में कार्मुक हो तो जातक स्वयं मर जाये।
(९) यदि सप्तम परिवेश हो तो दुःशीला हो।
(१०) केतु हो तो पतिव्रता हो किन्तु वांझ हो। यहां केतु उपग्रह से तात्पर्य है।
(११) यदि सप्तम में काल हो तो स्त्री रहित हो।
(१२) यदि सप्तम में पापग्रह हो तो गर्भच्युति हो जाती है।
(१३) यदि सप्तम में पूर्ण चन्द्रमा हो तो सुशील स्त्री मिले। और कन्या उत्पन्न करे। मूल में 'स्त्री प्रसूता' इसका अर्थ कुछ टीकाकार यह कहते हैं कि कन्या देखो और कुछ टीकाकार यह लिखते हैं सन्तान देखो।
(१४) यदि सप्तम में बुध हो तो अच्छे पुत्र होते हैं।
(१५) यदि सप्तम में बृहस्पति हो तो गुणवती और बहुत पुत्रवाली होती है।
(१६) यदि सप्तम में शुक्र हो तो सौभाग्य युक्त और धनवान् स्त्री होती है। बशर्ते कि शुक्र बलवान् हो। यह सब योग पुरुष की कुण्डली में देखने चाहिएँ ॥११-१५॥

स्त्रीपुत्रपे बलिनि शोभनखेटदृष्टे
षष्ठाधिपेन सहिते सति वीक्षिते वा।
जारेण पुत्रजनिलाभमुपैति जाया
तस्या धवो बहुकलत्रयुतोऽप्यपुत्रः ॥ १६ ॥

सप्तम भाव का स्वामी या पंचम भाव का स्वामी बलवान् शुभग्रह से देखे जाते हों और छठे भाव के स्वामी से युक्त या दृष्ट हों तो जातक की स्त्री जार से पुत्र उत्पन्न करती है और जातक के बहुत सी स्त्रियाँ हों तब भी पुत्र नहीं होता ॥१६॥

नीचे गुरौ मदनगे सति नष्टदारो
मीने कलत्रभवने रविजे तथैव।
मन्दारराशिनवभागगते सुरेज्ये
जारो भवेदिनसुतारसमन्विते वा ॥ १७ ॥

(१) जातक के सप्तम भाव में मकर राशि का बृहस्पति हो तो उसकी स्त्री मर जाती है। कर्क लग्न में जातक के यह योग हो सकता है।
(२) यदि सप्तम भाव में मीन का शनि हो तो भी यही फल होता है। कन्या लग्न में यह योग हो सकता है।
(३) यदि शनि के नवांश मकर, कुम्भ में किंवा मंगल के नवांश मेष या वृश्चिक में बृहस्पति हो तो मनुष्य व्यभिचारी होता है।
(४) अथवा शनि या भौम के साथ बृहस्पति हो तो भी यह फल।

ऊपर तीन या चार में जो अर्थ किया गया है वह "मन्दारराशिनवभागगते सुरेज्ये" इस आधार पर है कि मूल वचन में 'सुरेज्ये' है। परन्तु हमारे विचार से यह पाठ नहीं होना चाहिए। असुरेज्ये पाठ होना चाहिए। उसमें अर्थ होगा कि मंगल या शनि के नवांश में शुक्र हो या मंगल या शनि के साथ शुक्र हो तो जार हो। तब पाठ हो जायेगा। "मन्दारराशिनवभागगतेऽसुरेज्ये"। असुरेज्ये का अर्थ हुआ शुक्र ॥१७॥

सप्तमे वाऽष्टमे पापे व्ययस्थे धरणीसुते।
अदृश्ये यदि तन्नाथे कलत्रान्तरभाग्भवेत् ॥ १८ ॥

अगर पापग्रह सप्तम में या अष्टम में हो और बारहवें घर में मंगल हो और सप्तमेश अस्त हो तो दूसरा विवाह होता है। मूल में शब्द आया है 'अदृश्ये'। 'अदृश्ये' का अर्थ यह भी हो सकता है कि सप्तम भाव का स्वामी अदृश्य चक्रार्द्ध में हो किन्तु हमारे मत से सप्तमेश अस्त हो तो यह फल अधिक उपयुक्त होगा ॥१८॥

सुवंशजातं प्रथमं कलत्रं
लग्नेश्वरो दारपसंयुतश्चेत्।
दिनेशकान्त्याभिहतस्तदानीं
स्वरूपहीनां सुतरां वदन्ति ॥ १९ ॥

लग्नेश सप्तम भाव के स्वामी के साथ हो तो पहली स्त्री अच्छे वंश में उत्पन्न हो। यदि लग्नेश सूर्य की कान्ति से अस्त हो अर्थात् दिखाई न दे तो स्त्री रूप से रहित हो ।।१९।।

वित्ते पापबहुत्वे च कलत्रेशे तथास्थिते।
शत्रुस्थानगते केतौ कलत्रत्रयभाग्भवेत् ।। २० ।।

द्वितीय स्थान में बहुत से पापग्रह हों, सप्तमेश भी पाप युक्त हो और छठे स्थान में केतु हो तो जातक के तीन स्त्रियां हों।

सर्वार्थचिन्तामणि में श्लोक है :—

वित्ते पापबहुत्वे तु कलत्रे वा तथाविधे।
तदीशे पापसन्दृष्टे कलत्रत्रयभाग्भवेत् ।।

इसके अनुसार यदि द्वितीय स्थान में बहुत पापग्रह हों और सप्तम स्थान में भी पापग्रह हो और सप्तम भाव का स्वामी पापदृष्ट हो तो तीन पत्नी होती हैं ।।२०।।

केन्द्रत्रिकोणे दारेशे स्वोच्चमित्रस्ववर्गगे।
कर्माधिपेन वा दृष्टे बहुस्त्रीसहितो भवेत् ।। २१ ।।

केन्द्र (१, ४, ७, १०) त्रिकोण (५, ९) में उस राशि स्ववर्ग किंवा मित्र-राशि में सप्तमेश हो और दशम भाव के स्वामी से दृष्ट हो तो जातक बहुत सी स्त्रियों से युक्त हो ।।२१।।

कलत्राधिपतौ केन्द्रे शुभग्रहनिरीक्षिते।
शुभांशे शुभराशौ वा पत्नी व्रतपरायणा ।। २२ ।।

यदि सप्तम भाव का स्वामी केन्द्र में हो, शुभग्रह से दृष्ट हो, शुभ राशि में हो और शुभ अंश में हो तो उसकी पत्नी पतिव्रता होती है। और व्रत-परायण होती है ।।२२।।

दाराधिपे सोमसुते सपापे
नीचारिवर्गे रिपुनाशभावे।
पापान्तरे पापदृशा समेते
जाया पतिघ्नी कुलनाशिनी स्यात ।। २३ ।।

यदि धनु या मीन लग्न हो, बुध पाप-ग्रह के साथ हो; यदि नीच या शत्रुवर्ग में हो, पाप-ग्रहों के बीच में हो, पाप दृष्ट होकर अष्टम या द्वादश में बैठे तो उसकी पत्नी पतिनाशिनी और कुलघातिनी होती है ॥२३॥

शुभांशे शुभसंदृष्टे नाथे जाया सुवंशजा ।
पापारूढे पापवर्गे तस्य जाया कुवंशजा ॥ २४ ॥

सप्तम भाव का स्वामी शुभ अंश में हो और शुभग्रह से दृष्ट हो तो जातक की स्त्री अच्छे वंश की होती है। यदि सप्तम भाव का स्वामी पापग्रह से युक्त हो और पापग्रह के वर्ग में हो तो उसकी स्त्री नीच कुल से होती है ॥२४॥

कामस्थाने सखेटे सितयुतखचरैर्दारसंख्यां वदन्ति
स्वोच्चस्थव्योमवासो न भवति गणने शुक्रयुक्तग्रहैर्वा ।
जायाधीशे सितर्क्षे सति धनभवने शुक्रसंयुक्तसंख्या
शुक्रानङ्गेशयुक्तद्युचरनववधूवल्लभो जायते वा ॥ २५ ॥

इसमें तीन योग बताये हैं :—

(१) यदि सातवें घर में कोई ग्रह हो तो शुक्र के साथ जितने ग्रह बैठे हों उतनी स्त्रियाँ जातक की होती हैं। यदि शुक्र के साथ उच्च राशि में ग्रह हो तो उच्च ग्रह की गणना इस संख्या में नहीं लेना।

(२) यदि मेष या कन्या लग्न हो और शुक्र द्वितीय घर में बैठे तो शुक्र से युक्त ग्रह के समान स्त्री संख्या होती है।

(३) किंवा शुक्र और सप्तमेश जितने ग्रहों के साथ बैठे हों उस समान स्त्री संख्या होती है ॥२५॥

दारेशेन कुटुम्बपेन सहिता यावद्ग्रहा दुर्बला-
स्तत्संख्याककलत्रनाशनकरा दुःस्थाननाथा यदि ।
यावन्तो बलशालिनः शुभकरास्तत्तुल्यजायासुखं
कुर्वन्त्येकवियच्चरो बलयुतो यद्येकदारो भवेत् ॥ २६ ॥

इनमें तीन योग बताये हैं :—

(१) द्वितीयेश और सप्तमेश के साथ जितने निर्बल ग्रह हों, यदि वे छठे, बारहवें के स्वामी भी हों (निर्बल ग्रह) तो उतनी संख्या स्त्रियों की नाश को प्राप्त होती है।

(२) सप्तमेश और द्वितीयेश के साथ जितने बलवान् शुभ ग्रह हों उतनी स्त्रियों की संख्या सुख देती है।

(३) यदि द्वितीयेश द्वितीय में या सप्तमेश सप्तम में अर्थात् एक ही ग्रह बलवान् हो तो एक ही पत्नी होती है ॥२६॥

लग्नानङ्गपतिस्फुटैक्यगृहगे जीवे विवाहं वदे-
च्चन्द्राधिष्ठिततारकावधुपयोरैक्यांशके वा तथा।
जीवे मित्रनवांशके बलयुते यद्येकदारान्वितः
स्वांशे द्वित्रिकलत्रवान् बहुवधूनाथः स्वतुङ्गांशके ॥ २७ ॥

इसमें ५ योग बताये गये हैं :—

(१) लग्न के स्वामी के राशि अंश कला, विकला और सप्तम भाव के स्वामी के राशि अंश कला, विकला जोड़िये। इस योग तुल्य राशि में जब गोचर से बृहस्पति जाये तब विवाह होता है।

(२) अथवा चन्द्रमा जिस राशि में है उस चन्द्र स्पष्ट राशि अंश कला, विकला और सप्तम भाव के स्वामी की राशि अंश कला विकला को जोड़िये। इस योग तुल्य राशि अंश में जब गोचर से बृहस्पति जाता है तब विवाह होता है।

(३) गुरु अगर अपने मित्र के नवांश में हो तो केवल एक विवाह होता है।

(४) यदि गुरु अपने नवांश में हो तो तीन विवाह होते हैं।

(५) यदि गुरु अपने उच्च नवांश में हो तो बहुत सी स्त्रियों का स्वामी होता है ॥२७॥

कलत्रनाथस्थितभांशकेशयोः
सितक्षपानायकयोर्बलीयसः।
दशागमे द्यूनपयुक्तभांशक-
त्रिकोणगे देवगुरौ करग्रहः ॥ २८ ॥

(१) सप्तमेश किस राशि और नवांश में है। यदि राशि का स्वामी बलवान् हो तो उसकी दशा अंतर्दशा में जब बृहस्पति गोचर से सप्तमेश के ऊपर जाये या उससे त्रिकोण में जाये तब विवाह होता है।

(२) यदि सप्तमेश जिस नवांश में है उस नवांश का स्वामी बलवान् हो तो

उस नवांश के स्वामी की दशा में जब उसके ऊपर या उसके त्रिकोण में बृहस्पति जाये तब विवाह होता है।

(३) यह देखिये कि चन्द्रमा और शुक्र में कौन बलवान् है। उसकी दशा में जब उस पर से या उससे त्रिकोण में बृहस्पति जाये तब विवाह होता है ॥२८॥

शुक्रोपेतकलत्रराशिपदशाभुक्तिर्विवाहप्रदा
लग्नाद्वित्तपतिस्थराशिपदशाभुक्तौ च पाणिग्रहः।
कर्मायुर्भवनाधिनायकदशाभुक्तौ विवाहः क्रमात्
कामेशेन युतः कलत्रगृहगस्तत्पाकभुक्तौ तु वा ॥ २९ ॥

इसमें ५ योग बताये हैं :—

(१) विवाह काल कौन-सा है इसके लिए और कुछ योग बताये गये हैं। शुक्र युत सप्तमेश की दशा अंतर्दशा में विवाह होता है।

(२) द्वितीयेश अर्थात् लग्न से द्वितीय भाव के स्वामी की दशा अन्तर्दशा में विवाह होता है।

(३) दशमेश की दशा अंतर्दशा में विवाह होता है।

(४) अष्टमेश की दशा अन्तर्दशा में विवाह होता है।

(५) सप्तमेश से युक्त सप्तम स्थान में प्राप्त ग्रह की दशा अन्तर्दशा में विवाह होता है ॥२९॥

सौम्यव्योमचरः स्थितः शुभगृहे चादौ ददाति श्रिय
पापर्क्षे शुभखेचरो यदि दशामध्ये विवाहादिकम्।
क्रूरः पापगृहोपगो यदि फलं पाकावसाने तथा
सौम्यर्क्षे यदि सर्वकालफलदः सौम्यान्वितः शोभनः ॥ ३० ॥

इस श्लोक में दशा अन्तर्दशा नाथ यदि शुभ और पाप हो, शुभ-राशि और पाप-राशि में स्थित हो तो कब शुभ फल दिखाते हैं इसके चार योग दिये हैं :—

(२) शुभ-ग्रह की राशि में हो तो अपनी दशा में पहले शुभफल दिखाता है।

(२) यदि पाप ग्रह की राशि में शुभग्रह हो तो दशा के मध्य में विवाह आदि शुभ फल दिखाता है।

(३) पापग्रह यदि पाप राशि में हो तो दशा के अन्त में फल दिखाता है।

(४) पापग्रह यदि शुभ ग्रह की राशि में हो तो अपनी सम्पूर्ण दशा में शुभ फल दिखाता है बशर्ते कि वह शुभ ग्रह से युक्त हो ॥३०॥

लग्नेश्वरस्थितनवांशपतिः स्वराशौ
चन्द्रे पुरन्दरगुरौ च कलत्रलाभम्।
कामेशशुक्रगृहगेऽमरमन्त्रिणीन्दौ
केन्द्रेऽथवा गुरुयुते सति गोचरेण ॥ ३१ ॥

(१) लग्न का स्वामी जहां स्थित हो उस नवांश का स्वामी जहां हो उससे दूसरे स्थान में जब गोचर से बृहस्पति और चन्द्रमा आये तब विवाह होता है।

(२) जब सप्तमेश और शुक्र के गृह में बृहस्पति आये तब विवाह होता है।

(३) अथवा जब केन्द्र में बृहस्पति आये और चन्द्रमा से संयोग करे अर्थात् चन्द्रमा और बृहस्पति केन्द्र में हो तब विवाह होता है ॥३१॥

यत्संख्याकमजादि कामभवनं तद्वत्सरे वा नृणां
साष्टाब्दे कृतमौञ्जिकर्मपरतः कल्याणकालो भवेत्।
लग्नादस्तविलग्ननायकयुतक्षेत्रांशके सम्भवा
या सा भर्तृमनःप्रसादकरणी भर्ता तथैव स्त्रियाः ॥ ३२ ॥

(१) जितनी संख्या की राशि सप्तम भाव में पड़े उस संख्या को नोट कीजिए। मेष हो तो एक वर्ष, वृष हो तो दो वर्ष, कन्या हो तो छः वर्ष, मीन हो तो बारह वर्ष। उस वर्ष में आठ वर्ष जोड़कर जो संख्या आये उसमें विवाह होता है। इसलिए यज्ञोपवीत होने के समय का विचार कर लेना चाहिए।

(२) सप्तमेश किस राशि में है उस राशि के स्वामी या नवांश के स्वामी की राशि का चन्द्रमा जिस स्त्री के हो वह जातक को प्रसन्न करती है।

उदाहरण के लिए किसी जातक की जन्म राशि मीन और चन्द्रमा का नवांश है तो जिस स्त्री की मीन राशि अथवा कर्क राशि हो वह पति की प्यारी होगी। उसी प्रकार जिस राशि और नवांश में स्त्री का चन्द्रमा हो उस राशि या नवांश में जब पति की राशि हो तो वह स्त्री को प्यारा होता है ॥३२॥

कामान्वितेक्षकवियच्चरराशिजाता
चन्द्रादतीव सुभगा च पतिप्रिया स्यात् ।
स्त्रीजातके च पतिरिष्टकरो वधूनां
दिग्देशजा भृगुसुतादबलाधिपस्य ॥ ३३ ॥

इसमें तीन योग वताये हैं :—

(१) पुरुष की कुण्डली में चन्द्रमा जिस राशि में हो उससे सप्तम जो ग्रह हो या जो सप्तम (पुरुष की राशि से सप्तम) को देखता हो उस ग्रह की राशि में उत्पन्न कन्या अत्यन्त सुभगा और पतिप्रिया होती है ।

(२) स्त्री की कुण्डली में जहां चन्द्रमा है उससे सप्तम जो ग्रह हो या इस सप्तम को जो ग्रह देखता हो उसकी राशि में उत्पन्न पुरुष वहुत सुभग और स्त्री को प्रिय होता है ।

(३) जन्म कुण्डली में देखिये कि शुक्र कहां है । इस शुक्र से सप्तम स्थान के स्वामी की दिशा में विवाह होता है ।

नोट :—हमारे अनुभव से विवाह की दिशा नहीं मिलती ।।३३।।

वर वधू जातक संयोग

धनावसानस्मरयानरन्ध्रगो
धरासुतो जन्मनि यस्य दारहा ।
तथैव कन्याजनजन्मलग्नतो
यदि क्षमासूनुरनिष्टदः पतेः ॥ ३४ ॥

दक्षिण भारत में यह ग्रन्थ लिखा गया है इसलिए ग्रंथकार कहते हैं कि सप्तम, अष्टम, द्वादश, चतुर्थ और द्वितीय स्थान में यदि मंगल हो तो स्त्री का नाश करता है । इसी प्रकार कन्या की कुण्डली में सप्तम, अष्टम, द्वादश, चतुर्थ और द्वितीय स्थान में मंगल हो तो पति के लिए हानिकारक है ।

उत्तर भारत में चतुर्थ, द्वादश, सप्तम, अष्टम में समान रूप से पति के लिए अनिष्ट प्रद मानते हैं । और पुरुष की कुण्डली में स्त्री के लिए । किन्तु दक्षिण भारत में द्वितीय स्थान के वदले उत्तर भारत में लग्न में मंगल होने से पुरुष की कुण्डली में स्त्री के लिए अनिष्ट होता है । और स्त्री की जन्म कुण्डली में मंगल होने से पुरुष के लिए अनिष्ट मानते हैं । क्योंकि श्लोक है :—

लग्ने व्यये च पाताले जामित्र चाष्टमे कुजे ।
कन्या भर्तृविनाशाय भर्त्ता कन्याविनाशकृत् ॥

जिस प्रकार उत्तर भारत में दशम से पिता का विचार किया जाता है और दक्षिण भारत में नवम से, उसी प्रकार मंगल के विषय में मतभेद है। दक्षिण भारत में द्वितीय से, उत्तर भारत में लग्न में मंगल होने से मंगलीक माना जाता है ॥३४॥

क्रूरव्योमचरः स्त्रीणामष्टमस्थो विलग्नतः ।
नीचारिपापवर्गेषु यदि मृत्युकरः पतेः ॥ ३५ ॥

स्त्री की जन्म कुण्डली में यदि अष्टम स्थान में क्रूर ग्रह, नीच, पाप, शत्रु वर्ग में बैठा हो तो पति की मृत्यु करता है। वर्ग से क्या तात्पर्य है ? नीच राशि, नीच नवांश, पाप राशि, पाप नवांश, शत्रु राशि, शत्रु नवांश में बैठा हुआ पाप ग्रह कष्ट-कारक होता है ॥३५॥

द्यूनकुटुम्बगतौ यदि पापौ दारवियोगजदुःखकरौ तौ ।
तादृशयोगजदारयुतश्चेज्जीवति पुत्रधनादियुतश्च ॥ ३६ ॥

यदि पाप ग्रह सप्तम और द्वितीय दोनों स्थानों में हो तो उस पत्नी से वियोग होता है इसलिए यह योग दुःख कारक है। किन्तु जब पुरुष की कुण्डली में द्वितीय और सप्तम दोनों पाप युक्त हों और स्त्री की कुण्डली में भी द्वितीय और सप्तम दोनों पापाक्रान्त हों तो दोनों कुण्डलियां समान दोष वाली हो गईं। और ऐसी दशा में कोई अनिष्ट फल नहीं होता। जातक पुत्र, धन आदि से युक्त होता है ॥३६॥

कलत्रराशित्रितयेऽथवा स्यात्तदीशसंयुक्तभराशिकोणे ।
कलत्रराशिर्यदि पुत्रशाली तदन्यराशिर्यदि पुत्रहीनः ॥ ३७ ॥

यहां पुरुष की 'कलत्रत्रय' राशि का वर्णन है। पहले यह समझ लीजिए कलत्रत्रय राशि किसे कहते हैं :—

कलत्रनाथस्थितभं तदीयराशिं कलत्रस्य विदुर्महान्तः ।
तस्योच्चनीचं यदि वा कलत्रराशिं तदंशत्रितयं तदीयम् ॥

अर्थात् सप्तमेश जिस राशि में हो वह एक राशि हुई। दूसरी सप्तमेश की जो उच्च राशि है वह हुई। तीसरी सप्तमेश की नीच राशि। इन तीन राशियों को कलत्रत्रय राशि कहते हैं।

(१) यदि पुरुष की कलत्रत्रय राशि में स्त्री की राशि हो तो पुत्र होता है।

(२) पुरुष का सप्तमेश जिस राशि में है उस राशि में अथवा उससे त्रिकोण राशि में स्त्री की राशि हो तो जातक पुत्रशाली होता है।

(३) ऊपर (१) और (२) में जो राशियां बताई हैं उनके अतिरिक्त राशि में स्त्री की राशि हो तो पुत्र नहीं होता।

नोट :—यह योग नहीं मिलता ॥३७॥

स्त्री के स्तन का विचार

पुरुष की जन्म कुण्डली से कैसे विचार करना कि इसकी स्त्री के स्तन कैसे होंगे।

काठिन्योरुकुचा मदे दिनकरे कामाधिपे केन्द्रगे
जीवेन्दुज्ञसितान्विते गुरुकुचा शुष्कस्तना भूमिजे।
लम्बापीनपयोधरा सगुलिकच्छायासुताहिध्वजे
धूमादौ विषमाकृतिस्तनवती दुःस्थेऽथवा कामपे॥ ३८॥

इसमें ६ योग बताये हैं :—

(१) यदि सप्तम में सूर्य हो तो स्त्री की जाँघें और स्तन कठिन होते हैं। याद रखिये कि यह पुरुष की जन्म कुंडली का योग है और पुरुष की जन्म कुंडली में यह देखना चाहिए कि सप्तम में सूर्य है क्या।

(२) यदि पुरुष की कुंडली में सप्तम भाव का स्वामी केन्द्र में चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति या शुक्र से युक्त हो तो बड़े कुच वाली उसकी स्त्री हो।

(३) यदि पुरुष की कुंडली में मंगल सप्तम में हो तो उसकी स्त्री शुष्क कुच वाली हो।

(४) यदि पुरुष की कुंडली में गुलिक के साथ शनि, राहु या केतु सप्तम में हों तो उसकी स्त्री के लम्बे और मोटे स्तन हों।

(५) सप्तमेश दुःस्थान में अर्थात् छठे, आठवें, बारहवें हो तो विषम स्तन हों।

(६) यदि पुरुष की कुंडली में धूम आदि उप-ग्रह सप्तम में हों तो उसकी स्त्री विषम स्तन वाली हो।

विषम क्या? एक स्तन बड़ा और एक छोटा ॥३८॥

गम्यस्त्रीविवरण

वन्ध्यासङ्गमिनेऽस्तगे समवधूकेलिं निशानायके
भूपुत्रे तु रजस्वलाजनरतिं बन्ध्यावधूमेति वा।
वेश्यामिन्दुसुते तु विप्रवनितां जीवे सिते गर्भिणीं
नीचस्त्रीरतिमर्कजोरगशिखिप्राप्तेऽथवा पुष्पिणीम् ॥ ३९ ॥

इसमें ७ योग बताये गये हैं :—

(१) पुरुष की कुंडली में सूर्य सप्तम में हो तो बन्ध्या स्त्री से संगम कहना।
(२) यदि चन्द्रमा सप्तम में हो तो अपने समान उम्र की स्त्री से रति हो।
(३) यदि सप्तम में मंगल हो तो रजस्वला स्त्री से संगम करना या वन्ध्या स्त्री से समागम करना।
(४) यदि बुध हो तो वेश्या प्रसंग करना।
(५) यदि पुरुष की कुंडली में बृहस्पति हो तो ब्राह्मणी से समागम हो।
(६) यदि शुक्र हो तो गर्भिणी स्त्री से रति हो।
(७) यदि शनि, राहु, केतु हो तो नीच स्त्री से समागम हो अथवा रजस्वला स्त्री से केलि हो।

हमारे विचार से इसे प्रश्न में उपयोग में लाना चाहिए। तब अनेक ग्रहों से विभिन्न प्रकार की स्त्रियों का विचार किया जाता है। यदि किसी पुरुष की कुंडली में सप्तम में शुक्र हो तो क्या वह सदैव गर्भिणी स्त्री से समागम करेगा? यदि सप्तम में मंगल हो तो क्या वह सदैव रजस्वला स्त्री से केलि करेगा? ॥३९॥

स्त्री संगम में स्थान विचार

क्रीडागारमिने वनं सुखगते चारु स्वगेहं विधौ
भूपुत्रे सति कुड्यमिच्छति बुधे जातो विहारस्थलम्।
जीवे देवगृहं सिते तु सलिलं मन्देऽथवा पन्नगे
केतौ माधवशङ्करप्रियसुतस्थानं वधूसङ्गमे ॥ ४० ॥

जन्म कुंडली से यह कैसे विचार करना कि स्त्री संगम कैसे स्थान में हुआ है। सूर्य अगर चतुर्थ स्थान में हो तो जंगल में क्रीड़ा हुई है। यदि चन्द्रमा हो तो अपने सुन्दर मकान में। यदि मंगल चतुर्थ स्थान में हो तो तृण काष्ठ विरचित कुटी में, बुध हो तो विहार स्थान में। यदि लग्न से चतुर्थ में बृहस्पति हो तो देवता के गृह में अर्थात् मन्दिर में विहार कहना। यदि शुक्र

हो तो जल के समीप और यदि शनि, राहु, केतु हो तो माधव, शंकर, देवी या गणेश आदि के मन्दिर में मैथुन कहे।

हमारे विचार से यह श्लोक प्रश्नकुंडली में लगाना चाहिए क्योंकि साधारणतः अपने घर में ही स्त्री प्रसंग होता है ॥४०॥

शुक्रांशे मदनस्थितेऽवनिसुते कामाधिपे पञ्चमे
जायारिष्टमुपैति सप्तमगते भानौ कलत्रार्थवान्।
दुःस्थौ कामकुटुम्बपौ सभृगुजौ दुश्चिक्ययातौ तु वा
तत्सङ्ख्याककलत्रहा बलयुतौ वित्तास्तपौ दारवान् ॥४१॥

इसमें चार योग बताये हैं :—

(१) शुक्र के नवांश में यदि मंगल सप्तम भाव में हो और सातवें स्थान का स्वामी पाँचवें भाव में हो तो स्त्री को कष्ट हो अर्थात् दीर्घजीवी न हो या बीमार रहे।

(२) यदि सातवें स्थान का स्वामी और दूसरे स्थान का स्वामी शुक्र के साथ छठे, आठवें व बारहवें हो या तृतीय स्थान में हो तो उतनी संख्या में स्त्रियों की हानि हो अर्थात् उतनी संख्या में स्त्रियां मृत्यु को प्राप्त हों।

(३) यदि द्वितीय स्थान का स्वामी और सप्तम स्थान का स्वामी बलवान् हो तो ऊपर योग (२) में स्त्रीहानि होती है किन्तु जिन्दा रहती है।

(४) सप्तम स्थान में सूर्य हो तो स्त्री और धन की समृद्धि होती है।

हमारे अनुभव से यदि सूर्य उच्च या स्वग्रही हो या अच्छे भवन का स्वामी हो तो जातक को धन और स्त्री की समृद्धि होती है। अन्यथा पत्नी को कष्टप्रद है अर्थात् पत्नी को रोगिणी रखता है ॥ ४१ ॥

भगचुम्बन योग

जातः समेति भगचुम्बनमस्तनाथे
शुक्रेण वीक्षितयुते भृगुमन्दिरे वा।
एवं कुटुम्बभवनाधिपतौ तथा स्याद्
दारर्क्षगे दशमपे ससिते तथैव ॥ ४२ ॥

पुरुष की कुण्डली में यह योग देखे जाते हैं। सर्वार्थचिन्तामणि में बहुत से योग दिये हैं। इस श्लोक में चार योग बताये हैं :—

(१) यदि सप्तम भाव का स्वामी शुक्र के साथ हो अथवा सप्तम भाव का स्वामी शुक्र से देखा जाता हो तो जातक भगचुम्बन करता है।

(२) यदि शुक्र के घर में अर्थात् तुला या वृष में शुक्र हो तो यही फल।

(३) यदि द्वितीय स्थान का स्वामी वृष या तुला में हो तो यही फल।

(४) यदि दशम भवन का स्वामी शुक्र के साथ सप्तम भाव में बैठे तो यही फल।

यह योग उन पुरुष की कुण्डलियों में देखने चाहिएं जो विशेष कामातुर होते हैं। केरल देश में इसका विशेष विचार है।।४२।।

स्त्रीभगविचार

कामेश्वरो देवगुरुः सितो वा समं भगं चारुतरं तरुण्याः।
ह्रस्वं भगं सप्तमराशिनाथे शनीन्दुतारासुतमध्ययाते।।४३।।

दीर्घं समेति भगमस्तपतौ जलर्क्षे
तत्कारके जलगृहोपगते तथैव।
सार्द्रं भगं मदनगे भृगुवीक्षितेऽब्जे
गुह्यं त्वनार्द्रमुपयाति वधूः सपापे।।४४।।

अब पुरुष की कुण्डली से यह कैसे विचार करना कि उसकी स्त्री की भग कैसी होगी। इसमें ५ योग बताये हैं:—

(१) सप्तम स्थान का स्वामी बृहस्पति हो तो स्त्री की योनि सम और सुन्दर हो।

(२) सप्तम भाव का स्वामी शनि, चन्द्र और बुध के बीच में हो तो स्त्री की योनि छोटी हो।

(३) सप्तम भवन का स्वामी जलचर राशि में हो तो उसकी स्त्री की योनि बड़ी हो। मकर का उत्तरार्ध, मीन और कर्क जल राशियां हैं।

(४) चन्द्रमा सप्तम में हो और शुक्र से देखा जाता हो तो उसकी स्त्री की योनि जलार्द्र हो।

(५) यदि सप्तम में पापग्रह हो तो योनि गीली न हो।।४३-४४।।

लग्नेशस्थनवांशनाथगृहगे जीवे समेति स्त्रियं
नीचारातिनवांशके सति मृतस्त्रीको विदारोऽथवा।

लग्ने कामपतिस्फुटादपहृते राशित्रिकोणे गुरौ
लग्ने सप्तमराशिपस्फुटहृते जीवे मृतिं योषितः ।।४५।।

इस श्लोक में चार योग बताये गये हैं :—

(१) लग्न का स्वामी जिस नवांश में हो उस नवांश में पति की उस राशि में गुरु के गोचर से जाने पर स्त्री की प्राप्ति होती है ।

(२) ऊपर जो योग कहा गया है इसमें यदि लग्न का स्वामी शत्रु नवांश या नीच नवांश का हो तो स्त्री की मृत्यु हो या विवाह ही न हो ।

यह शास्त्रकार कहते हैं किन्तु हमारे अनुभव में यह योग नहीं मिलता ।

(३) सप्तम स्थान के स्वामी के ग्रह स्पष्ट में से लग्न स्पष्ट घटाइये । इस राशि में या इससे त्रिकोण में वृहस्पति के जाने पर स्त्री की मृत्यु कहे ।

(४) लग्न स्पष्ट में सप्तमेश का स्पष्ट घटाये । शेष में गुरु के गोचर वर्ष प्राप्त होने पर स्त्री की मृत्यु कहे ।

१२ साल में तीन वार, योग तीन के अनुसार, गुरु जायेगा और योग चार में तीन वार गुरु का भ्रमण होगा । इस प्रकार १२ साल में ६ वार गुरु गोचर से उपर्युक्त स्थानों में जायेगा । अतः यह योग हमारे विचार से लागू नहीं होता ।।४५।।

लग्नात्कामपकारकौ शुभकरौ वीर्याधिके सप्तमे
पत्या साकमुपैति मृत्युमबला पापैरयुक्तेक्षिते ।
कामच्छिद्रदशापहारसमये शुक्राष्टवर्गोदिते
राशौ भानुसुते कलत्रकरणं जीवे तदंशान्विते ।।४६।।

इसमें २ योग कहे हैं :—

(१) लग्न से सप्तम भाव का स्वामी और सप्तम का कारक शुभग्रह हो और सप्तम भाव वली हो उसमें कोई पापग्रह न हो, न पापग्रह सप्तम भाव को देखे तो स्त्री और पति एक साथ मृत्यु को प्राप्त हों । ग्रन्थकार ने यह योग कहा है । परन्तु एक साथ पति-पत्नी का स्वर्गवास हो ऐसा देखा नहीं जाता । इसलिए फलितार्थ यह है कि पति-पत्नी का सुख उत्तम रहे ।

(२) सप्तम भाव से छिद्र ग्रह की दशा प्राप्त होने पर जब शुक्र के अष्टक वर्ग में जिस राशि में एक भी रेखा न हो उसमें शनि के गोचरवश जाने

से और उस राशि के नवांश में बृहस्पति के जाने से स्त्री की मृत्यु कहे। छिद्र ग्रह कौन–कौन से होते हैं यह अध्याय ५ में श्लोक ५२, ५३ में बताये गये हैं। छिद्र ग्रह सप्तम भाव में से लेना ॥४६॥

मदनभवननाथे पारिजातादिवर्गे
सुरगुरुयुतदृष्टे शोभनस्थानयाते।
दधिमधुघृतसूपक्षीरपक्कोपदंशैः
सह शुचि रुचिरान्नं चारुकान्तामुपैति ॥४७॥

सप्तमेश अपने पारिजातादि वर्ग में हो, बृहस्पति से युक्त या दृष्ट हो, शुभ स्थान में हो (सप्तमेश शुभ स्थान में हो) तो नाना प्रकार के व्यंजनों का रमणीक भोजन करता है और सुन्दर स्त्री प्राप्त होती है। ग्रन्थकार ने लिखा है कि दही घी, दूध, मधु, दाल इत्यादि पदार्थों का भोजन करे। तात्पर्य यह है कि उत्तम भोजन प्राप्त हो और सुन्दर स्त्री मिले ॥४७॥

अष्टमभावफल

आयुर्दायमनिष्टहेतुमुदयव्योमायुरीशार्कजै-
रुक्तं तत्सकलं तथापि निधनप्राप्तिं प्रवक्ष्ये पुनः।
अल्पायुर्व्ययगेऽथवा रिपुगते पापान्विते रन्ध्रपे
लग्नेशेन युते तु तत्र विबले जातोऽल्पजीवी नरः ॥४८॥

लग्न दशम और अष्टम भाव के स्वामियों से एवं शनि से आयु विचार पहले कह चुके हैं। फिर भी निधन प्राप्ति अर्थात् मृत्यु प्राप्ति इस आठवें भाव के प्रसंग में पुनः विस्तारपूर्वक कहते हैं।

इस श्लोक में दो योग कहे हैं:—

(१) अष्टमेश यदि छठे या बारहवें भाव में पापग्रह से युक्त हो तो जातक अल्पायु होता है।

(२) यदि अष्टमेश बलहीन लग्नेश के साथ छठे या बारहवें बैठे तो जातक अल्पायु होता है।

अल्पायु का अर्थ ज्योतिष में ३६ वर्ष से पहले लिया जाता है ॥४८॥

स्वस्थे रन्ध्रपतौ चिरायुरुदयच्छिद्राधिपौ षष्ठगौ
रिष्फस्थौ यदि वा समेति मनुजो जातश्चिरायुर्बलम्।

व्यापारोदयरन्ध्रराशिपतयः केन्द्रत्रिकोणायगा
दीर्घायुर्विबलाः सभानुतनया यद्यल्पमायुर्वदेत् ।।४९।।

इसमें ३ योग बताये हैं :—

(१) अष्टमेश यदि अपने भवन में अष्टम में हो तो दीर्घायु होता है। ज्योतिष में दीर्घायु का अर्थ होता है ६४ से १०८ वर्ष।

(२) लग्नेश और अष्टमेश छठे या बारहवें हो—दोनों साथ होने चाहिएँ। छठे में या बारहवें में, तो जातक दीर्घायु हो।

(३) धर्म, लग्न और अष्टम भाव के स्वामी केन्द्र त्रिकोण या एकादश भाव में हों।

नोट :—ऊपर जो दीर्घायु योग कहे गये हैं उनमें यदि शनि योग करे अर्थात् यदि शनि साथ में हो तो अल्पायु होता है ।।४९।।

कर्मेशरन्ध्रतनुपा बलशालिनश्चे-
ज्जातश्चिरायुरिननन्दनयोगहीनाः।
द्वावप्यतीव बलिनौ यदि मध्यमायु-
रेको बली लघुतरायुरनायुरन्यः ।।५०।।

इसमें चार योग बताये गये हैं :—

(१) यदि लग्न अष्टम और दशम के स्वामी बली हो और शनि का योग न हो तो दीर्घायु होता है।

(२) यदि लग्नेश, दशमेश और अष्टमेश इनमें से कोई दो बली हों और शनि का योग न हो तो मध्यायु होता है। ज्योतिष में मध्यायु का तात्पर्य है ३४ से ६४ वर्ष तक।

(३) यदि लग्नेश, दशमेश और अष्टमेश इन तीनों में से कोई एक बली हो और शनि का योग न हो तो अल्पायु होता है।

(४) लग्नेश, अष्टमेश और दशमेश यदि इनमें से कोई बली न हो तो आयु नहीं होती ।।५०।।

रन्ध्राधिपे पापगृहोपयाते दुःस्थानगे पापयुतेऽल्पमायुः।
शुभान्विते शोभनराशियुक्ते शुभेक्षिते रन्ध्रगते चिरायुः ।।५१।।

इसमें दो योग बताये हैं :—

(१) अष्टमेश पाप घर में हो, दुःस्थान में हो, पाप युक्त हो तो अल्पायु होता है। पाप घर से तात्पर्य है क्रूर ग्रह की राशि में। दुःस्थान से तात्पर्य है छठे या बारहवें होना। पापग्रह से युक्त का अर्थ है क्रूर ग्रह के साथ होना।

(२) अष्टमेश यदि शुभ-ग्रह के साथ शुभ राशि में हो व शुभ दृष्ट होकर अष्टम भाव में हो तो दीर्घायु होता है ॥५१॥

नाशस्थे तनुपेऽथवा निधनपे पापेन युक्तेक्षिते
मूढेऽदृश्यगतेऽथवा रिपुगृहे जातो गतायुर्भवेत्।
दीर्घायुर्निजतुङ्गगे शुभयुते केन्द्रत्रिकोणेऽथवा
रन्ध्रे रन्ध्रपतौ चिरायुरुदयं यातो विलग्नाधिपे ॥५२॥

इस योग में ४ योग बताये हैं :—

(१) लग्नेश अष्टम में हो, पापग्रह से युक्त या दृष्ट होकर अस्त हो (अस्त के माने सूर्य के समीप होने से दिखाई न दे) या शत्रु राशि में हो तो जातक आयुरहित हो।

(२) अष्टमेश पापग्रह से युक्त या दृष्ट होकर अस्त हो या शत्रु राशि में हो तो अल्पायु होता है।

(३) अष्टमेश अपनी उच्च राशि में होकर केन्द्र त्रिकोण में हो, शुभग्रह से युक्त हो तो दीर्घायु होता है।

(४) अष्टमेश अष्टम में, लग्नेश लग्न में हो तो जातक दीर्घायु होता है ॥५२॥

लग्नादन्त्यगृहाधिपे बलवति स्वर्क्षे चिरायुः सुखी
लग्नेशो यदि रन्ध्रपश्च बलिनौ केन्द्रस्थितौ चेत्तथा।
आधानोदयराशितोऽष्टमगृहान्मेषूरणं जन्मभं
शुक्रज्ञामरवन्दितेक्षितयुतं यद्यायुरारोग्यभाक् ॥५३॥

इसमें पाँच योग बताये हैं :—

(१) यदि बारहवें घर का स्वामी अपने ग्रह में बलवान् हो तो जातक दीर्घायु और सुखी होता है।

(२) यदि लग्नेश और अष्टमेश बली हो और केन्द्र में हो।

(३) यदि गर्भाधान लग्न की अष्टम ग्रह से दसवीं राशि शुक्र, बृहस्पति और बुध से युक्त या वीक्षित हो तो आयु आरोग्य प्राप्त होते हैं।

(४) यदि जन्म लग्न बुध, बृहस्पति, शुक्र से दृष्ट या युक्त हो, आयु आरोग्य होता है ।

(५) यदि लग्न से अष्टम राशि से दशम राशि बुध, बृहस्पति, शुक्र से यक्त या वीक्षित हो तो आयु आरोग्य प्राप्त होते हैं ।।५३।।

मृत्यु विचार

रन्ध्रेशे रिपुरन्ध्ररिष्फगृहगे तत्पाकभुक्तौ मृतिं
मन्दाक्रान्तगृहेशपाकसमये रन्ध्रेशभुक्तौ तथा ।
पाके रन्ध्रगृहाधिपस्य तदनु क्रान्तस्य भुक्तौ तु वा
खेटानां बलदुर्बलेन सकलं संचिन्त्य यत्तद्वदेत् ।।५४।।

इसमें ३ योग बताये हैं :—

(१) अष्टमेश छठे, आठवें, या बारहवें हो तो उसकी दशा अन्तर्दशा में मृत्यु हो ।

(२) शनि जिस राशि में बैठा हो, उस राशि के स्वामी की दशा में, अष्टमेश की अन्तर्दशा में मृत्यु होती है ।

(३) अष्टमेश की दशा में अष्टमस्थ (आठवें में बैठा हुआ) ग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु होती है ।

नोट :— ग्रहों के बलाबल देख लेने चाहिएँ अर्थात् ग्रह बलवान् हैं या दुर्बल हैं । दुर्बल ग्रह की दशा में या अन्तर्दशा में मृत्यु होती है ।।५४।।

लग्नेशे निधनारिरिष्फगृहगे साहौ सकेतौ तु वा
होरारन्ध्रपसंयुतग्रहदशा जातस्य मृत्युप्रदा ।
तत्खेटान्वितराशिनायकदशा नाशप्रदा देहिनां
खेटानां प्रथमागतस्य फणिनः पाकापहारे क्रमात् ।।५५।।

इसमें ३ योग बताये हैं :—

(१) लग्न का स्वामी छठे, आठवें, बारहवें हो, राहु या केतु के साथ हो तो लग्नेश के साथ जो ग्रह बैठा हो अथवा अष्टमेश के साथ जो ग्रह बैठा हुआ हो उसकी दशा मृत्यु करती है ।

(२) लग्नेश और अष्टमेश किसी ग्रह के साथ में हों तो लग्नेश, अष्टमेश जिस राशि में बैठे उस राशि के स्वामी की दशा शरीरधारियों का नाश करने वाली है ।

(३) इन ग्रहों में राहु की अन्तर्दशा प्राप्त हो तो उसमें मरण कहना । अर्थात् राहु प्रबल मारक है ॥५५॥

व्यापाररन्ध्रतनुनाथशनैश्चराणां
मध्ये विधुन्तुदयुतो विबलग्रहो यः ।
तत्पाकभुक्तिसमये मरणं नराणां
तद्युक्तवीक्षकनभोगदशान्तरे वा ॥५६॥

अब किस ग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु होती है वह बताते हैं ।

लग्नेश, अष्टमेश, दशमेश और शनि इनमें जो निर्बल हो और राहु के साथ हो उसकी अन्तर्दशा में मृत्यु होती है । या उससे युत जो ग्रह हो या उसको देखने वाला जो ग्रह हो उसकी अन्तर्दशा में मृत्यु होती है ॥५६॥

नाशे नाशपतौ तु तद्ग्रहदशाभुक्तौ समेत्यामयं
लग्ने लग्नपतौ तु लग्नपदशाभुक्तौ शरीरार्तिभाक् ।
पश्चादामयनाशनं तनुसुखं मोदश्च सञ्जायते
रन्ध्रेशे बलसंयुते तनुपतेर्दाये मृतिर्देहिनाम् ॥५७॥

इसमें ३ योग बताये गये हैं :—

(१) अष्टमेश अष्टम में हो तो उसकी दशा और अन्तर्दशा में रोग होता है ।
(२) लग्नेश लग्न में हो उसकी दशा अन्तर्दशा में शरीर रोगी होता है । बाद में रोग का नाश होकर शरीर में सुख और हर्ष होता है ।
(३) यदि अष्टमेश बल संयुक्त हो तो लग्नेश की दशा में मृत्यु होती है ॥५७॥

जातस्य जन्मसमये विबले विलग्ने
लग्नेशरन्ध्रपतिपाकमतीव कष्टम् ।
पश्चादतीव सुखमेति विलग्ननाथे
वीर्यान्विते निधनपस्य मृतिं दशायाम् ॥५८॥

इसमें दो योग बताये हैं :—

(१) जातक के जन्म के समय यदि लग्न बलहीन हो तो लग्नेश और अष्टमेश की दशा विशेष कष्ट देती है ।
(२) यदि लग्नेश बली हो तो बाद में सुख मिलता है । अष्टमेश की दशा में मृत्यु होती है ॥५८॥

देहेशे च विनाशपे बलयुते केन्द्रत्रिकोणस्थिते
तद्युक्तग्रहपाकभुक्तिसमये रोगापवादः फलम् ।

रन्ध्रेशस्तनुपश्च खेचरयुतौ केन्द्रत्रिकोणस्थितौ
रन्ध्रस्थानगतस्य पाकसमये मृत्यं समेति ध्रुवम् ॥५६॥

इसमें दो योग बताये हैं :—

(१) लग्नेश और अष्टमेश दोनों बलवान् हों और केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हों तो उनसे युक्त ग्रह की दशा अन्तर्दशा में रोग होता है और लोकापवाद होता है।

(२) अष्टमेश, लग्नेश कोई ग्रह के साथ हो और केन्द्र या त्रिकोण में हो तो अष्टम स्थान स्थित ग्रह की दशा में निश्चय मरण होता है ॥५९॥

नो चेदष्टमखेचरौ यदि तनुप्राप्तेन सञ्चिन्तये-
न्मन्दे लग्नगतेऽथवाऽष्टमगते तत्पाकभुक्तौ मृतिः ।
रन्ध्रेशोदयनायकौ सखचरौ युक्तग्रहो दुर्बलो
यस्तस्य द्युचरस्य पाकसमये भुक्तौ च मृत्युं वदेत् ॥६०॥

इसमें तीन योग कहे गये हैं :—

(१) ऊपर जो श्लोक ५९ में यह कहा कि अष्टम स्थान स्थित ग्रह की दशा में मरण होता है वह यदि आठवें घर में कोई ग्रह न हो तो ऐसी अवस्था में लग्नगत ग्रह की महादशा-अन्तर्दशा में मरण होता है।

(२) अष्टमेश वा लग्नेश यदि किन्हीं ग्रहों के साथ हो तो उन ग्रहों में जो निर्बल हों उसकी दशा अन्तर्दशा में मृत्यु कहना।

(३) शनि लग्न में या अष्टम में हो तो उसकी दशा-अन्तर्दशा में मृत्यु कहना ॥६०॥

लग्नात्पञ्चमराशिपेन सहितव्योमाटनानां दशा-
संख्याभानुहृतावशेषगृहगे मृत्युं दिनेशे सति ।
पुत्रेशो न वियच्चरेण सहितः स्वाब्देन सञ्चिन्तये-
ल्लग्नेशेन युताब्दमङ्गविहृतं संक्रान्तिपूर्वं दिनम् ॥६१॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं :—

(१) पंचम भाव का स्वामी जितने ग्रहों से युक्त हो उन सबकी दशा जोड़ दीजिए। १२ का भाग दीजिए। जो शेष आये वह मेष से १, वृष से २, मिथुन से ३, मीन से १२ इससे जो शेष हो उस मास में जब सूर्य होगा तब मृत्यु होगी।

(२) अगर पंचमेश किसी ग्रह के साथ न हो तो केवल पंचमेश की दशा में १२ का भाग दीजिए जो शेष हो उस मास में जब सूर्य जायेगा तब मृत्यु होगी ।

(२) लग्नेश और पंचमेश अथवा लग्नेश और पंचमेश से संयुक्त ग्रह अर्थात् लग्नेश, पंचमेश और पंचमेश से संयुक्त ग्रह को जोड़ दीजिए । ३० का भाग दीजिए जो शेष आये सूर्य संक्रान्ति से उतने दिन बाद जातक की मृत्यु होगी ।।६१।।

त्रिकोणे केन्द्रे वा यदि पितृतनुक्षेत्रपतयो
दशाभुक्तौ तेषामनुमरणमाहुर्मुनिगणाः ।
सभौमे मन्दाढये फणियुजि तु वेन्दौ निधनगे
त्वपस्मारस्तस्मान्मरणमथवेन्दौ कृशतनौ ।।६२।।

इसमें दो योग बताये हैं :—

(१) चतुर्थेश, नवमेश और लग्नेश केन्द्र व त्रिकोण में हो तो माता-पिता का मरण होता है । पिता के शीघ्र मरण के बाद माता का मरण होता है । किस दशा-अन्तर्दशा में अर्थात् लग्नेश, नवमेश, चतुर्थेश की किस दशा में और किस ग्रह की अन्तर्दशा में यह अन्य उपायों से जानना चाहिए ।

(२) यदि चन्द्र मंगल या शनि या राहु के साथ आठवें घर में हो और क्षीण चन्द्र हो तो मिरगी से मृत्यु होती है ।।६२।।

चन्द्रे वित्तगतेऽथवा निधनगे जातो बहुस्वेदवान्
कर्मस्थानगते कुजे बुधयुते दुर्गन्धदेहो भवेत् ।
पापे रन्ध्रगते तु पापसहिते रोगप्रमादाकरः
सौम्यव्योमगृहेऽतिशोभनयुते जातः समोदः सुखी ।।६३।।

इसमें चार योग बताये हैं :—

(१) यदि चन्द्रमा दूसरे घर में या आठवें घर में हो तो उस आदमी को पसीना बहुत आता है ।

(२) यदि आठवें घर में मंगल और बुध हो तो मनुष्य के देह से दुर्गन्धि निकलती है ।

(३) यदि अष्टम में क्रूरग्रह के साथ हो तो शरीर में बहुत रोग हो ।

(४) यदि शुभ-ग्रह के साथ बुध दसवें घर में हो तो जातक हर्षयुक्त और सुखी होता है ।।६३।।

शीर्षोदयेषु चरभादिषु वित्तपस्य
लग्नाधिपस्य भुजगस्य दशापहारे ।
पृष्ठोदये सति तदीयदृगाणपस्य
तद्वीक्षितादिसहितस्य मृतिं वदेद्वा ।।६४।।

अध्याय १, श्लोक १४ में कहा गया है कि वृषभ, कर्क, धनु, मेष और मकर पृष्ठोदय राशियाँ हैं। मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ यह शीर्षोदय राशियाँ हैं । मीन उभयोदय है । अब कुछ योग नीचे बताये जाते हैं ।

(१) तुला लग्न हो तो द्वितीयेश की दशा अन्तर्दशा में मृत्यु हो ।
(२) सिंह, वृश्चिक, कुम्भ लग्न हो तो लग्नेश की दशा-अन्तर्दशा में मृत्यु हो ।
(३) मिथुन या कन्या लग्न हो तो राहु की दशा-अन्तर्दशा में मृत्यु हो ।
(४) यदि मेष, कर्क और मकर लग्न हो तो लग्न द्रेष्काण पति की दशा-अन्तर्दशा में मृत्यु हो ।
(५) वृष लग्न हो तो लग्न द्रेष्काण-पति को जो ग्रह देखे उसकी दशा-अन्तर्दशा में मृत्यु हो । यदि कोई न देखे तो लग्न द्रेष्काण-पति की दशा-अन्तर्दशा में मृत्यु को प्राप्त हो ।
(६) यदि धनु लग्न हो तो लग्न द्रेष्काण पति के साथ जो ग्रह हो उसकी दशा-अन्तर्दशा में मृत्यु कहे ।

ग्रन्थकार ने इनको ६ भागों में बाँटा है ।

(१) शीर्षोदय लग्न चर राशि ।
(२) शीर्षोदय लग्न स्थिर राशि ।
(३) शीर्षोदय लग्न द्विस्वभाव राशि ।
(४) पृष्ठोदय लग्न चर राशि ।
(५) पृष्ठोदय लग्न स्थिर राशि ।
(६) पृष्ठोदय लग्न द्विस्वभाव राशि ।

वही हमने स्पष्ट करके समझाया है। उभयोदय राशि के लिए कोई नियम ग्रंथकार ने नहीं लिखा है ।।६४।।

नवमभावफल

भाग्यप्रभावगुरुधर्मतपःशुभानि
सञ्चिन्तयेन्नवमदेवपुरोहिताभ्याम् ।
भाग्येशदेवसचिवौ शुभवर्गयातौ
भाग्ये शुभग्रहयुते समुपैति भाग्यम् ॥६५॥

भाग्य, प्रभाव, गुरु, तप और शुभ बातें नवम भाव तथा बृहस्पति से विचार करनी चाहिए। बृहस्पति व नवमेश शुभवर्ग में हों, भाग्य भाव शुभ ग्रह से युक्त हो तो जातक भाग्यवान् होता है ॥६५॥

पापारिनीचरविलुप्तकरा नभोगा-
भाग्यस्थिता यदि यशोधनधर्महीनाः ।
पापोऽपि तुङ्गनिजमित्रगृहोपगश्चेद्
भाग्ये तु भाग्यफलदः सततं नराणाम् ॥६६॥

इसमें दो योग बताये गये हैं :—

(१) यदि कोई पापग्रह नीचराशि के शत्रुराशि के, रवि के सान्निध्य के कारण अस्त ग्रह यदि भाग्य भाव में बैठे तो जातक यश, धन, धर्म से हीन होता है। अर्थात् पाप ग्रह में बैठ कर भाग्य को बिगाड़ता है। विशेष कर यदि वह नीच हो, शत्रु राशि का हो या अस्त हो।

(२) पापग्रह भी यदि अपने उच्च राशि का या मित्र ग्रही या स्वग्रही नवम में बैठे तो उसको बढ़ाता है। ऐसा मनुष्य सदैव भाग्यवान होता है ॥६६॥

सौम्यस्वामियुतेक्षितं नवमभं भाग्यप्रदं प्राणिनां
तद्राशीशसमेतराशिरमणो भाग्यस्य कर्त्ता भवेत् ।
भाग्येशः परिपाचको भवति तत्पुत्रेश्वरो बोधक-
स्तुङ्गस्वर्क्षगृहोपगो यदि चिरं भाग्यं प्रकुर्वन्ति ते ॥६७॥

इसमें चार बातें बताई हैं :—

(१) भाग्य भाव यदि अपने स्वामी से या शुभग्रह से अवलोकित हो या युक्त हो तो प्राणियों को भाग्य देनेवाला हो।

(२) भाग्येश जिस राशि में हो उस राशि का स्वामी भी भाग्य देने वाला है। उदाहरण के लिए सूर्य आपका भाग्येश है अब सूर्य जिस राशि में बैठा हो वह बलवान् हो तो भाग्य अच्छा होगा। सूर्य जिस राशि में बैठा हो उसका स्वामी यदि दुर्बल हो तो भाग्य भी कम होगा।

(३) नवमेश ग्रह भाग्य का परिपाचक होता है और नवमेश से पाँचवें स्थान का स्वामी अर्थात् लग्नेश भाग्य का बोधक होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भाग्य भाव के विचार में नवमेश के साथ-साथ लग्नेश का भी विचार करना चाहिए।

(४) ये सब ग्रह अर्थात् लग्नेश, नवम भाव का स्वामी जिस राशि में बैठा हो उसका स्वामी और भाग्येश तथा भाग्य को देखने वाले शुभ-ग्रह यदि अपनी-अपनी राशि या उच्च राशि में हों तो सदा भाग्योदय करते हैं ॥६७॥

भाग्यस्थे दशवर्गजोच्चभवनस्वांशस्थिते पञ्चके
भाग्यं श्रीविपुलं समेति नृपतिस्तत्स्वामियुक्तेक्षिते।
चत्वारो बलशालिनो नवमगा भाग्यं प्रयच्छन्ति ते
तुङ्गस्वांशगताः स्वदेशविभवं त्वन्यत्र चान्यांशगाः ॥६८॥

इसमें तीन योग बताये हैं :—

(१) यदि पांच ग्रह अपनी उच्च राशि में स्वगृह में, स्वनवांश में, वैशेषिकांश में भाग्य स्थान में हों तथा उन पर नवमेश की दृष्टि या योग हो तो जातक नृपति होता है अर्थात् राजा और बहुत भाग्यवान् होता है। महती उसकी लक्ष्मी होती है।

(२) यदि चार ग्रह बली (अपनी उच्च राशि में या स्वराशि में तथा स्व-नवांश में) भाग्य भाव में हों तो भाग्य देते हैं और जातक बहुत सी सम्पत्ति का मालिक होता है।

(३) यदि ये भाग्यकर्ता ग्रह स्वनवांश में हों तो अपने देश में भाग्योदय करते हैं। यदि अन्य नवांश में हों तो जातक का परदेश में भाग्योदय करता है। वहीं पर उसको सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥६८॥

नवम भाव पर गुरु की दृष्टि

भाग्ये तत्पतिशोभनेक्षितयुते भाग्यं समेति ध्रुवं
धर्मे पापयुते भृगौ शशिनि वा जातो गुरुस्त्रीरतः।

दृष्टेऽर्केण गुरौ नृपः क्षितिभुवां मन्त्री बुधेनार्थवान्
शुक्रेणाश्वपतिः सुखी तु शशिना मन्देन चोष्ट्रादिभाक् ॥६६॥

इस श्लोक में ८ योग बताये हैं :—

(१) यदि भाग्य भाव अपने स्वामी (चाहे शुभ हो चाहे पाप हो) से देखा जाये या किसी शुभ ग्रह से देखा जाये तो जातक निश्चय ही भाग्यशाली होता है।

(२) नवम भाव में पापग्रह से युक्त शुक्र और चन्द्रमा हो तो मनुष्य **गुरुतल्पगामी** होता है। चाहे चन्द्रमा अकेला पाप दृष्ट हो चाहे शुक्र अकेला पाप दृष्ट हो या चाहे दोनों पाप दृष्ट हों। यह नवम में होने का फल है।

(३) बृहस्पति नवम में हो और सूर्य से दृष्ट हो तो राजा हो।

(४) बृहस्पति नवम में हो और मंगल से देखा जाये तो राजा का मंत्री हो।

(५) नवम में बृहस्पति हो और बुध से देखा जाता हो तो धनी हो।

(६) यदि नवमगत बृहस्पति को शुक्र देखे तो बहुत से घोड़ों का मालिक हो।

(७) यदि नवम में बैठे हुए बृहस्पति को चन्द्रमा देखे तो सुखी जीवन व्यतीत करे।

(८) यदि नवम में बृहस्पति हो और शनि से दृष्ट हो तो ऊँट, भैंस वगैरह जातक के पास होते हैं ॥६९॥

विद्वान् वारणगोतुरङ्गधनवानिन्द्वर्कदृष्टे गुरौ
सेनावाहनरत्नवान्नवमगे जीवे कुजार्केक्षिते।
विद्यावादविनोदवित्तविपुलः सूर्येन्दुजालोकिते
शुक्रादित्यनिरीक्षिते विनयवाग् जीवे तपःस्थानगे ॥७०॥

मन्दादित्यनिरीक्षिते गुणनिधिः प्राज्ञो बहुग्रामवान्
जीवे चन्द्रकुजेक्षिते पृथुयशाः सेनासुखश्रीयुतः।
तारेशेन्दुजवीक्षिते गृहसुखश्रेष्ठार्थशय्यासनः
शुक्रेन्दुप्रविलोकिते वितनयः शूरो धनी कर्मकृत् ॥७१॥

चन्द्रादित्यसुतेक्षिते तु गुणवान् वादी विदेशं गतो
जीवे शुक्रबुधेक्षिते नवमगे विद्याधिको जायते।

सर्वव्योमचरेक्षिते नरवरो राजा बहुद्रव्यवान्
सौभाग्याचरराज्यवित्तफलदाः सर्वे तपःस्थानगाः ।।७२।।

इन श्लोकों में १२ योग बताये गये हैं :—

(१) यदि नवम भाव में बृहस्पति बैठे और उसको यदि सूर्य और चन्द्रमा देखे तो जातक हाथी, गाय, घोड़े, धन, दौलत का स्वामी होता है और विद्वान् भी होता है।

(२) सूर्य और मंगल देखे तो सेनापति हो। अच्छे वाहन उसके पास हों और रत्नों का मालिक हो।

(३) सूर्य और बुध देखे तो अत्यन्त धनी हो और विद्यावाद में विनोदशील हो।

(४) सूर्य और शुक्र देखे तो बहुत विनय भरी वाणी बोले।

(५) सूर्य और शनि देखें तो अनेक गुणों का समावेश जातक में हो, बहुत बुद्धिमान् हो और अनेक ग्रामों का स्वामी हो।

(६) चन्द्रमा मंगल देखें तो उसके यश का बहुत विस्तार हो। सेना का मालिक हो। उसके पास लक्ष्मी हो और सुख से जीवन व्यतीत करे।

(७) यदि चन्द्रमा और बुध देखें तो मकान का सुख हो, धन हो और शय्या का सुख हो और विशिष्ट आसन पर बैठे।

(८) चन्द्रमा और शुक्र देखे तो शूरवीर, धनी, कर्म करने वाला अर्थात् उत्तम और श्रेष्ठ कर्म करे किन्तु पुत्रहीन हो।

(९) चन्द्रमा-शनि देखें तो उसमें बहुत से गुणों का समावेश हो। किन्तु विवादी हो और विदेश में रहे।

(१०) बुध और शुक्र देखें तो विद्या में अधिकता हो अर्थात् बड़ा विद्वान् हो।

(११) यदि नवम भाव में बृहस्पति को सब ग्रह देखें तो पुरुषों में श्रेष्ठ हो, राजा हो और बहुत द्रव्यवान् हो।

(१२) सभी ग्रह नवम स्थान में हों तो अचल राज्य प्राप्त हो और महाधनी हो।

नोट :— ग्रन्थकार ने यह लिखा है कि नवम भाव में सब ग्रह हों। परन्तु शुभ ग्रह विशेष फलीभूत होते हैं और गुरु यदि उच्च राशि या अपनी राशि का हो तो विशेष फल देगा। दक्षिण भारत से एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। उसमें श्लोक ७२ की चतुर्थ पंक्ति यह है :—

सौभाग्यवरवित्तराज्यफलदाः सर्वे तपःस्थानगाः ।।७०-७२।।

नवम में द्विग्रहयोगफल

भाग्यस्थे शशिनि प्रभाकरसुतज्ञारेक्षिते भूपति-
स्तुङ्गव्योमचरे तपःस्थलगते भूपः शुभालोकिते ।
सेन्दौ तिग्मकरे तु तत्र धनिको नेत्रामयार्त्तो भवेद्
दुःखी वादरतः कुजेन सहिते भानौ नृपालप्रियः ॥७३॥

इसमें निम्नलिखित योग बताये गये हैं :—

(१) नवम भाव में स्थित चन्द्रमा यदि मंगल, बुध, शनि से दृष्ट हो तो जातक भूपति होता है ।

(२) अपनी उच्च राशि में नवम राशि में कोई ग्रह हो और उसको शुभग्रह देखते हों तो भूप हो ।

(३) यदि नवम भाव में सूर्य और चन्द्रमा हो तो धनिक हो । किन्तु नेत्र-रोगी हो ।

(४) यदि सूर्य और मंगल नवम में हों तो दुःखी, विवाद करने वाला और राजा का प्रिय हो ॥७३॥

भानौ सेन्दुसुते सपत्नबहुलो दुःखी रुगार्तः सदा
वागीशेन युते पितृप्रियकरो जातः स्वयं वित्तवान् ।
रोगी शुक्रयुते रवौ शनियुते रुग्णः पिता कुक्षिरुक्
चन्द्रे सावनिनन्दने तु जननीहन्ता धनत्यागवान् ॥७४॥

इसमें निम्नलिखित ५ योग बताये हैं :—

(१) सूर्य यदि नवम में हो तो जातक के बहुत शत्रु हों । सदा दुःखी रहे और रोग से पीड़ित हो ।

(२) सूर्य और बृहस्पति यदि नवम में हों तो जातक पिता का प्रिय करने वाला हो और धनी हो ।

(३) सूर्य और शुक्र यदि नवम में हों तो जातक रोगी हो ।

(४) यदि सूर्य और शनि नवम में हों तो जातक रोगी हो और पिता के पेट में तकलीफ हो ।

(५) यदि चन्द्रमा और मंगल नवम में हों तो जातक धन का त्याग करे और स्वयं की माता का नाश हो ॥७४॥

वाग्मी शास्त्रकलापवान् नवमगे चन्द्रे सतारासुते
सेन्दौ मन्त्रिणि धीरधीर्नरवरः श्रीमान् गुरुस्थानगे ।

तारेशे कुलटापतिः सभृगुजे सापत्नमातृप्रिय-
श्चन्द्रे मन्दयुते विधर्मगुणवान् माता कुलप्रच्युता ।।७५।।

इसमें निम्नलिखित ४ योग बताये गये है :—

(१) यदि चन्द्रमा और बुध एक साथ हों तो मनुष्य वाग्मी हो अर्थात् बोलने में चतुर हो और अनेक शास्त्रों का ज्ञाता हो ।

(२) यदि चन्द्रमा और बृहस्पति नवम में हों तो धीर-बुद्धि, पुरुष-श्रेष्ठ और लक्ष्मीवान् हो ।

(३) चन्द्रमा, शुक्र एक साथ नवम में हों तो अपनी सौतेली माँ का प्यारा हो और उसकी स्त्री कुलटा हो ।

(४) चन्द्रमा और शनि एक साथ नवम में हों तो जातक विधर्मियों के गुण से सम्पन्न हो और उसकी माता अपने कुल से च्युत हो जाय ।।७५।।

शास्त्री भोगसुखी कुजे बुधयुते सेज्ये धनी पूजितः
शुक्रेण द्विवधूपतिः सहकुजे वादी विदेशं गतः ।
भौमे भानुसुतान्विते नवमगे पापी परस्त्रीरतः
सौम्ये सामरवन्दिते पटुमतिर्विद्वान् धनी पण्डितः ।।७६।।

इसमें ५ योग बताये गये हैं :—

(१) मंगल और बुध नवम भाव में हों तो जातक शास्त्र का जानने वाला हो, बहुत भोगी हो, सुखी हो ।

(२) मंगल और बृहस्पति नवम में हों तो जातक धनी हो और लोकमान्य हो ।

(३) मंगल और शुक्र नवम में हों तो जातक के दो स्त्रियाँ हों, विवादी हो और विदेश में रहे ।

(४) नवम भाव में मंगल और शनि हों तो जातक पापी और दूसरों की स्त्रियों में आसक्त रहे ।

(५) यदि बृहस्पति और बुध नवम में हों तो जातक बहुत धनी, बुद्धिमान्, पंडित और विवेकशील हो ।।७६।।

प्राज्ञो गीतरतिप्रियः सभृगुजे चन्द्रात्मजे पण्डितः
सौम्ये मन्दयुते तु रोगितनुको वित्ताधिकोऽसत्यवाक् ।
जीवे शुक्रयुते चिरायुरधिकश्रीमान् समन्दे गुरौ
रोगी रत्नधनः सितेऽसितयुते भूपालतुल्यो भवेत् ।।७७।।

इसमें पाँच योग बताये गये हैं :—

(१) यदि नवम भाव में बुध, शुक्र हो तो जातक प्राज्ञ गीतप्रिय, रतिप्रिय और पंडित हो ।

(२) यदि बुध और शनि एक साथ नवम में हों तो जातक का शरीर रोगी हो, जातक बहुत धनी हो और असत्य बोलने वाला हो ।

(३) नवम में बृहस्पति, शुक्र एक साथ हों तो बहुत धनवान् हो और दीर्घायु हो ।

(४) नवम में बृहस्पति और शनि हों तो जातक रोगी हो और बहुत रत्नों का मालिक हो ।

(५) यदि नवम में शनि और शुक्र हों तो राजा के समान हो ॥७७॥

नवम में तीन ग्रहों का योग

रवीन्दुभौमा नवमोपयाता यदि क्षताङ्गः पितृमातृहीनः ।
हिंसी विकर्मा रविचन्द्रसौम्या रवीन्दुजीवाः सुखवाहनाढ्यः ॥७८॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं :—

(१) यदि नवम स्थान में सूर्य, चन्द्र और मंगल हो तो जातक के शरीर में बहुत घाव हों और माता-पिता से हीन हो ।

(२) यदि नवम में सूर्य, चन्द्र, बुध हों तो जातक हिंसा का कार्य करे और कुकर्म करने वाला हो ।

(३) यदि नवम में सूर्य, चन्द्र और गुरु हों तो जातक सुखी हो और धनिक हो ॥७८॥

चन्द्रार्कौ ससितौ वधूकलहकृद्द्‌ राजप्रियो वित्तहा
भाग्यस्थौ रविशीतगू शनियुतौ भृत्यो विरोधी सताम् ।
रव्यारौ सबुधौ तु तत्र सुभगः क्रुद्धो विवादप्रियः
सेज्यौ देवपितृप्रियः सुतवधूवित्तान्वितो जायते ॥७९॥

इसमें चार योग बताये गये हैं :—

(१) यदि सूर्य, चन्द्रमा और शुक्र तीनों एक साथ नवें घर में बैठें तो राजा का प्रिय होता है । किन्तु धन का नाश करता है और अपनी स्त्री से कलह करने वाला होता है ।

(२) यदि सूर्य, चन्द्रमा और शनि एक साथ नवें घर में हों तो मनुष्य भृत्य अर्थात् दूसरे का नौकर होता है और सज्जन मनुष्यों से विरोध करता है।

(३) यदि सूर्य, मंगल, बुध एक साथ नवम में हों तो देवता और पितरों का प्यारा हो अर्थात् देवकार्य और पितृकार्य श्रद्धा से करे। इस कारण देवता और पितरों का आशीर्वाद प्राप्त हो। ऐसे मनुष्य के पुत्र होते हैं और घरवाली तथा धन से समृद्ध होता है ॥७९॥

सूर्यारौ ससितौ विवादनिरतः कोपी वधूदूषक-
श्छायासूनुयुतौ विबन्धुरधनो साधुः पितुर्मारकः।
धर्मस्थौ रविचन्द्रजौ गुरुयुतौ राजप्रियो वित्तवान्
साच्छौ राजसमः सभानुतनयौ पापी परस्त्रीपतिः ॥८०॥

इसमें पाँच योग बताये गये हैं :—

(१) यदि सूर्य, मंगल और शुक्र नवें स्थान में हों तो ऐसा मनुष्य विवाद में रत (अर्थात् झगड़ालू) क्रोधी और स्त्रियों के साथ व्यभिचार करने वाला होता है।

(२) यदि सूर्य, मंगल और शनि एक साथ नवें स्थान में हों तो वह आदमी दरिद्र हो और वंधुओं से हीन हो। ऐसा जातक पिता के लिए मारक होता है।

(३) यदि सूर्य, बुध और बृहस्पति एक साथ हों तो आदमी धनिक हो और राजा का प्रिय होता है।

(४) यदि सूर्य, बुध और शुक्र एक साथ हों तो राजा के समान हो।

(५) यदि सूर्य, बुध, शनि एक साथ हों तो मनुष्य पापी हो और पराई स्त्री में रत रहे ॥८०॥

जीवार्कौ सितसंयुतौ परवधूसक्तो धनी पण्डितः
सार्कौ जीवदिवाकरौ यदि विटस्वामी तपःस्थानगौ।
आदित्यासितभार्गवा नवमगा हीनो नृपैर्दण्डितो
बाल्ये तप्तमनाः सुखी च परतश्चन्द्रारशीतांशुजाः ॥८१॥

इस श्लोक में चार योग बताये गये हैं :—

(१) यदि सूर्य, बृहस्पति, शुक्र एक साथ नवें भाव में हों तो जातक धनी और पंडित हो परन्तु दूसरों की स्त्रियों में आसक्त हो ।

(२) यदि सूर्य, बृहस्पति, शनि एक साथ नवम स्थान में हों तो मनुष्य बहुत धूर्त हो ।

(३) यदि सूर्य, शुक्र, शनि एक साथ नवम स्थान में हों तो मनुष्य छोटी पदवी का होता है और राजा से दंडित होता है ।

(४) यदि चन्द्रमा, मंगल, बुध एक साथ नवम में हों तो बाल्यावस्था में दुःखी रहे । उसके बाद सुखी हो ॥८१॥

देवाराधनतत्परो नवमगैश्चन्द्रारवागीश्वरै-
र्जातो नष्टकलत्रवान् क्षततनुः शुक्रेन्दुभूनन्दनैः ॥
क्षुद्रो मातृहरो महीपतिसमश्चन्द्रारसूर्यात्मजै-
राचार्यो धनवान् विभुश्च रजनीनाथज्ञदेवार्च्चितैः ॥८२॥

इस श्लोक में चार योग बताये गये हैं :—

(१) यदि चन्द्र, मंगल, बृहस्पति एक साथ नवम में हों तो मनुष्य देवताओं की पूजा में लगा रहता है ।

(२) यदि चन्द्रमा, मंगल, शुक्र एक साथ हों तो उसके शरीर में बहुत से घाव हों और उसकी स्त्री मर जाये ।

(३) यदि चन्द्र, मंगल और शनि एक साथ हों तो मनुष्य क्षुद्र हो और उसकी माता जल्दी मर जाये । किन्तु वह राजा के समान धनी हो ।

(४) यदि चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति नवम में हों तो मनुष्य आचार्य (पूज्य विद्वान्) और धनवान् तथा अनेक मनुष्यों का स्वामी होता है ॥८२॥

मातुः सपत्नीजनको विभुः स्यात् चन्द्रज्ञशुक्रा नवमोपयाताः ।
पापी विवादप्रियबुद्धियुक्तो जातः सुधारश्मिबुधार्कपुत्राः ॥८३॥

इसमें दो योग बताये गये हैं :—

(१) यदि चन्द्रमा, बुध और शुक्र एक साथ नवम में हों तो माता की सपत्नी हो या माता जल्दी मर जाय व पिता दूसरा विवाह कर ले । ऐसा मनुष्य धनी और अनेक व्यक्तियों का स्वामी होता है ।

(२) यदि चन्द्रमा, बुध, शनि एक साथ नवम में हों तो मनुष्य पापी और झगड़ालू हो, सदैव विवाद करे ॥८३॥

चन्द्रामरेज्यौ ससितौ महीपः सार्कात्मजौ सद्गुणकर्मशीलः।
मन्दज्ञशुक्रा नरपालतुल्यः कृषिक्रियावित्तपरो गुरुस्थाः ॥८४॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं :—

(१) यदि चन्द्रमा, बृहस्पति और शुक्र एक साथ नवम में हों तो जातक राजा हो।

(२) यदि चन्द्रमा, बृहस्पति, शनि एक साथ नवम में हों तो जातक सद्गुणी और अच्छे कर्म करने वाला हो।

(३) यदि बुध, शुक्र, शनि एक साथ नवम में हों तो जातक खेती के कार्य से धन कमाये और राजा के समान हो ॥८४॥

राजप्रियो माण्डलिकः सजीवौ भाग्यस्थितौ भूसुतचन्द्रपुत्रौ।
शास्त्री सशुक्रौ चपलश्च भीरुः सभानुजौ वादपरोऽसमर्थः ॥८५॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं :—

(१) यदि मंगल, बुध और बृहस्पति एक साथ नवम में हों तो मनुष्य माण्डलिक हो अर्थात् छोटा राजा हो और राजा का प्रिय हो।

(२) यदि मंगल, बुध और शुक्र एक साथ नवम में हों तो जातक की चंचल मति हो और वह सदैव भयभीत रहे।

(३) यदि मंगल, बुध, शनि एक साथ नवम में हों तो मनुष्य कार्यों में असमर्थ रहे किन्तु विवाद-प्रिय हो ॥८५॥

ख्यातो विद्वान् धर्मवान्न् जीवसौम्यौ
धर्मस्थाने दानवाचार्ययुक्तौ।
विद्यावाग्मी सासितौ धर्मयातौ
राजश्रीमान्न् जीवशुक्रज्ञचन्द्राः ॥८६॥

इसमें तीन योग कहे गये हैं :—

(१) यदि बुध, बृहस्पति, शुक्र एक साथ नवम में हों तो विख्यात अर्थात् अतिप्रसिद्ध विद्वान् और धार्मिक हो।

(२) यदि बुध, बृहस्पति, शनि एक साथ नवम स्थान में हों तो जातक विविध विद्याओं में चतुर और बोलने में वाग्मी हो।

(३) यदि चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति, शुक्र यह चारों नवम भाव में हों तो

जातक राज्यलक्ष्मी सहित हो अर्थात् राजा के समान लक्ष्मीवाला हो। मूल में शब्द आया है राजश्रीमान् जिसका अर्थ यह भी हो सकता है कि श्रीमान् राजा हो ॥८६॥

जातः साहसविक्रमार्जितधनः सूर्यारजीवार्कजैः
शूरः सर्वगुणप्रपञ्चरसिकः शुक्रारजीवेन्दुभिः।
षट्पञ्चत्रिचतुर्वियच्चरयुते भाग्ये समेति श्रियं
राजत्वं सबुधे विबोधनगुरौ जातः समेत्यश्रियम् ॥८७॥

इसमें पाँच योग बताये गये हैं :—

(१) यदि सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि एक साथ नवम स्थान में हों तो जातक अपने साहस व पराक्रम से धन का उपार्जन करता है।

(२) चन्द्रमा, मंगल, शुक्र और बृहस्पति एक साथ हों तो शूर और विविध गुण विलासी हो।

(३) तीन या चार या पांच या छः ग्रह भाग्य स्थान में हों तो लक्ष्मीवान् होता है। किन्तु इनमें बुध और गुरु का होना आवश्यक है।

(४) यदि बुध के साथ नवम में ग्रह हों तो राजत्व प्राप्त होता है।

(५) यदि गुरु या बुध से रहित ग्रह भाग्य भाव में हो तो भाग्यहीन हो ॥८७॥

जनयन्ति भाग्यसंस्था गुरुसौम्यविर्वाजिता ग्रहाः पुरुषम्।
व्याधिप्रायमकान्तं जनहीनं बन्धनार्तमतिदीनम् ॥८८॥

यदि बुध व बृहस्पति से रहित भाग्य स्थान में ग्रह हो तो प्रायः सिर में व्याधि होती है, मनुष्य जनहीन होता है, तेजहीन, बन्धन से दुःखी और अत्यन्त दीन होता है ॥८८॥

भाग्याधिपे विनाशस्थे नीचशत्रुखगेक्षिते।
क्रूरांशे नीचराश्यादौ भाग्यहीनो भवेन्नरः ॥८९॥

भाग्याधीश अर्थात् नवें भाव का स्वामी यदि नीचे लिखे अवगुणों से युक्त हो तो मनुष्य भाग्यहीन होता है। यह अवगुण जितने अधिक हों उतना ही भाग्यहीन होता है।

(१) भाग्याधीश का अष्टम होना ।
(२) भाग्याधीश को नीचगत ग्रह देखें ।
(३) भाग्याधीश को शत्रुराशि में स्थित ग्रह देखें ।
(४) भाग्याधीश क्रूर नवांश में हो ।
(५) भाग्याधीश नीच राशि में हो । यह सब योग भाग्य-हानि करते हैं ।।८९।।

भाग्याधिपे शुभयुते शुभग्रहनिरीक्षिते ।
तद्भावे शुभसम्बन्धे तत्कीर्तिधनभाग्यवान् ।।९०।।

नीचे लिखे योग भाग्य को वढ़ाते हैं। इनमें जितने योग होंगे उतना ही भाग्य अधिक होगा ।

(१) भाग्येश अर्थात् नवम भवन का स्वामी शुभयुक्त हो ।
(२) नवम भाव के स्वामी को शुभग्रह देखें ।
(३) नवम भाव में शुभग्रह वैठे ।

यह योग होने से कीर्तिमान्, धनवान् और भाग्यवान् होता है ।।९०।।

सिंहासनांशे तन्नाथे लग्नेशेन निरीक्षिते ।
कर्माधिपेन संदृष्टे महादानकरो भवेत् ।।९१।।
जातः पुरोहितो वाऽपि ब्रह्मवंशसमुद्भवः ।
दानाध्यक्षोपकारी स्याद् वर्णभेदविकल्पना ।।९२।।

भाग्य स्थान का स्वामी यदि सिंहासनांश में हो (देखिये अध्याय १, श्लोक ४५ और उसको लग्नेश देखता हो या दशमेश भी देखता हो तो महादानी होता है ।।९१।।

यदि उपर्युक्त योग वाला जातक ब्राह्मण वंश में पैदा हो तो पुरोहित होता है । यदि ब्राह्मण के अतिरिक्त वंश में हो तो अपनी जाति के मुताबिक लोगों का उपकार करता है ।।९२।।

गुरौ तद्भावसंयुक्ते नवांशाधिपतौ तथा ।
शुभग्रहेक्षिते वाऽपि गुरुभक्तियुतो भवेत् ।।९३।।

यदि बृहस्पति नवम भाव में हो तो और नवांशाधिपति भी नवम भाव में हो या शुभग्रह से वीक्षित हो तो जातक गुरु भक्त हो ।।९३।।

गुरुस्थाने सौम्ययुते गुरुवर्गसमन्विते ।
तदीशे गुरुभागस्थे गुरुभक्तिरतः सुखी ॥९४॥
गुरुशुक्रबुधांशस्थे धर्मनाथेन वीक्षिते ।
शुभग्रहाणां मध्यस्थे धर्मकृत्स नरो भवेत् ॥९५॥

यदि नवम भाव में शुभग्रह और नवांश में गुरु का वर्ग हो और नवम भाव का स्वामी गुरु के नवांश में हो तो जातक गुरु भक्ति युक्त और सुखी होता है ॥९४॥

नवम भाव गुरु, शुक्र या बुध के नवांश में हो और नवमेश से दृष्ट हो और शुभ ग्रहों के मध्य में हो तो मनुष्य धर्मात्मा होता है ॥९५॥

धर्मे पापे पापभाक् स्यात् तदीशे पापसंयुते ।
क्रूरषष्टयंशके वाऽपि धर्महीनो भवेन्नरः ॥९६॥

इसमें दो योग बताये गये हैं :—

(१) नवम में पापग्रह हो तो पापी हो ।
(२) नवमेश पाप ग्रह के साथ हो या क्रूर षष्ट्यंश में हो तो जातक धर्म से हीन हो ॥९६॥

बलवति शुभनाथे केन्द्रकोणोपयाते
शुभशतमुपयाति स्वामिदृष्टे विलग्ने ।
सुरगुरुनवभागत्रिंशदंशत्रिभागे
दशमभवनपे वा वीतभोगस्तपस्वी ॥९७॥

इसमें दो योग बताये गये हैं :—

(१) यदि बलवान् नवमेश लग्न से केन्द्र (१, ४, ७, १०) या त्रिकोण (५, ९) हो, लग्न को लग्नेश देखे तो सैकड़ों शुभ बातें प्राप्त होती हैं ।
(२) यदि दशमेश गुरु के द्रेष्काण, नवांश या त्रिंशांश में हो तो जातक भोग रहित, तपस्वी हो ॥९७॥

सकलगगनवासाः स्वोच्चगा भाग्यराशौ
धनकनकसमृद्धं श्रेष्ठमुत्पादयन्ति ।
यदि शुभखचरेन्द्रैस्तत्र दृष्टा नभोगा
विनिहतरिपुपक्षो दिव्यदेहः सुकीर्तिः ॥९८॥

इसमें दो योग बताये हैं :—

(१) यदि सब ग्रह अपनी उच्च राशि में हों या नवम भाव में हों तो धन, स्वर्ण की वृद्धि करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कोई भी ग्रह उच्चराशि का हो तो वह भाग्यशाली बनाता है। बशर्ते कि वह नवम भाव में बैठा हो।

(२) यदि शुभ ग्रह दृष्ट नवम भाव में ग्रह हो तो शत्रु पक्ष का संहार होता है और आदमी की कीर्ति बढ़ती है। कहने का तात्पर्य यह है कि शुभ ग्रह की दृष्टि नवम पर अच्छी होती है ॥९८॥

तातेशतत्कारकखेचरेन्द्रौ
दुःस्थौ तयोः पुत्रमुखं न दृश्यम् ।
केन्द्रत्रिकोणे यदि तौ नभोगौ
वदेत्तयोः पुत्रमुखं हि दृश्यम् ॥९९॥

इसमें दो योग बताये गये हैं :—

(१) नवमेश और पितृकारक ग्रह दोनों यदि दुष्ट स्थान में हों अर्थात् छठे, आठवें, बारहवें हों तो पुत्र का मुख नहीं देखे।

(२) यदि यह दोनों केन्द्र त्रिकोण में हों तो पुत्र का मुख देखे ॥९९॥

पितुर्निशायां मरणं सुखेश–
शुक्रेन्दवः षष्ठगता बलाढ्याः ।
सारीश्वरास्तन्मरणं तथैव
चन्द्रेण हीनास्तु दिवा मृतिः स्यात् ॥१००॥

इसमें दो योग बताये गये हैं :—

(१) यदि चतुर्थेश चन्द्रमा और शुक्र छठे स्थान में हों और यह बलवान् हों तो पिता की रात्रि में मृत्यु होती है।

(२) यदि षष्ठेश, द्वितीयेश और शुक्र बलवान् हों और छठे घर में हों तो पिता की मृत्यु दिन में होती है ॥१००॥

सौम्ये चराद्यभागस्थे भाग्येशे बलसंयुते ।
गुरुशुक्रयुते दृष्टे जपध्यानसमाधिमान् ॥१०१॥

सौम्य ग्रह नवमेश बलवान् होकर चर राशि के प्रथम नवांश में हो, बृहस्पति और शुक्र से दृष्ट हो या युक्त हो तो ध्यान समाधि वाला हो। यहाँ कई विद्वान्

सौम्य का अर्थ बुध देते हैं। क्योंकि शुक्र और बृहस्पति से युक्त-दृष्ट हो तो सौम्य में केवल बुध वच जाता है ॥१०१॥

देवलोकादिभागस्थे कर्मेशे भाग्यपेऽपि वा ।
पारावतांशके सौम्ये ब्रह्मनिष्ठापरो भवेत् ॥१०२॥

दशमेश या नवमेश अपने देवलोकादि अथवा पारावतांश में हों (देखिये अध्याय १, श्लोक ४५-४७) तो मनुष्य ब्रह्मनिष्ठा में तत्पर हो ॥१०२॥

पारावतादिभागस्थे धर्मेशे गुरुसंयुते ।
लग्नेशे गुरुसंदृष्टे महादानकरो भवेत् ॥१०३॥

भाग्येश बृहस्पति से युक्त पारावतांश में हो और लग्नेश पर बृहस्पति की दृष्टि हो तो जातक ब्रह्मज्ञानी होता है ॥१०३॥

इति नवग्रहकृपया वैद्यनाथविरचिते जातकपारिजाते चतुर्दशोऽध्यायः ।

इस प्रकार श्री नवग्रह की कृपा से जातक पारिजात का चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

अध्याय १५

दशम एकादश द्वादश भावफल

दशम भावफल

आज्ञामानविभूषणानि वसनव्यापारनिद्राकृषि-
प्रव्रज्यागमकर्मजीवनयशोविज्ञानविद्याः क्रमात् ।
कर्मस्वामिदिनेशबोधनगुरुच्छायासुतैश्चिन्तये-
दुक्तानि प्रविहाय पूर्वमशुभे मानी विमानो भवेत् ।।१।।

दशमेश, सूर्य, बुध, गुरु और शनि से निम्नलिखित वातों का विचार करना चाहिये :—

आज्ञा (हुकूमत करना) सम्मान, भूषण, वस्त्र, व्यापार, निद्रा, खेती-बारी, प्रव्रज्या (संन्यास लेना) आगम (शास्त्र) कर्म या कार्य, जीवन निर्वाह, यश, विज्ञान, विद्या—इन सब का क्रम से विचार करे। क्रम से क्या तात्पर्य है? पहले दशमेश से, फिर सूर्य से, फिर बुध से, फिर बृहस्पति से और अन्त में शनि से। संक्षेप में भावाधीश के अतिरिक्त ये चारों ग्रह दशम भाव के कारक हैं। दसवें भाव में पाप-ग्रह हो तो वह मनुष्य समाज में सम्मान खो बैठता है ।।१।।

कर्म विचार

कर्मेशे बलवर्जिते चपलधीर्जातो दुराचारवान्
जीवज्ञासितभानवो विबलिनो दुःस्था विकर्मप्रदाः ।
गङ्गास्नानफलं समेति दशमे राहौ दिनेशेऽथवा
मीने कर्मणि चन्द्रजारसहिते जातः स मुक्तो भवेत् ।।२।।

इनमें चार योग बताये गये हैं :—

(१) यदि दशमेश बलरहित हो अर्थात् निर्बल हो तो जातक दुराचारवान् और चंचल बुद्धि वाला होता है।

(२) यदि चारों कारक ग्रह सूर्य, बुध, बृहस्पति और शनि निर्बल हों और छठे, आठवें, बारहवें भाव में पड़े हों तो जातक विकर्मी अर्थात् अच्छे कार्य न करने वाला होता है।

(३) यदि दशम स्थान में राहु अथवा सूर्य हो तो जातक को गंगास्नान का शुभ अवसर प्राप्त होता है।

(४) धर्म भाव में यदि मीन राशि पड़ी हो और वहाँ मंगल और बुध बैठे हों तो जातक मुक्त हो जाता है ।।२।।

मानेश्वरे शक्रयुते च केन्द्रे
तुङ्गस्थिते तादृशतोयपूतः ।
व्यये बुधे तद्भवनाधिपे वा
स्वोच्चान्विते तादृशपुण्यभाक् स्यात् ।।३।।

इसमें दो योग बताये गये हैं :—

(१) यदि दशमेश केन्द्र में अपनी उच्च राशि का हो और शुक्र के साथ हो तो मनुष्य को गंगास्नान का पुण्य प्राप्त है।

(२) धर्म भाव में बुध हो या वह बारहवें बैठा हो पर दोनों स्थितियों में अपनी उच्च राशि में हो तो इसी प्रकार का पुण्य मिलता है ।।३।।

चन्द्रे कर्मणि जाह्नवीसलिलतः पूतो हि पूतद्युतौ
पापो यच्छति कर्मगो विबलवान् द्यूतक्रियासाहसम् ।
सौम्या दुर्बलशालिनो दशमगाः सत्कर्मविध्वंसकाः
कर्मेशज्ञसुरार्चितैः क्रतुफलं सञ्चिन्त्य सम्यग्वदेत् ।।४।।

इसमें चार योग बताये गये हैं :—

(१) यदि पूर्ण चन्द्र दशम भाव में हो तो गंगाजल से शरीर पवित्र होता है अर्थात् गंगास्नान का पुण्य प्राप्त होता है।

(२) बलरहित पापग्रह दशम भाव में हो तो जुआ खेलने में मनुष्य साहसी होता है।

(३) यदि दुर्बल सौम्य ग्रह दशम में हो तो जातक सत्कर्म विध्वंसक हो अर्थात् सत् कर्म न करे।

(४) दशम भाव का स्वामी, बुध और बृहस्पति दशम में हो तो यज्ञ करे। इन सब चारों योगों को विचार करके कहना चाहिये ।।४।।

एकस्थौ तनुकर्मपौ यदि तयोरेकाधिपत्यं तु वा
जातः स्वार्जितसद्धनेन कुरुते यज्ञादिकर्मोत्सवम् ।
सार्कौ शूद्रधनेन साहिशिखिनि क्षुद्रैः सजीवे नृप-
स्तत्तत्कारकवित्ततो यदि युते रव्यादिभिः कर्मपे ॥५॥

(१) यदि दशमेश और लग्नेश एक ही जगह हों या एक ही ग्रह दोनों स्थानों का स्वामी हो तो जातक अपनी भुजा से धन कमाता है ।

(२) यदि धर्म भाव का स्वामी और लग्न का स्वामी संबंध करे तो भी मनुष्य अपनी भुजा से धन कमाता है । इन दोनों योगों में अपने परिश्रम से उपार्जन की हुई लक्ष्मी से वह यज्ञादि कर्म करता है । केवल कन्या और मीन लग्न वालों को पहला योग हो सकता है ।

(३) यदि दशम में शनि हो तो शूद्र लोगों के धन से यज्ञ करे ।

(४) यदि राहु या केतु दशमेश से युक्त हों तो छोटे आदमी के धन से यज्ञ करे ।

(५) यदि बृहस्पति से दशमेश युक्त हो तो राजा के धन से यज्ञादि करे ।

(६) यदि सूर्य या मंगल दशमेश से युक्त हो तो क्षत्रिय के धन से यज्ञ करे ।

(७) यदि बुध दशमेश से युक्त हो तो व्यापारी वर्ग के धन से यज्ञादि करे ।

(८) यदि शुक्र दशमेश से युक्त हो तो स्त्रियों के धन से यज्ञ करे ।

इस प्रकार जो ग्रह दशमेश से युक्त हो उसके कारक से जिन बातों का विचार होता है उनका विचार कर, उनसे यदि यज्ञादि करने का संकेत हो तो फल कहना चाहिए ॥५॥

बहुशुभयुजि माने वाजपेयादिसिद्धिः
सितबुधयुतराशिस्वामिनौ दुर्बलाढ्यौ ।
यदि कृतसवनोऽपि प्राप्तकर्मप्रनष्टो
भवति परमकर्मा दानवाचारशीलः॥६॥

यदि दशम स्थान में बहुत से शुभग्रह हों तो वाजपेय यज्ञ करे । यदि बुध, शुक्र जिन राशियों में बैठे हों वे यदि दुर्बल हों तो यज्ञ प्रारम्भ करने पर भी कर्म नष्ट हो जाता है और यह परम कर्म करने वाला भी दानव विचार वाला होता है ।

यहां ग्रन्थकार ने यह बताया है कि शुभग्रह मात्र के बैठने से भाव अच्छा नहीं हो जाता, जिसके घर में वे बैठे हों वह भी बलवान होना चाहिए ॥६॥

चन्द्रात् कर्मणि शोभने बलयुते तुङ्गादिवर्गस्थिते
वागीशेन युतेक्षिते नरवरो यज्वा यशस्वी भवेत् ।
जीवज्ञासुरपूजितस्थितगृहाधीशा विनाशं गता
जातः सत्फलकर्मवानपि कृतां कर्मश्रियं नाप्नुयात् ॥७॥

चन्द्र लग्न से विचार करना इस श्लोक में बताया गया है।

(१) चन्द्रमा से दसवें भाव में बलवान् शुभग्रह (शुक्र या बुध) अपने उच्चादि वर्ग में हो और बृहस्पति से युक्त या वीक्षित हो तो जातक मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है और यज्ञादि सत्कर्मों से यश प्राप्त करता है।

(२) बुध, बृहस्पति व शुक्र जहां पर बैठे हों उनके स्वामी यदि लग्न से अष्टम में हों तो मनुष्य को सत्कर्म करने पर भी कर्म फल प्राप्त नहीं होता ॥७॥

कर्मेशज्ञसुरार्चिता बलयुता यज्ञादिसत्कर्मदाः
सौम्यव्योमचरेण वीक्षितयुतास्ते वाजपेयादिभाक् ।
जीर्णोद्धारणमुख्यगोपुरतटाकारामपुण्यप्रदा
यज्वा कर्मपतौ शुभे शशियुते माने विराहुध्वजे ॥८॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं :—

(१) यदि दशमेश बुध और बृहस्पति बलवान् हों तो यज्ञादि सत्कर्म करे।

(२) यदि दशमेश बुध और बृहस्पति शुभग्रहों से अर्थात् चन्द्रमा और शुक्र से दृष्ट हों या इनके साथ हों तो वाजपेय आदि यज्ञ करते हैं। प्राचीन मठ मन्दिर आदि की मरम्मत कराते हैं। प्रसिद्ध गोशाला आदि का निर्माण कराते हैं, तालाब खुदवाते हैं और बाग् आदि लगवाते हैं।

(३) यदि दशमेश शुभग्रह हो और चन्द्रमा के साथ बैठा हो और राहु-केतु वहाँ न बैठे हों तो यश करे ॥८॥

उच्चस्थे शशिजेऽहिकेतुवियुते भाग्योपयातेऽथवा
कर्मस्वामिनि भाग्यगे च मनुजो यागादिसत्कर्मवान् ।
कर्मेशे निजतुङ्गगे बुधयुते तारासुते चास्तगे
तुङ्गस्थानगते सति क्रतुफलं जातः समेति ध्रुवम् ॥९॥

इसमें दो योग बताये गये हैं :—

(१) बुध, कन्या राशि में दशम में हो किन्तु राहु या केतु के साथ न हो अथवा उच्च का बुध भाग्य भाव में हो और दशमेश भी नवम में हो तो मनुष्य यज्ञ आदि कर्म करता है ।

(२) दशमेश अपनी उच्च राशि में बुध से युक्त हो या सप्तम में कन्या का बुध हो तो मनुष्य यज्ञ करे और सत्फल पाये ॥९॥

इसमें ५ योग बताये गये हैं :—

कर्मस्थे शशिनन्दने सवनकृत्साहिध्वजे कर्महा
कर्मेशे रिपुरन्ध्ररिष्फगृहगे कर्मावरोधी भवेत् ।
कर्मेशस्य बुधस्य कर्मभवने राहौ मखध्वंसक-
स्तुङ्गस्थानगतोऽपि कर्मगृहपो दुःस्थानगः कर्महा ॥१०॥

(१) बुध यदि दशम में हो तो यज्ञ के लिए औषध संग्रह करने वाला हो ।

(२) किन्तु यदि बुध, राहु या केतु के साथ हो तो सत्कर्म की हानि करता है।

(३) दशमेश यदि त्रिक स्थान में हो अर्थात् छठे, आठवें, बारहवें हो तो सत्कर्म को रोकता है ।

(४) दशमेश यदि बुध हो (जो धनु लग्न और कन्या लग्न में होता है) और बुध से दशम में राहु हो तो यज्ञ नाशक हो ।

(५) कर्मेश अर्थात् दशमेश चाहे अपनी उच्च राशि का हो परन्तु त्रिक में (६, ८, १२ में) हो तो सत्कर्म का नाश करता है ।

उदाहरण के लिए तुला लग्न है और दशमेश चन्द्रमा अष्टम में पड़ा है तो उच्च का होने पर भी सत्कर्म का नाशक होगा ॥१०॥

व्यापारधर्मभवने शुभखेटयुक्ते
तन्नाथजीवतनुपा बलशालिनश्चेत् ।
आचारधर्मगुणकर्मविधिप्रयुक्त-
श्रद्धापरो भवति विप्रकुलाग्रगण्यः ॥११॥

नवम या दशम भाव में शुभग्रह हो और नवम, दशम के स्वामी लग्नेश और बृहस्पति बलवान् हों तो जातक आचारवान्, धर्मात्मा, गुणवान्, विजय पूर्वक कर्म करने वाला, श्रद्धालु होता है । वह ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हो तो कुल में मुख्य हो ॥११॥

सौम्यान्वितानि गुरुकर्मकलत्रपुत्र-
लग्नानि पञ्च भवनानि शुभेक्षितानि ।
तन्नायकाश्च बलिनो यदि सर्वतत्त्व-
विद्याधिकक्रतुसमस्तगुणप्रसिद्धः ॥१२॥

यदि लग्न, पंचम, सप्तम, नवम और दशम भाव ये पाँचों शुभग्रह से युत हों या शुभग्रह से दृष्ट हों और इन पाँचों स्थानों के स्वामी यदि बलवान् हों तो तत्त्वज्ञानी, अधिक विद्वान् और यज्ञादि गुणों से प्रसिद्ध हो ॥१२॥

ज्ञानव्योमाधिवासास्तनुगुरुदशमस्थानपाः षड्बलाढ्या
जातः षट्शास्त्रवेत्ता निखिलनिगमविज्ज्ञानदीक्षामुपैति ।
धर्मव्यापारलग्नाधिपबुधविबुधाचार्यपाकापहारे
सत्कर्माचारसर्वक्रतुफलनिगमज्ञानविद्याकरः स्यात् ॥१३॥

ज्ञान स्थान या दशम में अर्थात् २, ४, ५, १० इन स्थानों में दशमेश, नवमेश और लग्नेश अपने-अपने षड्बल से युत हों तो जातक विद्वान्, मीमांसा, सांख्य आदि षट्शास्त्र में निष्णात होता है । संपूर्ण निगम का विज्ञ हो और ज्ञान दीक्षा प्राप्त करे । उसको लग्न, दशम के स्वामी, बुध, वृहस्पति के दशा और अन्तर्दशा में यज्ञ फल, वेदज्ञान, विद्या, सत्कर्म, आचार आदि का सत् फल मिले ॥१३॥

चन्द्रे तृतीये जलराशियुक्ते करोति जीर्णोद्धरणादि पुण्यम् ।
तटाककूपादिकमत्र लग्नात् कर्मेश्वरे गोपुरभागयुक्ते ॥१४॥

इसमें दो योग बताये हैं :—

(१) जल राशि का चन्द्रमा तृतीय में हो तो जातक पुराने मठ, मन्दिर, तालाब आदि की मरम्मत कराये ।

(२) लग्न से दशमेश गोपुर भाग में हो तो तालाब, कुंआ आदि का निर्माण करे ॥१४॥

प्रव्रज्या योग

जातः पञ्चचतुर्वियच्चरवरैः केन्द्रत्रिकोणस्थितै-
रेकस्थैर्बलिभिः प्रधानबलवत्खेटाश्रमस्थो भवेत् ।
आदित्यासितजीवशुक्रधरणीपुत्रेन्दुतारासुतै-
र्वानप्रस्थविवासभिक्षुचरकाः शाक्यो गुरुर्जीवकः ॥१५॥

वानप्रस्थस्तपस्वी वनगिरिनिलयो नग्नशीलो विवासा
भिक्षुः स्यादेकदण्डी सततमुपनिषत्तत्त्वनिष्ठो महात्मा ।
नानादेशप्रवासी चरकपतिवरः शाक्ययोगी कुशीलो
राजश्रीमान् यशस्वी गुरुरशनपरो जल्पको जीवकः स्यात् ॥१६॥

इसमें दो योग बतलाये गये हैं :—

(१) बलवान् ५ या ४ ग्रह केन्द्र (१, ४, ७, १०) या त्रिकोण (५, ९) में एक साथ बैठें तो इनमें जो सबसे बलवान् ग्रह हो उसके आश्रमस्थ जातक होगा । अर्थात् जो प्रव्रज्या, बलवान् ग्रह सूचित करता है वह जातक लेगा । सूर्य से वानप्रस्थी, शनि से नग्न साधु, बृहस्पति से भिक्षु, शुक्र से चरक, नाना देश प्रवासी, मंगल से शाक्य, चन्द्रमा गुरु और बुध से जीवक अर्थात् भीख मांगकर केवल उदर पूर्ति करे ।

(२) अब प्रव्रज्या के स्वरूप कहते हैं । वानप्रस्थी, तपस्वी है जो जंगल और पर्वतों पर रहता है । नग्न अर्थात् विवस्त्र हमेशा बिना वस्त्र के रहता है । भिक्षु एक दंडी संन्यासी को कहते हैं जो निरंतर उपनिषद् और वेदान्त ग्रन्थों का पाठ करते हैं । चरक एक स्थान पर नहीं रहते, निरन्तर घूमते रहते हैं । शाक्य योगी, दुराचारवान्, ठग हैं । गुरु राजश्रीयुत यशस्वी हैं । जीवक भोजन में तत्पर रहते हैं, बहुत बोलते हैं ॥१५-१६॥

कर्मस्था बलिनस्त्रयो गगनगाः स्वोच्चादिवर्गस्थिताः
कर्मेशश्च बलाधिको यदि यतिस्तत्तुल्यशीलोऽथवा ।
कर्मेशे बलवर्जिते गृहगृहप्राप्ते दुराचारवान्
तद्योगप्रदमध्यगौ धनमदस्थानाधिपौ कामधीः ॥१७॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं :—

(१) दशम में यदि तीन ग्रह बलवान् हों, अपने उच्च वर्गादि में स्थित हों और दशमेश भी बलवान् हो तो यति अथवा उसके समान शीलवाला संन्यासी की तरह हो ।

(२) यदि दशमेश बलहीन हो और सातवें भाव में बैठा हो तो दुराचारी हो ।

(३) यदि द्वितीय और सप्तम के स्वामी प्रव्रज्या कारक ग्रहों के बीच में बैठे तो काम-बुद्धि हो ॥१७॥

तद्योगप्रदखेचरं रिनशनिक्षोणीकुमारान्वितः
संन्यासं समुपैति वित्ततनयस्त्रीवर्जितो मानवः ।
सौम्यांशोपगतः सहस्त्रकिरणस्तुङ्गान्तभागस्थितं
खेटं पश्यति यौवने वयसि वा बाल्ये यतीशो भवेत् ।।१८।।

इसमें दो योग बताये गये हैं :—

(१) संन्यास कारक योग हो तो संन्यास कारक ग्रह सूर्य, मंगल, शनि से युत हो तो जातक स्त्री, पुत्र, धन से रहित होता है। इस कारण संन्यास लेता है।

(२) यह देखिये कि कोई ग्रह अपने परमोच्च में है क्या ? यदि इस परमोच्च ग्रह को शुभ नवांश में बैठा हुआ सूर्य देखता हो तो मनुष्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था में अर्थात् बचपन या यौवन में यतीश हो जाता है। यह तभी होता है जब संन्यास कारक योग हो ।।१८।।

शुक्रेन्दुप्रविलोकिते गतबले लग्नाधिपे निर्द्धनो
भिक्षुः स्याद्यदि तुङ्गभांशकयुतस्तारापतिं पश्यति ।
एकस्थैरविलोकिते तु बहुभिर्लग्नेश्वरे दीक्षित-
स्तद्योगप्रदभावकारकदशाभुक्तौ तदीयं फलम् ।।१९।।

इसमें तीन योग बताये गये हैं :—

(१) जन्म लग्नेश अत्यन्त निर्बल हो और उनको शुक्र और चन्द्रमा देखें।

(२) कोई ग्रह अपनी उच्च राशि, उच्च नवांश में स्थित होकर (चाहे लग्नेश हो, चाहे अन्य ग्रह) चन्द्रमा को देखे तो भिक्षुक (संन्यासी) हो।

(३) बहुत से ग्रह (इसे अधिक) एक स्थान में स्थित होकर लग्नेश को देखें तो दीक्षित हो।

यह सब योग उन कुण्डलियों में देखने चाहिएँ जिनमें संन्यास का योग हो। जिस भाव के कारण संन्यासी योग बनता हो उस भाव के कारक ग्रह की दशा और अन्तर्दशा में संन्यास फल प्राप्त होता है ।।१९।।

शीतांशुराशीशमिनात्मजो वा
लग्नेश्वरः पश्यति दीक्षितः स्यात् ।
भौमर्क्षगे मन्ददृगाणभागे
मन्देक्षिते शीतकरे यतिः स्यात् ।।२०।।

इनमें दो योग बताये गये हैं :—

(१) जिस राशि में चन्द्रमा हो उस राशि के स्वामी को लग्नेश या शनि देखे तो दीक्षित हो।

(२) मंगल की राशि में शनि के द्रेष्काण या नवांश में चन्द्रमा हो और शनि से दृष्ट हो तो संन्यासी होता है।

मंगल की राशि मेष में मेष और वृश्चिक हैं। इनमें शनि का द्रेष्काण नहीं होता। मेष में सिंह, धनु द्रेष्काण होते हैं। वृश्चिक में वृश्चिक, मीन, कर्क के द्रेष्काण होते हैं। इसलिए यह योग नहीं बैठता। मेष में शनि का नवांश नहीं होता। वृश्चिक में मकर और कुंभ नवांश होते हैं। ऐसी स्थिति में अर्थ ठीक नहीं बैठता। केवल वृश्चिक राशि हो और मकर, कुंभ का नवांश हो यह कहने के लिए इतने चक्कर की क्या जरूरत? वास्तव में यह श्लोक वराहमिहिर का है।

वहाँ पाठ है:—

दीक्षां प्राप्नोत्यार्किदृक्काणसंस्थे
भौमार्क्यंशे सौरदृष्टे च चन्द्रे।

जिसका अर्थ हुआ यदि चन्द्रमा शनि के द्रेष्काण में हो और मंगल या शनि के नवांश में तथा शनि से दृष्ट हो तो दीक्षा प्राप्त करता है। मूल में जातक पारिजात में 'भौमर्क्षगे' के स्थान में 'भौमार्क्यंशे' होना चाहिए। लेखकों के प्रमाद से प्रतिलिपि करने वालों के दोष से ऐसी अशुद्धि हो गई है ॥२०॥

जीवारमन्दलग्नेषु मन्ददृष्टियुतेषु च।
लग्नाद्धर्मगते जीवे नृपयोगेऽपि तीर्थकृत् ॥२१॥

यदि लग्नेश मंगल, गुरु, शनि हो अर्थात् मेष, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ, मीन, लग्न हो और लग्न में शनि हो या लग्न शनि से दृष्ट हो तथा नवम स्थान में वृहस्पति हो तो राजयोग होने पर भी शास्त्रकर्ता होता है ॥२१॥

नवमस्थानगे चन्द्रे नभोगैर्नावलोकिते।
नृपयोगेऽपि सञ्जातो दीक्षितो नृपतिर्भवेत् ॥२२॥

यदि नवम स्थान में चन्द्रमा हो और उसको कोई ग्रह न देखता हो तो राजयोग होने पर भी दीक्षित होता है। ऐसे व्यक्ति की कुण्डली में राजयोग होने के कारण नृपति होता है और संन्यास योग होने के कारण दीक्षित होता है ॥२२॥

सुरगुरुशशिहोरास्वार्किदृष्टासु धम
गुरुरथ नृपतीनां योगजस्तीथकृत् स्यात् ।
नवमभवनसंस्थे मन्दगेऽन्यैरदृष्टे
भवति नरपयोगे दीक्षितः पार्थिवेन्द्रः ।।२३।।

(१) यह श्लोक बृहज्जातक का है। यदि धनु और कर्क की होरा हो अर्थात् कर्क, धनु, मीन लग्न हो और शनि से दृष्ट हो और नवम स्थान में बृहस्पति हो तो मनुष्य शास्त्रकार होता है।

(२) नवम भाव में शनि हो, किसी ग्रह से देखा न जाता हो तो राजयोग होने पर भी दीक्षित राजा होता है ।।२३।।

सितार्कभौमार्कसुता महाबलाः
सुरेज्यभूनन्दनभानुभानुजाः ।
कुजेन्दुवागीशशनैश्चरा इमे
समं गताश्चेज्जनयन्ति तापसम् ।।२४।।

इसमें तीन योग बताये गये हैं:—

(१) सूर्य, मंगल, शुक्र, शनि यदि पूर्ण बली होकर एक साथ हों तो मनुष्य को तपस्वी बनाते हैं।

(२) सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि यदि पूर्ण बलवान् हों और एक साथ हों तो मनुष्य को तपस्वी बनाते हैं।

(३) यदि चन्द्रमा, मंगल, बृहस्पति और शनि बलशाली हों और साथ बैठें तो मनुष्य को तपस्वी बनाते हैं ।।२४।।

ग्रहैश्चतुर्भिः सहिते तदीशे
केन्द्रत्रिकोणोपगतैस्तु मुक्तः ।
चतुर्ग्रहैः कर्मगतैः प्रव्रज्यां
प्राप्नोति जातः कथितो मुनीन्द्रैः ।।२५।।

(१) दशम भाव का स्वामी केन्द्र या त्रिकोण में चार ग्रहों से युत हो तो जातक को मोक्ष प्राप्त होता है।

(२) यदि चार ग्रह दशम में हों तो जातक संन्यासी होता है। ऐसा मुनीन्द्रों ने कहा है ।।२५।।

कुजार्कसोमार्कजदेववन्दितैः
कुजार्कचन्द्रात्मजमन्दभार्गवैः।
रवीन्दुभौमासितदानवप्रियै-
र्भवन्ति जाता व्रतसंयुता नराः ॥२६॥

इसमें तीन योग वताये हैं—तीनों योग होने से मनुष्य व्रती या संन्यासी होता है। व्रती का अर्थ जो कोई व्रत ले ले। यह संन्यास का प्रकरण है। इसलिए संन्यास का व्रत लेना इस प्रसंग में कहा गया है।

(१) सूर्य, चन्द्र, मंगल, गुरु, शनि एक साथ हों अथवा
(२) सूर्य, मंगल, वुध, शनि, शुक्र अथवा
(३) सूर्य, मंगल, चन्द्र, शनि, शुक्र ॥२६॥

सितारसूर्यात्मजजीवभास्करैः कुजेन्दुदेवेज्यबुधार्कनन्दनैः।
सितेन्दुपुत्रार्किशशाङ्कभूमिजैर्भवेत्तपस्वी वनपर्वताश्रयः ॥२७॥

नीचे लिखे हुए कोई योग होने से जातक वन और पर्वतों में रहता है। वह तपस्या करता है।

(१) सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शुक्र और शनि एक साथ हों।
(२) चन्द्रमा, मंगल, वुध, शुक्र और शनि एकत्रित हों ॥२७॥

चन्द्रेन्दुपुत्रारसुरेज्यभास्करैः शशाङ्कसूर्येन्दुजशुक्रभूमिजैः।
एकर्क्षगैरेभिरिह प्रजाता भवन्ति विद्यामुनयोऽस्त्रदूषकाः ॥२८॥

नीचे लिखे दोनों योगों में से कोई योग हो तो जातक अस्त्र-शस्त्र विरोधी, विद्या अभ्यास करने वाला मुनि होता है:—

(१) सूर्य, चन्द्र, मंगल, वुध और बृहस्पति एकत्रित हों।
(२) सूर्य, चन्द्र, मंगल, वुध और शुक्र एक साथ हों ॥२८॥

रवीन्दुभौमेन्दुजजीवभार्गवैः सुधाकरारार्किगुरुज्ञभास्करैः।
कुजेन्दुसूर्यार्किसितेन्दुसम्भवैर्भवेदमीभिः सहितैर्व्रती नरः ॥२९॥

निम्नलिखित तीन योगों में से अगर कोई हो तो मनुष्य व्रती होता है। व्रती से तात्पर्य होता है संन्यास व्रत लेने से।

(१) सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, वुध, बृहस्पति और शुक्र एक साथ हों।

(२) सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति और शनि एक साथ हों।
(३) सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, शुक्र और शनि एक साथ हों ॥२६॥

सितेन्दुजीवार्कजभानुलोहितैः सितार्किजीवार्कमृगाङ्कसोमजैः ॥
एकत्र यातैर्गगनाटनैः सदा भवन्ति जाता मुनयस्तपस्विनः ॥३०॥

यदि नीचे लिखे दोनों योगों में से कोई एक योग हो तो मनुष्य तपस्वी होता है। ऐसा मुनि लोगों ने कहा है:—

(१) सूर्य, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति, शुक्र और शनि एकत्रित हों।
(२) सूर्य, चन्द्र बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि एकत्रित हों ॥३०॥

कुजज्ञवागीशसितासितारुणैः सितार्किजीवेन्दुजचन्द्रभूमिजैः।
बलप्रधानैर्गगनाटनैर्यदा यदि प्रजातः पुरुषस्तपस्विनाम् ॥३१॥

इसमें दो योग बताये गये हैं। दोनों योगों में से कोई एक होने से मनुष्य तपस्वी होता है :—

(१) सूर्य, मंगल, बुध बृहस्पति, शुक्र और शनि ये पूर्ण बली हों और एकत्र हों।
(२) चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र व शनि पूर्ण बली हों और एकत्रित हों ॥३१॥

रवीन्दुवागीशदिनेशपुत्रैः शनैश्चरेन्द्वर्कसितैरवश्यम्।
रवीन्दुपुत्रक्षितिजामरेज्यैस्तपस्विनो मूलफलाशनाः स्युः ॥३२॥

यदि नीचे लिखे तीन योगों में कोई एक हो तो फल मूल खाने वाला तपस्वी होता है।

(१) सूर्य, चन्द्र, गुरु, और शनि एक साथ हों।
(२) सूर्य, चन्द्र, शुक्र, और शनि एकत्र हों।
(३) सूर्य, मंगल, बुध और बृहस्पति चारों एक भाव में हों ॥३२॥

वक्रार्कसोमात्मजदानवेज्या भौमेन्दुवागीशशशाङ्कपुत्राः।
एकर्क्षगा जन्मनि यस्य जन्तोर्भवेद्यती वल्कलभूतिधारी ॥३३॥

निम्नलिखित दोनों योगों में से कोई एक हो तो वह वल्कल और विभूति धारण करने वाला तपस्वी होता है:—

(१) सूर्य, मंगल, बुध, शुक्र एकत्र हों ।

(२) चन्द्र, मंगल, बुध, वृहस्पति एक साथ हों ।।३३।।

शशीन्दुसूनुक्षितिजार्कपुत्रा बुधक्षमापुत्रसुरेज्यसौराः ।
एकत्रगा यस्य नरस्य जातं कुर्वन्ति ते तापसमेव शान्तम् ।।३४।।

निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो तो जातक शुद्ध अंतःकरण से शान्त होकर निश्चय ही तपस्या करता है ।

(१) चंद्र, मंगल, बुध और शनि एकत्र हों ।

(२) मंगल, बुध, वृहस्पति, शनि एक साथ हों ।।३४।।

चन्द्रार्कभार्गवशशाङ्कसुता बलिष्ठा
भौमेन्दुपुत्रसितभास्करनन्दनाश्च ।
मन्देन्दुवाक्पतिसिता नियतं यतीनां
कुर्वन्ति जन्म कृतवल्कफलाशनानाम् ।।३५।।

नीचे लिखे किसी योग में से निश्चय ही वल्कल पहनने वाला फलमूल खाने वाला तपस्वी होता है:—

(१) सूर्य, चंद्र, बुध, शुक्र एक साथ हों ।

(२) मंगल, बुध, शुक्र, शनि एकत्र हों ।

(३) चंद्र, वृहस्पति, शुक्र, शनि एक भाव में हों ।।३५।।

रविशशिकुजशुक्रैश्चन्द्रभौमज्ञसूर्यै-
र्गुरुसितरविमन्दैः शुक्रमन्देन्दुजीवैः ।
कुजबुधसितचन्द्रैरेभिरेकर्क्षयातै-
र्भवति गिरिवनौकास्तापसः सर्ववन्द्यः ।।३६।।

निम्नलिखित योग में से कोई योग हो तो जातक पर्वत और वन में निवास करता हुआ तपस्या करता है और लोग उसकी वन्दना करते हैं:—

(१) सूर्य, चंद्र, मंगल और शुक्र एक साथ हों ।

(२) सूर्य, चन्द्र, मंगल और बुध एकत्र हों ।

(३) सूर्य, वृहस्पति, शुक्र और शनि एक भाव में हों ।

(४) चन्द्रमा, वृहस्पति, शुक्र और शनि एकत्र हों ।

(५) चन्द्रमा, मंगल, बुध और शुक्र एक साथ हों ॥३६॥

सितशशिकुजगुरुमन्दैश्चन्द्रेन्दुजभौमगुरुशुक्रैः ।
रविकुजशनिबुधजीवैर्भवति यती दुःखितो दीनः ॥३७॥

शुक्र, चन्द्रमा, मंगल, गुरु, शनि या चन्द्रमा, बुध, मंगल, गुरु, शुक्र या सूर्य, मंगल, शनि, बुध, बृहस्पति एक साथ हों तो जातक दीन, दुखी यति हो ॥३७॥

कुजार्किदेवेज्यसितेन्दुपुत्रैः शनीनसोमात्मजचन्द्रभौमैः ।
नभश्चरैरेकगृहोपयातैर्जटाधरा वल्कलधारिणः स्युः ॥३८॥

निम्नलिखित कोई योग होने से जातक जटा और वल्कलधारी संन्यासी होता है:—

(१) मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि एक राशि में होने से ।
(२) सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध और शनि के एक भाव में बैठने से ॥३८॥

भान्विन्दुजेन्दुकुजजीवसुरारिपूज्यैः
सूर्येन्दुभौमगुरुशुक्रदिनेशपुत्रैः ।
प्राप्नोत्यवश्यमिह तापसरूपमेभि-
रेकर्क्षगैर्गगनचारिभिरायताक्षः ॥३९

निम्नलिखित कोई सा योग होने से जातक विशाल नेत्र वाला तपस्वी होता है:—

(१) सूर्य, चन्द्र मंगल, बुध, बृहस्पति शुक्र यदि एक भाव में हों ।
(२) सूर्य, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति, शुक्र और शनि एक साथ हों ॥३९॥

न वीक्षितश्चेदितरग्रहेन्द्रैर्लग्नाधिपः पश्यति भानुपुत्रम् ।
लग्नाधिपं वा यदि भानुपुत्रः संन्यासयोगो हि बलेन हीनम् ॥४०॥

इसमें दो योग बताये गये हैं :—

(१) लग्नेश शनि को देखता हो और अन्य ग्रह लग्नेश को न देखते हों तो वह संन्यासी होता है ।
(२) यदि शनि बलहीन लग्नेश को देखता हो तो भी संन्यासी होता है ॥४०॥

चन्द्रे भानुसुतेक्षिते रविसुतद्रेक्काणयाते तथा
भिक्षुर्मन्दनिरीक्षिते रविसुतक्षोणीसुतांशे विधौ ।

संन्यासप्रदखेचरः सगुलिकः साहिध्वजो वा यदि
क्रूरांशोपगतः करोति विगताचारं यतीनां ध्रुवम् ॥४१॥

इसमें ५ योग वताये गये हैं:—

(१) शनि के द्रेष्काण में चन्द्रमा को शनि देखता हो तो जातक भिक्षु (एक प्रकार का संन्यासी) होता है।

(२) मंगल, किंवा, शनि के नवांश में चन्द्रमा हो और शनि उसको देखता हो तो वह भिक्षु होता है।

(३) संन्यासप्रद ग्रह के साथ गुलिक हो तो आचारहीन यति होता है।

(४) संन्यासप्रद ग्रह राहु या केतु के साथ हो तो आचारहीन यति होता है।

(५) यदि संन्यासप्रद ग्रह क्रूरांश में हो तो आचारहीन संन्यासी होता है ॥४१॥

रविलुप्तकरैरदीक्षिता बलिभिस्तद्गतभक्तयो नराः।
अभियाचितमात्रदीक्षिता निहतैरन्यनिरीक्षितैरपि ॥४२॥

इसमें ३ योग वताये गये हैं:—

(१) प्रव्रज्याकारक सूर्य के साथ अस्त हो तो संन्यास में दीक्षित नहीं होता। सूर्य से वारह अंश तक चन्द्रमा अस्त होता है। और १७ अंश तक मंगल अस्त रहता है। वुध यदि मार्गी हो तो १० अंश तक और यदि वक्री हो तो १२ अंश तक अस्त रहता है। वृहस्पति, सूर्य के ११ अंश के अन्दर अस्त होता है। शुक्र मार्गी हो तो १० अंश तक अस्त और वक्री हो तो ८ अंश तक अस्त होता है। शनि १५ अंश तक अस्त रहता है।

(२) यदि ग्रह वली हो—प्रव्रज्याकारक ग्रह—और अस्त हो तो मनुष्य उस प्रव्रज्या में श्रद्धा रखने वाला होता है। संन्यास नहीं लेता।

(३) यदि ग्रह और ग्रहों से युद्ध में जीते हुए हो या दृश्य हो तो दीक्षा की याचना मात्र करता है। दीक्षित नहीं होता ॥४२॥

जीविका योग

अर्थाप्तिः पितृजननीसपत्नमित्र-
भ्रातृस्त्रीभृतकजनाद्दिवाकराद्यैः।

होरेन्द्वोर्दशमगतैर्विकल्पनीया
भेन्द्वर्कास्पदपतिगांशनाथवृत्त्या ।।४३।।

अब जीविका कैसे हो इसका वर्णन करते हैं । लग्न से अथवा चन्द्रमा से दशम स्थान से

(१) यदि सूर्य हो तो पिता से धन मिले ।
(२) यदि चन्द्रमा हो तो माता से धन मिले।
(३) यदि मंगल हो तो शत्रुओं से अर्थ प्राप्ति हो।
(४) यदि बुध हो तो मित्रों से धन प्राप्ति हो ।
(५) यदि वृहस्पति हो तो भाई से ।
(६) यदि शुक्र हो तो स्त्री से ।
(७) यदि शनि हो तो नौकरों से धन मिले ।

यदि चन्द्रमा और लग्न दोनों से दशम में ग्रह हो तो वे अपनी-अपनी दशा में फल देंगे । यदि दशम में बहुत से ग्रह हों तो अपनी-अपनी दशा में लाभ करायेंगे।

यह एक प्रकार हुआ । चन्द्रमा और दशम से ही नहीं, प्रत्युत लग्न से भी अर्थात् लग्न, चन्द्रमा और सूर्य तीनों से । यह देखिए कर्म स्थान कहाँ पर है। इन कर्म स्थान के स्वामियों का नवांश देखिये। नवांशपति की गिनती के अनुसार धन उपार्जन जातक करता है।

उदाहरण के लिए किसी का कर्क लग्न है तो दशमेश मंगल हुआ । यह मंगल किसके नवांश में है ?

दूसरा उदाहरण लीजिए । किसी का सूर्य धनु राशि का है इससे दशम स्थान कन्या हुआ । अब देखिये कन्या का स्वामी बुध होता है । यह देखिये कि बुध किसके नवांश में है । इस नवांश पति की वृत्ति से धन उपार्जन होगा । मान लीजिए किसी का चन्द्रमा मिथुन में है । मिथुन से दशम मीन है । इस मीन का स्वामी वृहस्पति हुआ तो यह देखिए कि वृहस्पति किसके नवांश में है। इस नवांश पति के अनुसार धन उपार्जन होगा ।।४३।।

अर्थाप्ति कथयेद्विलग्नशशिनोर्मध्ये बली यस्ततः ।
कर्मेशस्थनवांशराशिपवशाद् वृत्ति जगुस्तद्विदः ।

यह बात ऊपर समझा जा चुके हैं कि लग्न और चन्द्रमा में से जो बलवान् हो उससे विचार कीजिए कि उससे दशम का स्वामी किस जगह बैठा है अर्थात्

किस नवांश में बैठा है । उसी नवांश पति के अनुसार उसकी आजीविका होती है । हमारे विचार से यह एक मात्र उपाय नहीं है । क्योंकि लिखा है कि लग्न, द्वितीय और एकादश में शुभ-ग्रह अनेक मार्ग से धन संचय कराते हैं।

ग्रह किस मार्ग से द्रव्य उपार्जन कराते हैं

भैषज्योर्णतृणाम्बुधान्यकनकव्यापारमुक्तादिकै-
रन्योन्यागमदूतवृत्तिभिरिनस्यांशे तु जीवत्यसौ ॥४४॥

जलोद्भवानां क्रयविक्रयेण कृषेश्च मृद्वाद्यविनोदमार्गात् ॥
राजाङ्गनासंश्रयवित्तरूपान्निशाकरांशे वसनक्रयाद्वा ॥४५॥

धातोर्विवादेन रणप्रकारात् स्तब्धाग्निवादात् कलहप्रवृत्त्या ।
जीवत्यसौ साहसमार्गरूपाद्‌ धरासुतांशे यदि चौरवृत्त्या ॥४६॥

शिल्पादिकाव्यागमशास्त्रमार्गाज्ज्योतिर्गणज्ञानवशाद्‌ बुधांशे ॥
परार्थवेदाध्ययनाज्जपाच्च पुरोहिताद्याज्यवशात् प्रवृत्तिः ॥४७॥

जीवांशके भूसुरदेवतानामुपासनाध्यापकरूपमार्गात् ।
पुराणशास्त्रागमनीतिमार्गाद्धर्मोपदेशैरकुसीदमाहुः ॥४८॥

सुवर्णमाणिक्यगजाश्वमूलाद्‌ गवां क्रयाज्जीवनमाहुरार्याः ।
गुडौदनक्षारदधिक्रयेण स्त्रियाः प्रलोभेन भृगोः सुतांशे ॥४९॥

शन्यंशके कुत्सितमार्गवृत्त्या शिल्पादिभिर्दारुमयैर्वधाद्यैः ।
विन्यस्तभाराज्जनविप्रलम्भादन्योन्यवैरागममार्गमूलात् ॥५०॥

इसमें सात योग बताये गये हैं:—

(१) यदि लग्न या चन्द्रमा से दशम स्थान का स्वामी सूर्य के नवांश में हो तो औषध से अर्थात् दवा दारू से, ऊन या ऊनी वस्त्रों से, घास से, पानी में उत्पन्न होने वाले धान से, सोना, मोती, आदि के व्यापार से, मोती से इधर-उधर दूत का कार्य करने से धन कमाता है ।

(२) लग्न या चन्द्रमा से दशमेश यदि चन्द्रमा के नवांश में हो तो मोती, सिंघारा, मछली आदि के कार्य करने से या व्यापार से द्रव्य कमाता है । ऐसा जातक खेती से, मिट्टी के खिलौने आदि वस्तुओं से, बाजे

श्रादि विनोद के साधनों से, वस्त्र बनाना या व्यापार से या रानी की कृपा से अपनी श्राजीविका चलाता है ।

(३) यदि लग्न या चन्द्रमा से दशम का स्वामी मंगल के नवांश में हो तो जातक सोना श्रादि से (स्वर्ण का काम या व्यापार से) विवाद से, संग्राम से, कोयले श्रादि से, कला से श्रौर साहस के कार्यों से तथा चोर की वृत्ति से धन कमाता है ।

(४) यदि लग्न या चन्द्रमा से दशम के नवांश का स्वामी बुध हो तो शिल्प कार्य से, चित्र, पुस्तक श्रादि के लेखन से, वस्त्र श्रादि के निर्माण से, काव्य से, श्रागम शास्त्र मार्ग से, श्रर्थात् संहितादि शास्त्र ज्ञान से, ज्योतिष से, पौरोहित्य कर्म से, वेद मन्त्रों के जप से श्रौर वेद के अध्ययन से लाभ होता है ।

(५) श्रगर लग्न या चन्द्रमा से दशम स्थान का स्वामी बृहस्पति के नवांश में हो तो देवताश्रों के श्रौर ब्राह्मणों के पूजन से, पढ़ाने से, पुराण शास्त्र श्रादि से, धर्म उपदेश से श्रौर सूद से श्राजीविका होती है ।

(६) यदि चन्द्रमा श्रथवा लग्न से दसवें का मालिक शुक्र से नवांश में हो तो स्वर्ण, मुक्ता, मानिक श्रादि रत्न के कार्य से, गुड़ से, चीनी से, दही से, गायों के व्यापार से, लोगों के मनोरंजन के लिए यथा सिनेमा श्रादि श्रौर स्त्रियों के प्रलोभन से श्राजीविका होती है ।

(७) यदि चन्द्रमा अथवा लग्न से जन्म स्थान का मालिक शनि के नवांश में हो तो कुत्सित मार्ग से, लकड़ी के कार्य की कारीगरी से, वध से, दूसरों को पीड़ा पहुंचाने से, वोझा ढोने से श्रौर लोगों को धोका देने से तथा परस्पर लड़ाई लगाने से धन लाभ होता है ।

नोटः—केवल लग्न श्रौर चन्द्रमा से दशम स्थान के स्वामी के नवांश से यह फल कहा है । परन्तु सूर्य से दशम स्थान का स्वामी जैसे नवांश में हो उसके अनुसार भी श्राजीविका होती है ।।४४-५०।।

सौम्यैश्चतुष्केन्द्रगृहोपयातैः कुलोत्तमा वंशकरा नृपालाः ।
सर्वज्ञधीवित्तयशोगुणाढ्या नरा नृपप्रीतिकराश्च वा स्युः ।।५१।।

चारों केन्द्र शुभ ग्रह से भरे हुए हों तो श्रपने कुल में मनुष्य श्रेष्ठ होता है श्रौर वंश वृद्धि करने वाला होता है । राजा हो, वेद शास्त्र का ज्ञाता हो, बुद्धिमान्, धनवान्, गुणी, यशस्वी श्रौर राजा को प्रसन्न करने वाला हो ।

चारों केन्द्र पाप ग्रह से आक्रान्त हों तो उलटा फल देते हैं ।

पापैश्चतुष्केन्द्रगृहोपयातैः
नीचव्रताचाररताश्च निःस्वाः ।
मूर्खाः परस्त्रीपरवित्तशीलाः
शूराः कदाचिन्नृपतिप्रियाः स्युः ॥५१॥

कर्मकर्मांशगाः सौम्या जातः पुण्यरतः सदा ॥
पापिनः पापकर्मात्मा चन्द्राद्वा यदि जायते ॥५२॥

लग्न से या चन्द्रमा से दशम में या दशम के नवांश में यदि सौम्य ग्रह हों तो जातक सदैव पुण्य कार्य करने वाला होता है । यदि पाप ग्रह हों तो पाप कर्म करने वाला हो ॥५२॥

कर्मराश्यंशपो यत्र तदीशः पापखेचरः ।
धूमादिग्रहसम्बन्धी यदि पापरतो भवेत् ॥५३॥

दशम स्थान का स्वामी जहाँ पर वैठा हो उस स्थान का स्वामी यदि पाप ग्रह हो और धूम आदि उपग्रह के साथ वैठा हो तो पाप कर्म करने वाला होता है ॥५३॥

सिद्धारम्भः कर्मगे चन्द्रलग्ना-
द्भानौ भौमे साहसी पापबुद्धिः ।
विद्वान् सौम्ये वाक्पतौ राजतुल्यः
शुक्रे भोगी भानुजे शोकतप्तः ॥५४॥

चन्द्रमा से यदि दसवें ग्रह में सूर्य हो तो जिस काम को प्रारम्भ करे उसकी सिद्धि अवश्य हो । चन्द्रमा से यदि दशम में मंगल हो तो पापवुद्धि और साहसी हो । चन्द्रमा से दशम स्थान में बुध के होने से जातक वुद्धिमान् और विद्वान् होता है और चन्द्रमा से दशम में यदि बृहस्पति हो तो वह मनुष्य राजा के समान वैभव पाता है । चन्द्रमा से यदि दशम में शुक्र हो तो नाना प्रकार के भोग भोगता है और चन्द्रमा से दशम शनि के होने से शोक संतप्त होता है ॥५४॥

चन्द्रात्कर्मगते रवौ सरुधिरे मत्तः परस्त्रीरतो-
ज्योतिर्विच्च सचन्द्रजे जलधनस्त्रीभूषणादिप्रियः ।

सिद्धार्थो नृपसंमतश्च सगुरौ शुक्रेण युक्ते नृप-
प्रीतिस्त्रीधनवृद्धिभाक् शनियुते दीनो दरिद्रो भवेत् ।।५५।।

चन्द्रमा से दशम दो ग्रहों का फल कहते हैं। चन्द्रमा से दशम

(१) यदि मंगल, सूर्य हो तो दूसरी स्त्री में रत हो अर्थात् व्यभिचारी हो।

(२) सूर्य और बुध हो तो, जलमार्ग से धनी हो अर्थात् जल में उत्पन्न वस्तुओं से किंवा, इम्पोर्ट के मार्ग से धन कमाये और ज्योतिष शास्त्र को वेचता हो ऐसा मनुष्य भूषण-प्रिय, स्त्री-प्रिय होता है।

(३) यदि सूर्य और बृहस्पति हो तो वह कार्य जो भी प्रारम्भ करता है वह सफल हो जाते हैं और राजा का कृपापात्र होता है।

(४) यदि सूर्य और शुक्र साथ हों तो राजा का कृपापात्र हो। धनी हो और स्त्रियों का आनन्द उठाये।

(५) यदि सूर्य, शनि हो तो दीन और दरिद्री हो।

इस प्रकार चन्द्रमा से दशम में २ ग्रहों का फल बताया है। अब आगे और ग्रहों का फल बतायेंगे ।।५५।।

चन्द्रात्कर्मणि भूसुते बुधयुते शास्त्रोपजीवी भवेत्
सेज्ये नीचजनाधिपः सभृगुजे वैदेशिकः स्याद्वणिक् ।
सार्कौ साहसिकोऽसुतश्च शशिनः कर्मस्थिते बोधने
सेज्ये षण्ढतनुश्च दीनवचनः ख्यातो नृपालप्रियः ।।५६।।

माने चन्द्रमसो बुधे सभृगुजे विद्यावधूवित्तवान्
सार्कौ पुस्तकलेखकश्च विषमाचारप्रवृत्तोऽथवा ।
जीवे शुक्रयुते तु विप्रजनपो भूपप्रियः पण्डितः
सार्कौ सर्वजनोपतापचतुरो जातः स्थिरारम्भधीः ।।५७।।

सुगन्धनीलचूर्णादिचित्रकारो भिषग्वणिक् ।
कर्मस्थानगते मन्दे सासुरेज्ये निशाकरात् ।।५८।।

चन्द्रमा से दसवें स्थान में:—

(१) यदि मंगल, बुध हों तो शास्त्रों के द्वारा आजीविका उपार्जन करता है।

(२) यदि मंगल और बृहस्पति हों तो नीच आदमियों का स्वामी हो।

(३) यदि मंगल और शुक्र हों तो विदेश में रहे और व्यापार करे।

(४) यदि मंगल और शनि चन्द्रमा से दशम में हों तो सन्तान नहीं होती किन्तु मनुष्य साहसी होता है।

यदि चन्द्रमा से दशम में—

(१) बुध और बृहस्पति हों तो दीन वचन बोले। विख्यात हो और राजा का प्रिय हो किंतु उस आदमी का शरीर नपुंसक की तरह हो।

(२) यदि बुध और शुक्र दशम में हों तो विद्या, स्त्री, वित्त का सुख पूरा रहे।

(३) यदि बुध, और शनि हो तो पुस्तक लिखने में प्रवीण हो। किंवा अनुचित आचार-व्यवहार हो।

यदि चन्द्रमा से दशम में:—

(१) बृहस्पति, शुक्र हो तो ब्राह्मणों में मुख्य विद्वान् और राजा का प्रिय कृपा पात्र हो।

(२) यदि बृहस्पति और शनि एक साथ हों तो सब आदमियों को पीड़ा पहुंचाये तथा कार्य दृढ़ संकल्प से पूर्ण करे।

(३) यदि चन्द्रमा से दशम में—शुक्र, शनि हों तो सुगन्धि का व्यापार करे और वैद्य अथवा बनिया हो, व्यापारी हो, चित्रकार हो ।।५६-५८।।

आज्ञा विचार

आज्ञास्थानाधिपे सौम्ये शुभयुक्ते क्षितेऽपि वा।
शोभनांशगते वाऽपि जातस्त्वाज्ञाधरो भवेत् ।।५९।।
आज्ञाधिपे मन्दयुते रन्ध्रनाथेन वीक्षिते।
क्रूरांशे केन्द्रराशौ वा क्रूराज्ञां प्रकरोति सः ।।६०।।

दशम भवन का स्वामी शुभ ग्रह हो और शुभ ग्रह के साथ हो या शुभ ग्रह से वीक्षित या शुभ ग्रह के अंश में हो तो जातक आज्ञा देने वाला होता है अर्थात् वह ऐसे पद पर होता है कि उसकी आज्ञा और लोग मानते हैं ।।५९।।

दशम स्थान का स्वामी शनि से युक्त हो और आठवें भाव के स्वामी से देखा जाता हो और क्रूरांश में हो, किंवा केन्द्र में हो तो क्रूर आज्ञा देता है ।। ६० ।।

कीर्ति-मान-कृषि-व्यापार-निद्रा-विचार

कर्कटस्थे निशानाथे गुरुशुक्रनिरीक्षिते।
पारावतादिभागस्थे सत्कीर्तिर्धनवान् भवेत् ।।६१।।

इस श्लोक में कीर्ति का विचार है। निम्नलिखित योगों में से जातक सत्कीर्ति वाला वा धनी होता है:—

चन्द्रमा कर्क राशि में हो और बृहस्पति तथा शुक्र से वीक्षित हो तथा चन्द्रमा अपने पर्वतादि भाग में हो। पर्वतादि योग के लिए देखिए अध्याय १, श्लोक ४५-४७ तक ॥६१॥

मानेशे शुभसंयुक्ते शुभमध्यगतेऽपि वा।
शुभग्रहांशके वाऽपि कीर्तिमानभिमानवान् ॥६२॥

निम्नलिखित योग होने से जातक कीर्तिमान् और अभिमानी हो:—

दशम स्थान का स्वामी शुभ ग्रह के साथ हो या शुभ ग्रहों के बीच में हो या शुभ अंश में हो इस प्रकार ३ योग बताये। शुभ ग्रह के साथ होना, शुभ के बीच में होना और शुभ ग्रह के अंश में होना ॥६२॥

पापेक्षिते कर्मणि पापयुक्ते मानाधिपे हीनबलोपयाते।
जातोऽपवादी विगताभिमानः स्वकर्मतेजोबलकीर्तिहीनः ॥६३॥

निम्नलिखित योग होने से जातक को कलंक लगता है और वह अभिमान रहित होता है। वह अपने कर्म से, बल से, तेज से और कीर्ति से हीन होता है अर्थात् उसको यश नहीं मिलता, लोग उसकी बदनामी करते हैं:—

दशम स्थान का स्वामी बल रहित होकर दशम स्थान में बैठे और पाप ग्रह द्वारा दृष्ट हो तथा पाप ग्रह से युत हो ॥६३॥

कर्मेशतन्नवांशेशौ शनिसम्बन्धसंयुतौ।
षष्ठाधिपयुतौ दृष्टौ बहुदारान्वितो भवेत ॥६४॥

निम्नलिखित श्लोक में वह योग बताया है जो होने से जातक बहुत स्त्रियों वाला हो:—

दशमेश और उसका नवांशेश शनि के साथ हो या शनि से सम्बन्ध करे और षष्ठेश से (छठें स्थान का स्वामी) युत या दृष्ट हो ॥६४॥

भूसूनुक्षितिराशिपौ च बलिनौ केन्द्रत्रिकोणायगौ
कर्मेशे भृगुचन्द्रवीक्षितयुते कृष्यादिगोवित्तवान्।
सम्बन्धी यदि कर्मणः शशिसुतो वाणिज्यशीलः सदा
सौम्यासौम्ययुते तु सात्त्विकतमो निद्री विमिश्रेऽन्यथा ॥६५॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं:—

(१) चतुर्थेश और मंगल बली होकर केन्द्र व त्रिकोण में हो या एकादश में हो और दशम स्थान का स्वामी चन्द्रमा और शुक्र से युत या वीक्षित हो तो जातक की बड़ी खेती होती है और वह गायों का मालिक होता है व धनी भी होता है।

(२) यदि दशम स्थान का सम्बन्ध बुध से हो तो वह आदमी सदा व्यापार करता है।

(३) यदि दशम भाव शुभ ग्रह से युत हो तो सात्त्विक निद्रा वाला होता है। यदि दशम भाव का स्वामी पाप ग्रह से युत हो तो तमोनिद्रा वाला होता है। यदि शुभ और पाप दोनों प्रकार के ग्रह से सम्बन्ध हो तो मिला-जुला फल कहना चाहिए अर्थात् कभी सात्त्विक निद्रा तो कभी तामसिक निद्रा ॥६५॥

लाभ भाव फल

लाभस्थानेन लग्नादखिलधनचयप्राप्तिमिच्छन्ति सर्वे
लाभस्थानोपयातः सकलबलयुतः खेचरो वित्तदः स्यात्।
भानुश्चेज्ज्ञातिवर्गादतिधनमुडुपो मातृवर्गेण भौमः
स्वोत्थाच्चान्द्रिर्यदीष्टप्रभुविबुधसुहृन्मातुलैर्वित्तमेति ॥६६॥

जीवो यच्छति वेदशास्त्रयजनाचारादिपुत्रैर्द्धनं
शुक्रः स्त्रीजनकाव्यनाटककलासङ्गीतविद्यादिभिः।
दासीदासकृषिक्रियार्जितधन धान्यं समृद्धं शनि-
र्विप्रादिद्युचरेण वीक्षितयुते विप्रादयो वित्तदाः ॥६७॥

लाभ भाव से अर्थात् एकादश भाव से क्या-क्या विचार करना चाहिए। लग्न से ग्यारहवें भाव से सम्पूर्ण धन का आगम, आय प्राप्ति का विचार सभी आचार्यों ने कहा है। द्वितीय से संचित धन, पंचम से अकस्मात् धन प्राप्ति, नवम से भाग्य (जिसके अन्दर आय भी शामिल है।), दशम से आजीविका से धन और एकादश से सम्पूर्ण धन आगम आय प्राप्ति का विचार किया जाता है।

इसमें १२ योग कहे गये हैं:—

(१) प्रत्येक बल से युत ग्रह चाहे वह पाप ग्रह हो या शुभ ग्रह, लाभ स्थान में बैठा हो तो धन का आगम कराता है।

(२) सूर्य यदि वलवान् होकर लाभ स्थान में हो अर्थात् ग्यारहवें बैठे तो अपनी जाति से लाभ हो ।

(३) चन्द्रमा यदि वलवान् होकर एकादश स्थान में बैठे तो माता, मौसी वगैरह से धन का लाभ हो ।

(४) मंगल यदि वलवान् होकर लाभ स्थान में बैठे तो भाइयों से लाभ कहे।

(५) यदि बुध वलवान् होकर ग्यारहवें स्थान में बैठे तो मामा से, प्रभु से, देवता से और मित्र से लाभ हो ।

(६) यदि गुरु वलवान् होकर लाभ स्थान में बैठे तो वेद-शास्त्र यज्ञ आदि, आचार एवं पुत्रों से धन लाभ हो ।

(७) शुक्र यदि वलवान् होकर एकादश स्थान में हो तो स्त्रियों से लाभ हो, अपनी स्त्री से किंवा, दूसरी स्त्री से यह भेद नहीं है और काव्य, कला, गाना-वजाना, विद्या से भी लाभ हो ।

(८) शनि यदि वलवान् होकर एकादश स्थान में बैठे तो खेती-बारी से, नौकर-नौकरानी से समृद्ध हो और इनके द्वारा धन उपार्जन करे ।

(९) यदि लाभ स्थान में सूर्य अथवा मंगल हो किंवा दोनो हों तो क्षत्रिय जाति से लाभ हो ।

(१०) यदि बृहस्पति और शुक्र, एकादश स्थान में हों, एक अथवा दोनों हों तो ब्राह्मणों से लाभ हो ।

(११) यदि चन्द्रमा एकादश स्थान में हो तो वैश्य वर्ग से लाभ हो।

(१२) यदि बुध एकादश स्थान में हो तो शूद्र वर्ग से लाभ हो । यदि शनि ग्यारहवें स्थान में हो तो म्लेच्छ जाति से लाभ हो ।

ऐसा प्रायः तब होता है जब ग्रह बलवान् होता है और जो योगफल एकादश में बैठने का कहा गया है वही फल तब होता है जब उस ग्रह से एकादश स्थान दृष्ट हो ।।६६-६७।।

आयस्थः शुभखेचरः शुभधनं पापस्तु पापार्जितं
मिश्रैर्मिश्रधनं समेति मनुजस्तज्जातकोक्तं वदेत् ।
लाभस्थानगतः समस्तगुणवानिष्टाधिकश्चेद्बली
जातो यानविभूषणाम्बरवधूभोगादिविद्याधिकः ।।६८।।

इसमें दो योग बताये गये हैं:—

(१) यदि एकादश स्थान में शुभ ग्रह हो तो शुभ उपायों से—सन्मार्ग से धन देता है। यदि पाप ग्रह हो तो पाप मार्ग से—रिश्वत आदि से धनोपार्जन होता है। यदि शुभ और पाप दोनों हों तो दोनों मार्गों से धन देता है।

(२) लाभ स्थान में अधिक बलशाली ग्रह हों तो जातक गुणी तथा मित्र वाला होता है। उसको स्त्री, वस्त्र, आभूषण, भोग, सवारी प्राप्त होते हैं और वह विद्वान् होता है ॥६८॥

वित्तेशायगृहाधिपौ तनुपतेरिष्टग्रहौ चेद्धनं
सत्कर्मामरविप्रपुण्यविषये दानादियोग्यं वदेत् ।
आयस्थो विबलः पराजितबलो नीचारिदुःस्थानपो
रेकायोगकरो यदि प्रतिदिनं कुर्वीत भिक्षाटनम् ॥६९॥

इसमें दो योग बताये हैं:—

(१) यदि एकादश भाव का स्वामी और द्वितीय स्थान का स्वामी दोनों लग्नेश के मित्र हों तो उस मनुष्य का धन सन्मार्ग में व्यय होता है। सन्मार्ग क्या ? अच्छे कर्मों में यथा देवता, ब्राह्मण, दान, पुण्य में।

(२) यदि कोई बलहीन युद्ध में पराजित, नीचगत या शत्रु-ग्रही या दुःस्थान का स्वामी यानी छठे, आठवें, बारहवें का स्वामी और रेका योग करने वाला ग्रह ग्यारहवें स्थान में बैठा हो तो वह मनुष्य निश्चय भीख मांगे अर्थात् उसकी कोई आमदनी न हो। रेका योग अध्याय ६ में बताये गये हैं ॥६९॥

लाभेशे दिनपेऽथवा शशधरे भूपालतुल्याश्रयाद्
भौमे मन्त्रिजनाग्रजानुजकृषिद्वारैर्धनं लभ्यते ।
विद्याबन्धुसुतैः सुधाकरसुते जीवे निजाचारतः
शुक्रे रत्नवधूगजादिपशुभिर्मन्दे कुवृत्त्या श्रियम् ॥७०॥

इसमें ६ योग बताये गये हैं:—

(१) यदि सूर्य या चन्द्रमा ग्यारहवें भाव के स्वामी हों तो राजा के सदृश महान् आदमी के आश्रय से धन प्राप्त होता है।

(२) यदि मंगल ग्यारहवें भाव का स्वामी हो तो राजा के मंत्री के आश्रय से धन प्राप्त हो और छोटे और बड़े भाई के द्वारा खेती से भी लक्ष्मी प्राप्त हो।

(३) यदि बुध ग्यारहवें भाव का स्वामी हो तो जातक को विद्या, बन्धु वान्धव तथा पुत्र से धन लाभ हो। विद्या, बन्धु क्या ? ज्योतिष, अध्यापन की वृत्ति तथा विद्या का जिन व्यवसायों में काम पड़ता है।

(४) यदि बृहस्पति ग्यारहवें भाव का स्वामी हो तो अपने आचार से अर्थात् अपने उत्तम आचरण से धन लाभ हो।

(५) यदि शुक्र ग्यारहवें स्थान का स्वामी हो तो स्त्रियों से, रत्नों से, हाथी आदि पशुओं से धन लाभ हो।

(६) यदि शनि लाभ स्थान का स्वामी हो तो कुत्सित वृत्ति से धन लाभ हो। कुत्सित वृत्ति क्या ? खराव मार्ग से, परिश्रम से, छोटे काम से ॥७०॥

लाभस्थानपतौ विलग्नभवनात् केन्द्रत्रिकोणस्थिते
लाभे पापसमन्विते तु धनवान् तुङ्गादिराश्यंशके।
तत्तत्कारकवर्गतो बलवशाद् योगानुसारं वदेत्
तत्तत्खेटदशापहारसमये वित्तं वदेत्तद्दिशि ॥७१॥

इसमें तीन योग वताये गये हैं:—

(१) यदि एकादश भाव का स्वामी लग्न से केन्द्र या त्रिकोण में हो और लाभ स्थान में पाप ग्रह उच्च राशि का स्वराशि का, उच्चनवांश का, स्वनवांश का पड़ा हो तो जातक धनवान् होता है।

(२) लाभकारक कौन सा ग्रह है यह देखिये। उस ग्रह की जैसी अवस्था होगी अर्थात् वलवान् होगा तो विशेष लाभ और निर्वल होगा तो कम लाभ होगा। दूसरे यह भी देखिये कि यह लाभ का कैसा योग बनाता है। जैसे ग्रहों के साथ योग वनायेगा उत्तम, मध्यम या अधम—वैसा ही लाभ देगा। इन सब में यह भी तारतम्य कर लेना चाहिए कि जिस दिशा, जिस जाति, जिस मार्ग से धन लाभ विविध ग्रहों का कहा गया है उन सब का फल होता है।

(३) उस ग्रह की दशा में जो ग्रह लाभ दिलाने वाला कहा है उस दिशा में लाभ होता है। ग्रंथकार ने लिखा है कि अपहार समय में लाभ होता है अर्थात् अन्तर्दशा में लाभ होता है। दशा और अन्तर्दशा दोनों ही अर्थ लेना सम्भव है ॥७१॥

व्यय भाव फल

लग्नादन्त्यतदीशभानुतनयैर्दूराटनं दुर्गतिं
दातृत्वं शयनादिसौख्यविभवं वित्तक्षयं चिन्तयेत् ।
रिष्फस्थे चरखेचरे चरगृहे दुःस्थाननाथेऽथवा
नानादेशवनाटनो हि शनिना युक्तेऽथवाऽऽलोकिते ।।७२।।

अब व्यय भाव का विचार कहते हैंः—

व्यय भाव से, व्यय भाव के स्वामी से और शनि से दूर देश का भ्रमण कहना चाहिए अर्थात् लम्बी यात्रा और प्रवास का विचार इन तीनों से करना। इसी भाव से यातना अर्थात् कष्ट, दुर्गति, दानकर्म और शैय्या का विचार करना चाहिए। शैय्या विचार या शयन सुख विचार से तात्पर्य है स्त्री भोग। इससे और भी भोगों का विचार किया जाता है । और धन का व्यय कैसे होगा अपव्यय, सद्व्यय इसका विचार इसी भाव से करना ।

यदि बारहवें भाव में चर ग्रह हों (अध्याय २ श्लोक ४७) या चर राशि में दुष्ट स्थान का स्वामी शनि से दृष्ट अथवा युत हो तो नाना देश और वनों का भ्रमण करता है। चर ग्रह चन्द्रमा है, बुध भी एक प्रकार से चर ग्रह है। चर राशि मेष, कर्क, तुला और मकर हैं । दुष्ट स्थान या दुःस्थान ६, ८, १२ हैं ।।७२।।

व्यय विचार

रिष्फस्थानगते शुभे शुभयुते सौम्यग्रहालोकिते
तन्नाथे विबलेऽरिनीचगृहगे वित्तव्ययाभावभाक् ।
रिष्फस्थे विबले बलेन सहिते रिष्फाधिपे वित्तहा
मिश्रव्योमचरान्विते तु सकलं मिश्रव्ययं देहिनाम् ।।७३।।

इसमें तीन योग बताये गये हैंः—

(१) बारहवें स्थान में शुभ ग्रह बैठा हो और उसका स्वामी अर्थात् बारहवें स्थान का स्वामी निर्बल शत्रु गृह में, नीच राशि में बैठा हो तो धन का खर्च नहीं हो। कहने का तात्पर्य यह है कि बारहवें का स्वामी निर्बल हो और यदि नीच राशि का होगा या शत्रु राशि का होगा तो निर्बल होगा ।

(२) यदि बारहवें भवन का स्वामी बलवान् हो और बारहवें घर में निर्बल ग्रह बैठा हो तो वित्त का नाश करता है अर्थात् वित्तहा होता है।

(३) यदि वारहवां घर शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के ग्रहों से युत हो और वारहवें भवन का स्वामी भी कुछ निर्वलता के लक्षण लिए हो और कुछ वलवत्ता के तो सद्व्यय में खर्च होता है और अपव्यय भी होता है अर्थात् मिश्रफल समझना चाहिए ।।७३।।

इष्टव्ययो भवति शोभनवर्गयाते
दुष्टव्ययो विबलखेटयुतेक्षिते वा ।
यत्कारकद्युचरवर्णजनादनर्थं
जातः समेति बलहीनदशापहारे ।। ७४ ।।

इसमें तीन योग बताये गये हैं:—

(१) यदि वारहवें भवन का स्वामी शुभ वर्ग में हो तो शुभ व्यय होता है ।

(२) यदि वारहवें घर में निर्वल ग्रह वैठे या निर्वल ग्रह बारहवें घर को देखे तो अशुभ ग्रह होता है । शादी-व्याह, दान, परोपकार, धर्मशाला, वावली, अस्पताल आदि में खर्च करना शुभ-ग्रह से होता है । वीमारी, सट्टा, मुकदमा आदि में व्यय दुष्ट ग्रह करवाता है ।

(३) दुष्ट-फल-कारक-ग्रह जिस राशि का हो उसी जाति के द्वारा अपनी दशा अन्तर्दशा में जातक को कष्ट रहता है ।।७४।।

क्रूरग्रहे बलवति व्ययगेऽरिनाश-
स्थानाधिपे कृषिधनस्थितिनाशकः स्यात् ।
रिष्फे चतुर्द्विपदभे सह तत्पदेन
खेटेन सर्वपशुभृत्यविनाशमेति ।। ७५ ।।

इसमें दो योग बताये गये हैं:—

(१) यदि छठे भाव का स्वामी या आठवें भाव का स्वामी पाप ग्रह हो और बली हो और बारहवें स्थान में वैठे तो खेती-बाड़ी, धन और स्थान का नाश करता है ।

(२) अगर बारहवें भाव में चतुष्पाद राशि हो या द्विपाद राशि हो और उसमें चतुष्पाद या द्विपाद ग्रह क्रमशः वैठे तो चतुष्पाद होने से पशुओं का नाश होता है । द्विपाद होने से नौकरों का नाश होता है । धनु का उत्तरार्द्ध, सिंह, वृष, मकर का पहला भाग और मेष चतुष्पाद हैं । कन्या, मिथुन, कुंभ, तुला और धनु का पूर्वार्द्ध द्विपाद राशि हैं । शनि और मंगल चतुष्पाद ग्रह हैं । बृहस्पति और शुक्र द्विपाद ग्रह हैं ।।७५।।

विप्रादिखेचरयुते सति विप्रमुख्यैः
स्त्रीवर्गतस्तु तरुणीखचरेण युक्ते ।
रिष्फे नरग्रहयुते रिपुणा सुहृद्भि
जातः सुहृज्जनवशाद्धननाशमेति ।। ७६ ।।

वारहवें भाव में यदि वृहस्पति या शुक्र हो तो ब्राह्मणों पर व्यय करे। यदि सूर्य या मंगल हो तो क्षत्रियों पर व्यय करे। चन्द्रमा हो तो वैश्य द्वारा, बुध हो तो शूद्र पर और शनि, राहु या केतु हों तो म्लेच्छ वर्ग पर व्यय होता है। यदि चन्द्रमा व शुक्र हों तो स्त्री ग्रह के द्वादश में रहने से स्त्रियों पर खर्च हो। यदि वारहवें में पुरुष ग्रह अर्थात् सूर्य, मंगल, वृहस्पति हों तो शत्रु द्वारा व्यय कराते हैं किंतु यदि यह मित्र ग्रहों में हों तो मित्रों द्वारा धन नाश होता है।।७६।।

दान विचार

त्यागी शुभग्रहयुते कृषकश्च धर्मी
पापेऽवसानगृहगे तु विवादशीलः ।
नेत्रामयः पवनकृच्चपलोऽटनः स्या-
दुच्चस्वमित्रभवने तु परोपकारी ।।७७।।

इसमें तीन योग बताये गये हैं:—

(१) यदि वारहवें घर में शुभ ग्रह हो तो दानशील, खेती करने वाला तथा धर्मात्मा होता है।

(२) यदि पाप-ग्रह वारहवें भाग में हो तो विवाद करने वाला वात रोगी हो। चंचल प्रकृति और भ्रमण करने वाला हो, वातव्याधि के कारण नेत्र रोगी होता है।

(३) यदि अपने उच्च राशि में, स्वराशि में, किंवा, मित्र राशि में ग्रह हो तो परोपकारी हो अर्थात् दूसरों का उपकार करे ।।७७।।

भानुर्वा कुशशीतगुर्व्ययगतो वित्तस्य नाशं नृपै-
र्भौमो नाशयतीन्दुजेक्षितयुतो नानाप्रकारैर्धनम् ।
वागीशेन्दुसिता यदि व्ययगता वित्तस्य संरक्षकाः
सौम्यः शुक्रयुतेक्षितो यदि नृणां शय्यासुखं जायते ।।

इसमें चार योग बताये गये हैं:—

(१) यदि बारहवें भाग में सूर्य, किंवा, क्षीण चन्द्रमा हो तो राजा के द्वारा धन नाश हो । आज-कल की परिस्थिति में इन्कम टैक्स का दंड लगे ।

(२) यदि मंगल, बुध से युत हो या बुध से देखा जाता हो तो नाना प्रकार से धन का नाश हो ।

(३) चन्द्रमा, शुक्र और बृहस्पति एक साथ या कोई एक या दो बारहवें घर में हो तो धन के संरक्षक होते हैं ।

(४) यदि बुध, शुक्र से युत या दृष्ट हो तो मनुष्यों को शय्या सुख हो ॥७८॥

शयन विचार

व्ययेशे स्वोच्चराशिस्थे शुभवर्गसमन्विते ।
शुभखेचरसंदृष्टे पर्यङ्कशयनं वदेत् ॥ ७६ ॥

विचित्रमञ्चे शयनं व्ययेशे परमोच्चगे ।
भाग्यनाथेन वा दृष्टे मणिरत्नविभूषितम् ॥८०॥

(१) यदि बारहवें भवन का स्वामी अपनी उच्च राशि में हो, शुभ दृष्ट हो और शुभ वर्गों में हो तो पंलग पर सोना प्राप्त होता है अर्थात् मनुष्य भोगशील होता है ॥७९॥

(२) बारहवें भवन का स्वामी अपने परम उच्च में हो और बलवान् हो तो मनुष्य सुन्दर शय्या पर आराम करता है । यदि भाग्य भवन के स्वामी से दृष्ट हो तो उसका पलंग मणि और सोने से जड़ा हुआ रहता है ॥८०॥

शुक्रे वा रविनन्दने हिमकरे रन्ध्रत्रिकोणस्थिते
तद्गेहे शिथिलीभवेन्नृपतनं जातस्य केत्वन्विते ।
निद्रास्त्रीकृकलासगौलिपतनं पापान्विते भार्गवे
भौमे कच्छपदर्शनं बुधयुते जातः श्वदष्टो भवेत् ॥८१॥

इसमें चार योग बताये गये हैं:—

(१) यदि शुक्र या शनि लग्न से बारहवें या चौथे हो और केतु के साथ हो तो जातक के घर में नर पतन होता है। नर पतन क्या ? सोता आदमी, सोते हुए आदमी के ऊपर गिर जाये । इसे बहुत अशुभ शकुन माना है ।

(२) वहाँ यदि शुक्र पाप ग्रह के साथ हो तो निद्रित स्त्री, गिरगिट या विषखपरा का पतन हो ।

(३) वहाँ यदि मंगल हो तो स्वप्न में कछुआ दिखाई दे ।

(४) बुध से युत हो तो कुत्ते से काटा जाये ।

यह चारों योग तब होते हैं जब अष्टम से त्रिकोण में अर्थात् लग्न से बारहवें और चौथे यह ग्रह हों ।

गति विचार

मन्दाहिध्वजसंयुते तु निधनस्थानाधिपेनान्विते
रिष्फे दुर्गतिमेति षष्ठपतिना दृष्टेऽथवा मानवः ।
जातो याति परं पदं सुरगुरौ लग्ने भृगौ कामगे
कन्यास्थे रजनीकरे यदि धनुर्लग्ने च मेषांशके ॥८२॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं:—

(१) यदि बारहवें शनि, राहु या केतु हो और अष्टमेश से युत हो तो दुर्गति होती है अर्थात् मरने के बाद सद्गति नहीं होती ।

(२) यदि बारहवें में राहु, केतु हों और छठे भाव के स्वामी से देखे जाते हों तो भी मरने के बाद सद्गति नहीं होती ।

(३) यदि बृहस्पति लग्न में हो, शुक्र सप्तम में और कन्या का चन्द्रमा हो और यदि धनु लग्न में मेष नवांश का हो तो जातक मोक्ष प्राप्त करता है ॥८२॥

दुःस्थे दुष्टगृहाधिपे बलयुते तद्भावपुष्टिं वदे-
दायुःस्थानपतौ तु यत्र विबले तद्भावनाशं तथा ।
लग्नेशः शुभखेटवीक्षितयुतो यद्भावयातो बली
तद्भावस्य शुभं करोति विपुलं नीचारिगस्त्वन्यथा ॥८३॥

इसमें चार योग बताये गये हैं :—

(१) यदि दुःस्थान का स्वामी अर्थात् छठे, आठवें का स्वामी दुःस्थान में बैठे अर्थात् (६, ८, १२) में बैठे तो उस भाव की वृद्धि होती है। बशर्ते कि यह स्वामी बलवान् हो । किस भाव की पुष्टि ? जिस दुःस्थान का स्वामी बलवान् होकर बैठे उस भाव की पुष्टि ।

(२) आठवें भाव का स्वामी जहाँ पर बलहीन होकर बैठे उस स्थान का नाश करता है ।

(३) लग्नेश यदि बलवान् होकर शुभ ग्रह से युत या वीक्षित जिस स्थान पर बैठे उस भाव को बढ़ाता है अर्थात् उसकी शुभता को बढ़ाता है । उस स्थान की शुभता में बहुत वृद्धि करता है

(४) किंतु यदि लग्नेश नीच राशि का, शत्रु राशि का या दूसरे प्रकार से निर्बल होकर जिस स्थान में बैठता है उस भाव फल को बिगाड़ता है ॥८३॥

इति नवग्रहकृपया वैद्यनाथविरचिते
जातकपारिजाते पञ्चदशोऽध्यायः ।

इस प्रकार श्रीनवग्रह की कृपा से वैद्यनाथ विरचित जातकपारिजात का पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

अध्याय १६

स्त्रीजातकाध्याय

श्रीबलारोग्यसन्तानविद्याकीर्तिविवर्धनम् ।
तिथिभग्रहसंयुक्तं जातकं ब्रूमहे वयम् ॥ १ ॥

अर्थार्जने सहायः पुरुषाणामापदर्णवे पोतः ।
यात्राकाले मन्त्री जातकमपहाय नास्त्यपरः ॥ २ ॥

श्रीमज्जातकपत्रिका परहितं व्योमाधिवासस्फुटैः
पञ्चाङ्गद्युचराष्टवर्गसहितस्थानादिषड्वीर्यजैः ।
आयुर्गोचरयोगभावजफलैः सार्द्धं दशाचक्रजै-
र्दीर्घायुःसुतभर्तृसौख्यविपुलश्रीकीर्तिदा लिख्यते ॥३॥

अब हम स्त्रीजातक के विषय में कहते हैं । तिथि और ग्रह इत्यादि इसमें भी लिखने चाहिएँ क्योंकि इससे लक्ष्मी, वल, आरोग्य संतान, विद्या और कीर्ति की वृद्धि होती है ॥१॥

द्रव्य उपार्जन करने में यह जन्मकुंडली—यह ज्योतिष शास्त्र—सहायक होती है । आपत्ति रूपी समुद्र को पार करने में एक जहाज की भाँति उपयोगी है। और यात्रा काल में मंत्री का काम देती है । अर्थात् जैसे मंत्री उचित सलाह देता है उसी प्रकार उचित मार्ग दर्शन कराती है ॥२॥

स्त्रीजातक में निम्नलिखित बातें लिखनी चाहिएँ। ग्रहस्पष्ट, भावस्पष्ट, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, अष्टकवर्ग, स्थानवल, कालवल, दिग्वल, चेष्टावल, निसर्गवल आदि षडवल, आयुविचार, दीर्घायु, मध्यायु, अल्पायु, सम्पूर्ण योगायोग, गोचर, भावादि फल, दशाचक्र, पुत्रविचार, पतिसुखविचार, श्री कीर्ति आदि का विचार अच्छी तरह लिखना चाहिए ॥३॥

स्त्रीणां जन्मफलं नृयोगमुदितं यत्तत्पतौ योजयेत्-
तासां देहशुभाशुभंहिमकराल्लग्नाच्च वीर्याधिकात् ।

भर्तृणामगुणं गुणं मदगृहाच्छिद्राच्च तेषां मृतिम्
सौम्यासौम्यबलाबलेन सकलं सञ्चिन्त्य सर्वं वदेत् ।।४।।

(१) स्त्रियों की कुंडली में जो राजयोग हो उनके पति की कुंडली में योजना करनी चाहिए। अर्थात् जज, बैरिस्टर, हाकिम, पुलिस अफसर, गवर्नर, राजा, इंजीनियर, डाक्टर आदि बनने का योग स्त्री की कुंडली में हो तो उसका यह नतीजा निकालना चाहिए कि उसका पति किस पद पर होगा। पहले जब यह पुस्तक लिखी गई थी तब स्त्रियां इन पदों पर नहीं होती थीं। अब स्त्रियां भी गवर्नर, प्राइम मिनिस्टर आदि होती हैं। ,इसलिए कुंडली देखकर यह निर्धारित करना चाहिए कि यह स्त्री उच्च पद पर होगी या इसका पति। जिसकी सम्भावना हो वही कहना चाहिए। स्त्रियों में जो फल नहीं घटित हो सकता उनकी योजना उनके पुरुषों में करनी चाहिए। यदि स्त्री की ऐसी योग्यता है कि वह स्वयं उच्च पद पर आरूढ़ होगी तो उसी में राज योगों का चिन्तन करना चाहिए।

(२) चन्द्रमा और लग्न इनमें जो बलवान् हों उससे शरीर का दुःख-सुख कहे। देह का शुभ व अशुभ कहे। अर्थात् स्वास्थ्य संबन्धी बातें और शरीर की रूप संबन्धी सब बातें लग्न यदि बलवान् हो तो लग्न से कहे यदि चन्द्रमा उसकी अपेक्षा बलवान् हो तो उससे कहे।

(३) स्वामी के समस्त गुण, अवगुण सप्तम स्थान से कहने चाहिएँ।

(४) स्वामी की मृत्यु का विचार आठवें घर से करना चाहिए।

(५) सब बातें सौम्य अर्थात् शुभ ग्रहों के बल से और असौम्य पाप ग्रहों के बलाबल से अच्छी तरह विचार कर कहनी चाहिएँ ।।४।।

स्त्रीणां जन्मनि लग्नशीतकरयोर्मध्ये बली यस्ततः
सम्पद्रूपबलानि तन्नवमतः पुत्रायवृद्धि वदेत् ।
सौमङ्गल्यमनिष्टमष्टमगृहाद् भर्तृश्रियं सप्तमात्
केचिद्भर्तृशुभाशुभं शुभगृहादिच्छन्ति होराविदः ।।५।।

वैधव्यं निधनेन लग्नभवनात्तेजो यशः सम्पदः
पुत्रं पञ्चमभावतः पतिसुखं कामेन केचिद्विदुः ।
प्रव्रज्यामपि योषितामतिसुखं धर्मोपयातग्रहैः
शेषं भावजयोगजन्यमखिलं नारीनराणां समम् ।।६।।

(१) स्त्रियों के जन्म काल में यह देखिये कि चन्द्रमा बली है या लग्न बली है। उसी से स्वरूप, आकृति, सुन्दरता का विचार करे।
(२) पुत्र के विषय में नवम भाव का विचार करना आवश्यक है। इसी भाव से आय वृद्धि का विचार किया जाता है।
(३) स्त्री सधवा रहेगी या विधवा हो जायगी और इन समस्त बातों का विचार आठवें घर से करे।
(४) पति सुख का विचार सप्तम से करे।
(५) कोई-कोई पति का शुभ-अशुभ नवम भाव से विचार करने की राय देते हैं ॥५॥

अब इस श्लोक में पुनः कहते हैं:—

(१) लग्न से अष्टम स्थान से वैधव्य का विचार करे।
(२) तेज, यश, सम्पत्ति का विचार लग्न से करे।
(३) पुत्र का विचार अर्थात् संतति का विचार पंचम भाव से करे।
(४) कोई-कोई कहते हैं कि पति सुख का विचार सप्तम स्थान से करे।
(५) प्रव्रज्या का विचार अर्थात् संन्यास योग का विचार नवम भाव से करे। यदि नवम में चार ग्रह हों तो प्रव्रज्या का कारक योग होता है जो पहले बताया जा चुका है।
(६) अत्यन्त सुख का विचार नवम भाव से करे।
(७) बाकी जितने योग बताये हैं स्त्री की कुंडली में और पुरुष की कुंडली में समान हैं अर्थात् जैसा फल उनका पुरुषों की कुंडली में बताया गया है वैसा ही फल स्त्रियों की कुंडली में समझें ॥६॥

युग्मे लग्ननिशाकरौ यदि वरस्त्री रूपशीलान्विता
सौम्यालोकितसंयुतौ गुणवती साध्वी च सम्पद्युता।
ओजर्क्षे पुरुषाकृतिश्च चपला पुंश्चेष्टिता पापिनी
पापव्योमचरेण वीक्षितयुतौ जाता दुराचारिणी ॥७॥

लग्नेन्दू विषमर्क्षगौ शुभयुतौ सौम्यग्रहालोकितौ
नारी मिश्रगुणाकृतिः स्थितिगतिप्रज्ञावती जायते।
युग्मागारगतौ तु पापसहितौ पापेक्षितौ वा तथा
तद्राशीशयुतेक्षकग्रहबलादाहुः समस्तं विदः ॥८॥

(१) यदि लग्न और चन्द्रमा दोनों सम राशि में हों अर्थात् वृषभ, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन तो ऐसी स्त्री श्रेष्ठ होती है। रूपवती और शीलवती होती है। यदि शुभ ग्रह लग्न या चन्द्रमा को देखें या इसके साथ हों तो गुणवती, साध्वी अर्थात् सच्चरित्रा होती है। उसकी सम्पत्ति भी अच्छी होती है।

(२) यदि विषम राशि में लग्न और चन्द्रमा हों अर्थात् मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु या कुंभ में हों तो पुरुष की आकृति की, चपल और पुंश्चली होती है और पाप कर्म करती है। यदि इसके साथ लग्न और चन्द्रमा के साथ पाप ग्रह बैठे हों या पाप ग्रह इनको देखें तो दुराचारिणी होती है ॥७॥

अब लग्न और चन्द्रमा समराशि में हों किंतु पाप ग्रह से वीक्षित हों या पाप ग्रह साथ में हों तो क्या फल ? इसी प्रकार लग्न और चन्द्रमा विषम राशि में हों लेकिन पाप ग्रहों से युत या वीक्षित हों तो क्या फल यह बताते हैं।

(१) लग्न और चन्द्रमा विषम राशि में हों किंतु शुभ ग्रह के साथ हों किंवा शुभ ग्रह से देखे जाते हों तो नारी मिले-जुले आकृति की होती है। दिग्देश काल आदि बुद्धि युक्त होती है।

(२) यदि सम राशि का लग्न और चन्द्रमा हो और पाप ग्रह के साथ हो या पाप ग्रह से देखे जाते हों तो उसका राशिपति (लग्न या चन्द्रमा का जो बलवान् हो) उस पर जिस ग्रह का योग और दृष्टि हो तो उस ग्रह के बलानुसार, विद्वान्, समस्त फल का निर्देश करते हैं ॥८॥

ओजे विलग्ने पुरुषैर्बलिष्ठै-
बलान्वितैश्चन्द्रबुधासुरेज्यैः ।
सामान्यशक्तौ सति सूर्यपुत्रे
जाता हि तस्या बहवो धवाः स्युः ॥९॥

यदि विषम राशि में लग्न हो पुरुष ग्रह—सूर्य, मंगल, बृहस्पति बली हों चन्द्रमा, बुध और शुक्र बली हों, शनि साधारण हो अर्थात् न बली न निर्बल तो ऐसे योग में उत्पन्न होने वाली कन्या के बहुत से पति हों। अर्थात् कुलटा होती है ॥९॥

युग्मे विलग्ने कुजसौम्यजीव-
शुक्रैर्बलिष्ठैः खलु जातकन्या ।
विख्यातनाम्नी सकलार्थतत्त्व-
बुद्धिप्रसिद्धा भवतीह साध्वी ॥१०॥

सम राशि में लग्न हो, मंगल बुध, गुरु और शुक्र बलवान् हों तो ऐसे योग में उत्पन्न कन्या बहुत विख्यात नाम वाली होती है । शास्त्रों के अर्थ में तत्त्व को समझने वाली बुद्धिमती और अच्छे चरित्र वाली होती है ।

देखिये नवें श्लोक में और दसवें श्लोक में क्या अन्तर है ? पहले में विषम लग्न में उत्पन्न कन्या का चरित्र बताया है । दूसरे में सम लग्न में उत्पन्न होने वाली कन्या का ॥१०॥

सौरे मध्यबले बलेन रहितैः शीतांशुशुक्रेन्दुजैः
शेषैर्वीर्यसमन्वितैः पुरुषिणी यद्योजराश्युद्गमे ।
जीवारास्फुजिदैन्दवेषु बलिषु प्राग्लग्नराशौ समे
विख्याताखिलशास्त्रयुक्तिकुशला स्त्री ब्रह्मवादिन्यपि ॥११॥

इसमें दो योग बताये गये हैं:—

(१) यदि ओज लग्न हो मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु, कुंभ, सूर्य, मंगल, बृहस्पति बलवान् हों । शनि मध्यम बली हो और चन्द्रमा, बुध, शुक्र बल से रहित हों तो स्त्री परपुरुषगामिनी हो ।

(२) यदि सम लग्न हो—वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, या मीन, बुध, बृहस्पति, शुक्र, बलवान् हों तो वह बहुत मान वाली, सब शास्त्रों में कुशल और ब्रह्मवादिनी होती है ॥११॥

त्रिशांश फल

अब इन श्लोकों में त्रिशांश फल बताया है । लग्न और चन्द्रमा इनमें जो बली हो वह देखिये किस राशि में है ।

लग्ने भौमगृहं गते शशिनि वा वीर्याधिके भूसुते
त्रिशांशप्रभवाऽबला यदि दुराचारप्रयुक्ता भवेत् ।
प्रेष्या भानुसुतांशके गुणवती साध्वी च जीवांशके
सौम्यांशे मलिना सितांशजवधूर्जारव्रताचारिणी ॥१२॥

लग्ने भार्गवराशिगे कलहकृद् दुष्टा कुजस्यांशके
साध्वी पुत्रवती पुरन्दरगुरोरंशे पुनर्भूः शनेः ।
सौम्यस्यांशसमुद्भवाऽखिलकलासङ्गीतवाद्यप्रिया
शुक्रांशे बुधवल्लभा च सुभगा लोकप्रिया जायते ॥१३॥

त्रिंशांशेऽवनिजस्य बोधनगृहे लग्ने तु पुत्रान्विता
मन्दांशे विधवाऽथवा मृतसुता क्लीबाकृतिस्थाऽसती ।
जैवे भर्तृपरा बुधस्य तरुणी विख्याततेजस्विनी
शौक्रे चारुतराम्बराभरणगोवित्तप्रसिद्धा भवेत ॥१४॥

लग्ने चन्द्रगृहं गते बलवति क्षोणीसुतस्यांशके
जाता जारविनोदशीलरसिका पापेक्षिते शीतगौ ।
विश्वस्ता रविजस्य निर्जरगुरोरल्पायुरल्पात्मजा
बौधे शिल्पकलावती भृगुसुतत्रिंशांशके कामुकी ॥१५॥

भानुक्षेत्रगते तनौ शशिनि वा भूनन्दनस्यांशके
नारी पुम्प्रकृतिस्थिता च कुलटा मन्दांशके दुःखिता ।
जीवांशे नृपवल्लभा गुणवती सौम्यस्य पुंश्चेष्टिता
दुष्टा चासुरवन्दितस्य कुपतिस्नेहान्विता रोगिणी ॥१६॥

वागीशस्य गृहोदये वसुमतीपुत्रस्य भागोद्भवा
विख्याता परिवारिणी रविसुतस्यांशे दरिद्रा भवेत् ।
जीवांशे धनवस्त्रभूषणवती सौम्यस्य सम्पूजिता
साध्वी दानवमन्त्रिणः सुतवती सद्वस्त्रभूषान्विता ॥१७॥

लग्ने मन्दगृहे बलिन्यवनिजत्रिंशांशके शोकिनी
मन्दांशे सति दुर्भगा निजकुलाचारानुरक्ता गुरोः ।
सर्वज्ञा कुलटा बुधांशजनिता शुक्रस्य बन्ध्या सती
लग्नेन्दुस्फुटयोगतस्तु सकलत्रिंशांशजं वा वदेत् ॥१८॥

(अ) यदि मेष या वृश्चिक में हो:—

(१) और मंगल के त्रिशांश में हो तो दुराचारिणी होती है।

(२) बुध के त्रिशांश में हो तो मलिना हो।

(३) बृहस्पति के त्रिशांश में हो तो गुणवती हो।

(४) यदि शुक्र के त्रिशांश में हो तो व्यभिचारिणी होती है।

(५) यदि शनि के त्रिशांश में हो तो नौकरानी होती है।

(६) सूर्य, चन्द्रमा का त्रिशांश नहीं होता ॥१२॥

(आ) यदि शुक्र की राशि लग्न या चन्द्रमा हो अर्थात् वृष या तुला लग्न हो या चन्द्रमा वृष या तुला में हो तो देखिये दोनों में बलवान् कौन है।

(१) यदि मंगल का त्रिशांश हो तो कलह करने वाली दुष्टा हो।

(२) यदि बुध का त्रिशांश हो तो सब कला, संगीत, गाने-बजाने में प्रवीण हो।

(३) बृहस्पति का त्रिशांश हो तो सच्चरित्रा और पुत्रवती हो।

(४) यदि शुक्र का त्रिशांश हो तो पंडित की स्त्री, देखने में सुन्दर और लोकप्रिय होती है।

(५) यदि शनि के त्रिशांश में हो तो पुनर्भू हो अर्थात् दूसरा विवाह करे ॥१३॥

(इ) यदि मिथुन या कन्या लग्न हो या मिथुन या कन्या में चन्द्रमा हो तो देखिये कौन बलवान् है, जो बलवान् हो वहः—

(१) यदि मंगल के त्रिशांश में हो तो पुत्रों वाली हो।

(२) यदि बुध के त्रिशांश में हो तो तेजस्विनी हो।

(३) यदि बृहस्पति के त्रिशांश में हो तो पतिपरायणा हो।

(४) यदि शुक्र के त्रिशांश में हो तो सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहने और बहुत गाय, भैंस हों।

(५) यदि शनि के त्रिशांश में हो तो हिजड़ी के समान और पापिनी हो। उसके बच्चे मर जाएँ और विधवा हो जाए ॥१४॥

(ई) यह देखिये कि लग्न कर्क है या चन्द्रमा कर्क राशि में है तो लग्न और चन्द्रमा इन दोनों में जो बलवान् हो वहः—

(१) यदि मंगल के त्रिशांश में हो और चन्द्रमा को पाप ग्रह देखे तो स्त्री व्यभिचारिणी होती है।

(२) बुध के त्रिशांश में हो तो शिल्प और कला का अच्छा ज्ञान हो।

(३) बृहस्पति के त्रिशांश में हो तो कम आयु हो और थोड़े पुत्र हों।

(४) शुक्र के त्रिशांश में हो तो विशेष काम पीड़िता होती है।

(५) शनि के त्रिशांश में हो तो विश्वस्ता होती है ॥१५॥

(उ) यदि लग्न और चन्द्रमा सिंह में हैं तो देखिये दोनों में बलवान् कौन है जो बली हो वहः—

(१) मंगल के त्रिशांश में हो तो पुरुष के समान प्रकृति वाली और कुलटा होती है ।

(२) यदि बुध के त्रिशांश में हो तो दुष्टा हो और पुरुष की सी चेष्टा करने वाली हो और कुलटा हो ।

(३) यदि बृहस्पति के त्रिशांश में हो तो राजा की स्त्री हो अर्थात् उसका पति उच्च पद पर आसीन हो । ऐसी स्त्री गुणवती होती है ।

(४) यदि शुक्र के त्रिशांश में हो तो कुपति अर्थात् छोटे दर्जे के आदमी से प्रेम करने वाली रोगिणी होती है । यहाँ शुक्र के त्रिशांश में व्यभिचारिणी नहीं कहा परन्तु "कुपति" से स्नेह करने वाली कहा अर्थात् उसका पति अच्छा न हो ।

(५) शनि के त्रिशांश में हो तो दुखिता रहे ॥१६॥

(ऊ) यह देखिये लग्न या चन्द्रमा, धनु या मीन के हैं क्या ? यदि लग्न या चन्द्रमा जो वलवान् हो वह धनु या मीन का हो औरः—

(१) मंगल के त्रिशांश में हो तो विख्यात फल वाली हो अर्थात् स्वयं विख्यात हो और उसका परिवार बड़ा हो ।

(२) बुध के त्रिशांश में हो तो ऐसी स्त्री पूजित होती है अर्थात् सब उसका आदर करते हैं और सच्चरित्रा होती है ।

(३) यदि बृहस्पति के त्रिशांश में हो तो धनी, वस्त्र, आभूषण वाली होती है ।

(४) यदि शुक्र के त्रिशांश में हो तो अच्छे वस्त्र, आभूषण मिलते हैं और अच्छे पुत्र होते हैं ।

(५) यदि शनि के त्रिशांश में हो तो दरिद्रा हो ॥१७॥

(ऋ) यदि चन्द्रमा या लग्न मकर या कुंभ में हो तो यह देखिये कि दोनों में वलवान् कौन है । चन्द्र या लग्न ? जो दोनों में बलवान् हो वहः—

(१) यदि मंगल के त्रिशांश में हो तो शोकिनी हो ।

(२) यदि बुध के त्रिशांश में हो तो सर्वज्ञा होती है अर्थात् उसकी समझने की बुद्धि प्रखर होती है किंतु वह कुलटा होती है ।

(३) बृहस्पति के त्रिशांश में हो तो अपने कुल के लिए उचित आचार में अनुरक्त होती है।

(४) यदि शुक्र के त्रिशांश में हो तो वन्ध्या हो लेकिन सती हो। श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने अपने अनुवाद में लिखा है कि वह निंदित चरित्र की होती है। परन्तु हम उनके मत से सहमत नहीं हैं।

(५) यदि शनि के त्रिशांश में हो तो दुर्भगा हो। दुर्भगा के दो अर्थ हैं। जिसका भगदेश खराब हो और सौभाग्य से हीन। संस्कृत में दुर्भगा शब्द आया है। मूल लेखक का क्या तात्पर्य है यह मालूम नहीं।

ग्रंथकार एक विशेष बात यह कहते हैं कि लग्न स्पष्ट और चन्द्र स्पष्ट दोनों को जोड़िये। जो योग आये उसके हिसाब से त्रिशांश फल कहना चाहिए। यह त्रिशांश के फल कहने का अन्य प्रकार है ॥१८॥

आग्नेयैर्विधवाऽस्तराशिसहितैर्मिश्रैः पुनर्भूर्भवेत्
क्रूरे हीनबलेऽस्तगे स्वपतिना सौम्येक्षिते प्रोज्झिता।
अन्योन्यांशकयोः सितावनिजयोरन्यप्रसक्ताङ्गना
द्यूने वा यदि शीतरश्मिसहिते भर्तुस्तदाऽनुज्ञया ॥१९॥

इसमें पांच योग बताये गये हैं:—

(१) यदि सप्तम भाव पाप ग्रहों से युक्त हो तो विधवा हो। मूल में 'आग्नेयैः' शब्द आया है। यह बहुवचन है। इसलिए तीन या तीन से अधिक क्रूर ग्रह सप्तम में हों तो यह फल कहना।

(२) यदि पाप ग्रह और शुभ ग्रह दोनों हों तो दुबारा ब्याही जाये। मूल में 'मिश्रैः' शब्द आया है। इसका अर्थ है कम से कम तीन ग्रह शुभ और पाप मिला कर।

(३) यदि हीन बल अर्थात् बल रहित क्रूर ग्रह सप्तम में हो और शुभ ग्रह उसे देखता हो तो उसका पति उसको छोड़ दे।

(४) शुक्र यदि मेष या वृष नवांश का हो तो दूसरे पुरुष से प्रेम करने वाली होती है अर्थात् जारिणी होती है।

(५) यदि शुक्र, मंगल और चन्द्रमा तीनों सातवें स्थान में हों तो पति की अनुज्ञा से पर पुरुष से रमण करे। जातकाभरण में कहा है:—

अन्योन्यांशावस्थितौ भौमशुक्रौ स्यातां कान्तासङ्गताऽन्येन नूनम् ।
चन्द्रोपेतौ शुक्रवक्रौ स्मरस्थावाज्ञैव स्यात् स्वामिनश्चामनन्ति ॥

इसी आशय का यह श्लोक है ॥१९॥

स्वैरिणी या पतिं त्यक्त्वा सवर्णं कामतः श्रयेत् ।
अक्षतं च प्रजाद्वारं पुनर्भूः संस्कृता पुनः ॥२०॥

इसमें स्वैरिणी किसे कहते हैं और पुनर्भू किसे कहते हैं यह बताया गया है ।

(१) जो स्त्री काम से अर्थात् काम वासना से अपने पति को छोड़कर अपने पति के सजातीय पुरुष के पास चली जाय । उसे स्वैरिणी कहते हैं ।

(२) जिस स्त्री की योनि अक्षत हो अर्थात् जिसने पुरुष का संसर्ग नहीं किया हो और उसका विवाह दुबारा कर दिया जाये, वह पुनर्भू कहलाती है ॥२०॥

सौरारर्क्षे लग्नगे सेन्दुशुक्रे
मात्रा सार्द्धं पुंश्चली पापदृष्टे ।
कौजेऽस्तांशे सौरिणा व्याधियोनि-
श्चारुश्रोणी वल्लभा सद्ग्रहांशे ॥२१॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं:—

(१) मेष, वृश्चिक, मकर या कुंभ लग्न में चन्द्रमा व शुक्र एक साथ हों और उसे पाप ग्रह देखते हों तो माता के साथ वह कन्या भी व्यभिचारिणी होती है ।

(२) सप्तम में यदि मंगल का नवांश हो और उसको शनि देखता हो तो उसकी योनि में व्याधि होती है ।

(३) यदि सप्तम का नवांश शुभ ग्रह के नवांश में हो तो सुन्दर नितंब वाली पतिवल्लभा होती है ॥२१॥

बलहीनेऽस्तगे पापे सौम्यग्रहनिरीक्षिते ।
पत्या विसृज्यते नारी नीचारिस्थे च वैरिणी ॥२२॥

इसमें दो योग बताये गये हैं:—

(१) यदि हीन बली अर्थात् निर्बल पाप ग्रह सातवें भवन में हों और उसको शुभ ग्रह देखता हो तो पति से स्त्री छोड़ दी जाती है ।

(२) यदि हीन वली ग्रह शत्रु राशि का या नीच राशि का सप्तम में हो तो पति से वैर भाव रखे ।।२२।।

उत्सृष्टा मदनस्थिते दिनकरे शत्रुग्रहालोकिते-
ऽविश्वस्ताऽवनिजे वधूरमणयोरन्योन्यवैरं तु वा ।
सौम्यासौम्ययुते कलत्रभवने जाता पुनर्भूः शनौ
कामस्थे रिपुवीक्षिते त्वविधवा जाता जरां गच्छति ।।२३।।

इसमें चार योग बताये गये हैं:—

(१) यदि शत्रु ग्रह से दृष्ट सूर्य, सप्तम भाव में हो तो वह स्त्री अपने स्वामी से छोड़ दी जाती है ।

(२) यदि मंगल सप्तम भाव में हो और शत्रु ग्रह से देखा जाता हो तो स्त्री विश्वास के योग्य नहीं होती है या पति पत्नी में वैर होता है ।

(३) सप्तम भाव में शुभ ग्रह और पाप ग्रह दोनों हों तो स्त्री का एक विवाह होने के वाद पुनः विवाह हो ।

(४) शनि सप्तम स्थान में हो और उसको शत्रु ग्रह देखता हो तो बुढ़ापे तक कंवारी रहती है । अर्थात् उसका विवाह नहीं होता । सुब्रह्मण्य शास्त्री ने इसका अर्थ किया है कि स्त्री वूढ़ी हो जाती है और उसका पति जिन्दा रहता है । यह अर्थ हमें मान्य नहीं है क्योंकि बृहज्जातक में श्लोक है —

उत्सृष्टा रविणा, कुजेन विधवा बाल्येऽस्तराशिस्थिते ।
कन्यैवाशुभवीक्षितेऽर्कतनये द्यूने जरां गच्छति ।।२३।।

पापर्क्षे मदनस्थिते शनियुते वैधव्यमेत्यङ्गना
जारासक्तविलासिनी सितकुजावन्योन्यराश्यंशगौ ।।
चन्द्रे कामगृहं गते तु पतिना सार्द्धं दुराचारिणी
मन्दारर्क्षविलग्नगौ शशिसितौ बन्ध्या सुतस्थे खले ।।२४।।

इसमें पाँच योग वताये गये हैं:—

(१) यदि शनि पाप राशि में सप्तम भाव में हो तो स्त्री विधवा हो ।

(२) यदि मंगल, वृष या तुला का हो और शुक्र, मेष या वृश्चिक का हो तो स्त्री जारिणी होती है ।

(३) यदि मंगल, वृष या तुला नवांश का हो और शुक्र, मेष या वृश्चिक नवांश का हो तो स्त्री जारिणी होती है अर्थात् पर पुरुष के साथ विलास करती है।

(४) यदि मंगल, वृष या तुला नवांश का हो और शुक्र, मेष या वृश्चिक नवांश का हो या मंगल, वृष या तुला राशि का हो और शुक्र, मेष या वृश्चिक का हो और चन्द्रमा सप्तम स्थान में हो तो स्त्री और पति दोनों व्यभिचारी हों।

(५) यदि चन्द्रमा और शुक्र एक साथ लग्न में हों और लग्न मेष, वृश्चिक, मकर या कुंभ में हो और पंचम स्थान में पाप ग्रह हो तो स्त्री बाँझ होती है ॥२४॥

कलत्रराश्यंशगते महीजे मन्देक्षिते दुर्भगमेति कन्या ॥
शुक्रांशके सौम्यदृशा समेते कलत्रराशौ पतिवल्लभा स्यात् ॥२५॥

इसमें दो योग बताये गये हैं :—

(१) देखिये सप्तम भाव में कौन सा नवांश है। जब इस नवांश में मंगल हो और शनि से देखा जाता हो तो वह स्त्री दुर्भगा होती है। दुर्भगा के दो अर्थ होते हैं यह पहले समझाये जा चुके हैं।

(२) देखिये कि सप्तम में क्या नवांश है। यदि मंगल, शुक्र नवांश में हो उसे शुभ ग्रह देखते हों तो पति की वल्लभा होती है। यहाँ पर मंगल का सप्तम में रहना आवश्यक है ॥२५॥

भौमागारविलग्नगौ शशिसितौ नारी पतिद्वेषिणी
चन्द्रज्ञौ परतत्त्ववादचतुरा भौमेन्दुजौ भोगिनी।
चन्द्रज्ञासुरवन्दिता यदि सुखद्रव्यान्विता लग्नगा
वागीशो यदि लग्नगः सुतनया प्रज्ञाविभूषान्विता ॥२६॥

इसमें ५ योग बताये गये हैं:—

(१) यदि मेष या वृश्चिक में, शुक्र और चन्द्रमा हों तो पति से द्वेष करे।

(२) यदि मेष या वृश्चिक में चन्द्रमा और बुध हों तो मोक्षशास्त्र में कुशला हो।

(३) यदि मेष या वृश्चिक में मंगल और बुध हों तो भोगवती हो।

(४) यदि लग्न में चन्द्रमा, बुध तथा बृहस्पति हो तो स्त्री धनवती और सुखवती होती है।

(५) यदि लग्न में बृहस्पति हो तो उसके अच्छे पुत्र हों और बुद्धिमती हो तथा आभूषण प्राप्त हों ॥२६॥

तुङ्गस्था गगनाटनाः शुभकरा रन्ध्रे सपापे वधू-
र्वैधव्यं समुपैति पापभवने पापग्रहालोकिते।
रन्ध्रेशांशपतौ खले च विधवा निःसंशयं भामिनी
सौम्यै रन्ध्रगतैः समेति तरुणी प्रागेव मृत्युं पतेः ॥२७॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं:—

(१) चाहे सब शुभ ग्रह अपनी-अपनी उच्च राशि में हों किन्तु यदि पाप राशि में अष्टम स्थान में पाप ग्रह हो और वह पाप ग्रह से देखा जाता हो तो स्त्री विधवा होती है।

(२) अष्टमेश जिस नवांश में है उसका स्वामी पाप ग्रह हो तो निश्चय विधवा होती है।

(३) शुभ ग्रह यदि आठवें स्थान में हो तो पति से पहले मरे ॥२७॥

भाग्यस्थाः शुभखेचराः स्मरगते पापेऽष्टमस्थेऽथवा
भर्तृश्रीबहुपुत्रसौख्यविभवैः सार्द्धं चिरं जीवति।
क्रूरैर्बन्धुगृहोपगैर्बहुसुतप्राप्ता भवत्यङ्गना
चापे वा कटकोदये पतिसुतप्राप्ता दरिद्रान्विता ॥२८॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं:—

(१) नवम घर में शुभ ग्रह हो, सप्तम और अष्टम में पाप ग्रह हो तो वह स्त्री पतिवती, धनवती, पुत्रवती, सुख और वैभव के साथ बहुत समय तक जीवित रहती है।

(२) यदि क्रूर ग्रह चतुर्थ स्थान में हो तो उस स्त्री के बहुत पुत्र हों।

(३) यदि कर्क या धन लग्न हो तो पति और पुत्र का सुख होता है; किंतु स्त्री निर्धन होती है ॥२८॥

गोसिंहालिवधूदये सुतगते चन्द्रेऽल्पपुत्रान्विता
पापैरस्तशुभोदयाष्टमगतैर्दारिद्र्यशोकाकुला।

सौम्यासौम्ययुतैश्च मिश्रफलिनी सौम्यैः शुभश्रीयुता
पुत्रेशेऽरिगते तनौ रिपुपतौ शस्त्रेण मृत्युर्भवेत् ।।२९।।

इसमें चार योग बताये गये हैं:—

(१) यदि वृष, सिंह, कन्या या वृश्चिक लग्न हो और पांचवें में चन्द्रमा हो तो थोड़े पुत्र हों ।

(२) यदि पाप ग्रह लग्न सप्तम, अष्टम, नवम में हो तो हमेशा दरिद्र और शोकाकुल रहे ।

(३) यदि लग्न सप्तम, अष्टम, नवम में शुभ ग्रह हों तो शुभ लक्ष्मी से युत हो ।

(४) यदि पंचम भाव का स्वामी छठे घर में हो और छठे का स्वामी लग्न में हो तो शस्त्र से मृत्यु हो ।।२९।।

क्रूरग्रहैरस्तगतैः समस्तैर्विलग्नराशेर्विधवा भवेत्सा ।
मिश्रैः पुनर्भूरिह जातकन्या पत्युज्झिता हीनबलैरसद्भिः ।।३०।।

इसमें तीन योग बताये गये हैं:—

(१) लग्न से सप्तम सब पाप ग्रह हों तो विधवा हो ।

(२) यदि सप्तम में पाप ग्रह और शुभ ग्रह दोनों हों तो कन्या पुनर्भू अर्थात् दुबारा विवाह करने वाली होती है ।

(३) यदि पाप ग्रह बलहीन होकर सप्तम में हो तो उसका पति उसको छोड़ दे ।।३०।।

स्त्रीजन्मलग्नान्मदगे शशाङ्के शुक्रारयुक्ते यदि जातकन्या ।
सा पत्यनुज्ञापरगामिनी स्यात्सौरारभांशोपगते तथैव ।।३१।।

इसमें दो योग बताये गये हैं:—

(१) स्त्री के जन्म लग्न से सातवें घर में चन्द्रमा हो और शुक्र, मंगल साथ में हों तो वह स्त्री पति की आज्ञा से दूसरे पुरुष के साथ विहार करे। अर्थात् पति की आज्ञा से जारिणी हो ।

(२) यदि सप्तम में चन्द्रमा हो और वह चन्द्रमा मंगल या शनि के नवांश में हो तो उपरोक्त फल जो (१) में कहा गया है ।।३१।।

सौरारभांशोपगतग्रहेषु
शुक्रेन्दुयुक्तेष्वशुभेक्षितेषु ।
जाता कुलाचारगुणैर्विहीना
मात्रा च साकं व्यभिचारिणी स्यात् ।।३२।।

इसमें दो योग बताये गये हैं:—

(१) शनि और मंगल की राशि में ग्रह हो और वह चन्द्रमा और शुक्र से युक्त हो तथा पाप ग्रह से दृष्ट हो तो कन्या आचारहीन होती है और माता के सहित व्यभिचारिणी होती है ।

(२) यदि शनि और मंगल नवांश में ग्रह हो और राशि में शुक्र और चन्द्रमा से युक्त हो तथा पाप ग्रह से दृष्ट हो तो कन्या और माता व्यभिचारिणी होती है ।।३२।।

क्षितितनयनवांशे लग्नतः सप्तमस्थे
दिनकरबुधदृष्टे व्याधियोनिः प्रजाता ।
शुभकरनवभागे सप्तमस्थानसंस्थे
सुभगसुतवती सा चान्यथा दुर्भगा स्यात् ।।३३।।

(१) लग्न से सप्तम भाव में मेष, वृश्चिक नवांश हो और उस भाव को अर्थात् सप्तम भाव को सूर्य और बुध देखते हों तो स्त्री की योनि में व्याधि होती है ।

(१) सातवें स्थान में यदि शुभ ग्रह का नवांश हो अर्थात् वृष, मिथुन, कर्क कन्या, तुला, धनु, मीन तो स्त्री सुभगा होती है अर्थात् उसकी योनि अच्छी होती है और उसके पुत्र होते हैं ।

(३) यदि मेष, सिंह, वृश्चिक, मकर, कुम्भ नवांश सप्तम में हों तो दुर्भगा हो ।।३३।।

कामासक्तमनस्विनी च विधवा पापद्वये सप्तमे
पश्चात्स्वामिवधं करोति कुलटा पापत्रये चास्तगे ।
राजामात्यवराङ्गना यदि शुभे कामं गते कन्यका
मारस्थे तु शुभत्रये गुणवती राज्ञी भवेद् भूपतेः ।।३४।।

(१) दो पाप ग्रह सप्तम में हों तो मनस्विनी और कामासक्त मन रहे । वह स्त्री विधवा हो ।

(२) यदि तीन पाप ग्रह सप्तम में हों तो कुछ समय के बाद विधवा होती है और कुलटा होती है ।

(३) यदि सप्तम में शुभ ग्रह हो तो राजा के मंत्री की स्त्री हो ।

(४) सातवें स्थान में यदि तीन शुभ ग्रह हों तो गुणवती हो और राजा से विवाह हो ॥३४॥

अन्योन्यांशगतौ सितार्कतनयावन्योन्यदृष्टौ तु वा
कुम्भे चाष्टमभागजातवनिता कामाग्नितप्ता भवेत् ।
वैधव्यं समुपैति चन्द्रभवनात् क्रूरे मदस्थानगे
चन्द्रादस्तगृहोपगः शुभकरो राज्यास्पदं यच्छति ॥३५॥

इसमें चार योग बताये गये हैं:—

(१) यदि शुक्र और शनि एक दूसरे के नवांश में हों अर्थात शुक्र, मकर या कुंभ नवांश में हों और शनि, वृष या तुला नवांश में हों तथा परस्पर दृष्ट हों तो स्त्री कामाग्नि से संतप्त रहे ।

(२) यदि कुंभ राशि हो और वृष नवांश हो तथा शुक्र, शनि की दृष्टि हो तो स्त्री कामाग्नि से तप्त रहे ।

(३) चन्द्रमा से सप्तम स्थान में पाप ग्रह हो तो विधवा हो ।

(४) यदि चन्द्रमा से सप्तम शुभ ग्रह हो तो राज्य पद को देते हैं ॥३५॥

स्त्रीजन्मलग्ने शशिशुक्रयुक्ते
क्रोपान्विता सा सुखभागिनी स्यात् ।
सर्वत्र चन्द्रे सति तत्र जाता
सुखान्विता वीतरतिप्रिया स्यात् ॥३६॥

(१) स्त्री के जन्म लग्न में चन्द्रमा और शुक्र हों तो वह स्त्री सुख भोगती है । परन्तु क्रोधी स्वभाव की होती है ।

(२) चन्द्रमा यदि लग्न में हो तो वह पति की प्रिया होती है । किंतु उसमें कामवासना अधिक नहीं होती वह स्त्री सुखी होती है ॥३६॥

शुक्रेन्दुभे रूपगुणाभिरामा कलावती जीवबुधोदये तु ।
लग्नस्थिता जीवबुधासुरेज्या जाताङ्गना सर्वगुणप्रसिद्धा ॥३७॥

वाचस्पतौ नवमपञ्चमकेन्द्रसंस्थे
तुङ्गादिके भवति शीलसमन्विता च ।
साध्वी सुपुत्रजननी सुखिनी गुणाढ्या
नूनं कुलद्वययशस्करिणी भवेत्सा ॥३८॥

(१) यदि लग्न वृष, कर्क और तुला कन्या का हो तो वह रूपवती होती है ।

(२) यदि मिथुन, कन्या, धनु या मीन लग्न हो तो वह कलावती अर्थात् कला में निपुण होती है ।

(३) यदि लग्न में बुध, बृहस्पति, शुक्र तीनों हों तो ऐसे योग में उत्पन्न कन्या सब गुणों में प्रसिद्ध होती है । इस प्रकार इसमें तीन योग बताये गये हैं ॥३७॥

यदि बृहस्पति उच्च का या स्वगृही होकर नवम, पंचम या केन्द्र में अर्थात् १, ४, ७, १० में बैठे तो वह शील युक्त, साध्वी, अच्छे पुत्रों की माता, सुखिनी, गणाढ्या और दोनों कुलों का यश बढ़ाने वाली होती है ॥३८॥

यदि शुभकरदृष्टा शिल्पिनी शुद्धचित्ता
सततमिह सलज्जा चारुमूर्तिः सुपुत्रा ।
बहुधनशुभयुक्ता वल्लभे वल्लभत्वं
व्रजति शुभशतानां भाजनत्वं च होरा ॥३९॥

यदि बुध, बृहस्पति, शुक्र या चन्द्रमा या इनमें जितने अधिक लग्न को देखते हों तो उतना फल अच्छा होता है ।

यदि समस्त शुभ ग्रह लग्न को देखते हों तो शुद्धचित्ता, सलज्जा, सुन्दर अच्छे पुत्र वाली और सैकड़ों शुभ बातों की पात्र होती है ॥३९॥

चन्द्रे कर्कटकोदये च बलिभिः शुक्रज्ञजीवेन्दुभि-
र्नानाशास्त्रकलारसज्ञचतुरा विख्याततेजस्विनी ।
कामस्थैरथवा विलग्नभवनाद्धर्मस्थितैः खेचरैः
प्रव्रज्यामुपयाति जन्मसमये पाणिग्रहे चिन्तयेत् ॥४०॥

इसमें दो योग बताये गये हैं :—

(१) चन्द्रमा, कर्क का हो और कर्क लग्न हो। बुध, बृहस्पति, शुक्र और चन्द्रमा बलवान् हों तो स्त्री नाना शास्त्रों में, कलाओं में चतुर होती है और विख्यात तेजस्विनी हो।

(२) लग्न से सप्तम व नवम जो ग्रह पड़े हों उनसे न केवल जन्म के समय विचार करे किन्तु विवाह के समय और प्रव्रज्या योग का भी विचार करे। कहने का तात्पर्य यह है कि विवाह के मुहूर्त में भी इन योगों का विचार करना चाहिए ।।४०।।

पापेऽस्ते नवमगतग्रहस्य तुल्यां
प्रव्रज्यां युवतिरुपैत्यसंशयेन ।
उद्वाहे वरणविधौ प्रदानकाले
चिन्तायामपि सकलं विधेयमेतत् ।।४१।।

जन्मन्युद्वाहकाले च चिन्तायां वरणे तथा ।
स्त्रीणां चिन्ता बुधेनोक्ता घटते तत्पतिष्वपि ।।४२।।

यदि सप्तम में पाप ग्रह हो और नवम में बलवान् व प्रव्रज्या कारक ग्रह हो तो स्त्री निश्चय संन्यास लेती है । प्रश्न के समय (सगाई के समय) और कन्या दान के समय इसका विचार करना चाहिए। अर्थात् केवल जन्म लग्न में ही नहीं प्रत्युत प्रश्न आदि में भी इन योगायोगों का विचार करे ।।४१।।

यह एक प्रकार से ऊपर के श्लोक की विशद व्याख्या है कि स्त्रियों के जन्म समय में प्रश्न कुण्डली में वरण में, यह सब योग विचार करने चाहिएँ क्योंकि यह प्रव्रज्या योग पति में भी घटित होते हैं ।।४२।।

क्रूरेऽष्टमे विधवता निधनेश्वरांशे
यस्य स्थिते वयसि तस्य समे प्रदिष्टा ।
सत्स्वर्थगेषु मरणं स्वयमेव तस्याः
कन्यालिगोहरिषु चाल्पसुतत्वमिन्दौ ।।४३।।

इसमें तीन योग बताये गये हैं:—

(१) क्रूर ग्रह अष्टम भाव में हो तो वह क्रूर ग्रह जिसके नवांश में हो उस ग्रह की नैसर्गिक दशा में स्त्री विधवा होती है। कोई कोई नैसर्गिक दशा नहीं लेते, सामान्य दशा लेते हैं।

इसमें दो योग बताये गये हैं :—

(१) चन्द्रमा, कर्क का हो और कर्क लग्न हो। बुध, वृहस्पति, शुक्र और चन्द्रमा बलवान् हों तो स्त्री नाना शास्त्रों में, कलाओं में चतुर होती है और विख्यात तेजस्विनी हो।

(२) लग्न से सप्तम व नवम जो ग्रह पड़े हों उनसे न केवल जन्म के समय विचार करे किन्तु विवाह के समय और प्रव्रज्या योग का भी विचार करे। कहने का तात्पर्य यह है कि विवाह के मुहूर्त में भी इन योगों का विचार करना चाहिए ॥४०॥

पापेऽस्ते नवमगतग्रहस्य तुल्यां
प्रव्रज्यां युवतिरुपैत्यसंशयेन ।
उद्वाहे वरणविधौ प्रदानकाले
चिन्तायामपि सकलं विधेयमेतत् ॥४१॥

जन्मन्युद्वाहकाले च चिन्तायां वरणे तथा ।
स्त्रीणां चिन्ता बुधेनोक्ता घटते तत्पतिष्वपि ॥४२॥

यदि सप्तम में पाप ग्रह हो और नवम में बलवान् व प्रव्रज्या कारक ग्रह हो तो स्त्री निश्चय संन्यास लेती है। प्रश्न के समय (सगाई के समय) और कन्या दान के समय इसका विचार करना चाहिए। अर्थात् केवल जन्म लग्न में ही नहीं प्रत्युत प्रश्न आदि में भी इन योगायोगों का विचार करे ॥४१॥

यह एक प्रकार से ऊपर के श्लोक की विशद व्याख्या है कि स्त्रियों के जन्म समय में प्रश्न कुण्डली में वरण में, यह सब योग विचार करने चाहिएँ क्योंकि यह प्रव्रज्या योग पति में भी घटित होते हैं ॥४२॥

क्रूरेऽष्टमे विधवता निधनेश्वरांशे
यस्य स्थिते वयसि तस्य समे प्रदिष्टा ।
सत्स्वर्थगेषु मरणं स्वयमेव तस्याः
कन्यालिगोहरिषु चाल्पसुतत्वमिन्दौ ॥४३॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं:—

(१) क्रूर ग्रह अष्टम भाव में हो तो वह क्रूर ग्रह जिसके नवांश में हो उस ग्रह की नैसर्गिक दशा में स्त्री विधवा होती है। कोई कोई नैसर्गिक दशा नहीं लेते, सामान्य दशा लेते हैं।

(२) इस योग में शुभ ग्रह द्वितीय स्थान में हो अर्थात् धन स्थान में तो विधवा नहीं होती। स्त्री स्वयं पहले ही मर जाती है।

(३) यदि चन्द्रमा, वृषभ, सिंह, कन्या या वृश्चिक में हो तो थोड़ी संतान होती है ॥४३॥

रन्ध्रे मिश्रबले शुभाशुभखगैरालोकिते वा युते
दम्पत्योः समकालमृत्युमखिलज्योतिर्विदः संविदुः।
एकस्थौ मदलग्नपौ च यदि वा लग्नस्थिते कामपे
कामस्थे तनुपे शुभग्रहयुते मृत्युस्तयोस्तुल्यतः ॥ ४४ ॥

(१) यदि अष्टम भाव का सम बल हो अर्थात् शुभ ग्रह, पाप ग्रह बराबर देखें या शुभ ग्रह और पाप ग्रह दोनों हों तो ज्योतिष शास्त्र के वेत्ताओं ने कहा है कि पति-पत्नी की मृत्यु एक ही काल में होती है।

(२) यदि सप्तमेश और लग्नेश एक स्थान में हों या सप्तमेश लग्न में हो और लग्नेश सप्तम में शुभ ग्रह के साथ हो तो दोनों पति-पत्नी की मृत्यु एक साथ होती है ॥४४॥

सत्स्वर्थगेषु स्वयमेव सा स्त्री विपद्यते तत्परिपाककाले।
रन्ध्रस्थतन्नाथतदंशपानां दशापहारे मृतिमाहुरार्याः ॥ ४५ ॥

(१) यहाँ भी वही कहते हैं जो पहले कह आये हैं कि शुभ ग्रह धन में हो तो स्त्री उस शुभ ग्रह की दशा में स्वयं मरे।

(२) अष्टम स्थान में स्थित, अष्टम स्थान का स्वामी और अष्टम स्थान का स्वामी जिस नवांश में हो उस नवांश की दशा अन्तर्दशा में पति की मृत्यु होती है। ऐसा विद्वान् लोगों ने कहा है ॥४५॥

सहजभवननाथे पुङ्ग्रहे पुङ्ग्रहर्क्षे
पुरुषखचरयुक्ते पुङ्ग्रहालोकिते वा।
नयनभवनकेन्द्रे कोणगे वा बलिष्ठे
बहुधनसुखवन्तं सोदरं याति जाता ॥४६॥

सहोदरस्थानपलाभनाथौ विलग्नतः पञ्चमराशियातौ।
नृपालतेजोगुणरूपवन्तं सहोदरं जातवधूः समेति ॥४७॥

इसमें भाइयों का योग बताया गया है—

तृतीयेश, पुरुष संज्ञक ग्रह हो, तृतीय में पुरुष राशि हो अर्थात् मेष, सिंह, वृश्चिक, धनु और मीन पुरुष ग्रह से देखा जाता हो या पुरुष ग्रह से युक्त हो और तृतीयेश ग्रह द्वितीय केन्द्र १, ४, ७, १० या त्रिकोण ५-९ में बैठा हो तो उस कन्या का भाई बहुत धन सुख वाला होता है ॥४६॥

यदि तीसरे भवन का स्वामी और ग्यारहवें भवन का स्वामी दोनों लग्न से पंचक भाव में बैठे हों तो राजा के समान तेजस्वी, रूपवान्, गुणवान् भाई उस कन्या के होता है ॥४७॥

पति लक्षण

यस्या मन्मथमन्दिरे गतबले शून्ये खलालोकिते
सौम्यव्योमनिवासदृष्टिरहिते भर्ता नरः को भवेत् ।
क्लीबः स्यात् पतिरस्तगे शशिसुते सार्कात्मजे दुर्भगा
बन्ध्या वा तरुणी चरे मदगृहे नित्यं प्रवासान्वितः ॥४८ ॥

इसमें चार योग बताये गये हैं :—

(१) यदि लग्न से सप्तम भाव बलहीन हो, ग्रहरहित हो और पाप ग्रहों से देखा जाता हो और शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो उसका पति कुत्सित मनुष्य होता है।

(२) यदि सप्तम में बुध हो तो पति नपुंसक होता है।

(३) यदि सप्तम में शनि हो तो स्त्री दुर्भगा होती है या वन्ध्या होती है।

(४) यदि सप्तम में चर राशि हो मेष, कर्क, तुला या मकर तो उसका पति निरंतर प्रवास में रहता है।

काशी के एक हिंदी टीकाकार ने लिखा है कि सातवें बुध हो और शनि के साथ हो तो पति नपुंसक हो और स्त्री दुर्भगा हो या वन्ध्या हो परन्तु यह अर्थ हमें मान्य नहीं। संस्कृत टीका का अर्थ वही है जो हमने दिया है ॥४८॥

स्वांशे भास्वति कामगे मृदुरतिक्रीडाविनोदी पति-
श्चन्द्रे सौख्यमुपैति भूमितनये जारो वधूतत्परः ।
विद्वाञ्च् चन्द्रसुते जितेन्द्रियवरो जीवे मदस्थानगे
शुक्रे कान्तवपुः सुखी च रविजे वृद्धोऽतिमूर्खो भवेत् ॥४९॥

इसमें सात योग बताये गये हैं :—

(१) सूर्य अपने नवांश में सातवें घर में हो तो उसका पति मृदुरति और क्रीड़ाविनोदी होता है।

(२) चन्द्रमा सातवें घर में अपने नवांश का हो तो स्त्री को सुख की प्राप्ति हो।

(३) मंगल अपने नवांश का सातवें घर में हो तो पति परस्त्रीलोलुप और लम्पट होता है।

(४) यदि बुध अपने नवांश का सातवें घर में हो तो पति विद्वान् होता है।

(५) यदि बृहस्पति अपने नवांश का सप्तम स्थान का हो तो पति जितेन्द्रिय होता है।

(६) यदि सप्तम स्थान में शुक्र अपने नवांश का हो तो पति सुखी और सुन्दर शरीर वाला होता है।

(७) यदि शनि अपने नवांश का सप्तम में हो तो पति अति वृद्ध और मूर्ख होता है ॥४९॥

स्यान्मार्द्दवाङ्गो गुणवान्प्रगल्भो जामित्रराश्यंशकजा तु याऽस्याः।
सौरेऽस्तगे स्वांशगृहोपयाते वृद्धोऽतिमूर्खः पतिरेव तस्याः ॥५०॥

(१) लग्न में, सप्तम भाव के नवांश में उत्पन्न हो तो स्त्री का पति मृदु अंग वाला, गुणवान्, प्रगल्भ होता है। उदाहरण के लिए मेष लग्न में, तुला नवांश में हो तो स्त्री सप्तम नवांश में उत्पन्न कही जायेगी।

(२) शनि सप्तम भाव में अपने राशि व नवांश में हो तो उसका पति अति वृद्ध और मूर्ख हो ॥५०॥

दुःस्थौ धर्मगृहेशदेवसचिवौ भर्ता गतायुर्भवेद्
दीर्घायुर्धनवांस्त्रिकोणगृहगौ केन्द्रस्थितौ वा यदि।
विद्वान् बोधनवाहनेशसहितौ सारार्कजौ कर्षकः
स्वर्भानुध्वजसंयुतौ यदि खलः सारीश्वरश्चोरराट् ॥५१॥

इसमें छः योग बताये गये हैं :—

(१) यदि नवम भाव का स्वामी और बृहस्पति दोनों छठे, आठवें, बारहवें हों अर्थात् दुःस्थान में हों तो उसका पति अधिक समय तक नहीं जीता।

(२) यदि नवम स्थान का स्वामी और बृहस्पति दोनों लग्न से केन्द्र या त्रिकोण में हों तो उसका पति दीर्घायु होता है।

(३) यदि नवम भाव का स्वामी और बृहस्पति, चतुर्थ स्थान के स्वामी से युत हो तो विद्वान् हो।

(४) यदि ये दोनों अर्थात् नवमेश और बृहस्पति, मंगल, अथवा शनि से युत हों तो खेती करने वाला हो।

(५) यदि नवम भाव का स्वामी और बृहस्पति दोनों राहु-केतु से युत हों तो खल हो।

(६) यदि नवम भाव का स्वामी और बृहस्पति षष्ठेश से युक्त हों तो चोरों का स्वामी हो ।।५१।।

गौराङ्गः पतिरस्तगे दिनकरे कामी सरोषेक्षण-
श्चन्द्रे रूपगुणान्वितः कृशतनुर्भोगी रुगार्तो भवेत्।
नम्रः क्रूररसोऽलसः पटुवचाः संरक्तकान्तिः कुजे
विद्यावित्तगुणप्रपञ्चरसिकः सौम्ये मदस्थानगे ।।५२।।

दीर्घायुर्नृपतुल्यवित्तविभवः कामी च बाल्ये गुरौ
कान्तो नित्यविनोदकेलिचतुरः काव्ये कविः क्ष्मापतिः।
मन्दे वृद्धकलेवरोऽस्थिरतनुः पापी पतिः कामगे
राहौ वा शिखिनि स्थिते मलिनधीर्नीचोऽथवा तत्समः ।।५३।।

इसमें आठ योग बताये गये हैं :—

(१) सूर्य यदि स्त्री की जन्म कुण्डली में सप्तम स्थान में हो तो पति गौराङ्ग हो और रोषदृष्टि वाला हो। वह कामी भी होता है।

(२) चन्द्रमा यदि सप्तम भाव में हो तो रूपगुण से सम्पन्न किंतु दुर्बल शरीर वाला होता है, वह भोगी होता है किंतु रोगी हो।

(३) यदि मंगल हो तो पति नम्र, क्रूर स्वभाव वाला, आलसी, पटु वचन बोलने वाला और सुन्दर हो किन्तु उसका चेहरा ललाई लिए हुए हो।

(४) यदि बुध सप्तम स्थान में हो तो उसका पति विद्वान्, गुणवान्, धनवान् तथा प्रपंची हो।

(५) यदि बृहस्पति सप्तम स्थान में हो तो दीर्घायु हो, राजा के समान उसके पास धन और वैभव हो। वह बाल्यावस्था में ही कामी हो।

(६) शुक्र यदि सप्तम स्थान में हो तो काव्य का रसिक, नित्य विनोद और केलि में चतुर। ऐसा मनुष्य कवि होता है और राजा के समान धनी होता है।

(७) यदि सप्तम स्थान में शनि हो तो उसका पति वृद्ध हो और चंचल शरीर वाला हो। पाप करे अर्थात् पापी होता है।

(८) यदि राहु या केतु सप्तम में हो तो मलिन बुद्धि, नीच या नीच के सदृश हो ॥५२-५३॥

दिग्देशस्थितिधर्मकर्मजगुणाः पुञ्जातके योषितां
ये नारीजनजातके निजपतौ संयोजितास्तत्त्वतः।
द्यूनांशोपगतग्रहेषु बलवत्खेटांशतुल्याः सुताः
केन्द्रे कामपतिः करोति विपुलं कल्याणकालोत्सवम् ॥५४॥

पुरुष जातक में जो फल कहे गये हैं उनको स्त्री जातक में भी कहना। किंतु देश, स्थिति, धर्म, कर्म, दिशा आदि के सम्बन्ध में वही बातें स्त्रियों को लागू होंगी जो उनमें फलीभूत हो सकती हैं। जो स्त्रियाँ स्वतंत्र कार्य नहीं करतीं उनको स्वतंत्र कार्य नहीं लागू होता। वह फल उनके पति को लागू होता है। उदाहरण के लिए उच्च पदवी का योग है तो वह उस स्त्री को लागू नहीं होगा। उसके पति को लागू होगा। यदि स्त्री स्वतंत्र काम करती है तो उसको भी लागू होगा।

सप्तम भाव के नवांश में जितने ग्रह हों उनमें सबसे बली ग्रह के नवांश तुल्य पुत्र कहे। यदि सप्तमेश केन्द्र में हो तो बड़ा कल्याण समय प्राप्त कराता है अर्थात् उत्तम है ॥५४॥

अध्याय १७

कालचक्रदशाध्याय

प्रणम्य परमात्मानं शिवं परमकारणम् ।
खेचरं चक्रमध्यस्थं चतुःषष्टिकलात्मकम् ॥१॥

पप्रच्छ देवदेवेशमीश्वरं सर्वमङ्गला ।
कालचक्रगतिं सर्वां विस्तराद्वद मे प्रभो ॥२॥

परम कारण आकाश में चलते हुए ग्रहों के बीच में ६४ कला वाले देव देवेश श्री शिव जी को देखकर श्री सर्वमंगला गौरी ने प्रणाम करके पूछा—हे देव मुझे काल चक्र की गति को विस्तार से वताइये ॥१-२॥

ईश्वर उवाच

अहमादित्यरूपोऽस्मि चन्द्रमास्त्वं प्रचक्षसे ।
संयोगेन वियोगेन जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥३॥

मैं सूर्यरूप हूँ। तुम चन्द्रमा हो। इनके संयोग और वियोग से सारा स्थावर, जङ्गम संसार स्थित है ॥ ३ ॥

पञ्च प्राचीरालिखेद्वाणसङ्ख्यास्तिर्यग्रेखा वर्जितान्तश्चतुष्काः ॥
प्रागादीशा द्वादश व्योमवासा ज्योतिश्चक्रस्वामिनस्तूबराद्याः ॥४॥

धराजशुक्रज्ञशशीनसौम्यसितारजीवार्कजमन्दजीवाः ।
क्रमेण मेषादिकराशिनाथास्तदंशपाश्चेति वदन्ति सन्तः ॥५॥

भूतैर्कविंशद्गिरयो नवदिक्षोडशाब्धयः ।
सूर्यादीनां क्रमादब्दा राशीनां स्वामिनो वशात् ॥६॥

अश्वीपुनर्वसूहस्तमूलप्रोष्ठपदादिषु ।
अंशकान् गणयेन्मेषात्प्रादक्षिण्यक्रमं वदेत् ।।७।।

रोहिणीमघवैशाखवैष्णवादिषु भेषु च ।
अंशकान् वृश्चिकादीनां गणयेदपसव्यतः ।।८।।

दक्षिणात्त्रिकनक्षत्रं द्वादशांशकराशिषु ।
चक्रं प्रदक्षिणीकृत्य मीनान्ते विन्यसेत्पुनः ।।९।।

उत्तरात्रयनक्षत्रं वृश्चिकाद्यप्रदक्षिणम् ।
कृत्वा चापान्तकेऽन्यस्मिन्ज्ञातव्ये दक्षिणोत्तरे ।।१०।।

सव्यापसव्यमार्गेण चाश्विन्यादि त्रिकं त्रिकम् ।
देहादि गणयेत्सव्ये वामे जीवादि गण्यते ।।११।।

मेषगोयमकुलीरमन्दिरेष्वंशकेषु परमायुरुच्यते ।
ज्ञानकं मदगजास्तदा क्रमात्तत्र कोणभवनेषु तद्वदेत् ।।१२।।

एवमायुः परिज्ञानं देहजीवौ प्रकल्प्य च ।
सव्ये तु प्रथमांशस्तु देह इत्यभिधीयते ।।१३।।

मीन	मेष	वृष	मिथुन
कुंभ			कर्क
मकर			सिंह
धनु	वृश्चिक	तुला	कन्या

पहले ऊपर लिखे मुताविक राशि चक्र बना लें। दक्षिण भारत में ऐसा चक्र बनाया जाता है। इसमें राशियाँ उपरोक्त जैसी लिखी हैं वैसे लिख लें। उत्तर भारत में लग्न को बीच में रखते हैं, परन्तु दक्षिण भारत में लग्न को बीच में नहीं रखते। सब कुण्डलियों में ऐसा चक्र बनाते हैं जहाँ लग्न होता है वहाँ लग्न लिख देते हैं। मेष का स्वामी मंगल, वृष का स्वामी शुक्र, मिथुन का स्वामी बुध, कर्क का स्वामी चन्द्रमा, सिंह का स्वामी सूर्य, कन्या का स्वामी बुध, तुला का स्वामी शुक्र, वृश्चिक का स्वामी मंगल, धनु का स्वामी बृहस्पति, मकर का स्वामी शनि, कुंभ का स्वामी शनि और मीन का स्वामी बृहस्पति होता है। यह राशियों की बात हुई। मेष नवांश का स्वामी मंगल, वृष नवांश का शुक्र, मिथुन नवांश का बुध, कर्क नवांश का चन्द्रमा, सिंह नवांश का सूर्य, कन्या नवांश का बुध, तुला नवांश का शुक्र, वृश्चिक नवांश का मंगल, धनु नवांश का बृहस्पति, मकर नवांश का शनि, कुंभ नवांश का शनि और मीन नवांश का बृहस्पति होता है।

सूर्य-सिंह की दशा ५ वर्ष, चन्द्रमा-कर्क की २१ वर्ष, मेष-मंगल या वृश्चिक-मंगल की दशा ७ वर्ष, मिथुन-बुध की या कन्या-बुध की ९ वर्ष, धनु-बृहस्पति या मीन-बृहस्पति की १० वर्ष, और मकर-शनि और कुंभ की ४ वर्ष की होती है।

यहां राशियों की दशा होती, है ग्रहों की नहीं ॥ ४-५ ॥

(१) अश्विनी, पुनर्वसु, हस्त, मूल, पूर्वाभाद्रपद के पहले चरण में जिसका जन्म हो उसको मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु इनकी दशा होती है। यह मेष नवांश में जन्म कहलाता है। कुल आयु १०० वर्ष। यहां देहाधिप मंगल और जीवाधिप गुरु होता है।

(२) यदि अश्विनी, पुनर्वसु, हस्त, मूल, पूर्वाभाद्रपद —इनके द्वितीय चरण में जिनका जन्म हो उन जातकों को मकर, कुंभ, मीन, वृश्चिक, तुला, कन्या, कर्क, सिंह, मिथुन की दशा होती है। इनका वृष अंश में जन्म कहलाता है। यहाँ देहाधिप शनि और जीवाधिप बुध होता है। कन्या, कर्क, सिंह, मिथुन की दशा ८५ वर्ष की होती है।

(३) यदि अश्विनी, पुनर्वसु, हस्त, मूल और पूर्वाभाद्रपद के तृतीय चरण में जन्म हो तो देहाधिप शुक्र और जीवाधिप बुध होता है। इनको वृष, मेष, मीन, कुंभ, मकर, धनु, मेष, वृष, मिथुन—इनकी दशा ८३ वर्ष की होती है। इनमें जिनका जन्म हो उनका मिथुनांश कहलाता है।

(४) यदि अश्विनी, पुनर्वसु, हस्त, मूल, पूर्वाभाद्र के चतुर्थ चरण में जन्म हो

तो कर्क नवांश में जन्म कहलाता है। देहाधिप चन्द्रमा है और जीवाधिप वृहस्पति, इनको कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ, मीन—इनकी दशा ८६ वर्ष की होती है।

(५) जिनका भरणी, पुष्य, चित्रा, पूर्वाषाढ़, उत्तराभाद्र इन पांच नक्षत्रों के प्रथम चरण में जन्म हो उनका सिंह नवांश में जन्म कहलाता है। देहाधिप मंगल और जीवाधिप वृहस्पति है। इनको वृश्चिक, तुला, कन्या, कर्क, सिंह, मिथुन, वृष, मेष, मीन की दशा १०० वर्ष की होती है।

(६) जिनका भरणी, पुष्य, चित्रा, पूर्वाषाढ़, उत्तराभाद्र के द्वितीय चरण में जन्म होता है उसका कन्या नवांश में जन्म कहलाता है। देहाधिप शनि है और जीवाधिप बुध है। इनको कुंभ, मकर, धनु, मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या—इनकी ८५ वर्ष की दशा होती है।

(७) जिनका भरणी, पुष्य, चित्रा, पूर्वाषाढ़, उत्तराभाद्र के तृतीय चरण में जन्म होता है उसका तुला नवांश में जन्म कहलाता है। यहाँ देहाधिप शुक्र है और जीवाधिप बुध है। कुल ८३ वर्ष की दशा होती है जो निम्न है :—

तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ, मीन, वृश्चिक, तुला, कन्या।

(८) जिनका भरणी, पुष्य, चित्रा, पूर्वाषाढ़ और उत्तराभाद्र के चतुर्थ चरण में जन्म होता है उसका देहाधिप चन्द्रमा और जीवाधिप वृहस्पति होता है। इनकी कुल ८६ वर्ष की आयु होती है और निम्नलिखित राशियों की दशा होती है।

कर्क, सिंह, मिथुन, वृष, मेष, मीन, कुंभ, मकर और धनु।

(९) जिनका कृत्तिका, आश्लेषा, स्वाती, उत्तराषाढ़ और रेवती के प्रथम चरण में जन्म होता है उनका देहाधिप मंगल और जीवाधिप गुरु होता है। इनकी कुल १०० वर्ष की दशा होती है।

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और धनु। जो पहली राशि का स्वामी होता है यथा मेष का स्वामी मंगल देहाधिप हुआ। अंतिम राशि धनु है इसलिए वृहस्पति जीवाधिप हुआ। इनका धनु नवांश में जन्म समझा जाता है। कुल आयु १०० वर्ष की होती है।

(१०) जिनका कृत्तिका, आश्लेषा, स्वाती, उत्तराषाढ़ और रेवती के द्वितीय चरण में जन्म कहलाता है उनकी ९ दशायें निम्नलिखित हैं :—

मकर, कुंभ, मीन, वृश्चिक, तुला, कन्या, कर्क, सिंह, मिथुन कुल का योग ८५ वर्ष है। इनका मकर नवांश में जन्म समझा जाता है। शनि इनका देहाधिप है और जीवाधिप बुध है।

(११) जिनका कृत्तिका, आश्लेषा, स्वाती, उत्तराषाढ़ और रेवती के तृतीय चरण में जन्म समझा जाता है इनका देहाधिप शुक्र है और जीवाधिप बुध। इनको ८३ वर्ष की दशा होती है जो निम्न है :—
वृष, मेष, मीन, कुंभ, मकर, धनु, मेष, वृष, मिथुन।

(१२) जिनका कृत्तिका, आश्लेषा, स्वाती, उत्तराषाढ़ और रेवती के चतुर्थ चरण में जन्म होता है उनका जन्म मीन नवांश में समझा जाता है। इनको ८६ वर्ष की पूर्ण दशा होती है जो निम्नलिखित है:—

कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन। इनका देहाधिप चन्द्रमा है और जीवाधिप बृहस्पति। जिस राशि की प्रथम दशा होती है वह देह कहलाती है और उसका स्वामी देहाधिप। जो राशि अन्त में आती है वह राशि जीव कहलाती है और उसका स्वामी जीवाधिप।

यह २७ नक्षत्रों में से १५ नक्षत्रों की दशा क्रम है। यह १५ नक्षत्र निम्नलिखित हैं:—

अश्विनी, पुनर्वसु, हस्त, मूल, पूर्वाभाद्र, भरणी, पुष्य, चित्रा, पूर्वाषाढ़, उत्तराभाद्र, कृत्तिका, आश्लेषा, स्वाती, उत्तराषाढ़ और रेवती या यों कहिए कि तीन-तीन नक्षत्र सव्य हैं और फिर तीन-तीन अपसव्य हैं। अश्विनी, भरणी, कृत्तिका सव्य हैं। रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, अपसव्य। पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, सव्य नक्षत्र हैं। मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी अपसव्य। हस्त, चित्रा, स्वाती सव्य नक्षत्र हैं। विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा अपसव्य। मूल पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़ सव्य नक्षत्र हैं। श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अपसव्य। पूर्वाभाद्र, उत्तराभाद्र, रेवती सव्य नक्षत्र हैं। इस प्रकार १५ नक्षत्र सव्य हैं और १२ नक्षत्र अपसव्य।

सव्य नक्षत्रों का दशाक्रम बताया जा चुका है। अपसव्य नक्षत्रों का दशाक्रम नीचे बताया जाता है।

(१३) यदि रोहिणी, मघा, विशाखा, श्रवण के प्रथम चरण में जन्म हो तो कुल दशा ८६ वर्ष की होती है। इनका वृश्चिक नवांश में जन्म समझा जाता है और दशा क्रम निम्नलिखित है :—

धनु, मकर, कुंभ, मीन, मेष, वृष, मिथुन, सिंह, कर्क। यहाँ प्रथम राशि का स्वामी जीवाधिप होता है इसलिए धनु का स्वामी बृहस्पति जीवाधिप है और अन्तिम राशि कर्क का स्वामी चन्द्र देहाधिप।

(१४) यदि रोहिणी, मघा, विशाखा के द्वितीय चरण में जन्म हो तो कुल आयु ८३ वर्ष की होती है। इनका दशाक्रम निम्नलिखित है :

कन्या, तुला, वृश्चिक, मीन, कुंभ, मकर, धनु, वृश्चिक, तुला। सबसे पहले कन्या आई। इसका स्वामी बुध जीवाधिप हुआ। सबसे अंत में तुला आई, इसका स्वामी शुक्र देहाधिप हुआ। इनका तुला नवांश में जन्म समझा जाता है।

(१५) जिनका रोहिणी, मघा, विशाखा, श्रवण के तृतीय चरण में जन्म होता है उनका जन्म कन्या नवांश में समझा जाता है। इनकी ९ दशायें निम्नलिखित क्रम से हैं :—

कन्या, सिंह, कर्क, मिथुन, वृष, मेष, धनु, मकर और कुंभ। इनकी कुल दशा ८५ वर्ष की होती है। इनका देहाधिप शनि है और जीवाधिप प्रथम राशि का स्वामी अर्थात् कन्या का स्वामी बुध है।

(१६) जिनका रोहिणी, मघा, विशाखा, श्रवण के चतुर्थ चरण में जन्म होता है उनका जन्म सिंह नवांश में समझा जाता है। इनका जीवाधिप गुरु है और देहाधिप मंगल अर्थात् मीन इनकी जीव राशि है और वृश्चिक इनकी देहराशि। इनकी पूर्ण दशा १०० वर्ष की होती है जो निम्नलिखित क्रम से है:— मीन, मेष, वृष, मिथुन, सिंह, कर्क, कन्या, तुला, वृश्चिक।

(१७) जिनका मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा, धनिष्ठा के प्रथम चरण में जन्म होता है उनका कर्क नवांश में जन्म समझा जाता है। इनकी कुल दशा ८६ वर्ष की होती है और गुरु इनका जीवाधिप है और चन्द्रमा देहाधिप अर्थात् मीन राशि इनकी जीवराशि और कर्क देहराशि। इनका दशाक्रम निम्नलिखित है:— मीन, कुंभ, मकर, धनु, वृश्चिक, तुला, कन्या, सिंह, कर्क।

(१८) जिनका मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा और धनिष्ठा के द्वितीय चरण में जन्म हो, उनका पूर्ण दशामान ८३ वर्ष है। इनका मिथुन नवांश में जन्म समझा जाता है और दशाक्रम निम्नलिखित है:—

मिथुन, वृष, मेष, धनु, मकर, कुंभ, मीन, मेष, वृष। इनका जीवाधिप मिथुन का स्वामी बुध है और देहाधिप वृष राशि का स्वामी शुक्र।

(१९) जिनका मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा और धनिष्ठा के तृतीय चरण में जन्म हो उनका वृष नवांश में जन्म समझा जाता है। उनकी पूर्ण आयु ८५ वर्ष की होती है और दशाक्रम निम्नलिखित है: —
मिथुन, सिंह, कर्क, कन्या, तुला, वृश्चिक, मीन, कुंभ और मकर। प्रथम राशि का स्वामी मिथुन इनका जीवाधिप है और अंतिम राशि मकर का स्वामी देहाधिप है।

(२०) जिनका मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा और धनिष्ठा के चतुर्थ चरण में जन्म हो उनका जीवाधिप गुरु और देहाधिप मंगल होता है। इनका पूर्ण आयुमान १०० वर्ष है और दशा क्रम निम्नलिखित है:—
धनु, वृश्चिक, तुला, कन्या, सिंह, कर्क, मिथुन, वृष और मेष।

(२१) जिनका आर्द्रा, उत्तराफाल्गुनी ज्येष्ठा और शतभिषा के प्रथम चरण में जन्म होता है उनका मीन नवांश में जन्म समझा जाता है। जीवाधिप बृहस्पति है और देहाधिप चन्द्रमा अर्थात् मीन इनकी जीव राशि और कर्क इनकी देहराशि। इनका पूर्ण दशा मान ८६ वर्ष का होता है और दशाक्रम निम्न है:—

मीन, कुंभ, मकर, धनु, वृश्चिक, तुला, कन्या, सिंह, कर्क।

(२२) जिनका आर्द्रा, उत्तराफाल्गुनी, ज्येष्ठा और शतभिषा के द्वितीय चरण में जन्म होता है, उनकी जीव राशि मिथुन और जीवाधिप बुध। देहराशि वृष है, और देहाधिप शुक्र। इनका पूर्ण दशामान ८३ वर्ष है, दशा निम्नलिखित है :—

मिथुन, वृष, मेष, धनु, मकर, कुंभ, मीन, मेष। इनका कुंभ नवांश में जन्म समझा जाता है।

(२३) जिनका आर्द्रा, उत्तराफाल्गुनी, ज्येष्ठा और शतभिषा के तृतीय चरण में जन्म हो उनका मकर नवांश में जन्म समझा जाता है, इनका जीवाधिप बुध है और देहाधिप शनि। इनका पूर्ण दशामान ८५ वर्ष का होता है और दशाक्रम निम्नलिखित है :—

मिथुन, सिंह, कर्क, कन्या, तुला, वृश्चिक, मीन, कुंभ, मकर।

(२४) जिनका आर्द्रा, उत्तराफाल्गुनी, ज्येष्ठा, शतभिषा के चतुर्थ चरण में

जन्म होता है उनका धनु नवांश में जन्म समझा जाता है। इनका पूर्ण आयुमान १०० वर्ष का है, और दशाक्रम निम्नलिखित है :—

धनु, वृश्चिक, तुला, कन्या, सिंह, कर्क, मिथुन, वृष, मेष। प्रथम धनु राशि आई, इसका स्वामी बृहस्पति जीवाधिप हुआ और अंतिम राशि मेष है, इसका स्वामी मंगल देहाधिप हुआ।

अश्विनी, पुनर्वसु, हस्त, मूल, पूर्वाभाद्र, भरणी, पुष्य, चित्रा, पूर्वाषाढ़, उत्तराभाद्र, कृत्तिका, आश्लेषा, स्वाती, उत्तराषाढ़, रेवती यह १५ सव्य नक्षत्र कहलाते हैं। बाकी के १२ अर्थात् रोहिणी, मघा, विशाखा, श्रवण, मृगशीर्ष, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा, धनिष्ठा, आर्द्रा, उत्तराफाल्गुनी, ज्येष्ठा, शतभिषा। ये नक्षत्र अपसव्य नक्षत्र कहलाते हैं॥ ५-१०॥

मेष, धनु, सिंह, नवांश में पूर्ण आयु मान १०० वर्ष का होता है। वृष, कन्या, मकर, अंश में पूर्ण आयु मान ८५ वर्ष का होता है। मिथुन, तुला, कुंभ, अंश में पूर्ण आयु मान ८३ वर्ष का होता है। कर्क, वृश्चिक और मीन अंश में पूर्ण आयुमान ८६ वर्ष का होता है। इस प्रकार यह ध्यान में रखना चाहिए कि सव्य नक्षत्रों में जो प्रथम राशि है वह देह-राशि है। जो अंत में है वह जीव राशि। और अपसव्य नक्षत्रों में इसका उलटा है। जो सबसे प्रथम है वह जीव राशि, जो सबके अंत में है वह देहराशि। देहराशि का स्वामी देहाधिप कहलाता है और जीवराशि का स्वामी जीवाधिप॥११-१३॥

जीवः सर्वेष्वन्त्यपादौ विलोममपसव्यके।
देहजीवे यदा राहुः केतुर्भौमो रविः स्थितः॥१४॥

तदा तस्मिन्भवेन्मृत्युर्देहे रोगः प्रवर्तते।
देहजीवगृहं यातः सौम्यो जीवश्च भार्गवः॥१५॥

सुखसम्पत्करं सर्वं शोकरोगविनाशनम्॥
मिश्रखेचरसंयुक्ते मिश्रं फलमवाप्नुयात्॥१६॥

यदि नक्षत्र चाहे सव्य हो चाहे अपसव्य देहराशि में अथवा जीवराशि में राहु, केतु, मंगल या सूर्य हो तो उनकी दशा में मृत्यु होती है। देह या जीवराशि में बुध, बृहस्पति, शुक्र, शोक, रोग को दूर करता है और सुख सम्पत्ति देता है। यदि देह व जीव राशि में मिश्रित ग्रह हो अर्थात् मिले-जुले कुछ शुभ, कुछ खराब तो मिश्रित फल देते हैं अर्थात् कुछ अच्छा होता है, कुछ अनिष्ट॥१४-१६॥

सिंहावलोकसमये मण्डूकगतिसम्भवे।
अपमृत्युभयं तस्मिन् प्रायश्चित्ताद्विमुच्यते ।।१७।।

सिंहावलोकन गति व मण्डूकगति आगे श्लोक ८९ से ९१ में समझायी गयी है। मीन से वृश्चिक में जाना और धनु से मेष में जाना सिंहावलोकन गति है। कन्या से कर्क या सिंह से मिथुन में जाना मण्डूक गति है।

सिंहावलोकन के समय अर्थात् जब मीन से वृश्चिक या मेष से धनु दशा क्रम हो तब मृत्यु भय होता है। इसी प्रकार मण्डूक गति में अपमृत्यु होती है। अर्थात् जब कन्या से कर्क में जाये या सिंह से मिथुन में जाये तो अपमृत्यु भय होता है। इसकी शान्ति के लिए प्रायश्चित्त करना चाहिए ।।१७।।

मीनात्तु वृश्चिके याते ज्वरं भवति देहिनाम्।
पाथोनात्कर्कटे याते मातृबन्धुवधूमृतिः ।।१८ ।।

कर्कटात्तु हरौ याते व्रणरोगं वदेद् बुधः।
सिंहात्तु मिथुनं याते स्वस्त्रीव्याधिर्मृतिर्भवेत् ।।१९।।

पुत्रबन्धुमृतिं विद्याच्चापान्मेषं गते पुनः।
शुभग्रहेऽस्मिन्नभयं पापग्रहयुते भयम् ।।२०।।

कन्यायाः कर्कटे याते पूर्वभागे महान्भवेत्।
उत्तरां दिशमाश्रित्य शुभयात्रां गमिष्यति ।।२१।।

सिंहात्तु मिथुनं याते पूर्वभागं विवर्जयेत्।
कार्यारम्भे तु नैर्ऋत्यां सुखयात्रां गमिष्यति ।।२२।।

कर्कटाद्दक्षिणे सिंहे कार्यहानिश्च रोगकृत्।
दक्षिणां दिशमाश्रित्य पश्चादागमनं भवेत् ।।२३।।

मीनात्तु वृश्चिके क्रान्ते उदग्गच्छति सङ्कटम्।
चापान्मेषे भयं यात्रा व्याधिर्बन्धुमृतिर्भवेत् ।।२४।।

तत्र सम्पद्विवाहादि शुभं भवति पश्चिमे।
शुभारूढे नृपप्रीतिं सर्वसम्पत्करं नृणाम् ।।२५।।

मीन से वृश्चिक में जब दशा जाती है तो मनुष्य को बुखार आदि रोग होते

हैं। इसी प्रकार कन्या से कर्क की दशा होती है तब माता, बन्धु और स्त्री की मृत्यु होती है ॥१८॥

कर्क से सिंह में जाने वाली दशा अर्थात् कर्क के बाद जब सिंह की दशा आती है तो बुद्धिमान् व्यक्ति अर्थात् पंडित लोग व्रण रोग कहते हैं। सिंह से जब मिथुन की दशा आती है तब व्याधि से स्त्री की मृत्यु होती है ॥१९॥

धनु से मेष पर जब काल चक्र दशा जाती है तो पुत्र और मित्र की मृत्यु होती है। इसमें यदि शुभ ग्रह वर्तमान हों तो शुभ फल होता है अर्थात् मृत्यु नहीं होती। पाप ग्रह होने से खराब है ॥२०॥

कन्या से कर्क में जब काल चक्र दशा होती है तो पूर्व भाग में महान् हो। सुब्रह्मण्य शास्त्री ने इसका अर्थ किया है कि पूर्वार्द्ध में महान् हो। परन्तु हम इस अर्थ से सहमत नहीं हैं, पूर्वभाग में महान् हो अर्थात् पूर्वदिशा में महान् हो। यहाँ उत्तर दिशा में शुभ यात्रा कहे ॥२१॥

सिंह से मिथुन में जब दशा आती है तो पूर्व दिशा का त्याग करे अर्थात् पूर्व दिशा में यात्रा न करे। यहाँ कार्य सिद्धि के लिए नैऋर्त्य दिशा में यात्रा करनी चाहिए उसमें सफलता मिलती है और सुख पूर्वक यात्रा होती है ॥२२॥

सव्य चक्र में कर्क से सिंह में जब दशा जाती है तो कार्य में असफलता मिलती है और रोग होता है। दक्षिण दिशा की यात्रा होती है और पीछे आगमन होता है अर्थात् प्रसन्नता पूर्वक लौट आता है ॥२३॥

मीन से वृश्चिक में जाने वाली दशा में उत्तर दिशा में यात्रा करे तो संकट होता है। धनु से मेष पर जाने वाली दशा में भय, यात्रा, रोग व बन्धु का मरण होता है ॥२४॥

यहाँ धनु से मेष में जब दशा होती है तब शुभ ग्रह होने से अर्थात् राशि में से शुभ ग्रह बैठने से सम्पत्ति कारक है और विवाह आदि कार्य पश्चिम दिशा में होते हैं। मनुष्य को राजा की कृपा और सर्व सम्पत्ति उपलब्ध होती है ॥२५॥

देहो मेषश्चापसिंहाजभानां जीवश्चापी गोवधूनक्रभानाम् ।
आकोकेरो देहसंज्ञो नृयुग्मं जीवः सव्ये चापसव्ये विलोमात् ॥२६॥

उक्षा देहो युग्मकोणं गतानां जीवं युग्मागारमाहुर्मुनीन्द्राः ।
मीनो जीवः कर्कटो देहराशिः सव्ये चक्रे कर्किकीटान्त्यभानाम् ॥२७॥

इसमें देह व जीव वाली बात बताई गई है जो हम पहले बता चुके हैं। पुनः कहते हैं। ऊपर श्लोक ४ से १३ की व्याख्या में हमने नक्षत्र चरणों को

२४ मार्ग में बांटा है । कोई न कोई नक्षत्र किसी मेष अंश से लेकर मीन अंश तक किसी न किसी नवांश में है । सव्य नक्षत्र में :—

(१) मेष अंश, देहाधिप मंगल, जीवाधिप गुरु ।
(२) वृषभ अंश, देहाधिप शनि, जीवाधिप बुध ·
(३) मिथुन अंश, देहाधिप शुक्र, जीवाधिप बुध
(४) कर्क अंश, देहाधिप चन्द्र, जीवाधिप गुरु ।
(५) सिंह अंश, देहाधिप मंगल, जीवाधिप गुरु ।
(६) कन्या अंश, देहाधिप शनि, जीवाधिप बुध ।
(७) तुला अंश, देहाधिप शुक्र, जीवाधिप बुध ।
(८) वृश्चिक अंश, देहाधिप चन्द्र, जीवाधिप गुरु ·
(९) धनु अंश, देहाधिप मंगल, जीवाधिप गुरु ।
(१०) मकर अंश, देहाधिप शनि, जीवाधिप बुध ।
(११) कुंभ अंश, देहाधिप शुक्र, जीवाधिप बुध ।
(१२) मीन अंश, देहाधिप चन्द्र, जीवाधिप गुरु ।

अब अपसव्य नक्षत्रों को लीजिए :—

(१३) वृश्चिक अंश, देहाधिप चन्द्र, जीवाधिप गुरु ।
(१४) तुला अंश, देहाधिप शुक्र, जीवाधिप बुध ।
(१५) कन्या अंश, देहाधिप शनि, जीवाधिप बुध ।
(१६) सिंह अंश, देहाधिप मंगल, जीवाधिप गुरु ।
(१७) कर्क अंश, देहाधिप चन्द्र, जीवाधिप गुरु ।
(१८) मिथुन अंश, देहाधिप शुक्र, जीवाधिप बुध ।
(१९) वृष अंश, देहाधिप शनि, जीवाधिप बुध ।
(२०) मेष अंश, देहाधिप मंगल, जीवाधिप गुरु ।
(२१) मीन अंश, देहाधिप चन्द्र, जीवाधिप गुरु ।
(२२) कुंभ अंश, देहाधिप शुक्र, जीवाधिप बुध ।
(२३) मकर अंश, देहाधिप शनि, जीवाधिप बुध ·
(२४) धनु अंश, देहाधिप मंगल, जीवाधिप गुरु ।

अर्थात् काल चक्र दशा के सव्य नक्षत्रों में जिस राशि की दशा सर्व प्रथम होती है उस राशि का स्वामी देहाधिप होता है । जो उसकी दशा में अंतिम राशि होती है उसका स्वामी जीवाधिप होता है । अपसव्य नक्षत्रों में इसका उलटा है, जिस राशि की दशा सर्वप्रथम होती है वह जीवाधिप और जिस राशि की दशा अंत में होती है वह देहाधिप कहलाता है ।।२६-२७।।

देहजीवसमायुक्तैर्भौमार्किरविभोगिभिः ।
एकैकयोगे मरणं बहुयोगे न संशयः ॥२८॥

देहयुक्ते महारोगं जीवयुक्ते महद्भयम् ।
द्वाभ्यां संयोगमात्रेण हन्यते नात्र संशयः ॥२९॥

अधिरोगो भवेद् द्वाभ्यामपमृत्युस्त्रिभिर्भवेत् ।
चतुर्भिर्मृतिरापन्ना देहजीवे भवेद्यदि ॥३०॥

युगपद्देहजीवौ तु पापग्रहयुतौ तथा ।
राजचोरादिभीतिश्च द्वाभ्यां मृत्युर्न संशयः ॥३१॥

अग्निबाधां रवौ विद्याच्चन्द्रे ज्वलनबाधनम्
भौमे शस्त्रकृता पीडा वायुबाधाकरं बुधे ॥३२॥

गुरौ चोदरबाधा स्यात् शुक्रेऽग्निभयमाप्नुयात्।
शनौ गुल्मेन बाधा स्याद् राहौ विषकृतां रुजम् ॥३३॥

देहाधिप और जीवाधिप दोनों समझाये हैं । अब देह और जीव समझ लीजिए । देह से तात्पर्य है देह राशि का, जीव से तात्पर्य है जीव राशि का । ऊपर श्लोक ४ से १३ तथा २७, २८ में नक्षत्र चरणों को २४ भागों में बाँटा गया है । इनकी देह राशि और जीव राशि निम्नलिखित हैं :—

(१) देह मेष, जीव धनु । (२) देह मकर, जीव मिथुन ।
(३) देह वृष, जीव मिथुन । (४) देह कर्क, जीव मीन ।
(५) देह वृश्चिक, जीव मीन । (६) देह कुंभ, जीव कन्या ।
(७) देह तुला, जीव कन्या । (८) देह कर्क, जीव धनु ।
(९) देह मेष, जीव मिथुन । (१०) देह मकर, जीव मिथुन ।
(११) देह वृष जीव मिथुन । (१२) देह कर्क, जीव मीन ।

अब अपसव्य के जो १२ भाग किये हैं उनमें देहराशि और जीव राशि बताते हैं :—

(१३) देह कर्क, जीव धनु । (१४) देह तुला, जीव कन्या ।
(१५) देह कुंभ, जीव कन्या । (१६) देह वृश्चिक, जीव मीन ।
(१७) देह कर्क, जीव मीन । (१८) देह वृष, जीव मिथुन ।

(१९) देह मकर, जीव मिथुन। (२०) देह मेष, जीव धनु।
(२१) देह कर्क, जीव मीन। (२२) देह वृष, जीव मिथुन।
(२३) देह मकर, जीव मिथुन। (२४) देह मिथुन, जीव धनु।

इस प्रकार प्रत्येक ग्रंश में उत्पन्न व्यक्ति की देह ग्रौर जीव राशि बताई है। बताने के बाद कहते हैं।

रवि, मंगल, शनि ग्रौर राहु जीव या देह राशि में बैठे हों तो एक-एक के योग में मरण कहे। बहुतों के योग में निश्चय मृत्यु है। कहने का तात्पर्य है कि ये ग्रह कष्ट कारक हैं ॥२८॥

उपरोक्त दो क्रूर ग्रह यदि देह में हों तो महारोग होता है। यदि दो क्रूर ग्रह जीव में बैठे हों तो महाभय होता है। यदि दो क्रूर ग्रह जीव में ग्रौर दो क्रूर ग्रह देह में बैठे हों तो निश्चय मृत्यु होती है ॥२९॥

देह व जीव दोनों पाप ग्रह युत हों ग्रर्थात् दोनों में पाप ग्रह बैठे हों तो ग्रधिरोग होता है। यदि तीन पाप ग्रहों का संयोग जीव ग्रौर देह से हो तो ग्रपमृत्यु होती है। यदि चार का संयोग हो तो निश्चय मृत्यु होती है ॥३०॥

देह राशि ग्रौर व जीव राशि दोनों पाप ग्रह से युक्त हों तो राजा से ग्रौर चोर से भय हो। यदि दोनों में ग्रर्थात् जीव राशि ग्रौर देह राशि में दो-दो पाप ग्रह हों तो निश्चय मृत्यु होती है। इसमें सन्देह नहीं ॥३१॥

जब देह राशि या जीव राशि में सूर्य हो तो ग्रग्नि बाधा कहनी चाहिए। चन्द्रमा हो तो ज्वलन बाधा। मंगल हो तो शस्त्र से पीड़ा हो या शस्त्र से आघात लगे। बुध हो तो वायु की बाधा हो ॥३२॥

बृहस्पति हो तो उदर बाधा। शुक्र हो तो ग्रग्नि से पीड़ित हो ग्रौर शनि हो तो बड़ा फोड़ा या गुल्म हो। राहु हो तो निश्चय विष जनित रोग हो ॥३३॥

भ्रातृस्थानगतो जीवो दारस्थानगतः कुजः।
तथा जन्मगतो मन्दो राहुर्नवमराशिगः ॥३४॥

चन्द्रोऽष्टमग्रहं यातः सूर्यो रिष्फग्रहं गतः।
बुधः सप्तमभावस्थो भार्गवः शत्रुराशिगः ॥३५॥

इत्येवं मरणस्थानं तस्मिन्पापयुतेऽथवा।
पापदृष्टेऽरिनीचस्थे दुर्बले दुःखमाप्नुयात् ॥३६॥

भ्रातृ स्थान में ग्रर्थात् तीसरे स्थान में बृहस्पति, दारा स्थान में अर्थात् सातवें मंगल, जन्म स्थान में ग्रर्थात् लग्न में शनि, भाग्य स्थान ग्रर्थात् नवम

में राहु, मृत्यु स्थान में अर्थात् अष्टम स्थान में चन्द्रमा, रिष्फ स्थान में अर्थात् बारहवें सूर्य, सप्तम स्थान में अर्थात् सातवें स्थान में बुध और शत्रु स्थान में अर्थात् छठे स्थान में शुक्र, मरण स्थान है, यहाँ अगर नीच राशि या अपने शत्रु की राशि में स्थित पाप ग्रह से दृष्ट या युत हो तो कष्ट होता है। यहाँ पर पाप ग्रह संयुक्त होने से कष्ट होता है और पाप ग्रह यदि नीच राशि का या शत्रु का हो तो विशेष कष्ट कहना ॥३४-३६॥

देह जीवफल

भानुः करोति विविधापदमर्थनाश-
मार्तिज्वरारिजनभीतिपदच्युतिं च।
पित्तार्तिगुल्मग्रहणीक्षयकर्णरोगं
पश्वादिबन्धुमरणं सहजादिनाशम् ॥३७॥

सूर्य फल

चन्द्रः स्वबन्धुजनसङ्गमकन्यकाप्ति-
मारोग्यभूषणसुखाम्बरराजपूज्यम्।
दानक्रियादिसुरभूसुरपुण्यतीर्थ-
स्नानार्चनं मृदुसुखान्नसुखं करोति ॥३८॥

चन्द्र फल

भौमः करोति तनुतापरुगग्निचोर-
भीतिं स्वबन्धुकलहं सहजादिनाशम्।
क्षेत्रार्थनाशपदविच्युतियुद्धनीतिं
गुल्मार्शकुष्ठविषशत्रुभयं कुवृत्तिम् ॥३९॥

ज्वरमासुरिकापैत्त्यं ग्रन्थिस्फोटं कुजस्य च।
विषाग्निशस्त्रचोरारिनृपभीतिं वदेद् बुधः ॥४०॥

भौम फल

सौम्यः करोति सुहृदाप्तमहत्प्रसाद-
विज्ञानशीलनिगमागमशास्त्रबोधम्।
स्त्रीपुत्रदारनृपभूषणगोगजाश्व-
लाभं विवेकधनबुद्धियशोऽभिवृद्धिम् ॥४१॥

बुधफल

जीवः करोति विविधार्थसुखं महत्त्वं
राज्याभिषेकमवनिप्रभुपूजनाद्यम् ।
स्त्रीपुत्रलाभसुखभूषणभोजनार्थ-
मारोग्यकीर्तिविजयं च परोपकारम् ॥४२॥

गुरुफल

शुक्रः करोति रतिलाभसुखाङ्गनादि-
चित्राम्बरार्थपशुवाहनरत्नजालम
गानक्रियानटनगोष्ठिमहत्प्रतापं
सत्कीर्तिदानविभवं सुजनैः समाजम ॥४३॥

शुक्रफल

मन्दः करोति कलहं तनुकृच्छ्रमृत्यु-
बन्ध्वार्तिमग्निरिपुभूतभयं विषार्तिम ।
मानार्थहानिमभिमानकलत्रपुत्र-
नाशं गृहार्थकृषिवाणिजगोविनाशम् ॥४४॥

शनिफल

राहौ देहेऽरिपीडाऽऽत्मबन्धुकष्टपरिभ्रमम्
पक्षाघातादिपीडां च राजभीतिं वदेन्नृणाम् ॥४५॥

राहुफल

केतौ चोराग्निपीडादिरक्तस्रावादिपीडनम् ।
दारिद्रयं बन्धुनाशं च स्थाननाशं धनक्षयम् ॥४६॥

सूर्य यदि देहराशि या जीवराशि में हो तो नाना प्रकार की आपत्तियाँ अर्थनाश, कष्ट, शत्रुओं से भय, पदच्युति, ज्वर, पित्तरोग का बाहुल्य, गुल्म, संग्रहणी, क्षय, कान के रोग, पशु नाश, बन्धु का मरण और भ्रातृ नाश करता है ॥३७॥

चन्द्रमा यदि देहराशि या जीवराशि में हो तो अपने बन्धुओं से समागम, बेटी की प्राप्ति, आरोग्य, भूषणों की प्राप्ति, वस्त्र की प्राप्ति, राजा से आदर,

दान करना, देव ब्राह्मण की सेवा, तीर्थों में स्नान-पूजन और मृदु अन्न सुख प्राप्त करता है ।।३८।।

मंगल यदि देहराशि या जीवराशि में हो तो शरीर में ज्वर जिसके कारण ताप हो, अग्नि से भय, चोर से भय, बन्धुओं से कलह, भ्रातृ नाश, धन नाश, भूमि नाश, पदच्युति, युद्ध में प्रवृत्ति, गुल्म अर्थात् औंधा फोड़ा, बवासीर, कोढ़, भय, शत्रु से भय और कुवृत्ति अर्थात् छोटी नौकरी या छोटा कारबार कराता है ।।३९।।

पुनः कहते हैं कि मंगल ज्वर, मसूरिका अर्थात् शीतला या माता का रोग पित्त के रोग, गठिया, घाव, विष से भय, अग्नि से भय, शत्रु से भय तथा राजा से भय कराता है ।।४०।।

बुध देह या जीव राशि में हो तो मित्रों से हर्ष हो । विज्ञान, शील, निगमागम, शास्त्र का अध्ययन, स्त्री सुख, पुत्र सुख, राजा की कृपा, राजा से भूषण प्राप्ति, गाय, हाथी, घोड़े का लाभ, विवेक, धन और यश की वृद्धि कराता है ।।४१।।

बृहस्पति देह या जीव राशि में हो नाना प्रकार के धन की प्राप्ति, सुख की प्राप्ति कराता है । महत्व बढ़ता है, यदि राजा हो तो राज्याभिषेक हो, साधारण व्यक्ति हो तो राजा की कृपा हो । स्त्री का सुख, पुत्र का सुख, धन का सुख होता है । शरीर नीरोग रहता है, भूषण की प्राप्ति कराता है, परोपकार बुद्धि जागृत होती है और मनुष्य का यश विस्तार होता है; उसकी कीर्ति बढ़ती है ।।४२।।

शुक्र यदि देह या जीव राशि में हो तो रति का लाभ, स्त्रियों से हर्ष की प्राप्ति, अनेक वस्त्र, धन, पशु वाहन, रत्न समूह का लाभ होता है । उसकी नाचने-गाने में विशेष प्रवृत्ति होती है और उसका प्रताप बढ़ता है, दान देने से उसका यश बढ़ता है, उसकी कीर्ति बढ़ती है, वैभव का विस्तार होता है और सज्जनों से सत्संग कराता है ।।४३।।

यदि देह राशि या जीव राशि में शनि हो तो मनुष्य कलह करे, उसका शरीर क्षीण रहे । उसकी या उसके परिवार में मृत्यु हो, भ्रातृ सुख प्राप्त हो, अग्नि का भय हो, शत्रु से भय हो, भूतों से भय हो, विष से पीड़ा हो, धन व मान की हानि हो, उसका गौरव मिट्टी में मिल जाय और स्त्री और पुत्र का नाश हो केवल यही नहीं उसके घर का, धन का, खेती बाड़ी का, व्यापार का तथा गाय, बैलों का नाश कराता है ।।४४।।

जीव या देह राशि में राहु हो तो मन में ताप रहे अर्थात् चिन्ता और

उद्विग्नता रहे, बन्धुओं को कष्ट हो, शत्रु से पीड़ा हो, लकवा इत्यादि की बीमारी हो और राजभय हो ।।४५।।

केतु यदि देह या जीव राशि में हो तो अग्नि से पीड़ा हो या शरीर से रक्त का प्रवाह हो, दरिद्रता हो, उसका स्थान नाश होता है और धन नाश भी, उसके किसी बन्धु की मृत्यु हो ।।४६।।

चक्रदशाफल

लग्नफल

लग्नचक्रदशाकाले देहारोग्यं महत्सुखम् ।
कीर्तिभूषणराज्यार्थसुतदाराम्बरायतिम् ।।४७।।

शुभक्षेत्रे शुभं सर्वं पापर्क्षे फलमन्यथा ।
तद्वत्पापसमायुक्ते शुभयुक्ते शुभादिकम् ।।४८।।

स्वक्षेत्रतुङ्गमित्रस्थखेचरेण समन्विते ।
विलग्नचक्रपाके तु राज्यार्थनृपपूजनम् ।।४९।।

नीचमूढारिराशिस्थखेचरेण समन्विते ।
पुत्रदारादिनाशं च मिश्रे मिश्रफलं वदेत् ।।५०।।

द्वितीयफल

द्वितीयराशिचक्रे तु धनधान्यविवर्द्धनम् ।
भोजनं सुतदाराप्ति क्षेत्रगोनृपपूजनम् ।। ५१ ।।

विद्याप्ति वाक्पटुत्वं च सद्गोष्ठया कालयापनम् ।
शुभर्क्षे फलमेव स्यात्पापर्क्षे फलमन्यथा ।। ५२ ।।

तृतीयफल

तृतीयराशिचक्रस्य परिपाके महत्सुखम् ।
भक्ष्यभोज्यफलाप्ति च शौर्यं धैर्यं मनोजयम् ।। ५३ ।।

कर्णाभरणवस्त्राप्ति कण्ठभूषणमायतिम् ।
अन्नपानादिसम्पत्ति शुभराशौ शुभं वदेत् ।। ५४ ।।

चतुर्थफल

चतुर्थराशिचक्रस्य पाके वाहनभूषणम् ।
सीमाप्तितीर्थयात्रादिमहज्जननिषेवणम् ।। ५५ ।।

चित्तशुद्धि महोत्साहं स्त्रीसुताप्तिकृषिक्रियाम् ।
बन्धुक्षेत्राभिवृद्धि च गृहलाभं महत्सुखम् ॥ ५६ ॥
आरोग्यमर्थलाभं च सुगन्धाम्बरभूषणम् ।
शुभर्क्षे शोभनं विद्यात्पापर्क्षे सर्वनाशनम् ॥५७॥

सुतफल

सुतराश्यात्मके चक्रे राज्याप्ति राजपूजनम् ।
स्त्रीसुताप्ति महाधैर्यमारोग्यं बन्धुपोषणम् ॥५८॥
अन्नदानं यशोलाभमानन्दाब्धिमहोदयम् ।
उपकर्तृत्वमर्थाप्ति वाहनाम्बरभूषणम् ॥५९॥
शुभपापर्क्षजं सर्वं ग्रहयोगादिसम्भवम् ।
पूर्ववद्योजयेत्तत्र चरराशौ वदेद् द्युतिम् ॥६०॥

षष्ठफल

चक्रस्य षष्ठराशेस्तु परिपाकेऽग्निजं भयम् ।
चोरारिविषभूपार्तिस्थाननाशं महद्भयम् ॥६१॥
प्रमेहगुल्मपाण्ड्वादिग्रहणीक्षयसम्भवम् ।
अपकीर्तिः कलत्रार्थे सुतबन्धुविनाशनम् ॥६२॥
बन्धनानि गरप्राप्तिमृणदारिद्र्यपीडनम् ।
पापर्क्षे फलमेवं स्यान्मिश्रं शुभगृहे सति ॥६३॥

सप्तमफल

कलत्रराशिचक्रस्य परिपाके करग्रहः ।
स्त्रीसुखं पुत्रलाभं च घृतसूपगुडादिकम् ॥६४॥
कृषिगोगजभूषाप्ति राजपूजां महद्यशः ।
शुभराशौ फलं सत्यं शुभखेचरसंयुते ॥६५॥

अष्टमफल

मृत्युचक्रदशाकाले महद् दुःखं धनक्षयम् ।
स्थाननाशं बन्धुनाशं गुह्योदरनिपीडनम् ॥६६॥

दारिद्रचमन्नविद्वेषमन्नाभावमरेर्भयम् ।
पापर्क्षे पापसंयोगे फलमेवं विनिर्द्दिशेत् ॥६७॥

नवमफल

शुभचक्रदशाकाले शोभनं भवति ध्रुवम् ।
पुत्रमित्रकलत्रार्थकृषिगोगृहभूषरणम् ॥६८॥
सत्कर्मधर्मसंसिद्धि महज्जनपरिग्रहम् ।
शुभराशौ शुभं सर्वं पापराशौ विपर्ययः ॥६९॥

दशमफल

कर्मचक्रदशाकाले राज्याप्ति नृपपूजनम् ।
सत्कीर्तिदारपुत्रात्मबन्धुसङ्गं महोत्सवम् ॥७०॥
आज्ञाधरत्वमारोग्यं सद्गोष्ठचा कालयापनम् ।
सत्कर्मफलमैश्वर्य्यं शुभराशौ वदेद् बुधः ॥ ७१ ॥

लाभफल

लाभचक्रदशाकाले धनाप्त्यारोग्यभूषरणम् ।
विचित्रवस्त्वागमनं गृहोपकररणं लभेत् ॥ ७२ ॥
स्त्रीपुत्रबन्धुसौख्याप्तिमृरणद्रव्यार्याप्ति शुभम् ।
राजप्रीतिं महत्सङ्गं प्रवदन्ति शुभोदये ॥ ७३ ॥

व्ययफल

व्ययचक्रदशाकाले देहार्ति स्वपदच्युतिम् ।
चोराग्निनृपकोपादिबन्धुस्त्रीनृपपीडनम् ॥ ७४ ॥
उद्योगभङ्गमालस्यं कृषिगोभूमिनाशनम् ।
दारिद्रचं कर्मवैकल्यं पापर्क्षे तु न संशयः ॥ ७५ ॥

अब प्रथम से लेकर १२ भाव तक काल चक्र दशा का फल कहते हैं। पहले बतलाया जा चुका है कि काल चक्र दशा में राशि होती है। लग्न की काल चक्र दशा में देह नीरोग रहता है और महासुख होता है। राजा हो तो

राज्य प्राप्त होता है, साधारण व्यक्ति हो तो राजा की कृपा होती है, यश का विस्तार होता है, धन और वस्त्र की प्राप्ति होती है । स्त्री और पुत्र का सुख रहता है ।।४७।।

यदि लग्न शुभ क्षेत्र में हो अर्थात् शुभ ग्रह की राशि लग्न में पड़े तो शुभ फल हो । पाप ग्रह की राशि पड़े तो पाप फल । उसी प्रकार शुभ ग्रह यदि लग्न में बैठा हो तो शुभ फल । पाप लग्न में बैठा हो तो पाप फल ।।४८।।

स्वग्रह में अर्थात् अपने घर में, अपनी उच्च राशि में या अपने मित्र की राशि में कोई ग्रह लग्न में बैठा हो तो लग्न की दशा में राज्य की प्राप्ति, धन प्राप्ति और राजा से सम्मान मिलता है ।।४९।।

नीच राशि, शत्रु राशि किंवा अस्त ग्रह लग्न में हो तो पुत्र, स्त्री आदि का नाश होता है । यदि शुभ ग्रह और पाप ग्रह दोनों हों तो मिला-जुला फल कहें ।।५०।।

द्वितीय भाव की दशा में धन की वृद्धि होती है । अन्न काफी मात्रा में प्राप्त होता है । भोजन विशेष अच्छा मिलता है । पुत्र, स्त्री, जमीन की प्राप्ति होती है और राजा से सम्मान मिलता है । विद्या की वृद्धि होती है । सज्जनों के साथ में विशेष समय व्यतीत होता है । वाक् शक्ति बढ़ती है अर्थात् बोलने में पटुता आती है ।

यदि द्वितीय स्थान में शुभ ग्रह हों तो शुभ फल होता है, एवं पाप राशि होने से पाप फल मिलता है ।।५१-५२।।

तीसरे भाव की दशा में उत्तम सुख प्राप्त हो, अच्छे भोजनादि का लाभ हो, साहस, धैर्य एवं सन्तोष के साथ मनुष्य काम करे । कर्ण भूषण, कंठ भूषण, वस्त्र, सुन्दर अन्न लाभ हो । अच्छे पेय पीने को मिलें । शुभ ग्रह यदि तीसरे स्थान में हों तो उपर्युक्त फल बहुत अच्छी मात्रा में प्राप्त हो अन्यथा साधारण फल जाने ।।५३-५४।।

चौथे भाव की जब काल चक्र दशा हो तो सवारी प्राप्त हो । उत्तम भूषण की उपलब्धि हो । जमीन की प्राप्ति हो । तीर्थ यात्रा का प्रसंग उपस्थित हो। सज्जनों से समागम हो । चित्त की शुद्धि और उत्साह मन में बढ़े । स्त्री पुत्र की प्राप्ति हो या इनका सुख हो । कृषि में उन्नति हो, मित्रों से प्रेम बढ़े, मकान का लाभ हो, धन लाभ, सुगन्धि और वस्त्रों की प्राप्ति हो । स्त्री नीरोग रहे और महान् सुख । यहाँ शुभ राशि होने से शुभ फल और पाप राशि होने से पाप फल कहना चाहिए ।।५५-५७।।

काल चक्र दशा में जब पाँचवें भाव की दशा आती है तो राजा हो तो राज्य प्राप्ति अन्यथा राजा से सत्कार और पद वृद्धि हो । मनुष्य में धैर्य बढ़े

ग्रौर स्त्री नीरोग रहे, स्त्री-पुत्र की प्राप्ति, किंवा इनका सुख हो, बन्धुग्रों का पालन, ग्रन्नदान करे ग्रौर कीर्ति का विस्तार हो, मंगल कार्य घर में हों। मनुष्य दूसरों का उपकार करे। धन लाभ ग्रौर सवारी का लाभ हो, वस्त्र ग्रौर ग्राभूषण की वृद्धि हो। शुभ ग्रह होने से सब शुभ रहता है। पाप ग्रहों के योग से पाप फल होता है ॥५८-६०॥

छठे भाव की काल चक्र दशा में ग्रनिष्ट फल कहा है। राजा से भय हो, ग्रग्नि का भय, चौर भय, शत्रु भय, विष भय, पीड़ा ग्रौर स्थान की हानि हो, प्रमेह गुल्म अर्थात् फोड़ा, पीलिया, संग्रहणी आदि रोग हों। तपेदिक की बीमारी का भय हो, पुत्र ग्रौर बन्धुग्रों का नाश हो, स्त्री को लेकर अपयश हो, जेल ग्रादि में बन्धन का भय हो, कर्ज से पीड़ित रहे ग्रौर गरीबी से पीड़ा हो, विष या घातक वस्तु के खाने से शरीर में रोग हो। इस प्रकार छठे भाव की दशा में समस्त पीड़ाग्रों का उल्लेख है। यदि छठे भाव में शुभ राशि पड़े तो यह सब पीड़ा कम होती है। यदि पाप राशि पड़े, पाप ग्रह बैठा हो तो विशेष मात्रा में कष्टकारक होती है ॥६१-६३॥

यदि काल चक्र दशा में सातवें भाव की अर्थात् सातवें भाव में जो राशि पड़ी हो उसकी दशा आये तो मनुष्य का विवाह होता है, ग्रन्यथा स्त्री सुख कहना चाहिए। पुत्र की प्राप्ति हो या पुत्र का उदय हो, सुन्दर मिठाई ग्रादि का भोजन हो। कृषि में विस्तार हो, गाय, भैंस की संख्या बढ़े। वाहन का सुख हो, घर में सुन्दर कार्य हो। यश का विस्तार हो। शुभ ग्रह, शुभ राशि में हो तो बहुत अच्छा शुभ फल समझना चाहिए ॥६४-६५॥

यदि कालचक्रदशा में आठवें भाव की दशा हो ग्रर्थात् आठवें जो राशि पड़ी है उसकी दशा हो तो बहुत दुःख हो। स्थान नाश हो ग्रौर धन का नाश हो। मित्र की मृत्यु हो या मित्र-शत्रु हो जाये। गुदा रोग हो जैसे बवासीर, भगन्दर आदि। पेट में रोग हो। ग्रन्न में अरुचि हो अर्थात् भूख न लगे। दरिद्रता से घिरा रहे। शत्रु भय विशेष हो। यदि ग्राठवें में पाप राशि ग्रौर पाप ग्रह हो तो बहुत अनिष्ट होता है ग्रौर यह फल पूर्ण रूप से मिलते हैं ॥६६-६७॥

यदि काल चक्र दशा उस राशि की हो जो नवें भाव में पड़ी हो तो निश्चय शुभ फल प्राप्त हो। पुत्र का जन्म या उदय हो, मित्र ग्रौर स्त्रियों का सुख रहे। पशु प्राप्ति हो, कृषि का विस्तार हो, धनागम हो। मकान की प्राप्ति हो। भूषण की प्राप्ति हो। शुभ कार्य की सिद्धि हो। सज्जनों से प्रेम प्राप्त हो। यदि नवम में शुभ राशि हो ग्रौर शुभ ग्रह नवम में बैठा हो तो विशेष कर शुभ होता है ॥६८-६९॥

जब दशम भाव में जो राशि हो उसकी दशा हो तो राज्य प्राप्ति और राज सेवक हो तो पदोन्नति। स्त्री-पुत्र का सुख हो। मित्रों का उदय हो। यश विस्तार हो। घर में मंगल कार्य हो। नीरोग रहे। सज्जनों से सत्संग हो। विशिष्ट कार्य करे। हुकूमत का विस्तार हो। यदि शुभ राशि हो तो बहुत अच्छे फल होते हैं ।।७०-७१।।

लाभ भाव में जो राशि है उसकी दशा हो तो धन लाभ कहना। भूषण और सुन्दर वस्त्रों का लाभ होता है। घर की सामग्रियों का लाभ होता है। स्त्री, पुत्र और मित्रों का सुख हो। भूषण प्राप्त हों। राजा से प्रीति हो और सज्जनों से समागम हो। बन्धुओं का उदय हो। इस प्रकार सब शुभ फल प्राप्ति होती है ।।७२-७३।।

जब व्यय राशि अर्थात् बारहवें घर की राशि की दशा हो तो अनिष्ट फल हो। पद का नाश हो। शरीर में पीड़ा हो। राज भय, चौर भय, अग्नि भय हो। राज कोप से पीड़ा हो। उद्योग का नाश हो। खेती का नाश हो। पशुओं की संख्या में कमी हो। दरिद्रता बढ़े और कर्म में विफलता हो। यदि पाप राशि हो और पाप ग्रहों का योग हो तो बहुत अधिक कष्ट होता है ।।

उपर्युक्त फलों में यह विशेषता जाननी चाहिए कि शुभ फलों में यथा लग्न, द्वितीय भाव, तृतीय भाव, चतुर्थ भाव, पंचम भाव, सप्तम भाव, नवम भाव, दशम भाव और एकादश भाव में यदि शुभ ग्रह की राशि पड़े और शुभ ग्रह से युक्त हो तो यह सुन्दर फल होता है। और छठे, आठवें, बारहवें भाव में यदि पाप ग्रह की राशि पड़े और पाप युक्त हो तो पाप फल उत्कट होता है ।।७४-७५।।

चक्र फल दशा में विशेष

लग्नादिद्वादशान्तानां भावानां फलमीदृशम्।
प्रोक्तमत्र विशेषोऽस्ति विशेषात्कथ्यतेऽधुना ।। ७६ ।।

तत्तद्राशीशवीर्येण यथायोग्यं प्रयोजयेत्।
राशीश्वरे बलयुते स्वोच्चमित्रस्ववर्गके ।। ७७ ।।

मित्रान्विते शुभैर्दृष्टे यत्प्रोक्तं तच्छुभं वदेत्।
बलहीनेऽरिनीचस्थे दिनेशकरपीडिते ।। ७८ ।।

षष्ठाष्टमव्ययस्थाने पापशत्रुनिरीक्षिते।
तद्राशिपे तु जनने कष्टं राश्युद्भवं फलम् ।। ७९ ।।

फलं तद्द्विगुणं कष्टं शुभं राश्युद्भवं फलम् ।
अधिपस्य बलं हीनं यदि चानर्थमाप्नुयात् ॥ ८० ॥
अधिपस्य बलाधिक्यं राश्युद्भवफलं शुभम् ।
यदि चेद् द्विगुणं सौम्यं फलत्येव न संशयः ॥ ८१ ॥
अधिपे चरराशिस्थे चरराश्यंशकेऽपि वा ।
चरराश्युद्भवं चक्रं विदेशगमनप्रदम् ॥ ८२ ॥
यावच्चक्रं तदा ज्ञेयं यद्येकस्मिन् चरे सति ।
विदेशगमनं वाऽपि स्वस्थानाप्ति विनिर्दिशेत् ॥ ८३ ॥

लग्न वगैरह बारह भावों के फल इस प्रकार कहे गये हैं। यहाँ पर जिन बातों का विशेष विचार करना वह बताया जाता है ॥७६॥

प्रत्येक भाव का उसके राशीश का विचार करना। राशिपति बलवान् हो अपने उच्च स्थान में, स्वस्थान में, मित्र के ग्रह में, स्ववर्ग में यदि बैठा हो तो अच्छा होता है। यदि मित्र से दृष्ट हो या मित्र ग्रह के साथ बैठे तो अच्छा है। ऐसी अवस्था में शुभ फल तदनुरूप होते हैं। भावपति यदि बलहीन हो, शत्रु राशि में हो या नीच राशि में हो या अस्त हो या छठे, आठवें, बारहवें बैठा हो, शत्रु या पाप ग्रह से देखा जाता हो तो उस राशि की दशा कष्ट कारक होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि राशि भी अच्छी हो, राशिपति भी बलवान् हो तो दशा शुभ होती है। राशि खराब हो अर्थात् छठे, आठवें, बारहवें भाव में पड़ी हो, राशिपति भी निर्बल हो और पाप ग्रह से देखा जाता हो तो दशा खराब होती है ॥७७-७६॥

यदि भाव राशि का फल बुरा हो और भाव के राशिपति का फल भी बुरा हो तो दूना बुरा होता है । राशि के पति के भाव बुरे होने से बहुत अनर्थ होता है ॥८०॥

यदि भाव की राशि का फल उत्तम हो और राशि पति का फल भी उत्तम हो तो उसकी दशा दूनी अच्छी होती है। उचित भी है कि भाव का फल उत्तम और भाव राशिपति का फल उत्तम तो दूना उत्तम हुआ ॥८१॥

भाव पति यदि चर राशि में हो अथवा चर राशि के नवांश में हो और राशि भी चर राशि में हो तो उस राशि की जो दशा आती है उसमें यात्रा होती है। विदेश गमन होता है ॥८२॥

यदि राशि चर हो अथवा राशि पति चर राशि में बैठे या चर नवांश में बैठे कोई एक भी चर हो तो विदेशगमन और फिर स्वस्थान प्राप्ति कहना अर्था यात्रा करके मनुष्य घर को आ जाता है ॥८३॥

संज्ञाध्याये च यत्प्रोक्तं कर्माजीवे च यत्फलम् ।
फलमाश्रयजं यद्यत्स्थानजन्यं च यत्फलम् ।। ८४ ।।

यत्प्रोक्तं राजयोगादौ चान्द्रयोगे च यत्फलम् ।
नाभसादिषु यत्प्रोक्तं शुभपापेक्षणादपि ।। ८५ ।।

द्विग्रहादिषु यत्प्रोक्तं ग्रहाणां पूर्वसूरिभिः ।
तद्राशिचक्रकाले तु स्वधिया योजयेद् बुधः ।। ८६ ।।

ग्रहों की संज्ञा में जो कुछ कहा गया है अर्थात् ग्रह किन चीजों का कारक है, कर्माजीव में जो कुछ कहा गया है कि किस ग्रह से उपार्जन होता है, ग्रहों के विविध राशि में बैठने का जो कुछ फल कहा गया है, ग्रहों के भाव में बैठने का जो फल कहा गया है, जो राज योग वर्णन में कहा गया है, चन्द्रमा से जो योग कहे गये हैं, जो नाभस इत्यादि योग कहे गये हैं, शुभ ग्रह की दृष्टि अथवा पाप ग्रह की दृष्टि से जो योग कहे गये हैं, दो ग्रह, तीन ग्रह, चार ग्रह, पाँच ग्रह, छः ग्रह, सात ग्रह बैठने के जो फल पहले आचार्यों ने कहे हैं वे सब विचार कर काल चक्र दशा में लागू करने चाहिएँ और तदनुरूप फल कहना चाहिए ।।८४-८६।।

मेषादिराशिचक्रं तु भूभागे न्यस्य दक्षिणम् ।
अल्यादि ह्यौत्तरं यच्च तच्चक्रं तत्र निर्दिशेत् ।। ८७ ।।

फलं वा विफलं वाऽपि प्रागादिद्युचरादधः ।
राशिदिग्भागतो वाऽपि तद्दिग्भागे विनिर्दिशेत् ।। ८८ ।।
यथोपदेशमार्गेण सर्वेषां फलमीदृशम् ।। ३ ।।

भूमि पर पहले सव्य चक्र मेष से मीन तक खींचें। मेष से धनु तक बारह राशि आ जायें। इसी प्रकार अपसव्य चक्र खीचें बारह राशि आ जायें। सफलता या असफलता किस दिशा में होगी यह इस बात पर निर्भर है कि अच्छी राशियाँ जिनका फल अच्छा है जिनके राशि बलवान् हैं वे पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर किस दिशा में पड़ती हैं। इस प्रकार जिस दिशा में शुभ राशि पड़े उस दिशा में शुभ फल होगा और जिस दिशा में पाप राशि पड़े उस दिशा में पाप फल होगा। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य किस दिशा में अच्छा है, किसमें अच्छा नहीं, यह जान सकता है ।।८७-८८।।

त्रिविध कालचक्रगति

कालचक्रगतिस्त्रेधा निश्चिता पूर्वसूरिभिः ॥ ८९ ॥

मण्डूकगमनं चैव पृष्ठतो गमनं तथा ।
सिंहावलोकनं नाम पुनरागमनं भवेत् ॥ ९० ॥

पृष्ठतो गमनं चैव कर्किकेसरिणोरपि ।
मीनवृश्चिकयोश्चापमेषयोः केसरी गतिः ॥ ९१ ॥
कन्याकर्कटयोः सिंहयुग्मयोर्मण्डुकी गतिः ॥ ३ ॥

इस काल चक्र की गति बताते हैं । इसकी ३ गति होती हैं :—
(१) मण्डूक । (२) पृष्ठ से (पीछे) गमन । (३) सिंहावलोकन । इसका नाम पुनरागमन भी है ॥८९-९०॥

कर्क, सिंह का पृष्ठ से गमन है । अर्थात् सिंह के बाद जब कर्क की दशा आती है तब पृष्ठ गमन होता है । इसी प्रकार कर्क राशि की दशा के बाद जब मिथुन राशि की दशा आती है तब पृष्ठ गमन होता है ।

मीन राशि से जब वृश्चिक राशि की दशा आती है । तब सिंहावलोकन होता है । इस प्रकार धनु राशि के बाद जब मेष की दशा आती है तब सिंहावलोकन होता है ।

जब कन्या राशि से कर्क राशि की दशा आती है तो मण्डूक गमन कहलाता है । इसी प्रकार जब सिंह राशि से मिथुन राशि की दशा आती है तब मण्डूक गति कहलाती है । अर्थात् एक को छोड़कर जब पिछली की राशि आती है तब मण्डूक गमन होता है ॥९१ ॥

सिंहावलोकसमये ज्वरार्तिस्थाननाशनम् ॥ ९२ ॥
बन्धुस्नेहादिनाशं च समानजनपीडनम् ।
जले वा पतनं कूपे विषशस्त्राग्निजं भयम् ॥ ९३ ॥

वाहनात्पतनं वाऽपि दशाच्छिद्रान्विते सति ॥
क्रूरास्तनीचापचयखेचरस्य दशा यदि ॥ ९४ ॥
दशाच्छिद्रमिति ज्ञेयं प्रवदन्ति विपश्चितः ॥ ३ ॥

सिंहावलोक के समय ज्वर से पीड़ा होती है और स्थान नाश होता है ।

बन्धुओं के प्रेम का नाश होता है अर्थात् बन्धुओं से सम्बन्ध बिगड़ जाता है और समान जन पीड़न अर्थात् बराबर के किसी आदमी को पीड़ा होती है। या कूप में, जल में पतन का—गिरने का भय होता है। या अकस्मात् घोड़े आदि वाहन से गिरने का भय होता है। यह सब खराब फल तब कहना चाहिए जब दशाछिद्र हो। दशाछिद्र किसे कहते हैं? यह आगे बताते हैं। दशाछिद्र तब होता है जब निर्बल नीच क्रूर एवं अस्त ग्रह की दशा हो ॥९२-९४॥

मण्डूकगतिसम्भूतसमये मरणं गुरोः ॥ ९५ ॥

पित्रोर्वा विषशस्त्राग्निज्वरचोराग्निभिर्भयम् ।
मण्डूकसमये सव्ये समानजनपीडनम् ॥ ९६ ॥

केसरीयुग्ममण्डूके मातुर्मरणमादिशेत् ।
मरणं राजभीतिं च सन्निपातमरेर्भयम् ॥ ९७ ॥

अपसव्य मण्डूक गति की दशा जब आती है तब गुरु का मरण होता है। अर्थात् माता-पिता, चाचा इत्यादि का मरण होता है। विष, शस्त्र, ज्वर, चोर तथा अग्नि से भय होता है।

सव्य चक्र में जब मण्डूक गति की दशा होती है तब समान जन पीड़न अर्थात् अपने बराबर के किसी आदमी को पीड़ा होती है। सिंह राशि से मिथुन राशि में दशा जाये तो यह एक प्रकार की मण्डूक गति है। इसमें माता की मृत्यु हो या अपना मरण हो। राजदण्ड, सन्निपात तथा शत्रु का भय हो। कहने का तात्पर्य यह है कि चाहे सव्य हो चाहे अपसव्य मण्डूक गति की दशा बहुत क्लेश प्रद है ॥९५-९७॥

सव्ये सिंहावलोके तु चतुष्पाद्भयमग्निजम् ।
पृष्ठतो गमने सव्ये धनधान्यपशुक्षयः ॥ ९८ ॥

पितुर्मरणमालस्यं तत्समानेषु वा मृतिः ।
मण्डूकगमने वामे स्त्रीसुतार्तिपरिश्रमम् ॥ ९९ ॥

तापज्वरं मृगाद् भीतिं पदच्युतिमरेर्भयम् ।
सिंहावलोकने वामे स्थानभ्रंशः पितुर्मृतिः ॥ १०० ॥

पृष्ठतो गमने वाऽपि जलभीतिं पदच्युतिम् ।
पितुर्नाशं नृपक्रोधं दुर्गारण्याटनं वदेत् ॥ १०१ ॥

सव्य चक्र के सिंहावलोकन में चौपाये का भय हो अर्थात् इनसे चोट लगने का भय हो। अग्नि से भय हो अर्थात् अग्नि से मकान जल जाये या स्वयं को क्षति पहुंचे।

सव्य वाले अर्थात् सव्य चक्र की दशा में जब पृष्ठ गमन होता है तो धन धान्य का नाश होता है या पशु क्षय होता है। पिता का मरण, आलस्य या पिता के सदृश किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है।

जब अपसव्य गमन में मण्डूक गति होती है तो स्त्री, पुत्र को पीड़ा होती है। बहुत परिश्रम स्वयं को होता है। शत्रु से भय हो, शिकार खेलने जाये तो जंगली जानवरों से भय हो। पदच्युति होती है और ज्वर बुखार का भय होता है। अपसव्य चक्र में जब सिंहावलोकन गति होती है तब मनुष्य स्थान भ्रष्ट होता है और उसके पिता की मृत्यु होती है।

अपसव्य चक्र में जब पृष्ठ गमन होता है तो डूबने का डर होता है। दुर्ग और जंगल में घूमना पड़ता है। पिता का नाश, राजा का क्रोध इत्यादि बातें होती हैं। पदच्युति होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि दशा अपसव्य वाली हो चाहे सव्य चक्र वाली, मण्डूकगति, पृष्ठगमन और सिंहावलोकन तीनों दशा खराब हैं ॥९८-१०१॥

कालचक्रदशाप्रकार

दस्रानलादितिभुजङ्गदिनेशभानां
पूषासुराजपदविश्वसमीरणानाम्।
वाक्यानि सव्यगतिचक्रभवादिकानि
चत्वारि सर्वमुनयः प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥१०२॥

चित्राहिर्बुध्न्यभरणीपूर्वाषाढेन्द्रमन्त्रिणाम्।
सव्यचक्रान्त्यवाक्यानि चत्वारि क्रमशो विदुः ॥ १०३ ॥

द्विदैवकमलागारपितृदानववैरिणाम्।
अपसव्यस्य चक्रस्य वाक्यं चादिचतुष्टयम् ॥ १०४ ॥

जलेशमित्रेन्द्रमृगश्रविष्ठाभगार्यमाशङ्करतारकाणाम्।
अन्त्यानि वाक्यान्यपसव्यजानि चत्वारि चक्रोपगतानि चाहुः ॥१०५॥

अश्विनी, कृत्तिका, पुनर्वसु, आश्लेषा, हस्त, रेवती, मूल, पूर्वाभाद्र,

उत्तराषाढ़ और स्वाती की दशा उस प्रकार होती है जिस प्रकार पहले चार वाक्यों में बताया है। यह सब नक्षत्र सव्य चक्र वाले हैं ।।१०२।।

चित्रा, उत्तराभाद्र, भरणी, पूर्वाषाढ़, पुष्य इन पांच नक्षत्रों का दशा क्रम सूत्र ५-८ में बताया गया है। यह सब नक्षत्र हैं ।।१०३।।

अब अपसव्य नक्षत्र लीजिए। १-४ तक। विशाखा, रोहिणी, मघा और श्रवण इन नक्षत्रों का दशा क्रम बताया गया है ।।१०४।।

अब बाकी चार श्लोकों में अपसव्य दशा क्रम है जो आठ अपसव्य दशा क्रम को लागू होता है :—

शतभिषा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मृगशिर, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाफाल्गुनी और आर्द्रा ।।१०५।।

सव्य चक्र वाक्यानि

पौरङ्गावोमतासहोधी ॥ १ ॥ नक्षत्रदासीचर्वंणगः ॥ २ ॥
रूपोत्रक्षुर्निधायरङ्गम् ॥ ३ ॥ वाणी चस्थन्दधिनक्षत्रम् ॥ ४ ॥
हंसश्चवशांबरपत्रम् ॥ ५ ॥ क्षुं न्नाधिकरगोभीमाच ॥ ६ ॥
सुदधिनक्षत्रजः सितः ॥ ७ ॥ वामाङ्गारकोत्रक्षु र्निधिः ॥ ८ ॥

अर्थ :—पौ-१ रं-२ गा-३ वो-४ म-५ ता-६ स-७ हो-८ धी-९ ।। मेषः
न-१० क्ष-११त्र-१२दा-८ सी-७च-६ वं-४ ण-५ गः-३ ।। वृषः
रू-२ पो-१ त्र-१२ क्षु-११ नि-१० धा-६ य-१ रं-२ गं-३ ।। मिथुनम्
वा-४ णी-५ च-६ स्थं-७ द-८ धि-९ न-१० क्ष-११ त्रं-१२ ।। कर्कः
हं-८ स-७ श्च-६ व-४ शां-५ ब-३ र-२ प-१ त्रं-१२ ।। सिंहः
क्षु-११ न्ना-१० ळी-६ क-१ र-२ गो-३ भी-४ मा-५ च-६ ।। कन्या
सु-७ द-८ धि-६ न-१० क्ष-११ त्र-१२ जः-८ सि-७ तः-६ ।। तुला
वा-४ मां-५ गा-३ र-२ को-१ त्र-१२ क्षु-११ नि-१० धिः-६ ।। वृश्चिकः

अपसव्यवाक्यानि

धनक्षेत्रपराङ्गमिव ॥ १ ॥ तासादत्रक्षुर्निधिर्ह्रासा ॥ २ ॥
चर्मभोगीरायधनर्क्षम् ॥ ३ ॥ त्रयोरागीमाभेतासह ॥ ४ ॥
त्रक्षुनिधिर्ह्रासस्तमेव ॥ ५ ॥ गिरायुधनक्षत्रपरः ॥ ६ ॥
गोमावाचीसदात्रिक्षुन्ने ॥ ७ ॥ धीजः सितोमिवाङ्गारिका ॥८॥

अर्थ :—ध-६ न-१० क्ष-११ त्र-१२ प-१ रां-२ ग-३ मि-५ व-४ ॥ वृश्चिकः
ता-६ सा-७ द-८ त्र-१२ क्षु-११ नि-१० धि-९ दा-८ सा-७ ॥ तुला
च-६ मी-५ भो-४ गी-३ रा-२ य-१ ध-६ न-१० क्षं-११ ॥ कन्या
त्र-१२ यो-१ रा-२ गी-३ मा-५ भे-४ ता-६ स-७ ह-८ ॥ सिंहः
त्र-१२ क्षु-११ नि-१० धि-६ दा-८ स-७ स्त-६ मे-५ व-४ ॥ कर्कः
गि-३ रा-२ यु-१ ध-६ न-१० क्ष-११ त्र-१२ प-१ रः-२ ॥ मिथुनम्
गो-३ मा-५ वा-४ ची-६ स-७ दा-८ त्रि-१२ क्षुं-११ न्ने-१० ॥ वृषः
धि-६ ज-८ सि-७ त-६ मि-५ वां-४ गा-३ रि-२ का-१ ॥ मेषः

यह सब राशियाँ अक्षर संख्या से बताई गई हैं जिसको हमने मानचित्र द्वारा स्पष्ट कर दिया है।

कालचक्र दशावर्ष

भूतैकविंशद्गिरयो नवदिक्षोडशाब्धयः ।
सूर्यादीनां क्रमादब्दा राशीनां स्वामिनो वशात् ॥ १०६ ॥

नीचे राशियों की दशा नहीं बताई गई है। ग्रहों की दशा बताई है। राशि का जो ग्रह स्वामी होता है, उसके अनुसार राशि की दशा होती है। सूर्य की पांच वर्ष अर्थात् सिंह की ५, चन्द्रमा की २१। अतः कर्क की २१ वर्ष । मंगल की ७ वर्ष। अतः मेष और वृश्चिक की ७ वर्ष। बुध की ९ वर्ष। अतः मिथुन और कन्या की ६ वर्ष। वृहस्पति की १० वर्ष। अतः धनु और मीन की १० वर्ष। शुक्र की १६ वर्ष। अतः वृष और तुला की १६ वर्ष। शनि की ४ वर्ष। इसलिए मकर और कुंभ की ४ वर्ष।

उदाहरण :—

मान लीजिए किसी का स्पष्ट चन्द्र ११-२०-३६ है। अर्थात् जन्म के समय चन्द्रमा मीन राशि के २० अंश ३६ कला पर था। यह रेवती नक्षत्र के द्वितीय चरण में हुआ।

११-२०-२५ की भोग्य दशा	७४ व-४ मा-१५ दि है
११-२०-५० की भोग्य दशा	६३ -६ -०

हमें ११-२०-३६ की भोग्य दशा निकालनी है।

अब चाहे ११-२०-२५ में से (३६—२५=१४) चौदह कला का मान

निकाल दीजिए, चाहे ११-२०-५ में (५०—३९=११) ग्यारह कला का मान जोड़िये—

भोग्य दशा निकल आयेगी।

	व.	मा.	दि.
११-२०-२५	=७४—	४ —	१५
घटाइये ०- ०-१४ कला का मान	= ५—	११ —	१२
भोग्य दशा	६८—	५ —	३

दूसरा प्रकार

	व.	मा.	दिन
१०-२०-५०	=६३ —	९ —	०
जोड़िये ११ कला का मान	४ —	८ —	३
	६८—	५ —	३

इस प्रकार से भी वही भोग्य आ गया।

रेवती द्वितीय नक्षत्र का मान ८५ वर्ष है।

इसमें ९ दशा होती हैं।

मकर शनि+कुंभ शनि+मीन बृहस्पति+वृश्चिक मंगल+
४ + ४ + १० + ७ +
तुला शुक्र +कन्या बुध+कर्क चन्द्र +सिंह रवि +
१६ + ९ + २१ + ५ +
मिथुन बुध
९=८५ वर्ष।

भोग्य वर्ष ६८ वर्ष—५ मास ३ दिन है। इसको ८५ में से घटाया।

८५—०—०
६८—५—३

१६—६—२७ अर्थात् १६ वर्ष, ६ मास २७ दिन भुक्त हुए, अर्थात् जब जातक पैदा हुआ तब बीत चुके थे।

मकर शनि के ४, कुंभ के ४ और ८ वर्ष ६ मास २७ दिन, मीन-बृहस्पति के इस प्रकार कुल १६ व ६ मा ३७ दिन भुक्त हुए। मीन-बृहस्पति के कुल १० वर्ष हैं इसमें से ८ वर्ष ६ मास २७ दिन घटाये तो १ वर्ष ५ मास ३ दिन शेष रहे। यह मीन-बृहस्पति के भोग्य हुए फिर वृश्चिक मंगल के ७ वर्ष इत्यादि। इस व्यक्ति की महादशा सारणी निम्नलिखित हुई :—

देह राशि—मकर	कालचक्र महादशा	जीवराशि—मिथुन
देहाधिप—शनि		जीवाधिप—बुध
राशि तथा राशि स्वामी		**वर्ष मास दिन**
मीन—बृहस्पति		१— ५ — ३
वृश्चिक—मंगल		७— ० — ०
तुला—शुक्र		१६— ० — ०
कन्या—बुध		९— ० — ०
कर्क—चन्द्र		२१— ० — ०
सिंह—सूर्य		५— ० — ०
मिथुन—बुध		९— ० — ०
		६८— ५ — ३

इसके बाद रेवती तृतीय नक्षत्र की जो सारणी दी गई है वह चलेगी। दशायें वृष शुक्र से प्रारंभ होती हैं, इसलिए देह राशि वृष, देहाधिप शुक्र हो जायेगा। रेवती तृतीय नक्षत्र की जो राशियाँ दी गई हैं उनका अन्त मिथुन से होता है। इसलिए जीव राशि मिथुन और इसका स्वामी बुध जीवाधिप हुआ। ६८ वर्ष ५ मास ३ दिन के बाद।

देह राशि बुध		जीवराशि मिथुन
देहाधिप शुक्र		जीवाधिप बुध
वृष शुक्र	१६—०—०	
मंगल मेष	७—०—०	
	९१—५—३ यह दशा क्रम आया ॥१०६॥	

अतः अन्तर्दशा प्रकार

दशां दशाब्दैः सङ्गुण्य सर्वायुः संख्यया हरेत्।
लब्धमन्तर्द्दशा ज्ञेया वर्षमासदिनादिकाः ॥ १०७ ॥

इसमें ग्रह की अन्तर्दशा निकालना बताया गया है। उदाहरण के लिए सव्य नक्षत्र अश्विनी प्रथम चरण में धनु की महादशा में सिंह की अन्तर्दशा निकालना है। धनु के १० वर्ष होते हैं, सिंह के ५ वर्ष तो १० और ५ को गुणा किया और परमायु १०० से भाग दिया। इस अंश की परमायु १०० वर्ष की है। इसलिए १०० से भाग दिया तो

$\frac{५ \div १०}{१००} = \frac{१}{२}$ वर्ष। दोनों जिसकी दशा निकालनी हो और जिसकी अन्तर्दशा निकालनी हो उनको गुणा करके उस अंश की जो परमायु है उससे भाग करना जैसे हमने ऊपर बताया है ॥१०७॥

चक्रेशाब्दा भुक्तिराशीश्वराब्दै-
हृत्वा तत्तद्राशिमानायुराप्ताः ।
अब्दा मासा वासरा नाडिकाद्या
दुःस्थानेशा दुःखरोगाकराः स्युः ॥ १०८ ॥

इत्थं महादायदिनं महाब्दैः
सङ्गुण्य तत्रान्तरदास्तु दाये ।
पुनस्तदा तत् परमायुरब्द-
हृतं दशास्वन्तरगा दशा स्यात् ॥ १०९ ॥

विनाडीकृत्य नक्षत्रं स्वैः स्वैः संवत्सरैः पृथक् ।
दायैः सङ्गुण्य सर्वायुराप्तं सूक्ष्मदशाफलम् ॥ ११० ॥

ग्रहवत्सरवासरा हृताः परमायुष्यसमामितध्रुवैः ।
निजवर्षगुणाः स्वपाकदा इति पाकेष्वखिलेषु चिन्तयेत् ॥ १११ ॥

इसमें वही बात बताई है जो हमने ऊपर उदाहरण से स्पष्ट की है। दुष्ट स्थान का स्वामी दुःख रोग कारक होता है। दशा निकालने का प्रकार विस्तार से समझाया गया है। इसलिए हम विश्लेषण करना नहीं चाहते। इसमें नक्षत्र की भुक्ति भोग महावर्ष निकालना बताया गया है। हमने श्लोक १०६ की व्याख्या और उदाहरण में विस्तार पूर्वक समझा दिया है ॥१०८-१११॥

इस प्रकार नवग्रह की कृपा से वैद्यनाथ रचित यह सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ है।

नक्षत्र		जीवाधिप	कालचक्रदशा-अपसव्यमार्ग									सर्वायु संख्या	देहाधिप	अंश
रोहिणी	चरण१ला	गुरु	धनु१०	मकर ४	कुंभ ४	मीन१०	मेष ७	वृष१६	मिथु ९	सिंह ५	कर्क२१	८६	चन्द्र	वृश्चि
मघा	चरण२रा	बुध	कन्या९	तुला१६	वृश्चि७	मीन१०	कुंभ ४	मकर४	धनु१०	वृश्चि७	तुला१६	८३	शुक्र	तुला
विशाखा	चरण३रा	बुध	कन्या९	सिंह ५	कर्क२१	मिथु ९	वृष१६	मेष ७	धनु१०	मक ४	कुंभ ४	८५	शनि	कन्या
श्रवण	चरण४था	गुरु	मीन१०	मेष ७	वृष१६	मिथु ९	सिंह ५	कर्क२१	कन्या९	तुला१६	वृश्चि७	१००	मंगल	सिंह
मृगशीर्ष	चरण१ला	गुरु	मीन१०	कुंभ ४	मक ४	धनु१०	वृश्चि७	तुला१६	कन्या९	सिंह ५	कर्क२१	८६	चन्द्र	कर्क
पूर्वाफाल्गुनी	चरण२रा	बुध	मिथु ९	वृष१६	मेष ७	धनु१०	मक ४	कुंभ ४	मीन१०	मेष ७	वृष१६	८३	शुक्र	मिथु
अनुराधा	चरण३रा	बुध	मिथु ९	सिंह ५	कर्क२१	कन्या९	तुला१६	वृश्चि७	मीन१०	कुंभ ४	मकर४	८५	शनि	वृष
धनिष्ठा	चरण४था	गुरु	धनु१०	वृश्चि७	तुला१६	कन्या९	सिंह ५	कर्क२१	मिथु ९	वृष१६	मेष ७	१००	मंगल	मेष
आर्द्रा	चरण१ला	गुरु	मीन१०	कुंभ ४	मकर४	धनु१०	वृश्चि७	तुला१६	कन्या९	सिंह ५	कर्क२१	८६	चन्द्र	मीन
उत्तरा फाल्गुनी	चरण२रा	बुध	मिथु ९	वृष१६	मेष ७	धनु१०	मकर४	कुंभ ४	मीन१०	मेष ७	वृष१६	८३	शुक्र	कुंभ
ज्येष्ठा	चरण३रा	बुध	मिथु ९	सिंह ५	कर्क२१	कन्या९	तुला१६	वृश्चि७	मीन१०	कुंभ ४	मकर४	८५	शनि	मकर
शततारका	चरण४था	गुरु	धनु१०	वृश्चि७	तुला१६	कन्या९	सिंह ५	कर्क२१	मिथु ९	वृष१६	मेष ७	१००	मंगल	धनु

नक्षत्र		देहाधिप	कालचक्रदशा-अपसव्यमार्ग									सर्वायु-वर्ष	जीवाधिप	अंश
अश्विनी	चरण १ला	मंगल	मेष ७	वृष १६	मिथु ६	कर्क २१	सिंह ५	कन्या ६	तुला १६	वृश्चि ७	धनु १०	१००	गुरु	मेष
पुनर्वसु	चरण २रा	शनि	मकर ४	कुंभ ४	मीन १०	वृश्चि ७	तुला १६	कन्या ६	कर्क २१	सिंह ४	मिथु ६	८५	बुध	वृष
हस्त मूल	चरण ३रा	शुक्र	वृष १६	मेष ७	मीन १०	कुंभ ४	मक ४	धनु १०	मेष ७	वृष १६	मिथु ६	८३	बुध	मिथु
पूर्वाभाद्रपद	चरण ४था	चन्द्र	कर्क २१	सिंह ५	कन्या ६	तुला १६	वृश्चि ७	धनु १०	मक ४	कुंभ ४	मीन १०	८६	गुरु	कर्क
भरणी	चरण १ला	मंगल	वृश्चि ७	तुला १६	कन्या ६	कर्क २१	सिंह ५	मिथु ६	वृष १६	मेष ७	मीन १०	१००	गुरु	सिंह
पुष्य चित्रा	चरण २रा	शनि	कुंभ ४	मक ४	धनु १०	मेष ७	वृष १६	मिथु ६	कर्क २१	सिंह ५	कन्या ६	८५	बुध	कन्या
पूर्वाषाढ	चरण ३रा	शुक्र	तुला १६	वृश्चि ७	धनु १०	मकर ४	कुंभ ४	मीन १०	वृश्चि ४	तुला १६	कन्या ६	८३	बुध	तुला
उत्तराभाद्रपद	चरण ४था	चन्द्र	कर्क २१	सिंह ५	मिथु ६	वृष १६	मेष ७	मीन १०	कुंभ ४	मकर ४	धनु १०	८६	गुरु	वृश्चि
कृत्तिका आश्लेषा	चरण १ला	मंगल	मेष ७	वृष १६	मिथु ६	कर्क २१	सिंह ५	कन्या ६	तुला १६	वृश्चि ७	धनु १०	१००	गुरु	धनु
स्वाती	चरण २रा	शनि	मक ४	कुंभ ४	मीन १०	वृश्चि ७	तुला १६	कन्या ६	कर्क २१	सिंह ५	मिथु ६	८५	बुध	मक
उत्तराषाढ	चरण ३रा	शुक्र	वृष १६	मेष ७	मीन १०	कुंभ ४	मक ४	धनु १०	मेष ७	वृष १६	मिथु ६	८३	बुध	कुंभ
रेवती	चरण ४था	चन्द्र	कर्क २१	सिंह ५	कन्या ६	तुला १६	वृश्चि ७	धनु १०	मकर ४	कुंभ ४	मीन १०	८६	गुरु	मीन

अध्याय १८

दशाफलाध्याय

दशानुसारेण फलं वदन्ति मुनीश्वरा जातशुभाशुभं यत् ।
सारं समुद्धृत्य तथैव वक्ष्ये भेदं यथाविस्तरतो दशायाम् ॥ १ ॥

बलानुसारेण यथा हि योगो योगानुसारेण दशामुपैति ।
दशाफलः सर्वफलं नराणां वर्णानुसारेण यथा विभागः ॥ २ ॥

मुनि लोग जन्म पत्र का शुभाशुभ फल दशा के अनुसार कहते हैं अर्थात् कब प्राणी को शुभ फल प्राप्त होगा कब अशुभ फल यह दशा पर निर्भर है इसलिए समस्त सार को इकट्ठा करके इस अठारहवें अध्याय में कहता हूँ ॥१॥

बल के अनुसार जिस प्रकार योग होते हैं उसी प्रकार योग के अनुसार दशा प्राप्त होती है । जैसे वर्ग विभाग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र होते हैं उसी प्रकार मनुष्यों के जीवन में दशा के अनुसार सब फल होते हैं। ॥२॥

विंशोत्तरी महादशा

आदित्यचन्द्रकुजराहुसुरेशमन्त्रि-
मन्दज्ञकेतुभृगुजा नव कृत्तिकाद्याः ।
तेनो नयः सिनदयातटधन्यसेव्य-
सेनानरा दिनकरादिदशाब्दसंख्याः ॥ ३ ॥

विंशोत्तरी में नौ दशाये होती हैं। जो कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी और उत्तराषाढ़ में जन्म लेता है उसकी सूर्य की दशा ६ वर्ष की होती है । जो रोहिणी नक्षत्र में जन्म लेता है या हस्त, श्रवण में जन्म लेता है उसकी चन्द्रमा की दशा १० वर्ष की होती है । जो मृगशिर्, चित्रा और धनिष्ठा में जन्म लेता है उसकी ७ वर्ष मंगल की दशा होती है । जो आर्द्रा स्वाती और शतभिषा में जन्म लेता है उसकी राहु की दशा १८ वर्ष की होती है । जो पुनर्वसु, विशाखा या पूर्वाभाद्र

में जन्म लेता है उसकी १६ वर्ष की वृहस्पति की दशा होती है । जो पुष्य, अनुराधा या उत्तराभाद्र में जन्म लेता है उसकी दशा शनि की १९ वर्ष की होती है । जो आश्लेषा, ज्येष्ठा या रेवती में जन्म लेता है उसकी दशा बुध की १७ वर्ष की होती है । जो अश्विनी, मघा, या मूल में जन्म लेता है उसकी दशा केतु की ७ वर्ष की होती है । जो भरणी, पूर्वाफाल्गुनी या पूर्वाषाढ़ में जन्म लेता है उसकी दशा शुक्र की २० वर्ष की होती है ॥ ३॥

दशापतेः शुभाशुभत्वम्

आरोहवीर्याधिकभावतुल्यबिन्द्वाधिकाः कर्मभवोदयस्थाः ।
तुङ्गादिवर्गोपगता नभोगाः षड्वीर्यवन्तश्च शुभप्रदाः स्युः ॥ ४ ॥

मान्दिराशिपतिमान्दिभावगाः स्वल्पबिन्दुरिपुनीचमूढगाः ।
पापखेटयुतभावसन्धिगा राशिसन्धिलवगास्त्वनिष्टदाः ॥ ५ ॥

दशापतिर्लग्नगतो यदि स्यात् त्रिषड्दशैकादशगश्च लग्नात् ।
तत्सप्तवर्गोऽप्यथ तत् सुहृद्वा लग्ने शुभो वा शुभदा दशा स्यात् ॥६॥

दशाधिनाथस्य सुहृद्गृहस्थस्तदुच्चगो वाऽथ दशाधिनाथात् ।
स्मरत्रिकोणोपचयोपगश्च ददाति चन्द्रः खलु सत्फलानि ॥ ७ ॥

उक्तेषु राशिषु गतस्य विधोः स भावः
स्याज्जन्मकालभवमूर्तिधनादिभावः ।
तत्तत्प्रवृद्धिकृदसौ कथितो नराणां
तद्भावहानिकृदथेतरराशिसंस्थः ॥ ८ ॥

दशाप्रवेशे स्वगृहादिसंस्थे हिमद्युतौ यत्फलमुक्तमार्यैः ।
तद्वाच्यमिन्दुर्हि शुभाशुभाख्यं फलं मनोरूपतया ददाति ॥ ९ ॥

उत्पादितं हि द्युचरस्य पूर्वं शुभादिकं कष्टफलं हि यत्तत् ।
तेनानुसारेण दशासु कल्प्यं शरीरभाजामशुभं शुभं वा ॥ १० ॥

इष्टोत्कटत्वे हि शुभानि पुंसां फलान्यनिष्टान्यशुभोत्कटत्वे ।
साम्ये तु मिश्राणि फलानि नूनं सर्वत्र चैवं परिकल्पनीयम् ॥११॥

निम्नलिखित ग्रह :—

(१) जो आरोही हो, आरोही में भी जो अपनी उच्च राशि, अंश के पास

हो, जो ग्रह अपने परम नीच से उच्च की ओर जाता है वह आरोही कहलाता हो। जो ग्रह परम उच्च से नीच की ओर जाता है वह अवरोही कहलाता है।

(२) जो ग्रह भाव के मध्य में हों विशेष फल दिखाते हैं। जो ग्रह भाव मध्य से दूर हों वह न्यून फल दिखाते हैं।

(३) जो ग्रह अपने अष्टक वर्ग में बलवान् हो अर्थात् जिसको अपने अष्टक वर्ग में जहां वह बैठा है अधिक विंदु मिले वह अच्छा है। जिसको कम विंदु मिले वह खराब है।

(४) जो ग्रह लग्न से, दशम, एकादश में बैठें वह शुभ फल दिखाते हैं।

(५) जो ग्रह अपने उच्चादि वर्ग में हों। आदि से तात्पर्य है स्व या मित्र वर्ग में, वह अच्छा फल दिखाते हैं।

(६) जो ग्रह अपने षड्वल में वली हो वह शुभ फल दिखाता है ॥४॥

निम्नलिखित दुष्ट फल करते हैं :—

(१) मान्दि राशि का स्वामी अर्थात् जिस भाव में मान्दि या गुलिक पड़े उसका स्वामी।

(२) मान्दि के साथ जो ग्रह पड़ा हो।

(३) अष्टक वर्ग में जिसके थोड़े विंदु पड़े हों अर्थात् जिस राशि में ग्रह हो उसके अष्टक वर्ग में थोड़े बिन्दु पड़े हों।

(४) जो शत्रु के गृह में पड़ा हो।

(५) जो अपनी नीच राशि में पड़ा हो।

(६) जो सूर्य सान्निध्य के कारण अस्त हो।

(७) जो पाप ग्रह के साथ पड़ा हो।

(८) जो भाव सन्धि में पड़ा हो।

(९) जो राशि सन्धि में पड़ा हो।

अर्थात् एक राशि के अन्त दूसरे के प्रारम्भ में ॥५॥

छठा श्लोक व आगे के चार श्लोक श्रीपति पद्धति से लिये गये हैं। यह दशा के प्रारम्भ में चन्द्रमा की क्या अवस्था थी, उससे सम्बन्धित हैं। इन्होंने बताया है कि जब किसी ग्रह की दशा प्रारम्भ हो उस समय का लग्न निकालना। परन्तु यह श्लोक प्राय: उपयोग में निरर्थक है क्योंकि दशा प्रवेश के समय लग्न निकाल लीजिए, चन्द्रमा निकाल लीजिए वह प्राय: अशुद्ध होगा क्योंकि जन्म काल में दो मिनट का अन्तर होने से यदि शुक्र की दशा में जन्म हुआ तो ९ दिन का अन्तर पड़ जायेगा। यदि सूर्य की दशा में जन्म हुआ तो सूर्य दशा में तीन

दिन का अन्तर पड़ जायेगा। ऐसी स्थिति में दशा प्रवेश काल का लग्न निकालना उनका सप्तमार्ग निकालना और चन्द्रमा किस भाव में है यह देखना बहुत कठिन है।

अस्तु दशानाथ यदि जन्म में प्राप्त हो अथवा यदि लग्नेश तृतीय, छठे, दसवें या ग्यारहवें हो, यदि लग्न दशानाथ के सप्तवर्ग में प्राप्त हो तो दशा अच्छी जाती है। यदि लग्न दशानाथ के मित्र ग्रह में प्राप्त हो और लग्न का सप्तवर्ग दशानाथ के मित्र के ग्रह में हो या शुभ ग्रह के वर्ग में हो तो दशा अच्छी जाती है। दशानाथ जन्म के समय जो लग्न है उसके सप्तवर्ग के अधीश दशानाथ या मित्र ग्रह या शुभ ग्रह हो तो उसकी दशा अच्छी जाती है। यह लिख देना बहुत आसान है। परन्तु इसकी उपयोगिता बहुत सीमित है ॥६॥

दशानाथ के उच्च स्थान में या मित्र ग्रह में या दशानाथ से सप्तम, त्रिकोण में (५,९) या उपचय में (३,६,१०,११) चन्द्रमा हो तो वह दशा अच्छी जाती है और शुभ फल देती है ॥७॥

यदि उपर्युक्त राशियों में चन्द्रमा हो और वह भाव लग्न से धन, चतुर्थ, पंचम आदि भावों में हो तो उस भाव की वृद्धि होती है। यदि चन्द्रमा अनिष्ट भाव में हो तो उस भाव की हानि होती है ॥८॥

दशा प्रवेश के समय स्व ग्रह आदि में प्राप्त होने पर फल आर्य लोगों ने कहा है अर्थात् प्राचीन ऋषियों ने कहा है वह शुभ या अशुभ अवश्य होता है क्योंकि चन्द्रमा मन है और चन्द्रमा अच्छा होने से मन को बल मिलता है इसलिए वह दशा अच्छी जाती है ॥९॥

पहले ग्रहों के जो शुभ और अशुभ फल हैं उसी के अनुसार उनकी दशा में मनुष्यों को शुभ या अशुभ होता है। यहाँ शुभ फल को इष्ट कहा है और अशुभ फल को कष्ट कहा है। इष्ट और कष्ट निकालना केशवीय जातक पद्धति में कहा गया है ॥१०॥

इष्ट फल अधिक होने से मनुष्यों को शुभफल अधिक होते हैं। अर्थात् इष्ट फल यदि कष्ट फल से अधिक हो तो अच्छा अधिक होता है यदि कष्ट फल अधिक हो तो अनिष्ट होता है। यदि दोनों में साम्य हो तो मिश्र अर्थात् मिला जुला फल होता है। यह विचार कर कहना चाहिए ॥११॥

संज्ञाध्याये यस्य यद्द्रव्यमुक्तं कर्माजीवो यस्य यश्चोपदिष्टः।
भावस्थानालोकयोगोद्भवं च तत्तत्सर्वं तस्य योज्यं दशायाम् ॥१२॥

संज्ञाध्याय में जिस ग्रह का जो द्रव्य कहा है और कर्माजीव अध्याय में

जो ग्रह के विषय में आजीविका का उल्लेख किया है, किसी भाव में बैठने से जो फल कहा है किसी स्थान में बैठने से जो फल कहा है जो दृष्टि फल कहा गया है और जो योग फल कहा है यह सब फल उस ग्रह की दशा में योजना करनी चाहिए अर्थात् उन सब फलों का समावेश करना चाहिए। वह उसकी दशा में होते हैं ॥१२॥

शुभफलददशायां तादृगेवान्तरात्मा
बहु जनयति पुंसां सौख्यमर्थागमं च।
कथितफलविपाकैस्तर्कयेद्वर्तमानां
परिणमति फलोक्तिः स्वप्नचिन्तास्ववीर्यैः ॥१३॥

शुभ फल देनी वाली दशा में जातक की अन्तरात्मा प्रसन्न होती है तथा अनेक प्रकार के शुभ फल होते हैं। बहुत सुख होता है और धन का आगम होता है। यदि शुभ बृहस्पति की दशा का समय हो तो जातक का मन प्रसन्न होता है। वह तीर्थयात्रा आदि करता है और धन का आगम होता है। यदि दुष्ट गति की खराब दशा प्रारम्भ हो तो मनुष्य की चित्त वृत्ति खराब होती है और वह कुकर्म की बात सोचता है। उसके मन में शान्ति नहीं रहती है। इस प्रकार क्या फल प्राप्त होते हैं उसको देखकर वर्तमान दशा समझनी चाहिए। यदि ग्रह बलहीन हो तो फल प्राप्ति केवल स्वप्न में होती है। वास्तव में नहीं होती है ॥१३॥

पाकस्वामिनि लग्नगे सुहृदि वा वर्गेऽस्य सौम्येऽपि वा
प्रारब्धा शुभदा दशा त्रिदशषड्लाभेषु वा पाकपे।
मित्रोच्चोपचयत्रिकोणमदने पाकेश्वरस्य स्थित-
श्चन्द्रः सत्फलबोधनानि कुरुते पापानि चातोऽन्यथा ॥१४॥

इसमें योग बताये हैं :—

(१) दशानाथ अर्थात् जिसकी महादशा हो वह महादशाप्रवेश के समय लग्न में हो या मित्र ग्रह में हो या सौम्य-वर्ग में हो तो ऐसी महादशा शुभ जाती है।

(२) यदि महादशानाथ लग्न से तृतीय, षष्ठ, दसवें और एकादश हो और चन्द्रमा मित्र राशि में, उच्च या त्रिकोण राशि या सप्तम में हो तो दशा अच्छी जाती है। संक्षेप में यदि दशापति लग्न से उपचय में हो और चन्द्रमा त्रिकोण में या सप्तम में हो तो अच्छा होता है। चन्द्रमा दशानाथ के उच्च या मित्र ग्रह में रहना चाहिए।

(३) यदि चन्द्रमा अन्य स्थान में हो जो न तो दशानाथ का मित्र है, न उच्च है, न पाँचवे, नवें, सातवें है तो दशा अच्छी नहीं जाती है ।।४१।।

लग्नादिष्टगृहोपगः स्वभवने तुङ्गे सुहृद्भेऽथवा
पाकेशः शुभमित्रवीक्षणयुतस्तत्पाकभुक्तौ शुभम् ।
केन्द्रे वा यदि कोणगोऽतिशुभदः पापास्त्रिषष्ठायगा-
स्तुङ्गाद्योपचयेषु ये बलयुतास्तेषां दशायां शुभम् ।।१५।।

इसमें तीन योग बताये हैं :—

(१) लग्न से अच्छे घर से, दशापति शुभ फल देता है । अच्छे घर से तात्पर्य है अपने घर में उच्च गृह में, मित्र-गृह में शुभ-ग्रह से युक्त-दृष्ट हो, मित्र-ग्रह से युक्त-दृष्ट हो तो दशा की भुक्ति शुभ है । यहाँ दशापति के मित्र ग्रह लेने चाहिएँ और अन्तर्दशापति की दृष्टि हो तो शुभ होता है ।

(२) दशानाथ से अन्तर्दशानाथ केन्द्र या त्रिकोण में हो तो अत्यन्त शुभ है ।

(३) पाप-ग्रह तृतीय, षष्ठ, एकादश में हो, उच्च-ग्रह हो उपचय में हो तो उसकी दशा शुभ होती है ।।१५।।

अन्योन्यमिष्टग्रहयोर्द्दशायां भुक्तौ शुभं षड्बलशालिनोस्तु ।
शत्रुग्रहौ दुर्बलशालिनौ चेत् पाकापहारे तु तयोरनर्थः ।।१६।।

यदि दोनों ग्रह, दशानाथ और अन्तर्दशानाथ मित्र हों और षड्बल से युक्त हों तो उनकी दशा में अन्तर्दशा शुभ होती है । यदि दोनों दुर्बल हों और शत्रु ग्रह हो तो उनकी दशा अन्तर्दशा कष्ट-प्रद होती है ।।१६।।

करोति यद्भावगतः स्वपाके तद्भावजन्यं त्वशुभं शुभं वा ।
शुभं शुभव्योमचरस्य दाये पापस्य दाये त्वशुभं वदन्ति ।।१७।।

सौम्यान्वितग्रहदशाऽतिशुभप्रदा स्यात्
पापान्वितस्य विफलं परिपाककाले ।
मिश्रग्रहेण सहितस्य दशापहारे
मिश्रं फलं भवति मिश्रबलान्वितस्य ।।१८।।

दशानाथ से अन्तर्दशानाथ जिस भाव में होता है उस भाव के अनुरूप शुभ या अशुभ करता है अर्थात् छठे होगा और दशा-नाथ और अन्तर्दशा नाथ दुर्बल

होंगे तो शत्रु पीड़ा, रोग इत्यादि करेंगे । यदि दशानाथ और अन्तर्दशा नाथ छठे, आठवें हों, शुभ ग्रह की दशा में शुभ फल होता है । अशुभ दशा के समय में अशुभ फल होता है ॥१७॥

शुभ ग्रह से युक्त ग्रह की दशा में शुभ फल होता है, पाप ग्रह से युक्त ग्रह की दशा में अशुभ फल होता है । पाप और शुभ दोनों फल हों अर्थात् ग्रह में कुछ बातें पाप की, कुछ शुभ की हों तो मिश्र फल देता है । मिश्र बल युक्त या मिश्र युक्त ग्रह की दशा प्राप्त होने पर मिश्र फल होता है ॥१८॥

यद्धातुखेटस्य दशापहारे तद्धातुवित्तायतिमाहुरार्याः ।
धातुक्षयं पापवियच्चरस्य पाकेऽभिवृद्धि शुभदस्य धातोः ॥१९॥

जिस धातु वाले ग्रह की दशा हो उसकी महादशा में उसी की प्राप्ति होती है । इसी प्रकार उसकी अन्तर्दशा में उसी धातु की प्राप्ति होती है यह विद्वान् लोगों ने कहा है । पाप-ग्रह अर्थात् यदि लग्न से पाप राशि का स्वामी हो तो उस ग्रह की दशा-अन्तर्दशा में उस धातु का क्षय कहना । शुभ ग्रह की दशा में उस धातु की वृद्धि कहना । यहाँ यद्यपि ग्रंथकार ने धातु शब्द का प्रयोग किया है किन्तु हमारे विचार से ग्रह जिन-जिन वस्तुओं का कारक है वह सब वस्तुएं उसके अन्तर्गत लेना । जैसे शुक्र सुगंधित पदार्थ का कारक है तो शुक्र की दशा में या अन्तर्दशा में सुगन्धित पदार्थ का लाभ कहना । शनि रोग विशेष का कारक है इसलिए यदि रोग की प्राप्ति कहे तो शनि से सम्वन्धित रोग कहना चाहिए ॥ १९ ॥

सपत्नखेटोपगतस्य पाके सपत्नवृद्धि सकलार्थनाशम् ।
यत्कर्मकर्तृ ग्रहपाककाले तत्कर्मसिद्धि प्रवदन्ति सन्तः ॥२०॥

यत्कार्यकारिद्युचरस्य दाये तत्कार्यसिद्धि प्रवदेन्नराणाम् ।
शुभग्रहोऽसौ यदि कार्यसिद्धि पापस्तु तत्कार्यविनाशमेव ॥२१॥

जव लग्नेश के वैरी ग्रह की दशा हो या उसकी अन्तर्दशा हो, शत्रुओं की वृद्धि और सब धन का नाश होता है । जो ग्रह जिसका कारक है उसके समय में उससे सम्वन्धित शुभ कर्म होते हैं यदि ग्रह अच्छा हो । यदि कारक बलहीन हो तो इससे उलटा समझना चाहिए ॥२०॥

जिस कार्य का जो कर्ता ग्रह है वह बलवान् हो तो उसकी दशा में सब कार्य सिद्ध होते हैं अर्थात् उस कारक ग्रह की दशा में उस कारक सम्बन्धी कार्य सिद्ध होते हैं । उदाहरण के लिए बृहस्पति धर्म कारक है तो बृहस्पति की दशा

में धर्म कार्य पूर्ण होंगे। किन्तु यह तब है जब कि यह लग्नेश के लिए और लग्न के लिए शुभ हो। यदि पाप ग्रह निर्बल हो और लग्नेश के लिए शत्रु हो तो उस कारक ग्रह से संबन्धित कार्य का विनाश होता है ॥२१॥

राज्यस्थानपराज्यकारकदशा राजप्रसादप्रदा
देवव्योमचरस्य पाकसमये तद्दैवताराधनम्।
धर्माधीशदशागमे सति तपोधर्मादिसिद्धि वदेत्
कर्मेशस्य दशापहारसमये यज्ञादिकर्मोत्सवम् ॥२२॥

दशमेश तथा राज्य कारक ग्रहों की दशा में राज्य मिलता है यदि राज पुत्र हो, नहीं तो पदोन्नति होती है। राज्य प्रद ग्रह कौन-कौन से हैं? दशमेश तो है ही, नवमेश दशम में बैठा हो, लग्नेश दशम में बैठा हो, नवमेश का दशमेश से संबन्ध हो और दशम स्थान के कारक हैं सूर्य, बुध, बृहस्पति और शनि। यदि देव व्योमचर अर्थात् पंचमेश या नवमेश की दशा हो तो ग्रह संबंधी देवता का आराधन होता है। नवमेश की दशा में तप और धन वृद्धि कहे। दशमेश की दशा में यज्ञ आदि कर्मोत्सव कहे ॥२२॥

सत्त्वादिग्रहपाकभुक्तिसमये तत्तद्गुणो जायते
जन्मर्क्षादिनवर्क्षगग्रहदशा कुर्वीत भूतं फलम्।
कर्मर्क्षादिनवर्क्षगस्य बलिनः पाके भविष्यत्फलं
चाधानादिगतस्य सर्वमफलं पाके फलं वा वदेत् ॥२३॥

सत्त्व, रजस्, तमस् वाले ग्रह की दशा में वैसा ही फल प्राप्त होता है। जब तमोगृही ग्रह की दशा होती है तब तमोगुण की वृद्धि होती है। जब सतोगुण वाले ग्रह की दशा होती है तब सतोगुण मनुष्य में विशेष मात्रा में आता है, और जब रजोगुण प्रधान ग्रह की दशा होती है तब राजसी गुण आते हैं। जन्म नक्षत्र से नौ नक्षत्रों तक प्राप्त ग्रह की दशा भूतकाल का फल दिखाती है। दसवें नक्षत्र से अठारहवें नक्षत्र तक की दशा में भविष्य फल होता है। १९वें नक्षत्र से २८वें नक्षत्र की दशा सब विफल होती है (देखिये अध्याय नौ श्लोक ७८-८०)। अर्थात् यह देखना चाहिए कि जिस ग्रह की दशा चल रही है वह जन्म नक्षत्र से किस नक्षत्र में है ॥२३॥

शीर्षोदयगतः खेटः पाकादौ फलदो भवेत्।
पृष्ठोदयस्थः पाकान्ते चोभयोदयगः सदा ॥२४॥

शीर्षोदय राशि में जो ग्रह होते हैं वह दशा के आरम्भ में फल दिखाते हैं। पृष्ठोदय राशि में जो ग्रह होते हैं वह बाद में फल दिखाते हैं अर्थात् देर से फल दिखाते हैं। उभयोदय राशि में हमेशा फल दिखाते हैं। मिथुन-सिंह, कन्या-तुला-वृश्चिक-कुंभ शीर्षोदय राशि हैं। मेष-वृष-कर्क-धनु-मकर पृष्ठोदय राशि हैं। मीन उभयोदय राशि है ॥२४॥

षष्ठेशस्य दशा विलापकरणी मृत्युर्विनाशप्रभो-
रस्तव्योमचरस्य बन्धुमरणं पाकेऽपहारेऽथवा।
सम्पत्साधकमैत्रपाः परममैत्रक्षेमताराधिपा-
वेतेषामपहारभुक्तिसमये सम्पत्समृद्धि वदेत् ॥२५॥

इसमें चार योग बताये हैं :—

(१) षष्ठेश की दशा विलाप कराने वाली होती है अर्थात् बहुत रोग और कष्ट देती है।

(२) अष्टमेश की दशा साक्षात् मृत्यु देने वाली है।

(३) अस्त ग्रह की दशा बन्धु का मरण करती है। चाहे दशा हो या अन्तर्दशा हो।

(४) सम्पत् तारा, साधक तारा, परममित्र तारा और मित्र तारा इन नक्षत्रों में जो ग्रह बैठे हैं उनकी अन्तर्दशा में संपत्ति की वृद्धि कहनी चाहिए। जन्म नक्षत्र से द्वितीय सम्पत् तारा होती है। छठे नक्षत्र से सप्तक तारा कहलाती है। आठवाँ नक्षत्र मित्र तारा कहलाता है और नौवा नक्षत्र परम मित्र तारा कहलाता है ॥२५॥

त्रिमण्डलेष्वथैकस्मिन् पापस्तिष्ठति दुर्बलः।
तद्दशायां मृतिं विद्यात् ससौम्यो यदि शोभनम् ॥२६॥
राशिसन्धिगदाये तु शोकरोगादिपीडनम्।
त्रिंशद्भागमनुक्रान्तदशा मृत्युफलप्रदा ॥२७॥

इस प्रकार नौ-नौ नक्षत्र करके समस्त भचक्र को तीन भागों में विभाजित कर लेना चाहिए। यदि एक भी पाप-ग्रह दुर्बल हो तो उसकी दशा में मृत्यु होती है। यदि वह सौम्य ग्रह के साथ हो तो शुभ फल कहना ॥२६॥

राशि सन्धि में जो ग्रह होते हैं वह शोक, रोग आदि की पीड़ा करते हैं। यदि किसी राशि में ३०वें अंश में कोई ग्रह हो तो उसकी दशा में मृत्यु होती है ॥२७॥

**नीचस्थितो जन्मनि यो ग्रहः स्यात् स चापि तद्युक्तखगो न शक्तः ।
दातुं शुभं राहुयुतस्त्वनिष्टं तत्क्षेत्रगस्तद्युतराशिपश्च ॥२८॥**

इसमें ५ योग बताये हैं :—

(१) जो ग्रह नीच राशि का होता है वह ग्रह अच्छा फल नहीं देता है ।
(२) जो ग्रह नीच राशि गत ग्रह के साथ है वह अच्छा फल देने में क्षम नहीं होता ।
(३) जो ग्रह राहु के साथ बैठा हो वह शुभ फल नहीं देता ।
(४) राहु जिस राशि में बैठा हो उसका स्वामी अच्छा फल नहीं देता है ।
(५) राहु राशिपति के गृह में जो ग्रह बैठा है वह अच्छा फल नहीं देता ॥ २८ ॥

**तत्तद्भावाधीश्वरस्याधिशत्रुर्यो वा खेटो बिन्दुशून्यर्क्षयुक्तः ।
तत्तत्पाके मूर्तिभावादिकानां नाशं ब्रूयादेवमाहुर्मुनीन्द्राः ॥२९॥**

इसमें दो योग बताये हैं । —

(१) जो ग्रह जिस भावाधीश का अधिशत्रु हो वह उस भाव का अच्छा फल नहीं देता । उदाहरण के लिए किसी का तृतीय भाव सिंह में है और शनि नवम में पड़ा है तो शनि की दशा-अन्तर्दशा तृतीय भाव के लिए अच्छी नहीं जायेगी । क्योंकि सूर्य यदि चतुर्थ में हो तो वह शनि का अधिशत्रु हो जायेगा । इस प्रकार बारह भावों को देखना चाहिए कि जिसकी दशा है उसके अधिशत्रु किस-किस भाव के स्वामी हैं ।
(२) जो ग्रह किसी भाव में बिन्दु-शून्यर्क्ष हो उसकी दशा में जिसके अष्टक वर्ग में कोई बिन्दु नहीं है वह ग्रह जिस भाव का स्वामी है उस भाव संबंधी खराब फल होगा । उदाहरण के लिए चन्द्रमा के अष्टक वर्ग में कर्क राशि में कोई शुभ बिन्दु नहीं है और कर्क तृतीय में पड़ा है तो उस ग्रह की दशा में जो कर्क में पड़ा है तृतीय भाव का अच्छा फल नहीं होगा । इसका एक अर्थ और भी हो सकता है । मान लीजिए शनि के अष्टक वर्ग में तृतीय भाव में कोई शुभ-बिन्दु नहीं है तो शनि की दशा तृतीय भाव के लिए खराब जायेगी ॥२९॥

**बाधास्थानपतद्युतग्रहदशा शोकादिरोगप्रदा
तत्केन्द्रस्थदशापहारसमये दुःखं विदेशाटनम् ।
अन्योन्याष्टमषष्ठगद्युचरयोः पाकापहारे भयं
देशत्यागमनर्थमिष्टशुभयोः सर्वं विमिश्रं वदेत् ॥३०॥**

चर लग्न का अर्थात् मेष, कर्क, तुला, मकर का बाधा स्थान ग्यारहवाँ होता है। स्थिर लग्न का नवाँ अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक और कुंभ का नवाँ स्थान बाधा स्थान होता है। द्विस्वभाव लग्न के सप्तम स्थान अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु और मीन के सप्तम स्थान बाधा स्थान हैं।

यह लिखा है :—

आरूढराशौ चर आयराशौ, स्थिरे तु बाधा नवमे विचिन्त्या ।
तथोभये कामगृहे त्रयाणां केन्द्रेषु चैषामिति केचिदाहुः ॥
चरस्थिरोभये लग्ने लाभधर्मास्तपैः क्रमात् ।
त्रयाणां केन्द्रसंस्थैश्च ग्रहैर्बाधकमुच्यते ॥ इति ॥

अर्थात् बाधा स्थान का अधिपति और जो बाधा स्थान में हो और जो इनके केन्द्र में हो वह बाधक ग्रह होते हैं। किन्तु ज्योतिष के सम्प्रदायानुसार चर-लग्न के लिए ग्यारहवें में बैठा हो, स्थिर लग्न के लिए नवम का अधिपति और जो नवम स्थान में बैठा हो, द्विस्वभाव लग्न के लिए सप्तमेश और जो ग्रह सप्तम में बैठा हो वह बाधा कारक होता है।

बाधक स्थान का पति और उससे युक्त जो ग्रह बैठा हो उनकी दशा शोक-रोग देने वाली होती है। जो उससे केन्द्र में बैठा हो अर्थात् बाधा स्थान से केन्द्र में उसकी दशा दुःख देने वाली होती है। परदेश में जाना पड़ता है।

जो ग्रह परस्पर छठे, आठवें पड़े हों उनकी दशा में भय, अनर्थ और देश त्याग होता है। यदि दोनों ग्रह शुभ हों या मित्र हों तो मिश्रित फल कहे अर्थात् मिला-जुला ॥३०॥

पाके दीप्तस्य राजा भवति धनयशोदानविद्याविनोदी
स्वस्थस्याचारधर्मश्रवणबहुसुखारोग्यवित्तान्वितः स्यात् ।
राजप्रीतिं विभूतिं सुखमिह मुदितव्योमवासस्य दाये
शान्तस्यारोग्यसौख्यश्रियमवनिपतिप्रीतिमुत्साहमेति ॥३१॥

पाके शक्तस्य विद्याविनयधनतपःसिद्धिधर्मप्रवृत्ति-
श्चोरारातिक्षितीशैर्भयमनुजमृतिः पीडितस्य ग्रहस्य ।
दाये दीनस्य दैन्यं विकलखगदशा शोकरोगप्रदा स्यात्
चित्तक्लेशः खलस्य प्रतिदिनमरिभिर्भीतखेटस्य भीतिः ॥३२॥

इस श्लोक में प्रदीप्त, स्वस्थ आदि दशाओं का फल बताया गया है।

अध्याय दो के श्लोक १६-१७-१८ में प्रदीप्त इत्यादि की परिभाषा बतायी गयी है कि कौन सा ग्रह प्रदीप्त होता है कौन सा स्वस्थ इत्यादि।

प्रदीप्त ग्रह की दशा में राजा होता है। धन, कीर्ति और विद्या की प्राप्ति होती है। स्वस्थ ग्रह की दशा में बहुत सुख होता है। मनुष्य का स्वास्थ्य अच्छा रहे और धन युक्त हो। सदाचार में प्रवृत्त रहे। अच्छी बातें सुनने को मिलें। धर्म परायण हो। मुदित ग्रह की दशा में राजा से सम्मान प्राप्त हो, वैभव और सुख हो। शान्त ग्रह की दशा में नीरोग रहे, सुख और लक्ष्मी की प्राप्ति हो, राजा की प्रीति प्राप्त हो, नित्य उत्साह रहे ॥३१॥

शत्रु ग्रह की दशा में धर्म में प्रवृत्ति हो, विद्या और धन का विस्तार हो, तप की सिद्धि हो, धनागम हो। पीड़ित ग्रह की दशा में छोटे भाई की मृत्यु हो। शत्रुओं और चोरों से भय हो राजा से भय हो। दीन ग्रह की दशा में चित्त में दीनता रहे। विकल ग्रह की दशा में शोक और रोग हो। दुर्बल ग्रह की दशा में निरन्तर भय रहे और क्लेश हो। भीत ग्रह की दशा में भय होता हो ॥३२॥

विलग्नतारेन्दुभनामताराप्रश्नेन्दुनक्षत्रगणेषु मध्ये।
बलाधिकर्क्षेशदशाक्रमेण फलं शुभं वाऽशुभमाहुरार्याः ॥३३॥

अब और प्रकार की दशा बताते हैं। चारों में देखिये कौन बलवान् है। (१) जन्मकाल का नक्षत्र (२) जन्म कालिक लग्न का नक्षत्र (३) जिस नाम से आदमी पुकारा जाता है उसके नाम का नक्षत्र (४) प्रश्न के समय जो नक्षत्र हो। इन चारों में जो बली हो उसकी दशा लगाना। उससे शुभ-अशुभ फल कहना यह श्रेष्ठ विद्वानों ने कहा है ॥३३॥

उत्पन्ननक्षत्रविलग्नतो वा भूयात् क्रमेणैव दशाफलानि ॥
दशावसानेष्वशुभं च सर्वे कुर्वन्ति सामान्यफलं नराणाम् ॥३४॥

आगे उत्पन्न नक्षत्र बतायेंगे। अगर यह पिछले चार बताये गये नक्षत्रों से बलवान् हों तो इसी की दशा का फल होता है। यह सामान्य नियम है कि सब दशायें अपने अन्त में अशुभ फल देती हैं ॥३४॥

जन्मर्क्षात्परतस्तु पञ्चमभवाऽथोत्पन्नसंज्ञा दशा
स्यादाधानदशाऽप्यथाष्टमभवात् क्षेमात्मसौख्या दशा।
आसां चैव दशावसानसमये मृत्युं वदेत्प्राणिनां
दीर्घस्वल्पसमायुषां बहुविपत्प्रत्यग्-दशासु क्रमात् ॥३५॥

जन्म नक्षत्र से पाँचवाँ नक्षत्र उत्पन्न कहलाता है। जन्म नक्षत्र से आठवाँ नक्षत्र आधान नक्षत्र कहलाता है। जन्म नक्षत्र से चतुर्थ नक्षत्र महानक्षत्र कहलाता है। इन तीनों से जो नक्षत्र आये उनसे महादशा निकालनी चाहिए। पाँचवें नक्षत्र से उत्पन्न महादशा होगी। आठवें नक्षत्र से आधान महादशा निकालनी चाहिए और चौथे नक्षत्र से महादशा 'महादशा' कहलाती है। अगर इन चारों प्रकार की दशाओं से जिनमें जन्म नक्षत्र से महादशा भी आ गयी अगर एक ही वर्ष में दशाओं का अन्त हो तो उस दशा में मृत्यु होती है। स्वल्पायु के तीसरे नक्षत्र की दशा में मध्यायु की पाँचवें नक्षत्र की दशा में और दीर्घायु की सातवें नक्षत्र की दशा में मृत्यु होती है ॥३५॥

निर्याण दशा

जातोऽह्नि चेदर्कशनिस्फुटैक्यताराादिनिर्याणदशा प्रकल्प्या।
तारेशराहुस्फुटयोगतारापूर्वा दशारिष्टकरा रजन्याम् ॥३६॥

यदि दिन का जन्म हो तो सूर्य स्पष्ट और चन्द्र-स्पष्ट को जोड़िये। जो योग आये उसको चन्द्रमा मानकर स्पष्ट दशा कीजिए तो निर्याण दशा निकलेगी। यदि रात्रि का जन्म हो तो चन्द्र स्पष्ट और राहु स्पष्ट को जोड़िये जो स्पष्ट आये उसको चन्द्रमा मान कर दशा निकालिये। इससे निर्याण दशा निकालनी चाहिए ॥३६॥

गुलिक दशा

गुलिकस्थितनक्षत्राद्दशा तस्य प्रकल्पिता।
तद्युक्तभवनांशेशौ सहकारी च मृत्युदाः ॥३७॥

गुलिक जिस नक्षत्र में स्थित हो उससे दशा निकाले। गुलिक से युक्त ग्रह का स्वामी और गुलिक जिस राशि और नवांश में हो उसका स्वामी, किंवा इनके साथ जो ग्रह पड़े हों वह मारक होते हैं ॥३७॥

शूलदशा

दिनेशाविनशुक्रौ च राजारौ कारकाः स्मृताः।
कारकस्य त्रिशूलर्क्षे यदा चरति या दशा ॥३८॥
"विक्रमाष्टमाधिपवशाज्जातस्यायुः, पितृकारकौ
रविशुक्रौ, मातृकारकौ चन्द्रकुजौ"।
तत्कारकस्थितगृहादिषु सर्वभेषु
चक्रप्रमाणदलवत्सरसंयुतेषु।

वीर्यान्वितेषु शुभदृष्टियुतेषु सौख्यं
नीचारिपापयुतभेषु वदन्त्यनिष्टम् ।।३९।।

तृतीयाधिपति और अष्टमाधिपति आयुकारक होते हैं। सूर्य और शुक्र पितृकारक हैं। चन्द्रमा और मंगल मातृकारक हैं। यहाँ जातक-पारिजातकार ने जैमिनि का मत संमिश्रण कर दिया है। कारक के त्रिशूल राशि की दशा जब आती है तब उसमें उसका मरण कहे।

जो जो कारक जिस जिस भाव में हो उस राशि में ६ राशियाँ जोड़कर उतने वर्ष में यदि कारक शुभ दृष्ट हो तो शुभ फल कहना। यदि कारक नीच पाप-ग्रह-युक्त, पाप-ग्रह-दृष्ट, शत्रु ग्रह दृष्ट या शत्रु-ग्रह-युक्त हो तो उन उन वर्षों में अनिष्ट कहना ।।३८-३९।।

महादशा विशेष

यत्तारांशगतः शशी तदधिपेनालोकितो वा युत-
स्तेषां चक्रदशा विशेषफलदा वक्ष्यामि तच्चक्रजम्।
देहे पापयुते तु रोगमधिकं जीवे तु जीवभ्रमं
दद्याद्द्यनयोः सहाबलयुतिर्मृत्युं दशायां नृणाम् ।।४०।।

जिस नक्षत्र के नवांश में चन्द्रमा हो उसका स्वामी यदि चन्द्रमा के साथ हो या चन्द्रमा को देखता हो तो उसकी कालचक्र दशा विशेष फलीभूत होती है। उसका फल कहते हैं। देह राशि यदि पाप-ग्रह युक्त हो तो देह में विशेष रोग होता है। जीव राशि यदि पाप युक्त हो तो जीव-भ्रम होता है अर्थात् जीव को विशेष कष्ट होता है। यदि देह राशि और जीव राशि दोनों में निर्बल ग्रह हों तो उसकी दशा में जातक की मृत्यु कहते हैं ।।४०।।

अन्तर्दशा विशेष फल

पापो विलग्नगृहगो यदि तद्दशायां
पापापहारसमये बहुशोकरोगम्।
वित्तक्षयं नृपसपत्नभयं नराणां
सौम्यस्य मिश्रमखिलं प्रवदन्ति सन्तः ।।४१।।

पाप-ग्रह यदि लग्न में हो तो उसकी महादशा में जब पाप-ग्रह की अन्तर्दशा आती है तो बहुत शोक और रोग होते हैं, वित्त क्षय होता है। राजा और

शत्रुओं से भय होता है। शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में सब मिश्र फल होता है अर्थात् मिला-जुला फल होता है। पाप-ग्रह की वजह से पाप फल और शुभ ग्रह की वजह से शुभ फल। दशानाथ और अन्तर्दशा नाथ दोनों फल दिखाते हैं। ऐसा सन्त लोग कहते हैं ॥४१॥

लग्नाधिपदशाकाले मन्दभुक्तौ धनक्षयम्।
इष्टबन्धुविरोधश्च भविष्यति न संशयः ॥४२॥

जब लग्नेश की दशा होती है और उसमें शनि की अन्तर्दशा आती है तब उसमें निश्चय ही धननाश और मित्रों और वन्धुओं का विरोध होता है। इसमें संशय नहीं है ॥४२॥

धनाधिपः पापखगो यदि स्याच्छन्यारभोगीशदिनेश्वराणाम्।
अन्तर्दशायां धननाशमाहुः पापान्विते तद्भुवने तथैव ॥४३॥

धनान्वितः पापखगस्तदीशः स्यात्तद्दशायां क्षितिपालकोपात्।
मानार्थनाशं निगलं नराणां स्थानच्युतिं मित्रविरोधमेति ॥४४॥

यदि धनेश पाप ग्रह हो तो सूर्य, मंगल, शनि और राहु की अन्तर्दशा में धन का नाश होता है। यदि धनेश पाप ग्रह युक्त या पाप ग्रह की राशि में हो तो भी सूर्य, मंगल, शनि राहु की अन्तर्दशा में धन नाश होता है ॥४३॥

यदि धन भाव का स्वामी पाप ग्रह हो और धन राशि में बैठे तो भी उसकी दशा में राजा के कोप से धन और मान का नाश हो, स्थानच्युति और मित्र-विरोध हो और जेल जाये। बहुत से टीकाकारों ने इसका अर्थ किया है कि फांसी हो किन्तु यह अर्थ हमें सम्मत नहीं है ॥४४॥

पापग्रहे विक्रमभावनाथे पापान्विते पापवियच्चराणाम्।
अन्तर्दशायामरिशत्रुचोरैर्दुःखं समायाति शुभान्विते वा ॥४५॥

दुश्चिक्यभावाधिपदायकाले मन्दारभोगिध्वजभानुभुक्तौ।
नाशं वदेत्तत्र सहोदराणां भवेद्विशेषात्सहजैर्विरोधः ॥४६॥

तृतीय भाव का स्वामी यदि पाप-ग्रह हो, पाप-ग्रह युक्त हो तो पाप-ग्रहों की अन्तर्दशा में शत्रु और चोर से दुःख हो। शुभ-युक्त हो तो भी उक्त फल होता है ॥४५॥

तृतीय भाव के स्वामी की दशा में सूर्य, मंगल, केतु और शनि की अंतर्दशा में छोटे भाइयों से विरोध हो, छोटे भाइयों का नाश हो ॥४६॥

क्षेत्राधिनाथस्य शुभेतरस्य पाके तु पापग्रहभुक्तिकाले ।
स्थानच्युतिं बन्धुजनैर्विरोधं कृष्यादिगोवित्तविनाशमाहुः ॥४७॥

यदि चतुर्थ भाव का स्वामी पाप-ग्रह हो तो पाप-ग्रह की अन्तर्दशा में, स्थानच्युति, बन्धुओं से विरोध, कृषि-गो-धन का विनाश कहा है ॥४७॥

पापापहारसमये सुतराशिपस्य
पाके नृपालभयमिष्टसुतार्तिमाहुः ।
सौम्यापहारसमये सुतवित्तलाभ-
मुर्वीशबन्धुजनलालनमिष्टसिद्धिम् ॥४८॥

यदि पंचमेश की महादशा हो तो पाप ग्रह की भुक्ति में राजा से भय हो। इष्ट जनों को तथा पुत्र को कष्ट हो, सौम्य ग्रह की अन्तर्दशा में पुत्र का लाभ, धन का लाभ होता है। राजा की कृपा होती है । वंधुजन से प्रेम और इष्ट सिद्धि होती है ॥४८॥

षष्ठेशपाकसमये तु शुभेतराणां
भुक्तौ नृपानलभयं व्यसनं च रोगम् ।
पाके कलत्रगृहपस्य खलापहारे
पत्नीविनाशमटनं च विदो वदन्ति ॥४९॥

षष्ठेश की दशा में शुभ ग्रह के अलावा बाकी ग्रहों की अन्तर्दशा में राज-भय, अग्निभय, व्यसन और रोग होते हैं। व्यसन कहते हैं हानि, पतन, दुःख और आपत्ति को। शेष में दुर्भाग्य समझिये। सप्तमेश की दशा में पाप-ग्रह की जब अन्तर्दशा होती है तो पत्नी का विनाश और रोग होता है। आदमी व्यर्थ इधर-उधर घूमता है। विदेश गमन होता है ॥४९॥

रन्ध्रस्वामिदशागमे रिपुभयं पापापहारे नृणा-
मायुर्वित्तयशोविनाशमटनं स्थानच्युतिं वा वदेत् ।
पाके धर्मगृहाधिपस्य मरणं पित्रोरधर्मार्यातिं
भुक्तौ पापवियच्चरस्य निगलप्राप्तिं च वित्तक्षयम् ॥५०॥

जब अष्टम भाव पति की दशा होती है और पाप-ग्रह की अन्तर्दशा होती है तो मनुष्यों को शत्रु भय होता है। आयु का नाश होता है या बीमार पड़े या मृत्यु हो। स्थानच्युति होती है अर्थात् जिस पद पर काम कर रहा हो उससे भ्रष्ट हो जाता है। धन नाश होता है, विदेश जाता है। विदेश जाना आज-कल अच्छा समझा जाता है। पहले कष्टपूर्ण समझा जाता था। जब नवमेश की दशा होती है और पाप ग्रह की अन्तर्दशा होती है तब माता-पिता की मृत्यु की सम्भावना रहती है या अन्य गुरुजन बीमार पड़े। मनुष्य पाप कर्म करे। धनक्षय हो। जेल जाये या बन्धन में पड़े ॥५०॥

कर्मेशस्य खलस्य पाकसमये भुक्तौ यदा पापिना-
मिष्टार्ति पदविच्युतिं सुखयशोहानिं च वित्तक्षयम्।
मन्दारार्कफणीशभुक्तिसमये लाभेशदायेऽसुखं
कृष्यादिप्रविनाशनं नृपभयं वित्तस्य नाशं विदुः ॥५१॥

जब दशमेश पाप ग्रह की दशा हो और अन्य पाप ग्रह की अन्तर्दशा हो तो इष्ट जनों को पीड़ा हो। पदच्युति हो। सुख की हानि हो। धन का नाश हो।

जब लाभेश की दशा हो और सूर्य, मंगल, शनि, राहु की अन्तर्दशा हो तो दुःख प्राप्त होता है। खेती-वाड़ी का नुकसान होता है। राज भय होता है। धन नाश हो ॥५१॥

व्ययेशदाये रविमन्दभौमभुक्तौ कलत्रात्मजबन्धुवैरम्।
बलक्षयं मानधनक्षयं च फणीशभुक्तौ विषभीतिमाहुः ॥५२॥

व्ययेश की जब दशा हो और सूर्य, शनि, मंगल की अन्तर्दशा हो तो स्त्री और पुत्र से वैर होता है। बल का नाश होता है। यश-मान में कमी होती है। धन का नाश होता है। व्ययेश की महादशा में जब राहु की अन्तर्दशा हो तो विष का भय होता है ॥५२॥

अन्योन्यषष्ठाष्टमपाकभुक्तौ पदच्युतिं वा मरणं नराणाम्।
एकस्थयोरन्तरदायकाले मृत्युं वदेद् दुर्बलशालिनोस्तु ॥५३॥

जब महादशानाथ और अन्तर्दशानाथ एक दूसरे से छठे, आठवें हों तो उनकी दशा में पदच्युति या मरण कहे। यदि महादशानाथ और अन्तर्दशा नाथ दोनों एक साथ हों और दुर्बल हों तो उसमें मृत्यु कहना या मृत्यु समान कष्ट कहना ॥५३॥

क्रूरग्रहदशाकाले क्रूरस्यान्तर्दशागमे ।
मरणं तस्य जातस्य भविष्यति न संशयः ।।५४।।

क्रूर-ग्रह की महादशा में जब क्रूर-ग्रह की अन्तर्दशा होती है तो जातक का मरण होता है । इसमें संशय नहीं है ।।५४।।

क्रूरराशिगताः पापाः शत्रुखेटनिरीक्षिताः ।
शत्रुखेचरसंयुक्तास्तद्दशायां मृतिर्भवेत् ।। ५५।।

दशाधिपस्य यः शत्रुस्तस्य भुक्त्यन्तरान्तरे ।
मृत्युकालो भवेन्नूनं पापखेटस्य निश्चयः ।।५६।।

यदि क्रूर राशि में पाप ग्रह स्थित हों और शत्रु ग्रह से देखे जाते हों तथा शत्रु ग्रह से युत हों तो उनकी दशा में मृत्यु होती है ।।५५।।

दशानाथ का जो शत्रु ग्रह हो पाप ग्रह की भुक्ति हो तो दशानाथ के शत्रु ग्रह के प्रत्यन्तर में मृत्यु होती है । मूल में शब्द आया है 'भुक्त्यन्तरान्तरे' इसका अर्थ हमने किया है प्रत्यन्तर में । कहने का तात्पर्य यह है कि पहले दशानाथ को मारक होना चाहिए वह मारक होगा तब उसके शत्रु ग्रह के अन्तर में मृत्यु होगी । शत्रु ग्रह का भी पापी होना आवश्यक है ।।५६।।

स्वोच्चादिजन्यमशुभस्य दशाप्रवेशे
भावादिजं फलमशोभनपाकमध्ये ।
दृष्टयुद्भवं सकलपापवियच्चराणां
पाकावसानसमये फलमाहुरार्याः ।।५७।।

पाप ग्रह यदि उच्च हो या स्वग्रही हो तो उसका अच्छा फल दशा के प्रारंभ में मिलता है । भाव फल अर्थात् कैसे भाव में बैठा है इसका शुभ या अशुभ फल दशा के मध्य में होता है । और पाप ग्रह पर दृष्टि कैसी पड़ रही है, शुभ या अशुभ इसका फल शुभ या अशुभ के अन्त में होता है ।।५७।।

पाकस्यादौ भावजन्यं शुभानां तत्तद्राशिस्थानजं पाकमध्ये ।
दायस्यान्ते दृष्टिसञ्जातमेवं सर्वे तारापाकभेदं वदन्ति ।।५८।।

महादशा के आरंभ में ग्रह भाव का फल दिखाता है अर्थात् कोई ग्रह यदि केन्द्र त्रिकोण में बैठे या एकादश स्थान में हो तो शुभ फल और छठे-आठवें व

वारहवें हों तो अशुभ फल। जो भाव शुभ कहे गये हैं उनमें वैठा ग्रह शुभ फल और जो भाव अशुभ कहे गये हैं उनमें वैठा अशुभ फल अर्थात् भाव जन्य फल ग्रह दशा के प्रारम्भ में दिखाता है। दशाकाल के मध्य में ग्रह राशि जन्य फल दिखाता है अर्थात् स्वराशि उच्चराशि मित्र राशियों में वैठा हुआ शुभ फल और अशुभ राशि में वैठा हुआ निकृष्ट फल। निकृष्ट से क्या तात्पर्य? यदि ग्रह अपनी नीच राशि, शत्रु राशि में बैठा हुआ हो तो अच्छा फल नहीं दिखाता, खराब फल दिखाता है।

दशा का प्रारम्भ काल भाव जन्य और दशा का मध्य काल राशि जन्य फल दिखाता है। यह कह चुकने के वाद कहते हैं कि दृष्टि जन्य फल दशा के अन्त में दिखाता है अर्थात् शुभ ग्रह से वीक्षित हो तो अच्छा फल और पाप ग्रह से वीक्षित हो तो निकृष्ट फल। इस प्रकार दशा को तीन भागों में बांट कर कब कैसा फल होता है यह निर्णय करते हैं ॥५८॥

अन्तर्दशा फल

अथ तरणिदशायां चौर्यमुच्चाटनाद्यै-
र्धनमनलचतुष्पात्पीडनं नेत्रतापम्।
उदरदशनरोगः पुत्रदारैर्वियोगो
गुरुजनपितृनाशो भृत्यगोवित्तहानिः ॥५९॥

अब सूर्य की दशा में क्या फल होता है यह कहते हैं:—

सूर्य की दशा में चोरी से धन लाभ होता है। उच्चाटन आदि से लाभ होता है। अग्नि से पीड़ा। चौपायों से कष्ट। नेत्रों तथा दांतों की वीमारी। पेट का रोग। स्त्री पुत्र का वियोग। गुरु जन तथा पिता का नाश। भृत्य, पशु संपत्ति तथा धन की हानि होती है ॥५९॥

अन्तर्दशा नयन

दशा दशाहता मासाश्चैकस्थानं विना परे।
एकस्थानं त्रिगुणितं दिनान्यन्तर्द्दशाक्रमः ॥६०॥

अन्तर्दशा कैसे निकालना यह वताते हैं: —

महादशा को अन्तर्दशा के वर्षों से गुणा कीजिए जो अंत की संख्या आये उसके तिगुने दिन और जो गुणन-फल में बाकी संख्या बचे (अंत की संख्या छोड़कर) उतने माह होते हैं। मान लीजिए सूर्य में वृहस्पति की अन्तर्दशा निकालनी है तो

६ और १६ को गुणा कीजिए। गुणनफल आया ९६ तो ६ को ३ से गुणा कीजिए तो आये १८ दिन। बाकी ९ महीने ॥६०॥

रवि महादशा में अन्तर्दशा फल

द्विजभूपतिशास्त्राद्यैर्धनप्राप्तिं मनोरुजम्।
विदेशवनसञ्चारं भानोरन्तर्गते रवौ ॥६१॥

बन्धुमित्रजनैरर्थं प्रमादं मित्रसज्जनैः।
पाण्डुरोगादिसन्तापं चन्द्रे भानुदशान्तरे ॥६२॥

रत्नकाञ्चनवित्ताप्तिं राजस्नेहं शुभावहम्।
पैत्यरोगादिसञ्चारं कुजे भानुदशान्तरे ॥६३॥

अकाले मृत्युसन्तापं बन्धुवर्गारिपीडनम्।
पदच्युतिं मनोदुःखं रवेरन्तर्गतेऽप्यहौ ॥६४॥

सर्वपूज्यं सुताद्वित्तं देवब्राह्मणपूजनम्।
सत्कर्माचारसद्गोष्ठी रवेरन्तर्गते गुरौ ॥६५॥

सर्वशत्रुत्वमालस्यं हीनवृत्तिं मनोरुजम्।
राजचोरभयप्राप्तिं रवेरन्तर्गते शनौ ॥६६॥

बन्धुपीडां मनोदुःखं सन्नोत्साहं धनक्षयम्।
किञ्चित्सुखमवाप्नोति रवेरन्तर्गते बुधे ॥६७॥

कण्ठरोगं मनस्तापं नेत्ररोगमथापि वा।
अकालमृत्युमाप्नोति रवेरन्तर्गते ध्वजे ॥६८॥

जले द्रव्याप्तिमायासं कुस्त्रीजननिषेवणम्।
शुष्कसंवादमाप्नोति रवेरन्तर्गते भृगौ ॥६९॥

दशादौ दिननाथस्य पितृरोगं धनक्षयम्॥
सर्वबाधाधरं मध्ये दशान्ते सुखमाप्नुयात् ॥७०॥

स्वोच्चे नीचनवांशगस्य तरणेर्द्दायेऽपवादं भयं
पुत्रस्त्रीपितृवर्गबन्धुमरणं कृष्यादिवित्तक्षयम्।

नीचे तुङ्गनवांशगस्य च रवेः पाके नृपालश्रियं
सौख्यं याति दशावसानसमये वित्तक्षयं वा मृतिम् ।।७१।।

सूर्य में सूर्यः—सूर्य की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा हो तो ब्राह्मण तथा भूपति से धन लाभ हो। शस्त्रादि से धन मिले। मन में रोग हो और विदेश तथा वन यात्रा हो ।।६१।।

सूर्य में चन्द्रः— सूर्य की दशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा हो तो बन्धु और मित्रों से धन की प्राप्ति होती है। मित्रों से, सज्जनों से प्रमाद हो और जातक को, स्वयं को पीलिया आदि रोग से सन्ताप हो ।।६२।।

सूर्य में मंगलः— सूर्य की दशा में मंगल की जब अंतर्दशा होती है तो रत्न, स्वर्ण तथा धन की प्राप्ति हो, राजा से लाभ हो अर्थात् राजा की कृपा रहे। शुभ फल हो किन्तु पित्त रोग की वृद्धि हो ।।६३।।

सूर्य में राहुः— सूर्य में जब राहु की अन्तर्दशा आती है तब मृत्यु भय होता है अर्थात् अचानक मृत्यु हो जाय। बन्धु वर्ग को शत्रुओं से पीड़ा हो। मन को सन्ताप हो। पदच्युति हो ।।६४।।

सूर्य में बृहस्पति :— सूर्य में जब बृहस्पति की अन्तर्दशा आती है तो मनुष्य सर्व पूज्य होता है अर्थात् सब जगह उसका आदर होता है। अपने पुत्र से धन की प्राप्ति होती है। देवताओं और ब्राह्मणों का पूजन करता है। सत्कर्म के आचरण करता है और सज्जनों का समागम करता है ।।६५।।

सूर्य में शनिः— सूर्य में जब शनि की अन्तर्दशा होती है तो मन में आलस्य होता है। सब लोग शत्रुता करते हैं। मन में दुःख रहता है। छोटे दर्जे की वृत्ति होती है। राजा और चोर से भय होता है ।।६६।।

सूर्य में बुधः— सूर्य में जब बुध का अन्तर होता है तो बन्धुओं को पीड़ा होती है। मन में दुःख की अनुभूति होती है। मनुष्य उद्यमहीन हो जाता है। और थोड़ी मात्रा में सुख मिलता है ।।६७।।

सूर्य मे केतुः— जब सूर्य की महादशा में केतु की अन्तर्दशा होती है तो असमय में मृत्यु की सम्भावना रहती है और मन दुःखी रहता है। कण्ठ रोग होता है। नेत्रों में बीमारी होती है ।।६८।।

सूर्य में शुक्रः— जब सूर्य में शुक्र होता है तो जल में या जल मार्ग से धन की प्राप्ति होती है। दुष्ट स्त्री का सहवास हो। शुष्क सम्वाद प्राप्त हो ।।६९।।

अब विशेष कहते हैं। सूर्य की दशा में प्रारम्भ में पिता को रोग और धन

क्षय होता है। मध्य में सब प्रकार की बाधायें उपस्थित हों। दशा के अन्त में सुख होता है ॥७०॥

यदि उच्च राशि गत किन्तु नीच नवांश में सूर्य हो तो सब प्रकार का अपवाद और भय हो। पुत्र, स्त्री, पितृवर्ग और बन्धुओं का मरण हो। कृषि आदि में धन क्षय हो। यदि सूर्य नीच राशि में हो किन्तु उच्च नवांश में हो तो उसकी दशा में राजा से धन प्राप्ति और सुख की प्राप्ति होती है। दशा के अन्त में धननाश और मृत्यु का भय होता है ॥७१॥

चन्द्रदशाफल

हिमकिरणदशायां मन्त्रदेवद्विजाप्ति-
र्युवतिजनविभूतिः स्त्रीधनक्षेत्रसिद्धिः।
कुसुमवसनभूषागन्धनानाधनाढ्यो
भवति बलविरोधे चार्थहा वातरोगी ॥७२॥

चन्द्रमा की महादशा में मंत्री की उपासना, देवताओं की भक्ति, ब्राह्मणों का सत्कार होता है। स्त्री की प्राप्ति, धन की प्राप्ति और क्षेत्र की प्राप्ति होती है। स्त्रियों से वैभव प्राप्त होता है। वस्त्र, पुष्प, भूषण, चन्दन आदि सुन्दर वस्तुयें प्राप्त हों और अनेक प्रकार के धन से युक्त हो। यदि चन्द्रमा बलहीन हो तो चन्द्रमा की दशा में धनक्षय होता है। और वात रोग से भय होता है अर्थात् वायु के रोग होते हैं ॥७२॥

चन्द्रमा की दशा में अन्तर्दशा फल

विद्यास्त्रीगीतवाद्येष्वभिरतिशमनं पट्टवस्त्रादिसिद्धि
सत्सङ्गं देहसौख्यं नृपसचिवचमूनायकैः पूज्यमानम्।
सत्कीर्ति तीर्थयात्रां वितरति हिमगुः पुत्रमित्रैः प्रियं च
क्षोणीगोवाजिलाभं बहुजनविभवं स्वे दशान्तर्विपाके ॥७३॥

रोगं विरोधबुद्धि च स्थाननाशं धनक्षयम्।
मित्रभ्रातृवशात् क्लेशं चन्द्रस्यान्तर्गते कुजे ॥७४॥

रिपुरोगभयात् क्लेशं बन्धुनाशं धनक्षयम्।
न किञ्चित्सुखमाप्नोति राहौ चन्द्रदशान्तरे ॥७५॥

यानादिविविधार्थाप्ति वस्त्राभरणसम्पदः ।
यत्नात् कार्यमवाप्नोति जीवे चन्द्रदशान्तरे ॥७६॥

मातृपीडा मनोदुःखं वातपैत्त्यादिपीडनम् ।
स्तब्धवागरिसंवादं शनौ चन्द्रदशान्तरे ॥७७॥

मातृवर्गाद्धनप्राप्तिं विद्वज्जनसमाश्रयम् ।
वस्त्रभूषणसम्प्राप्ति बुधे चन्द्रदशान्तरे ॥७८॥

स्त्रीरोगं बन्धुनाशं च कुक्षिरोगादिपीडनम् ।
द्रव्यनाशमवाप्नोति केतौ चन्द्रदशान्तरे ॥७९॥

स्त्रीधनं कृषिपश्वादिजलवस्त्रागमं सुखम् ।
मातृरोगमवाप्नोति भृगौ चन्द्रदशान्तरे ॥८०॥

नृपप्रायकमैश्वर्यं व्याधिनाशं रिपुक्षयम् ।
सौख्यं शुभमवाप्नोति रवौ चन्द्रदशान्तरे ॥८१॥

आदौ भावफलं मध्ये राशिस्थानफलं विदुः ।
पाकावसानसमये चाङ्गजं दृष्टिजं फलम् ॥८२॥

चन्द्रमा में चन्द्रमाः— चन्द्रमा की महादशा में जब चन्द्रमा की अन्तर्दशा हो तो विद्या, स्त्री, गीत, वाद्य में प्रीति होती है । पट्ट वस्त्र की प्राप्ति होती है । सत्संग होता है । देह सुख होता है । और राजा से, मंत्री से, सेनापति से सत्कृत होता है । तीर्थयात्रा होती है । पुत्र, मित्र से प्रिय अर्थात् सुख होता है । पृथ्वी का, घोड़े का और गायों का लाभ होता है, बहुत धन वैभव से सुख होता है॥७३।

चन्द्रमा में मंगलः— चन्द्रमा की महादशा में जब मंगल की अंतर्दशा होती है तब विरोध बुद्धि होती है अर्थात् लोगों को अप्रिय करने की तबीयत होती है । स्थान नाश और धन क्षय होता है । रोगी रहता है । मित्र और भ्रातृ वर्ग से क्लेश होता है ॥७४॥

चन्द्रमा में राहुः— जब चन्द्रमा की महादशा में राहु की अंतर्दशा हो तो शत्रुओं और रोग से भय होता है । बन्धुनाश और धनक्षय होता है । क्लेश प्राप्त होता है । मनुष्य को कुछ भी सुख नहीं मिलता ॥७५॥

चन्द्रमा में बृहस्पतिः— जब चन्द्रमा की महादशा में बृहस्पति की अंतर्दशा होती है तो सवारी आदि नाना प्रकार के वैभव प्राप्त होते हैं । वस्त्र, भूषण

ग्रौर सम्पत्ति प्राप्त होती है। यत्न से कार्य सिद्धि होती है अर्थात् उद्योग सफल होते हैं ॥७६॥

चन्द्रमा में शनिः—माता को पीड़ा, मन को दुःख, वात पित्त आदि से पीड़ा होती है। वोलने में शक्ति नहीं रहती ग्रौर शत्रु के संवाद मिलते रहते हैं। शेष में चन्द्रमा की महादशा में शनि की ग्रन्तर्दशा निकृष्ट होती है ॥७७॥

चन्द्रमा में बुधः— चन्द्रमा की महादशा में बुध की ग्रंतर्दशा हो तो मातृ वर्ग से धन प्राप्ति होती है। विद्वानों का ग्राश्रय मिलता है। वस्त्र ग्रौर भूषण की प्राप्ति होती है ॥७८॥

चन्द्रमा में केतुः— चन्द्रमा की महादशा में केतु की ग्रंतर्दशा होती है तो स्त्री को रोग होता है। वन्धुग्रों का नाश हो व काँख में रोग हो या अन्य प्रकार की वीमारी हो। द्रव्य नाश होता है ॥७९॥

चन्द्रमा में शुक्रः— स्त्रियों से धन लाभ होता है। खेती ग्रौर पशु से लाभ होता है। जल में उत्पन्न वस्तुग्रों से किंवा जल मार्ग से धन प्राप्ति होती है। इस प्रकार धन के लिए यह दशा उत्तम है किन्तु माता में रोग होता है ॥८०॥

चन्द्रमा में सूर्यः—जव चन्द्रमा में सूर्य की ग्रन्तर्दशा हो तो राजा से ऐश्वर्य प्राप्ति हो ग्रथवा राज सम्मान किसी श्रेष्ठ वस्तु से धन लाभ हो। व्याधि का नाश हो ग्रौर शत्रुग्रों का क्षय हो। इस ग्रन्तर्दशा का शुभ फल है, सुख मिलता है ॥८१॥

विशेषः— महादशा के प्रारम्भ में चन्द्रमा जिस भाव में वैठा होता है उस भाव का फल मिलता है। दशा के मध्य में राशि जनित शुभाशुभ होता है। ग्रौर दशा के ग्रंत में दृष्टि फल होता है अर्थात् चन्द्रमा यदि शुभ ग्रह वीक्षित हो तो शुभ फल। पाप ग्रह वीक्षित हो तो पाप फल। दशा के अन्त में लग्न का फल भी होता है ॥८२॥

मंगल दशा फल

पाके भूमिसुतस्य शस्त्रहुतभुग्भूवाहनाद्यैर्धनं
भैषज्यान्नृपवञ्चनैश्च विविधैः क्रौर्यैर्धनस्यागमम्।
पित्तासृग्ज्वरपीडनं तु सततं नीचाङ्गनासेवनं
विद्वेषं सुतदारबन्धुगुरुभिर्दुष्टान्नभोगं विदुः ॥८३॥

ग्रब मंगल की महादशा का फल कहते हैं:—

अग्नि से, भूमि और वाहन से धन प्राप्त हो। शस्त्र से लड़े, या व्यापार करे। अग्नि से तात्पर्य यह है कि जहाँ फैक्टरी मिल आदि का काम होता है वहाँ उसका मालिक होने से व नौकरी करने से लाभ हो। भूमि या मकान के कारोबार से लाभ हो या इनकी दलाली का काम करने से लाभ हो।

मंगल भी मार्ग से लाभ देता है जिनमें मुख्य हैं दवा का काम और विविध प्रकार की क्रूरता के कार्य। मंगल की दशा में दूसरे को ठगने से भी लाभ होता है। यह सब फल तब होते हैं जब मंगल अच्छा पड़ा हो।

अब मंगल के खराब फल कहते हैं: —

यह फल तब होते हैं जब मंगल अनिष्ट हो—पित्त, खून, खराबी, शरीर में पीड़ा यह दो मंगल के फल हैं। मंगल की दशा में नीच स्त्री का सेवन करे और अपनी स्त्री से वैर हो। पुत्र, बन्धु, गुरु से भी वैर हो अर्थात् इनसे सद्भाव न रहे। कुत्सित अन्न का भोजन करे ॥८३॥

मंगल की महादशा में अन्तर्दशा

उष्णाधिक्यं सुहृद्द्वेषं मातृपीडां नृपाद्भयम्।
सर्वकार्यार्थनाशं च कुजे कुजदशान्तरे ॥८४॥

नृपचोरादिभीतिञ्च धनधान्यादिनाशनम्।
दुष्टकर्मादिसंसिद्धि राहौ कुजदशान्तरे ॥८५॥

द्विजमूलाद्धनप्राप्ति भूलाभं च निरामयम्।
सम्पूजनं जयं सौख्यं गुरौ कुजदशान्तरे ॥८६॥

बहुदुःखाकरव्याधिमरिचोरनृपैर्भयम्।
धनक्षयमवाप्नोति शना भौमदशान्तरे ॥८७॥

वैश्यवर्गाद्धनप्राप्ति गृहगोधान्यसम्पदः।
शत्रुबाधां मनःक्लेशं बुधे कुजदशान्तरे ॥८८॥

कुक्षिरोगेण सन्तापं बन्धुसोदरपीडनम्।
दुष्टमानवशत्रुत्वं केतौ कुजदशान्तरे ॥८९॥

कलत्रभूषणं वस्त्रं बन्धुवर्गाद्धनागमम्।
स्त्रीजनद्वेष्यतद्गोष्ठीं शुक्रे भामदशान्तरे ॥९०॥

अपवादं गुरुद्वेषं कलहं व्याधिपीडनम् ।
आत्मवर्गान्मनोदुःखं रवौ भौमदशान्तरे ।।६१।।

नानावित्तसुखं वस्त्रमुक्तामणिविभूषणम् ।
निद्रालस्यमथोद्वेगं चन्द्रे भौमदशान्तरे ।।६२।।

भूनन्दनस्य पाकादौ मानहानिर्धनक्षयः ।
मध्ये नृपाग्निचोराद्यैर्भीतिश्चान्ते तथा भवेत् ।।६३।।

मंगल में मंगल :— मंगल की महादशा में जब मंगल की अंतर्दशा हो तो शरीर में विशेष उष्णता हो । मित्र से वैर हो । भाइयों को पीड़ा, राजा से भय और समस्त कार्य का नाश हो । धन व्यय हो ।।८४।।

मंगल में राहु :— जब मंगल की महादशा में राहु की अन्तर्दशा हो तो राजा और चोर से भय हो । धन धान्य का नाश हो, दुष्ट कार्यों में सिद्धि हो, इसका आशय यह हुआ कि जघन्य और कुत्सित कार्यों में सिद्धि हो जैसे चोरी, दूसरे को मारना इत्यादि ।।८५।।

मंगल में बृहस्पति :— मंगल की महादशा में जब बृहस्पति की अंतर्दशा हो तो ब्राह्मण से धन मिले । भूमि का लाभ हो और शरीर आनन्द से रहे । सब लोग उसका आदर करें और सर्वत्र विजयी हों । इस अन्तर्दशा में सुख मिलता है ।।८६।।

मंगल में शनिः— यह अंतर्दशा बहुत दुःखपूर्ण है । नाना प्रकार के कष्ट होते हैं । बहुत दुःखपूर्ण व्याधि होती है । राजा से भय होता है । शत्रुओं और चोरों से भय होता है । धन का नाश होता है ।।८७।।

मंगल में बुध :— मंगल की महादशा में जब बुध की अन्तर्दशा हो तो तब वैश्य वर्ग या व्यापारी वर्ग से धन लाभ होता है । घर मकान की वृद्धि होती है । गौओं का सुख होता है । धन सम्पत्ति के लिए यह अन्तर्दशा अच्छी रहती है किन्तु शत्रु के उपद्रव से मन में क्लेश रहता है । इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि शत्रु बाधा हो और मन क्लेशित रहे ।।८८।।

मंगल में केतुः— मंगल की महादशा में जब केतु की अंतर्दशा रहती है तब काँख में रोग से संताप हो । बन्धुओं और भाइयों को पीड़ा हो । कोई दुष्ट मनुष्य शत्रुता करे ।।८९।।

मंगल में शुक्रः—मंगल की महादशा में जब शुक्र की अंतर्दशा हो तो मनुष्य सुखी रहता है । किन्तु स्त्री जन से वैर होता है । चाहे अपनी से, चाहे दूसरी

स्त्रियों से। नवीन स्त्री मिलती है और आभूषणों की प्राप्ति होती है। उत्तम वस्त्रों का लाभ होता है। बन्धु-वर्ग से लाभ अर्थात् धनागम होता है॥६०॥

मंगल में सूर्यः— मंगल की महादशा में जब सूर्य की अंतर्दशा हो तो तब आत्मवर्ग से मन में दुःख होता है। अपवाद लगते हैं। गुरुजनों से वैर होता है। पित्त की व्याधि पीड़ा होती है। लोगों से कलह होता है॥६१॥

मंगल में चन्द्रमा :—मंगल की महादशा में जब चन्द्र की अंतर्दशा हो तो नाना प्रकार से वित्त का सुख होता है। वस्त्र, मोती, मणि की प्राप्ति होती है। निद्रा आदि अधिक आती है। आलस्य बढ़ जाता है और मन में उद्वेग रहता है ॥९२॥

विशेष :— मंगल की प्रारम्भिक दशा मान में मान-हानि होती है। महादशा का जब मध्य होता है तब धन का नाश होता है तथा अन्त में राजा से भय हो। शत्रुओं से बाधा हो तथा अग्नि से भय हो। इस मंगल के प्रसंग में अग्नि भय कई बार आया है। पहले समय में फूस के मकान होते थे इसलिए आग का बहुत भय रहता था। अब भी देहात में बहुत से घरों में आग लग जाती है। चोरों का भय होता है ।॥९३॥

उच्चस्थितस्य धरणीतनयस्य पाके
नीचांशगस्य मरणं सुतसोदराणाम्।
नीचे तु तुङ्गभवनांशगतस्य दाये
कृष्यादिभूमिधनधान्यसुखं वदन्ति ॥६४॥

यदि मंगल उच्च राशि में हो किन्तु नीच नवांश में हो तो इसका बहुत निकृष्ट फल होता है। पुत्र और सहोदर भाई मर जाते हैं। किन्तु यदि मंगल नीच राशि में हो और उच्च नवांश में हो तो कृषि फलती फूलती है। भूमि का विस्तार होता है। धन धान्य की वृद्धि होती है और सुख प्राप्त होता है॥९४॥

राहु दशा फल

सौख्यादिवित्तस्थितिनाशनं च कलत्रपुत्रादिवियोगदुःखम्।
अतीव रोगं परदेशवासं विवादबुद्धिं कुरुते फणीशः ॥६५॥

राहु अपनी महादशा में सुख का नाश करता है। धन नाश करता है। मनुष्य को पद से गिराता है। स्त्री, पुत्र का वियोग करता है। जिसके कारण दुःख होता है। यह कोई विशेष रोग करता है। मनुष्य को परदेश ले जाता है। राहु की दशा में लोगों से विवाद बढ़ता है॥६५॥

राहु दशा में अन्तर्दशा

जायारोगं विवादं च बुद्धिनाशं धनक्षयम् ।
दूरदेशाटनं दुःखं राहौ राहुदशान्तरे ।।९६।।

व्याधिशत्रुविनाशं च राजप्रीतिं धनागमम् ।
पुत्रलाभं तथोत्साहं गुरौ राहुदशान्तरे ।।९७।।

वातपित्तकृतं रोगं बन्धुमित्रादिपीडनम् ।
दूरदेशनिवासं च शनौ राहुदशान्तरे ।।९८।।

मित्रबन्धुकलत्रादिसंयोगं च धनागमम् ।
राजप्रीतिमवाप्नोति बुधे राहुदशान्तरे ।।९९।।

चौर्यं च मानहानिं च पुत्रनाशं पशुक्षयम् ।
सर्वोपद्रवमाप्नोति केतौ राहुदशान्तरे ।।१००।।

विदेशाद्वाहनप्राप्तिश्छत्रचामरसम्पदः ।
रोगारिबन्धुभीतिः स्यात् शुक्रे राहुदशान्तरे ।।१०१।।

दानधर्मरतिः प्रीतिः सर्वोपद्रवनाशनम् ।
संसाररोगसञ्चारो रवौ राहुदशान्तरे ।।१०२।।

भोगसम्पद्भवेन्नित्यं सस्यवृद्धिर्धनागमः ।
स्वबन्धुजनसंवादश्चन्द्रे राहुदशान्तरे ।।१०३।।

सर्वोपद्रवसंयोगः सर्वकार्येषु मूढता ।
चित्तविस्मृतिदोषः स्यात् कुजे राहुदशान्तरे ।।१०४।।

राहु में राहुः— यदि राहु की महादशा में राहु की अन्तर्दशा हो तो जातक की स्त्री बीमार हो । लोगों से विवाद हो । उसकी बुद्धि का नाश हो । धन का अपव्यय करे । दूर देश की यात्रा हो । बहुत दुःख हो ।।९६।।

राहु में बृहस्पति :— जब राहु की दशा में बृहस्पति की अंतर्दशा हो तो व्याधि अर्थात् रोग और शत्रुओं का नाश हो । राजा की प्रीति जातक पर हो । धन का आगमन हो । पुत्र लाभ हो और मन में सदैव उत्साह रहे ।।९७।।

राहु में शनि :— जब राहु की महादशा में शनि की अंतर्दशा हो तो वात

ग्रौर पित्त के कारण शरीर में नाना प्रकार के रोग हों । बन्धुग्रों ग्रौर मित्रों को पीड़ा हो । दूर देश में निवास करना पड़े ॥९८॥

राहु में बुध :—राहु की महादशा में जब बुध की ग्रंतर्दशा हो तो दोस्तों से समागम होता है । मित्रों से संयोग होता है। अपनी पत्नी से मिलन होता है। धन का आगम होता है । राजा की प्रीति प्राप्त होती है ॥९९॥

राहु में केतु :— जब राहु की महादशा में केतु की ग्रंतर्दशा हो तो घर में चोरी होती है । मान-हानि, पुत्र-नाश ग्रौर धन तथा पशुग्रों का क्षय होता है । नाना प्रकार के उपद्रव होते हैं जिससे जातक व्याकुल रहता है ॥१००॥

राहु में शुक्र:— राहु की महादशा में जब शुक्र की ग्रंतर्दशा होती है तब विदेश से वाहन की प्राप्ति होती है । छत्र, चामर ग्रादि की सम्पत्ति होती है । किन्तु रोग ग्रौर शत्रु का भय होता है । बन्धुग्रों से भय होता है ॥१०१॥

राहु में सूर्य :— जब राहु में सूर्य ग्रंतर्दशा हो तो दान ग्रौर धर्म में रति होती है । सबसे प्रेम रहता है । सब उपद्रवों का नाश होता है किन्तु संक्रामक रोग का संचार होता है । संक्रामक रोग छूत से लगने वाले रोग हैं ॥१०२॥

राहु में चन्द्र :— राहु में जब चन्द्र की ग्रन्तर्दशा होती है तो भोग ग्रौर सम्पत्ति जातक को सदैव प्राप्त होते हैं । खेती की वृद्धि हो । मित्रों से अच्छे संवाद मिलें अर्थात् ग्रालाप हो ॥१०३॥

राहु में मंगल की अन्तर्दशा :— राहु की दशा में जब मंगल की ग्रंतर्दशा हो तो सब प्रकार के उपद्रव होते हैं । सब कार्यों में मूर्खता हो ग्रर्थात् कोई कार्य सीधा नहीं होता ग्रौर चित्त में भूल हो जाती है । ठीक से याद नहीं रहता ॥१०४॥

स्थान वश राहु का फल

कुलीरगोमेषयुतस्य राहोर्द्दशाविपाके धनधान्यलाभम् ।
विद्याविनोदं नृपमाननं च कलत्रभृत्यादिसुखं वदन्ति ॥१०५॥

पाथोनमीनाश्वयुतस्य राहोर्द्दशाविपाके सुतदारलाभम् ।
देशाधिपत्यं नरवाहनं च दशावसाने सकलं विनाशम् ॥१०६॥

मृगपतिवृषकन्याकर्कटस्थस्य राहो-
र्भवति च परिपाके राजतुल्यो नृपो वा ।
गजतुरगचमूपः सर्वजीवोपकारी
बहुधनसुखशीलः पुत्रदारानुरक्तः ॥१०७॥

दशादौ दुःखमाप्नोति दशामध्ये महत्सुखम् ।
दशान्ते फणिनाथस्य पितृनाशं पदच्युतिम् ।।१०८।।

कर्क, वृष और मेष में राहु हो तो उसकी दशा में धन और धान्य का लाभ होता है । विद्या, विनोद होते हैं । राजा से सम्मान मिलता है। स्त्री-पुत्र का सुख मिलता है । ।।१०५।।

कन्या, मीन तथा धनु राशि में राहु हो तो पुत्र और स्त्री का लाभ होता है । देशाधिपत्य प्राप्त होता है । नरवाहन अर्थात् पालकी प्रप्ति हो । अन्त में अर्थात् महादशा के अंत में सब का नाश हो जाता है ।।१०६।।

वृष, कर्क, सिंह और कन्या का राहु हो तो राजा या राजा के सदृश वैभव प्राप्त हो, हाथी, घोड़े का मालिक हो । सेना हो । जातक सब जीवों का उपकार करता है और बहुत धनी होता है । सुखवान और सुशील हो । अपनी स्त्री और पुत्रों में रहे । ।।१०७।।

राहु की दशा जब प्रारम्भ होती है तब दुःख मिलता है । दशा के मध्य में बहुत सुख मिलता है । दशा के अंत में पिता या गुरुजन का नाश होता है और पदच्युति होती है ।।१०८।।

गुरुमहादशा फल

स्थानप्राप्ति वित्तयानाम्बराप्ति
राजस्नेहं चित्तशुद्धि विभूतिम् ।
ज्ञानाचारं पुत्रदारादिलाभं
देवाचार्यः स्वे विपाके करोति ।।१०९।।

वृहस्पति की महादशा में उच्च पद की प्राप्ति, धनप्राप्ति, वाहनों का आश्रित रहना और वस्त्रप्राप्ति होती है । राजा से सम्मान मिलता है। चित्त शुद्धि रहती है। पुत्र व स्त्री का सुख रहता है । जातक सदाचारवान् होता है। ऐश्वर्य और ज्ञान की वृद्धि होती है ।।१०९।।

बृहस्पति की महादशा में अन्तर्दशा

नृपप्रीतिं तथोत्साहं सर्वकार्यार्थसाधनम् ।
विद्याविज्ञानमाप्नोति गुरौ गुरुदशान्तरे ।।११०।।

द्वेषबुद्धिं मनस्तापं पुत्रमूलाद्धनव्ययम् ।
कर्मनाशमवाप्नोति शनौ जीवदशान्तरे ।।१११।।

वैश्यवर्गेण वित्ताप्ति राजस्नेहं सुखावहम्
सत्कर्माचारसिद्धि च बुधे जीवदशान्तरे ॥११२॥

मुक्ताप्रवालभूषाप्तिस्तीर्थयात्रा धनायतिः।
गुरुभूपवशादाप्तिः केतौ जीवदशान्तरे ॥११३॥

वाहनादिधनप्राप्तिः छत्रचामरवैभवम्।
स्त्रीपीडा जनविद्वेषो भृगौ जीवदशान्तरे ॥११४॥

शत्रुनाशं जयं सौख्यं चित्तोत्साहं धनागमम्।
राजप्रसादमारोग्यं रवौ जीवदशान्तरे ॥११५॥

स्त्रीकृतोत्साहमैश्वर्यं राजप्रीतिः सुखावहम्।
दिव्यवस्त्रविभूषाप्ति चन्द्रे जीवदशान्तरे ॥११६॥

कर्मनाशं च सञ्चारं ज्वरतापं महद्भयम्।
धननाशं निरुत्साहं कुजे जीवदशान्तरे ॥११७॥

सर्वक्लेशभयं रोगं सर्वोपद्रवकारणम्।
धनच्छेदमवाप्नोति राहौ जीवदशान्तरे ॥११८॥

नीचांशोपगतः स्वतुङ्गभवने जीवस्य पाके भयं
चोरारातिनृपैः कलत्रतनयद्वेषं करोत्यश्रियम्।
नीचे तुङ्गनवांशको यदि महाराजप्रसादं सुखं
विद्याबुद्धियशोधनादिविभवं देशाधिपत्यं तु वा ॥११९॥

बृहस्पति में बृहस्पति :— बृहस्पति की महादशा में जब बृहस्पति का अन्तर होता है तो नृप की प्रीति होती है। उत्साह रहता है। सब कार्य सफल होते हैं। विद्या की वृद्धि होती है एवं विज्ञान प्राप्त होता है ॥११०॥

बृहस्पति में शनि :— जब बृहस्पति में शनि की अन्तर्दशा आती है तो मन में ताप होता है। द्वेष वृद्धि होती है। पुत्र के कारण धन व्यय होता है। सब कार्यों का नाश होता है अर्थात् असफलता मिलती है ॥१११॥

बृहस्पति में बुध :— जब बृहस्पति में बुध की अन्तर्दशा होती है तब वैश्यवर्ग या व्यापारी वर्ग से धन लाभ होता है। राजा की कृपा होती है। सुखपूर्वक समय बीतता है। मनुष्य सत्कर्म करता है और सदाचारवान् होता है ॥११२॥

बृहस्पति में केतु :— जब बृहस्पति में केतु की अंतर्दशा हो तो मुक्ता, प्रवाल, भूषण की प्राप्ति होती है। मनुष्य तीर्थ यात्रा करता है। गुरु और राजा से धन की प्राप्ति होती है। अर्थागम होता है ॥११३॥

बृहस्पति में शुक्र :— जब बृहस्पति की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा होती है तब वाहन आदि धन की प्राप्ति होती है। छत्र, चामर का वैभव होता है। किन्तु जातक की पत्नी को पीड़ा होती है और जन विद्वेष होता है। ॥११४॥

बृहस्पति में सूर्य :— जब बृहस्पति की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा हो तो शत्रुनाश, जय, सौख्य प्राप्त होते हैं चित्त में सदैव उत्साह रहता है। धनागम होता है। राजा की कृपा होती है और शरीर नीरोग रहता है ॥११५॥

बृहस्पति में चन्द्र :— जब बृहस्पति में चन्द्रमा की अंतर्दशा हो तो स्त्रियों द्वारा चित्त में उत्साह होता है। ऐश्वर्यवान् होता है। राजा की कृपा होती है। सुख की प्राप्ति होती है। दिव्य वस्त्र और भूषण प्राप्त होते हैं ॥११६॥

बृहस्पति में मंगल :— जब बृहस्पति में मंगल का अन्तर हो तो कर्मनाश धूमना (यात्रा) ज्वर ताप और मान भय होता है। धन का नाश होता है और मन में किसी कार्य के लिए उत्साह नहीं रहता ॥११७॥

बृहस्पति में राहु :— जब बृहस्पति में राहु का अन्तर हो तो सब क्लेशों का भय, रोग सब उपद्रवों के कारण उपस्थित होते हैं। धन का नाश होता है ॥११८॥

विशेष :— यदि बृहस्पति उच्च राशि का हो किन्तु नवांश में नीच का हो तो बृहस्पति की दशा में शत्रुओं और चोरों का भय होता है। राज भय रहता है और अशुभ होता है। यदि बृहस्पति नीच राशि का हो किन्तु अपने उच्च नवांश में हो तो महाराजाओं की प्रसन्नता, विद्या, सुख, धन, यश, वैभव, वृद्धि का विस्तार होता है और देशाधिपत्य प्राप्त होता है ॥११९॥

शनि महादशा फल

शनेर्दशायामजगर्दभोष्ट्रवृद्धाङ्गनापक्षिकुधान्यलाभम् ।
श्रेणीपुरग्रामजनाधिकाराद्धनं वदेन्नीचकुलाधिपत्यम् ॥१२०॥

जब शनि की महादशा हो तब निम्नलिखित वस्तुओं का लाभ होता है :—

बकरा, गधा, ऊँट, वृद्ध स्त्री, पक्षी और मोटा अनाज। श्रेणी, पुर, ग्राम जनाधिकारियों से धन लाभ होता है और नीच कुल का आधिपत्य प्राप्त होता है ॥१२०॥

शनि महादशा में अन्तर्दशा फल

क्लेशादिभिर्व्याधिनिपीडनं च
मात्सर्यमानैर्बहुशोकतापम् ।
भूपालचोरैर्धनधान्यनाशं
करोति मन्दः स्वदशापहारे ॥१२१॥

रवितनयदशायां स्वापहारे विरोधं
नरपतिजनकोपं प्रेष्यवृद्धाङ्गनाप्तिम् ।
पशुगणविषभीतिं पुत्रदारादिपीडां
ज्वरपवनकफार्ति शूलरोगं वदन्ति ॥१२२॥

सुखवित्तयशोवृद्धिं सत्कर्माचारसम्पदः ।
कृषिवाणिज्यमाप्नोति बुधे मन्ददशान्तरे ॥१२३॥

वातपित्तकृतं रोगं कलहं नीचदुर्जनैः ।
दुःस्वप्नभयमाप्नोति केतौ मन्ददशान्तरे ॥१२४॥

बन्धुस्नेहं जनप्रीतिं जायावित्तधनायतिम् ।
कृष्यादिसुखमाप्नोति भृगौ मन्ददशान्तरे ॥१२५॥

पुत्रदारविनाशं च नृपचोरादिपीडनम् ।
मनोभयमवाप्नोति भानौ मन्ददशान्तरे ॥१२६॥

गुरुस्त्रीमरणं दुःखं बन्धुद्वेषं धनागमम् ।
वातरोगमवाप्नोति चन्द्रे मन्ददशान्तरे ॥१२७॥

स्थानच्युतिं महारोगं नानाविधमनोभयम् ।
सहोदरसुहृत्पीडां भौमे मन्ददशान्तरे ॥१२८॥

सर्वाङ्गरोगसन्तापं चोरारिनृपपीडनम् ।
धनच्छेदमवाप्नोति राहौ मन्ददशान्तरे ॥१२९॥

देवभूदेवभक्ति च राजप्रीतिं महत्सुखम् ।
स्थानलाभमवाप्नोति गुरौ मन्ददशान्तरे ॥१३०॥

स्वोच्चे नीचनवांशगो रविसुतः कुर्वीत सौख्यं फलं
पाकादौ तु दशावसानसमये कष्टं फलं प्राणिनाम् ।
तुङ्गांशोपगते स्वनीचभवने पाकावसाने सुखं
दायादौ रिपुचोरभीतिमधिकं दुखं विदेशाटनम् ॥१३१॥

शनि में शनि :— जब शनि की महादशा में शनि की अंतर्दशा हो तो बहुत दुःख और नाना व्याधियों से क्लेशित होता है । चित्त में मात्सर्य होता है । अपमान से बहुत शोक और मनस्ताप होता है । राजा और चोर से धन और धान्य का नाश होता है ॥१२१॥

मनुष्य सब का विरोध करता है । राजा का कोप प्राप्त होता है मनुष्य को दूत कार्य करना पड़ता है । वृद्धा स्त्री की प्राप्ति होती है । पशु गण का ह्रास होता है । पुत्र-स्त्री आदि को पीड़ा होती है । जातक ज्वर से पीड़ित रहता है । वात-कफ जनित पीड़ा और शूल रोग होते हैं ॥१२२॥

शनि में बुध :— जब शनि महादशा में बुध की अंतर्दशा होती है तो सुख, वित्त, यश की वृद्धि होती है । मनुष्य सत्कर्म करता है । आचारवान् होता है । सम्पत्ति मिलती है । कृषि में उन्नति होती है और व्यापार करता है ॥१२३॥

शनि में केतु :— जब शनि में केतु का अन्तर हो तो वात और पित्त के रोग हों, नीच और दुर्जनों के साथ कलह हो, खराब सपने आयें, इनसे भय हो ॥१२४॥

शनि में शुक्र :— जब शनि में शुक्र की अंतर्दशा हो तो बन्धु लोग स्नेह करें । जन प्रीति प्राप्त हो । विवाह हो या स्त्री से सुख मिले । धन का आगम हो । मन प्रसन्न रहे । नाना प्रकार के सुख उपलब्ध हों ॥१२५॥

शनि में सूर्य :— जब शनि की महादशा में सूर्य की अंतर्दशा हो तो स्त्री और पुत्र का नाश हो, नृप और चोर से पीड़ा हो, सदैव भय लगा रहे ॥१२६॥

शनि में चन्द्र :— जब शनि में चन्द्रमा का अन्तर हो तो गुरु या स्त्री की मृत्यु हो, दुःख रहे, बन्धु द्वेष करे, वायु जनित रोग हो किन्तु धन का आगम हो ॥१२७॥

शनि में मंगल :— जब शनि में मंगल का अन्तर हो तो स्थान च्युति हो, महारोग की सम्भावना हो । नाना प्रकार से मन में भय रहे । सहोदर और मित्रों को पीड़ा हो ॥१२८॥

शनि में राहु :— जब शनि की महादशा में राहु की अंतर्दशा हो तो सब अंगों में रोग हो, सन्ताप हो, राजा, चोर और शत्रु से पीड़ा हो और धन का क्षय हो ।।१२९।।

शनि में बृहस्पति :— जब शनि में बृहस्पति का अन्तर हो तो देव और ब्राह्मणों की भक्ति हो, राजा की प्रीति हो और महान सुख मिले । स्थान का लाभ हो और अच्छा पद मिले ।।१३०।।

विशेष :— यदि शनि अपनी उच्च राशि में हो किन्तु नीच नवांश में हो तो दशा के आदि में सुख करता है । दशा के अंत में प्राणियों को कष्ट देता है । यदि शनि अपनी नीच राशि में किन्तु उच्च नवांश में हो तो दशा के अंत में सुख–फल देता है और दशा के प्रारम्भ में शत्रु, चोर से भय, दुःख और परदेश की यात्रा कराता है ।।१३१।।

बुध दशा फल

स्वकीयदाये गुरुबन्धुमित्रै रर्थार्जनं कीर्तिसुखं करोति ।
दौत्यं च सत्कर्महिरण्यपुण्यैर्धनार्याति वातरुजं कुमारः ।।१३२।।

बुध अपने दशाकाल में निम्नलिखित वस्तुओं से लाभ कराता है :—

गुरु, मित्र, बन्धु—इन सबसे धन प्राप्ति होती है । मनुष्य की कीर्ति बढ़ती है और सुखपूर्वक समय व्यतीत करता है। इस महादशा में मनुष्य दूत का कार्य करता है। (अगर अच्छी जन्मकुण्डली हुई तो विदेश मंत्रालय में राजदूत होता है । यदि साधारण कुण्डली हुई तो दो मनुष्यों के बीच का कार्य करता है। यथा कमीशन ऐजेन्ट) इस दशा में सत्कर्म होते हैं। सोने के रोजगार से लाभ होता है । परन्तु वात रोग से पीड़ित होता है ।।१३२।।

बुध महादशा में अन्तर्दशा फल

विचित्रगृहवित्ताप्ति राजप्रीतिं महत्सुखम् ।
सर्वकार्यार्थसंसिद्धि बुधे सौम्यदशान्तरे ।।१३३।।

बन्धुपीडां मनस्तापं सौख्यहानिमरेर्भयम् ।
कार्यनाशमवाप्नोति केतौ सौम्यदशान्तरे ।।१३४।।

गुरुदेवाग्निविप्रेषु दानं धर्मप्रियं तपः ।
धनवस्त्रविभूषाप्ति शुक्रे सौम्यदशान्तरे ।।१३५।।

वस्त्रभूषणवित्ताप्ति राजप्रीतिं महत्सुखम् ।
धर्मश्रवणमाप्नोति रवौ बुधदशान्तरे ।।१३६।।
रोगारातिजनद्वेषं सर्वकार्यार्थनाशनम् ।
चतुष्पाद्भयमाप्नोति चन्द्रे सौम्यदशान्तरे ।।१३७।।
रोगारिभयनाशं च पुण्यकर्मफलं यशः ।
राजप्रीतिमवाप्नोति कुजे सौम्यदशान्तरे ।।१३८।।
मित्रबन्धुधनप्राप्ति सुखविद्याविभूषणम् ।
राजप्रीतिमवाप्नोति राहौ सौम्यदशान्तरे ।।१३९।।
इष्टबन्धुगुरुद्वेषं धनलाभं सुतायतिम् ।
रोगादिभयमाप्नोति गुरौ सौम्यदशान्तरे ।।१४०।।
धर्मसत्कर्मवित्ताप्ति सुखमल्पजनाधिपैः ।
कृष्यादिनाशमाप्नोति शनौ सौम्यदशान्तरे ।।१४१।।
उच्चराशिगतः सौम्यो नीचांशकसमन्वितः ।
करोति कर्मवैकल्यं निजदाये च वर्धनम् ।।१४२।।
नीचस्थानगतश्चान्द्रिस्तुङ्गांशकसमन्वितः ।
पाकादौ विफलं सर्वं शुभमन्ते प्रयच्छति ।।१४३।।

बुध में बुध :— बुध महादशा में जब बुध की तर्दशा हो तो सुन्दर घर प्राप्त होता है। मूल में विचित्र लिखा है जिसका अर्थ हमने सुन्दर किया है। धन की प्राप्ति होती है। सब कार्य सफल होते हैं अर्थात् जो उद्योग करता है वे पूर्ण होते हैं ।।१३३।।

बुध में केतु :— जब बुध की महादशा में केतु की अंतर्दशा होती है तो बन्धु पीड़ा, मनस्ताप और सुख की हानि होती है। सब कार्य जो करता है वह नाश हो जाते हैं अर्थात् कार्यों में असफलता मिलती है ।।१३४।।

बुध में शुक्र :— जब बुध की महादशा में शुक्र की अंतर्दशा होती है तो मनुष्य ब्राह्मणों को द्रव्य तथा अन्न पदार्थ देता है। गुरुओं की भेंट करता है। देवताओं को भेंट चढ़ाता है। अग्नि में भेंट चढ़ाता है अर्थात् हवन करता है। दान करता है। धार्मिक कार्य करता है। तपस्या करता है। जातक को स्वयं वस्त्र और भूषण की प्राप्ति होती है। बुध में शुक्र की अंतर्दशा का फल बहुत अच्छा है ।।१३५।।

बुध में सूर्य :— जब बुध की महादशा में सूर्य की अंतर्दशा होती है तो वस्त्र, भूषण और धन प्राप्ति होती है। राजा की कृपा होती है। महान् सुख होता है। धार्मिक कथा, पुराण इत्यादि सुनने का मौका होता है ॥१३६॥

बुध में चन्द्र :— जब बुध की महादशा में चन्द्र की अन्तर्दशा होती है तो सब लोग द्वेष करते हैं। रोग होते हैं। शत्रुओं से पीड़ा होती है। धन नाश होता है। सब कार्यों में असफलता मिलती है। चौपाये से भय होता है अर्थात् चोट लगने का भय होता है ॥१३७॥

बुध में मंगल :— जब बुध की अंतर्दशा में मंगल की अंतर्दशा होती है तब रोग और शत्रु से भय का नाश होता है अर्थात् रोग दूर हो जाते हैं और शत्रुओं से भय नहीं रहता, पुण्य कार्य का फल मिलता है। यश प्राप्त होता है। राजा की प्रीति होती है ॥१३८॥

बुध में राहु :— जब बुध की महादशा में राहु की अन्तर्दशा होती है तो मित्रों की प्राप्ति होती है। बन्धुओं से सुख मिलता है। धन मिलता है। मित्र और बन्धुओं से धन की प्राप्ति होती है। सुख, विद्या और भूषण प्राप्त होते हैं। राजा की प्रीति होती है ॥१३९॥

बुध में बृहस्पति :— जब बुध की महादशा में बृहस्पति की अन्तर्दशा होती है तो मित्र लोगों से द्वेष होता है। गुरुजनों और बन्धुओं से वैमनस्य होता है। किन्तु धन लाभ कराता है और पुत्र पैदा होता है या पुत्रों से हर्ष हो। रोगादि से भय होता है ॥१४०॥

बुध में शनि :— जब बुध की महादशा में शनि की अन्तर्दशा होती है तब धर्म और सत्कर्म करता है। धन की प्राप्ति होती है। छोटे आदमी के नेताओं से सुख मिलता है। खेती-बाड़ी का नुकसान होता है ॥१४१॥

विशेष :— यदि बुध अपनी उच्च राशि में हो किन्तु नीच नवांश में हो तो कर्म में विकलता करता है अर्थात् कार्य सफल नहीं होते तथा उसके कार्य अधूरे रह जाते हैं ॥१४२॥

अगर बुध नीच राशि का हो किन्तु अपने उच्च नवांश का हो तो दशा के आरम्भ में सब काम विफल होते हैं और दशा के अंत में सब कार्यों में शुभ होता है।

यदि बुध नीच राशि में हो किन्तु अपने उच्च नवांश में हो तो दशा के प्रारम्भ में सब कार्य विफल हो जाते हैं किन्तु दशा के अन्त में शुभ फल देता है ॥१४३॥

केतु दशा फल

दीनो नरो भवति बुद्धिविवेकनष्टो
नानाऽऽमयाकुलविवर्द्धितदेहतापः ।
पापादिवृद्धिरतिकष्टचरित्रयुक्तः
किञ्चित्सुखी च शिखिनः परिपाककाले ॥१४४॥

अब केतु का महादशाफल कहते हैं :—

जब केतु की महादशा होती है तो मनुष्य की बुद्धि और विवेक नष्ट हो जाते हैं और वह दीन हो जाता है । नाना प्रकार के रोगों से पीड़ित होने से उसके शरीर में ताप बढ़ता है । पाप की वृद्धि होती है अर्थात् पाप कर्म करता है । अति कष्ट होता है । उसका चरित्र जघन्य होता है । सुख थोड़ी मात्रा में प्राप्त होता है ॥१४४॥

केतु महादशा में अन्तर्दशा फल

कलत्रपुत्रमरणं सुखवित्तविनाशनम् ।
रिपुभीतिमवाप्नोति केतौ केतुदशान्तरे ॥१४५॥

स्त्रीपुत्ररोगकलहं बन्धुमित्रादिनाशनम् ।
ज्वरातिसारमाप्नोति शुक्रे केतुदशान्तरे ॥१४६॥

मनोभङ्गं शरीरार्ति विदेशगमनं भयम् ।
सर्वकार्यविरोधं च रवौ केतुदशान्तरे ॥१४७॥

दारपुत्रजनालस्यं धनधान्यविनाशनम् ।
मनस्तापमवाप्नोति चन्द्रे केतुदशान्तरे ॥१४८॥

पुत्रदारानुजद्वेषं रोगारिनृपपीडनम् ।
बन्धुनाशमवाप्नोति कुजे केतुदशान्तरे ॥१४९॥

राजचोरभयं दुःखं सर्वकार्यविनाशनम् ।
दुष्टमानवसंवादं राहौ केतुदशान्तरे ॥१५०॥

देवद्विजगुरुप्रीतिं राजस्नेहं निरामयम् ।
भूपुत्रलाभमाप्नोति गुरौ केतुदशान्तरे ॥१५१॥

मनोभयं मनस्तापं स्वबन्धुजनविग्रहम् ।
देशत्यागमवाप्नोति शनौ केतुदशान्तरे ॥१५२॥

बन्धुमित्रादिसंयोगं पुत्रदारधनागमम् ।
विद्यासुखमवाप्नोति बुधे केतुदशान्तरे ॥१५३॥

शुभग्रहयुतः केतुः स्वदशायां सुखप्रदः ।
यदि शोभनसन्दृष्टः करोति विपुलं धनम् ॥१५४॥

सपापः कुरुते केतुः स्वपाके दुष्टमानवैः ।
भीतिं कृत्रिमरोगाद्यैर्व्यसनं धननाशनम् ॥१५५॥

दशादौ गुरुबन्धवार्ति दशामध्ये धनायतिम् ।
दशान्ते सुखमाप्नोति केतोर्द्वायफलं त्रिधा ॥१५६॥

केतु में केतु :— जब केतु की महादशा में केतु की अन्तर्दशा होती है तो स्त्री और पुत्र का मरण होता है। सुख और धन का नाश होता है । शत्रु का भय सदैव रहता है ॥१४५॥

केतु में शुक्र :— जब केतु की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा होती है तो अपनी स्त्री और पुत्र को रोग होता है। जातक कलह करता है। बन्धुओं और मित्रों का नाश होता है। ज्वर और अतिसार रोग होते हैं ॥१४६॥

केतु में सूर्य : जब केतु की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा हो तो मनोभंग होता है अर्थात् चित्त वृत्ति में धैर्य नहीं रहता और मन उदास रहता है। शरीर में कष्ट होता है अर्थात् रोग होते हैं। विदेश गमन होता है। चित्त में भय होता है। जातक जो भी कार्य करता है उसमें विरोध होता है ॥१४७॥

केतु में चन्द्र :— जब केतु की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा होती है तो स्त्री और पुत्र जनों में आलस्य होता है। धन नाश होता है। धान्य नष्ट हो जाता है। मन में सन्ताप बढ़ता है ॥१४८॥

केतु में मंगल :— जब केतु की महादशा में मंगल की अंतर्दशा होती है तो पुत्र से, स्त्री से और छोटे भाई से वैर होता है। रोग, शत्रु और राजा से पीड़ा होती है। बन्धु नाश होता है। इस प्रकार केतु की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा कष्टप्रद है ॥१४९॥

केतु में राहु :— जब केतु की महादशा में राहु की अंतर्दशा होती है तो राजा और चोर से भय होता है। दुःख मिलते हैं। सब कार्यों का नाश होता है। दुष्ट मनुष्यों से पाला पड़ता है अर्थात् झगड़ा होता है ॥१५०॥

केतु में बृहस्पति :— जब केतु महादशा में बृहस्पति की अंतर्दशा होती है तो देवताओं, ब्राह्मणों और गुरुजनों में प्रीति बढ़ती है। राजा की कृपा

होती है। शरीर नीरोग रहता है। भूमि की प्राप्ति होती है। पुत्र लाभ होता है ॥१५१॥

केतु में शनि :— जब केतु की महादशा में शनि की अन्तर्दशा होती है तब मन दुःखी रहता है और सदैव भय बना रहता है। मनुष्य को अपना देश छोड़ना पड़ता है ॥१५२॥

केतु में बुध :— जब केतु की महादशा में बुध की अन्तर्दशा होती है तब बन्धुओं और मित्रों से संयोग होता है। मनुष्य का विवाह हो। विवाहित हो तो स्त्री से सुख मिले। पुत्र लाभ हो या पुत्र से सुख हो। विद्या की प्राप्ति हो। इस प्रकार केतु में बुध अच्छा जाता है ॥१५३॥

विशेष :— यदि केतु शुभ-ग्रह हो तो बहुत सुख करता है। यदि शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो बहुत धन का आगम करता है ॥१५४॥

यदि केतु पाप ग्रह के सहित हो तो अपनी महादशा में दुष्ट मनुष्यों से भय उत्पन्न करता है, धन नाश करता है और कृत्रिम रोगों से शरीर को पीड़ा होती है। इनसे व्यसन होता है। व्यसन कहते हैं, दुष्ट आदत को ॥१५५॥

केतु की दशा को तीन भागों में बाँटा गया है। प्रारम्भ के तृतीयांश में गुरुजनों और बन्धुओं को पीड़ा करता है। मध्य में धन की प्राप्ति होती है। अन्त के तृतीयांश में जातक को सुख मिलता है ॥१५६॥

शुक्र दशा फल

स्त्रीपुत्रवित्ताप्तिमतीव सौख्यं
सुगन्धमाल्याम्बरभूषणाप्तिम् ।
यानादिभाग्यं नरपालतुल्यं
यशः स्वपाके भृगुजः करोति ॥१५७॥

जब शुक्र की महादशा होती है तो स्त्री पुत्र की प्राप्ति होती है। यदि ये पहले से हो तो उनसे सुख मिलता है। अति सुख प्राप्त होता है। सुगन्धित, माल्य, आभूषण, सुन्दर वस्त्र प्राप्त होते हैं। सवारी का सुख होता है। भाग्य बढ़ता है। उसके यश का विस्तार बढ़ता है और राजा के सदृश वैभव से रहता है ॥१५७॥

शुक्र महादशा में अन्तर्दशा फल

शय्यास्त्रीधनवस्त्राप्ति धर्मादिसुखसम्पदः ।
रिपुनाशं यशोलाभं शुक्रे शुक्रदशान्तरे ॥१५८॥

मूर्धोदराक्षिरोगं च कृषिगोवित्तनाशनम् ।
नृपक्रोधमवाप्नोति रवौ शुक्रदशान्तरे ॥१५९॥

शीर्षोष्णरोगसन्तापं कामादिरिपुपीडनम् ।
किञ्चित् सुखमवाप्नोति चन्द्रे शुक्रदशान्तरे ॥१६०॥

पित्तासृगक्षिरोगं च चित्तोत्साहं धनागमम् ।
दारभूलाभमाप्नोति कुजे शुक्रदशान्तरे ॥१६१॥

नीलवस्तुधनप्राप्तिं बन्धुद्वेषं सुहृद्भयम् ।
अग्निबाधामवाप्नोति राहौ शुक्रदशान्तरे ॥१६२॥

धनवस्त्रविभूषाप्तिं धर्माचारं सुखावहम् ।
स्त्रीसुतार्तिं च वैषम्यं गुरौ शुक्रदशान्तरे ॥१६३॥

वृद्धस्त्रीजनसम्भोगं गृहक्षेत्रधनागमम् ।
शत्रुनाशमवाप्नोति मन्दे शुक्रदशान्तरे ॥१६४॥

सुतमित्रसुखार्थाप्तिं नृपप्रीतिं महत्सुखम् ।
शुभमारोग्यमाप्नोति बुधे शुक्रदशान्तरे ॥१६५॥

कलहं बन्धुनाशं च शत्रुपीडां मनोभयम् ।
धनच्छेदमवाप्नोति केतौ शुक्रदशान्तरे ॥१६६॥

उच्चराशि गतः शुक्रो नीचांशकसमन्वितः ।
स्वपाके धननाशं च कुर्वीत पदविच्युतिम् ॥१६७॥

भार्गवो नीचराशिस्थः स्वोच्चांशकसमन्वितः ।
स्वदाये कृषिवाणिज्यं धनलाभं प्रयच्छति ॥१६८॥

शुक्र में शुक्र :—जब शुक्र की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा होती है तो मनुष्य को शय्या, स्त्री, धन, वस्त्र की प्राप्ति होती है । धनागम होता है । धर्म आदि सुख सम्पत्ति होती है । शत्रुओं का नाश होता है । यश और लाभ का विस्तार होता है ॥१५८॥

शुक्र में सूर्य :—जब शुक्र की महादशा में सूर्य की अंतर्दशा होती है तो सिर में, पेट में और आंखों में रोग होता है । खेती-बाड़ी में नुकसान होता है । जातक पर राजा का कोप होता है ॥१५९॥

शुक्र में चन्द्रमा :—जब शुक्र की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा होती है तो सिर में गर्मी का रोग होता है। सन्ताप होता है। काम चेष्टा बढ़ जाती है। शत्रुओं से पीड़ा बढ़ जाती है और थोड़ा सुख प्राप्त होता है ॥१६०॥

शुक्र में मंगल :—जब शुक्र की महादशा में मंगल की अंतर्दशा होती है तो पित्त के कारण खूनखराबी होकर आंखों में रोग होता है। चित्त में उत्साह रहता है। धनागम होता है। स्त्री, भूमि का लाभ होता है ॥१६१॥

शुक्र में राहु :—जब शुक्र की महादशा में राहु की अन्तर्दशा होती है तो नीली वस्तु की प्राप्ति होती है। धनागम होता है। बन्धुओं से द्वेष बढ़ता है। मित्रों से भय रहता है। अग्नि बाधा होती है अर्थात् मकान आदि जल जाता है ॥१६२॥

शुक्र में बृहस्पति :—जब शुक्र की महादशा में बृहस्पति की अंतर्दशा होती है तो धन, वस्त्र और भूषण प्राप्त होते हैं। मनुष्य का आचरण धार्मिक होता है। सुख प्राप्त होता है। किन्तु स्त्री और पुत्र को कष्ट होता है। लोगों से अनबन होती है ॥१६३॥

शुक्र में शनि :—जब शुक्र की महादशा में शनि की अन्तर्दशा होती है तो जातक अपनी उम्र से अधिक अर्थात् बड़ी स्त्री से संभोग करता है। घर और खेतों में वृद्धि होती है। शत्रु नाश होता है ॥१६४॥

शुक्र में बुध :—जब शुक्र की महादशा में बुध की अन्तर्दशा होती है तो सुत, मित्र और सुख की प्राप्ति होती है। धनागम होता है। राजा की कृपा होती है। बहुत सुख मिलता है। शरीर नीरोग रहता है और सभी काम शुभ होते हैं ॥१६५॥

शुक्र में केतु :—जब शुक्र की महादशा में केतु की अन्तर्दशा होती है तो कलह और बन्धुनाश होता है। शत्रु से पीड़ा होती है। मन में भय रहता है। धननाश होता है ॥१६६॥

विशेष :—यदि शुक्र उच्च राशि में हो किन्तु नवांश में नीच हो तो उसकी दशा में धननाश और पदच्युति होती है ॥१६७॥

यदि शुक्र नीच राशि में हो किन्तु अपने उच्च नवांश में हो तो उसकी दशा में खेती-बाड़ी बढ़ती है। वाणिज्य का विस्तार होता है और धन लाभ होता है ॥१६८॥

दशाफल में विशेषता

सम्यग्बलिनः स्वतुङ्गभागे सम्पूर्णा बलवर्जितस्य रिक्ता।
नीचांशगतस्य शत्रुभागे ज्ञेयाऽनिष्टफला दशा प्रसूतौ ॥१६९॥

तत्तद्भावार्थकामेशदशास्वन्तर्दशासु च।
तत्तद्भावविनाशः स्यात् तद्युतेक्षितकारकैः ॥१७०॥

त्रिकोणधनलाभस्था बलिनो यदि शोभनाः।
स्वदशान्तर्दशाकाले कुर्वन्ति विपुलं सुखम् ॥१७१॥

अष्टादशाध्यायिनि सर्वहोरासमुद्धृते जातकपारिजाते।
राशिस्वरूपादि दशाफलान्तं प्रोक्तं मया भानुमुखप्रसादात् ॥१७२॥

इति श्रीनवग्रहकृपया वैद्यनाथविरचिते जातकपारिजातेऽष्टादशोऽध्यायः

ग्रह जो अच्छी प्रकार से बली होते हैं और अपने उच्च अंश में होते हैं उनकी दशा सम्पूर्ण कहलाती है। ऐसी दशायें पूर्ण शुभ होती हैं और सुख समृद्धि करती हैं। जो ग्रहबलहीन हों वह रिक्त कहलाती हैं। उनमें धनहानि और रोगभय होता है। जो नीच राशि या नीच अंश में हो और शत्रु घर में हो तो उसकी दशा अतीव कष्टकारक अनिष्ट फल देने वाली होती है ॥१६९॥

किसी भी भाव से यदि उस भाव से गिनने पर दूसरे और सातवें भाव के मालिक की दशा हो तो उस भाव का विनाश होता है। उस उस भाव से द्वितीय और सप्तम के अधिपति यदि किसी ग्रह के साथ हों या उनको देखें तो उनकी दशा में भाव की हानि होती है। विशेपकर यदि उस भाव के कारक को उस भाव से द्वितीय और सप्तम के अधिपति देखें या उस कारक के साथ हों तो विशेष हानि समझना। इसका हेतु यह है कि विचारणीय भाव से जिन बातों का विचार किया जाता है उनके लिए उस भाव से द्वितीय और सप्तम मारक स्थान हैं। जैसे द्वितीय भाव या धन भाव का विचार करना है तो धन भाव से द्वितीय अर्थात् तृतीय भाव की दशा अच्छी नहीं होगी। इसी प्रकार द्वितीय भाव का विचार करना है तो धन भाव से सप्तम अर्थात् अष्टम भाव के मालिक की दशा अच्छी नहीं होगी। अगर छठे भाव का विचार करना हो तो छठे से द्वितीय, सप्तम भाव के मालिक की दशा और छठे से सप्तम अर्थात् बारहवें भाव के मालिक की दशा अच्छी नहीं होती।

इस श्लोक का यह भी अर्थ हो सकता है कि उस उस भाव से धनेश और सप्तमेश की दशा और अन्तर्दशा में उससे युक्त दृष्ट कारकों से उस उस भाव का नाश होता है ॥१७०॥

त्रिकोण धन और लाभ स्थान में स्थित शुभग्रह यदि बली हों तो अपनी दशा अन्तर्दशा में बहुत धन देते हैं और सुख प्रदान करते हैं ॥१७१॥

होरा शास्त्र से निचोड़ लेकर इस प्रकार इस जातक परिजात में मैंने १८ अध्यायों में राशि स्वरूप से प्रारम्भ कर दशा फल तक सब विषय वर्णन किया है । यह सूर्य आदि नवग्रह की कृपा से पूर्ण हुआ है ।।१७२।।

इस प्रकार नवग्रहों की कृपा से वैद्यनाथ विरचित जातकपारिजात का अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

ग्रन्थोपसंहार

शाखाभिरष्टादशसंख्यकाभि-
रध्यायरूपाभिरतिप्रकाशः ।
ज्योतिर्मयः सर्वफलप्रधानः
सङ्कीर्तितो जातकपारिजातः ।। १ ।।

उक्तं राशिगुणालयं ग्रहगतिस्थानस्वभावाकृति-
राधानादिसमस्तजीवजननं बालाद्यनिष्टाकरम् ।
आयुर्ज्जातकभङ्गयोगजविधिः श्रीराजयोगादिजो
द्वित्र्यादिग्रहयोगजः शुभकरो मान्द्यब्दजं च क्रमात् ।। २ ।।

पश्चादष्टकवर्गबिन्दुगणितं होराधनस्थानजं
दुश्चिक्यावनिभावजं सुतरिपुस्थानप्रयुक्तं फलम् ।
कन्दर्पाष्टमधर्मराशिजनितं व्यापारलाभान्त्यजं
नारीजातकलक्षणं निगदितं चक्रं दशान्तर्दशा ।। ३ ।।

श्रीविद्याधिकवेङ्कटाद्रितनयः श्रीवैद्यनाथः सुधी-
रादित्यादिसमस्तखेटकृपया विद्वज्जनप्रीतये ।
होरासिन्धुसमुद्धृतामृतमयीमष्टादशाध्यायिनीं
चक्रे जातकपारिजातसरणिं गीतोत्सुकश्लोकिनीम् ।। ४ ।।

।। समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।।

जातक पारिजात फलित ज्योतिष का ग्रन्थ है। यदि यह वृक्ष के तुल्य है तो इसकी १८ शाखाएँ अध्यायों की तरह हैं अर्थात् इसमें १८ शाखाएँ है जिनके नाम निम्नलिखित हैं। (१) राशिशील जिसमें राशियों के समस्त प्रकृति और स्वभाव दिये हैं। (२) ग्रह स्वरूप गुण अध्याय। इसमें ग्रहों के स्वरूप और गुण

विस्तार से समझाये हैं। (३) वयोनि-जन्माध्याय। इसमें पशु पक्षी आदि की उत्पत्ति समझायी गई है। (४) बालारिष्टाध्याय जिसमें बालकों के अरिष्ट का वर्णन है। (५) आयुर्दायाध्याय जिसमें आयु का अनेक प्रकार से विचार किया गया है। (६) जातकभंगाध्याय जिसमें रेका सोम आदि राजयोग भंग के योग दिये गये हैं। (७) राजयोगाध्याय जिसमें नाना प्रकार के राजयोग दिये हैं। (८) ग्रहाश्रयफलाध्याय। जिसमें ग्रहों के राशि में बैठने और भाव में बैठने का फल दिया गया है। (९) मान्द्यब्दादिफलानि ,जिसमें मान्दि का फल और अब्द फल अर्थात् किस वर्ष में जातक पैदा हुआ है उसका फल विस्तारपूर्वक बताया है। (१०) अष्टक वर्गाध्याय। जिसमें अष्टक वर्ग के विषय में विस्तृत व्याख्या की गई है। (११) लग्न द्वितीय भावफल। इसमें लग्न भाव की बाबत और द्वितीय भाव की बाबत विस्तृत विवेचना की गई है। (१२) तृतीय चतुर्थ भावफल। इसमें तृतीय और चतुर्थ भाव की व्याख्या की गई है। (१३) पञ्चमषष्ठ भावफल। पाँचवे भाव से किन बातों का विचार किया जाता है और छठे भाव से किन बातों का विचार किया गया है इन बातों को समझाया गया है। (१४) सप्तमाष्टमनवम भावफल। इसमें कलत्र, आयु और भाग्य के विषय में विस्तृत फलादेश है। (१५) कर्मलाभव्ययभावाध्याय। कर्म भाव अर्थात् दशम भाव से क्या क्या विचार करना और कैसे विचार करना, ग्यारहवें भाव से क्या देखना, व्ययभाव से किन बातों का विचार करना — यह सब विस्तारपूर्वक समझाया गया है। (१६) स्त्रीजातकाध्याय। इसमें स्त्रियों की जन्मकुण्डली का विशेष विचार है। (१७) कालचक्रदशाध्याय। इसमें कालचक्र दशा का गणित और फलित समझाया गया है। (१८) महादशा अन्तर्दशाध्याय। इसमें ग्रहों की महादशा और अन्तर्दशा का विस्तृत विवेचन है।

विद्वान् श्री वेङ्कटाद्रि श्री के पुत्र वैद्यनाथ ने यह जातकपारिजात नवग्रह की कृपा से सम्पूर्ण कर दिया। विद्वानों को इसमें अनुराग होगा यह मैं (अर्थात् वैद्यनाथ) आशा करता हूँ। होरा सिंधु को मथकर यह मैंने अमृत निकाला है जिसमें १८ अध्याय हैं। यह ज्योतिष का फल कथन करने के लिए बहुत उत्तम ग्रन्थ है अर्थात् फलादेश का यह उत्तम ग्रन्थ है।

ग्रहों की महादशा में अन्तर्दशा

सूर्य की महादशा में अन्तर्दशा

योग

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मास	३	६	४	१०	९	११	१०	४	०
दिन	१८	०	६	२४	१८	१२	६	६	०

चन्द्र की महादशा में अन्तर्दशा

ग्रह	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु	के.	शु.	सू.
वर्ष	०	०	१	१	१	१	०	१	०
मास	१०	७	६	४	७	५	७	८	६
दिन	०	०	०	०	०	०	०	०	०

मंगल की महादशा में अन्तर्दशा

ग्रह	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	०	०
मास	४	०	११	१	११	४	२	४	७
दिन	२७	१८	६	९	२७	२७	०	६	०

राहु की महादशा में अन्तर्दशा

ग्रह	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.
वर्ष	२	२	२	२	१	३	०	१	१
मास	८	४	१०	६	०	०	१०	६	०
दिन	१२	२४	६	१८	१८	०	२४	०	१८

बृहस्पति (गुरु) की महादशा में अन्तर्दशा

ग्रह	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं	रा.
वर्ष	२	२	२	०	२	०	१	०	२
मास	१	६	३	११	८	९	४	११	४
दिन	१८	१२	६	६	०	१८	०	६	२४

शनि की महादशा में अन्तर्दशा

ग्रह	श.	बु.	के.	श.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.
वर्ष	३	२	१	३	०	१	१	२	२
मास	०	८	१	२	११	७	१	१०	६
दिन	३	९	९	०	१२	०	९	६	१२

बुध की महादशा में अन्तर्दशा

ग्रह	बु.	के.	श.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.
वर्ष	२	०	२	०	१	०	२	२	२
मास	४	११	१०	१०	५	११	६	३	८
दिन	२७	२७	०	६	०	२७	१८	६	९

केतु की महादशा में अन्तर्दशा

ग्रह	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.
वर्ष	०	१	०	०	०	१	०	१	०
मास	४	२	४	७	४	०	११	१	११
दिन	२७	०	६	०	२७	१८	६	९	२७

शुक्र की महादशा में अन्तर्दशा

ग्रह	शु.	सू.	चं	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.
वर्ष	३	१	१	१	३	२	३	२	१
मास	४	०	८	२	०	८	२	१०	२
दिन	०	०	०	०	०	०	०	०	०

सूर्य की महादशा

—सूर्य की अन्तर्दशा में सूर्यादि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	५	९	६	१६	१४	१७	१५	६	१८
घटी	२४	०	१८	१२	२४	६	१८	१८	०

—चन्द्र की अन्तर्दशा में चन्द्रादि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	चं.	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु	सू.
मास	०	०	०	०	०	०	०	१	०
दिन	१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०	९
घटी	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०

—मंगल की अन्तर्दशा में मंगलादि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	७	१८	१६	१९	१७	७	२१	१६	१०
घटी	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	१८	३०

—राहु की अन्तर्दशा में राहु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं	मं.
मास	१	१	१	१	०	१	०	०	०
दिन	१८	१३	२१	१५	१८	२४	१६	२७	१८
घटी	३६	१२	१८	५४	५४	०	१२	०	५४

—गुरु की अन्तर्दशा में गुरु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.
मास	१	१	१	०	१	०	०	०	१
दिन	८	१५	१०	१६	१८	१४	२४	१६	१३
घटी	२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२

—शनि की अन्तर्दशा में शनि आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.
मास	१	१	०	१	०	०	०	१	१
दिन	२४	१८	१९	२७	१७	२८	१९	२१	१५
घटी	९	२७	५७	०	६	३०	५७	१८	३६

—बुध की अन्तर्दशा में बुध आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.
मास	१	०	१	०	०	०	१	१	१
दिन	१३	१७	२१	१५	२५	१७	१५	१०	१८
घटी	२१	५१	०	१८	३०	५१	५४	४८	५७

—केतु की अन्तर्दशा में केतु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.
मास	०	०	०	१	०	०	०	०	०
दिन	७	२१	६	१०	७	१८	१६	१९	१७
घटी	२१	०	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१

—शुक्र की अन्तर्दशा में शुक्र आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.
मास	२	०	१	०	१	१	१	१	०
दिन	०	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

चन्द्र की महादशा में :

—चन्द्र की अन्तर्दशा में चन्द्रादि की प्रत्यन्तर्दशा योग

ग्रह	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.
मास	०	०	१	१	१	१	०	१	०
दिन	२५	१७	१५	१०	१७	१२	१७	२०	१५
घटी	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०

—मंगल की अन्तर्दशा में मंगलादि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
मास	०	१	०	१	०	०	१	०	०
दिन	१२	१	२८	३	२६	१२	५	१०	१७
घटी	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	३०

—राहु की अन्तर्दशा में राहु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	रा.	वृ.	श.	वु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं
मास	२	२	२	२	१	३	०	१	१
दिन	२१	१२	२५	१६	१	०	२७	१५	१
घटी	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०

—गुरु की अन्तर्दशा में गुरु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.
मास	२	२	२	०	२	०	१	०	२
दिन	४	१६	८	२८	२०	२४	१०	२८	१२
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

—शनि की अन्तर्दशा में शनि आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	श.	वु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.
मास	३	२	१	३	०	१	१	२	२
दिन	०	२०	३	५	२८	१७	३	२५	१६
घटी	१५	४५	१५	०	२०	३०	१५	३०	०

—बुध की अन्तर्दशा में बुध आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	वु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.
मास	२	०	२	०	१	०	२	२	२
दिन	१२	२९	२५	२५	१२	२६	१६	८	२०
घटी	१५	४५	०	३०	३०	४५	३०	०	४५

—केतु की अन्तर्दशा में केतु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.
मास	८	१	०	०	०	१	०	१	०
दिन	१२	५	१०	१७	१२	१	२८	३	२९
घटी	१५	०	३०	३०	१५	३०	०	१५	४५

—शुक्र की अन्तर्दशा में शुक्र आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.
मास	३	१	१	१	३	२	३	२	१
दिन	१०	०	२०	५	०	२०	५	२५	५
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

—सूर्य की अन्तर्दशा में सूर्य आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	१
दिन	९	१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०
घटी	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०

मंगल की दशा में :

—मंगल की अन्तर्दशा में मंगलादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
मास	८	२२	१९	२३	२०	८	२४	७	१२
दिन	३४	३	३६	१६	४९	३४	३०	२१	१५
घटी	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

— राहु की अन्तर्दशा में राहु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.
मास	१	१	१	१	०	२	०	१	०
दिन	२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	२२
घटी	४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	३

—गुरु की अन्तर्दशा में गुरु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.
मास	१	१	१	०	१	०	०	०	१
दिन	१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	१९	२०
घटी	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४

—शनि की अन्तर्दशा में शनि आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.
मास	२	१	०	२	०	१	८	१	१
दिन	३	२६	२३	६	१९	६	२३	२९	२३
घटी	१०	३१	१६	३०	५७	१५	१६	५१	२२
पल	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०

—बुध की अन्तर्दशा में बुध आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.
मास	१	०	१	०	०	०	१	१	१
दिन	२०	२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६
घटी	३४	४९	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१
पल	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०

केतु की अन्तर्दशा में केतु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.
मास	८	२४	७	१२	८	२२	१९	२३	२०
दिन	३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६	४९
घटी	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०

शुक्र की अन्तर्दशा में शुक्र आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु	के.
मास		०	१	०	२	१	२	१	०
दिन	१०	२१	५	२४	३	२६	६	२९	२४
घटी	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०

सूर्य की अन्तर्दशा में सूर्य आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२१
घटी	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०

चंद्र की अन्तर्दशा में चन्द्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	चं.	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.
मास	०	०	१	०	१	०	०	१	०
दिन	१७	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०
घटी	३०	१५	३०	०	०	१५	४५	१५	३०

राहु की दशा में :

राहु के अन्तर में राहु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.
मास	४	४	५	४	१	५	१	२	१
दिन	२५	९	३	१७	२६	१२	१८	२१	२६
घटी	४८	३६	५४	४२	४२	०	३६	०	४२

गुरु के अन्तर में गुरु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.
मास	३	४	४	१	४	१	२	१	४
दिन	२५	१६	२	२०	२४	१३	१२	२०	९
घटी	१२	४८	२४	२४	०	१२	०	२४	३६

शनि के अन्तर में शनि आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.
मास	५	४	१	५	१	२	१	५	४
दिन	१२	२५	२९	२१	२१	२५	२९	३	१६
घटी	२७	२१	५१	०	१८	३०	५४	५७	४८

बुध के अन्तर में बुध आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.
मास	४	१	५	१	२	१	४	४	४
दिन	१०	२३	३	१५	१६	२३	१७	२	२५
घटी	३	३३	०	५४	३०	३३	४२	४२	२१

केतु के अन्तर में केतु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.
मास	०	२	०	१	०	१	१	१	१
दिन	२२	३	१८	१	२२	२६	२०	२९	२३
घटी	३	०	५४	३०	३	४२	२४	५१	३३

शुक्र के अन्तर में शुक्र आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	शु.	सू.	चं.	मं,	रा.	बृ.	श.	बु.	के.
मास	६	१	३	२	५	४	५	५	२
दिन	०	२४	०	३	१२	२४	२१	३	३
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

सूर्य के अन्तर में सूर्य आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	सू.	चं.	मं	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.
मास	०	०	०	१	१	१	१	०	१
दिन	१६	२७	१८	१८	१३	२१	१५	१८	२४
घटी	१२	०	५४	३६	१२	१८	५४	५४	०

चन्द्र के अन्तर में चन्द्र आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के,	शु.	सू.
मास	१	१	२	२	२	२	१	३	०
दिन	१५	१	२१	१२	२५	१६	१	०	२७
घटी	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०

मंगल के अन्तर में मंगल आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
मास	०	१	१	१	१	०	२	०	१
दिन	२२	२६	२०	२६	२३	२२	३	१८	१
घटी	३	४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०

गुरु की दशा :

गुरु के अन्तर में गुरु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा,
मास	३	४	२	१	४	१	२	१	३
दिन	१२	१	१८	१४	८	८	४	१५	२५
घटी	२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२

शनि के अन्तर में शनि आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	श.	बु.	के,	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	वृ.
मास	४	४	१	५	१	२	१	४	४
दिन	२४	९	२३	२	१५	१६	२३	१६	१
घटी	२४	२	१२	०	३६	०	१२	४८	३६

बुध के अन्तर में बुध आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	वृ.	श.
मास	३	१	४	१	२	१	४	३	४
दिन	२५	१७	१६	१०	८	१७	२	१८	९
घटी	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२

केतु के अन्तर में केतु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.
मास	०	१	०	०	०	१	१	१	१
दिन	१९	२६	१६	२८	१९	२०	१४	२३	१७
घटी	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२	३६

शुक्र के अन्तर में शुक्र आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के,
मास	५	१	२	१	४	४	५	४	१
दिन	१०	१८	२०	२६	२४	८	२	१६	२६
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

सूर्य के अन्तर में शुक्र आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.
मास	०	०	०	१	१	१	१	०	१
दिन	१४	२४	१६	१३	८	१५	१०	१६	१८
घटी	२४	०	४८	१२	२४	३६	४८	४८	०

चन्द्र के अन्तर में चन्द्र आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	चं.	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.
मास	१	०	२	२	२	२	०	२	०
दिन	१०	२८	१२	४	१६	८	२८	२०	२४
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

मंगल के अन्तर में मंगल आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
मास	०	१	१	१	१	०	१	०	०
दिन	१९	२०	१४	२३	१७	१९	१६	१६	२८
घटी	३६	२४	४८	१२	३६	३६	०	४८	०

राहु के अन्तर में राहु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.
मास	४	३	४	४	१	४	१	२	१
दिन	९	२५	१६	२	२०	२४	१३	१२	२०
घटी	३६	१२	४८	२४	२४	०	१२	०	२४

शनि की महादशा में :

शनि के अन्तर में शनि आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.
मास	५	५	२	६	१	३	२	५	४
दिन	२१	३	३	०	२४	०	३	१२	२४
घटी	२८	२५	१०	३०	०	१५	१०	२७	२४
पल	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०

बुध के अन्तर में बुध आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.
मास	४	१	५	१	२	१	४	४	५
दिन	१७	२६	११	१८	२०	२६	२५	६	३
घटी	१६	३१	३०	२७	४५	३१	२१	१२	२५
पल	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०

केतु के अन्तर में केतु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.
मास	०	२	०	१	०	१	१	२	१
दिन	२३	६	१९	३	२३	२९	२३	३	२६
घटी	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	१०	३१
पल	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०

शुक्र के अन्तर में शुक्र आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.
मास	६	१	३	२	५	५	६	५	२
दिन	१०	२७	५	६	२१	२	०	११	६
घटी	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०

सूर्य के अन्तर में सूर्यादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.
मास	०	०	०	१	१	१	१	०	१
दिन	१७	२८	१९	२१	१५	२४	१८	१९	२७
घटी	६	३०	५७	१८	३६	९	२७	५७	०

चन्द्र के अन्तर में चन्द्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.
मास	१	१	२	२	३	२	१	३	०
दिन	१७	३	२५	१५	०	२०	३	५	२८
घटी	३०	१६	३०	०	१५	४५	१५	०	३०

मंगल के अन्तर में मंगलादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
मास	०	१	१	२	१	०	२	०	१
दिन	२३	२९	२३	३	२६	२३	६	१९	३
घटी	१६	५१	१२	१०	३१	१६	३०	५७	१५
पल	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

राहु के अन्तर में राहु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.
मास	५	४	५	४	१	५	१	२	१
दिन	३	१६	१२	२५	२९	२१	२१	२५	२९
घटी	५४	४८	२७	२१	५१	०	१८	३०	५१

गुरु के अन्तर में गुरु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.
मास	४	४	४	१	५	१	२	१	४
दिन	११	२४	९	२३	२	१५	१६	२३	१६
घटी	३६	२४	१२	१२	०	३६	०	१२	४८

बुध की दशा में :

बुध के अन्तर में बुध आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.
मास	४	१	४	१	२	१	४	३	४
दिन	२	२०	२४	१३	१२	२०	१०	२५	१७
घटी	४९	३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६
पल	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०

केतु के अन्तर में केतु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.
मास	०	१	०	०	०	१	१	१	१
दिन	२०	२९	१७	२६	२०	२३	१७	२६	२०
घटी	४६	३०	५१	४५	४६	३३	३६	३१	३४
पल	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०

शुक्र के अन्तर में शुक्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.
मास	५	१	२	१	५	४	५	४	१
दिन	२०	२१	२५	२६	३	१६	११	२४	२६
घटी	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०

सूर्य के अन्तर में सूर्यादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.
मास	०	०	०	१	१	१	१	०	१
दिन	१५	२५	१७	१५	१०	१८	१३	१७	२१
घटी	२८	३०	५१	५४	४८	२७	२१	५१	०

चन्द्र के अन्तर में चन्द्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.
मास	१	०	२	२	२	२	०	२	०
दिन	१२	२६	१६	८	२०	१२	२६	२५	२५
घटी	३०	४५	३०	०	४५	१५	४५	६	३०

मंगल के अन्तर में मंगलादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
मास	०	१	१	१	१	०	१	०	०
दिन	२०	२३	१७	२६	२०	२०	२६	१७	२६
घटी	४६	३३	३६	३१	३४	४६	३०	५१	४५
पल	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

राहु के अन्तर में राहु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.
मास	४	४	४	४	१	५	१	२	१
दिन	१७	२	४५	१०	२३	३	१५	१६	२३
घटी	४२	२४	२१	३	३३	०	५४	३०	३३

गुरु के अन्तर में गुरु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.
मास	३	४	३	१	४	१	२	१	४
दिन	१८	६	२५	१७	१६	१०	८	१७	२
घटी	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४

शनि के अन्तर में शनि आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.
मास	५	४	१	५	१	२	१	४	४
दिन	३	१७	१६	११	१८	२०	२६	२५	६
घटी	२५	१६	३१	३०	२७	४५	३१	२१	१२
पल	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०

केतु की महादशा में :

केतु के अन्तर में केतु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	८	२४	७	१२	८	२२	१६	२३	२०
घटी	३४	३०	२१	१५	३८	३	३६	१६	४६
पल	३०	०	०	०	३०	०	[illegible]	३०	३०

शुक्र के अन्तर में शुक्र आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.
मास	२	०	१	०	२	१	२	१	०
दिन	१०	२१	५	२४	३	२६	६	२६	२४
घटी	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०

सूर्य के अन्तर में सूर्यादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	०	१०	७	१८	१६	१९	१७	०	२१
घटी	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०

चंद्र के अन्तर में चन्द्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	चं.	मं.	रा.	वृ.	श,	बु.	के.	शु.	सू.
मास	०	०	१	०	१	०	०	१	०
दिन	१७	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०
घटी	३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०

मंगल के अन्तर में मंगलादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
मास	०	०	१	०	०	०	०	०	०
दिन	८	२२	१९	२३	२०	८	२४	७	१२
घटी	३४	३	३६	१६	४९	३४	३०	२१	१५
पल	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

राहु के अन्तर में राहु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.
मास	१	१	१	१	०	२	०	१	०
दिन	२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	२२
घटी	४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	३

गुरु के अन्तर में गुरु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.
मास	१	१	१	०	१	०	०	०	१
दिन	१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	१९	२०
घटी	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४

शनि के अन्तर में शनि आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.
मास	२	१	०	२	०	१	०	१	१
दिन	३	२६	२३	६	१९	३	३३	२९	२३
घटी	१०	३१	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२
पल	३०	३०	०	०	०	०	३०	०	३०

बुध के अन्तर में बुध आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.
मास	१	०	१	०	०	०	१	१	१
दिन	२०	२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६
घटी	३४	४९	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१
पल	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०

शुक्र की दशा में :

शुक्र के अन्तर में शुक्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.
मास	६	२	३	२	६	५	६	५	२
दिन	२०	०	१०	१०	०	१०	१०	२०	१०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

सूर्य के अन्तर में सूर्यादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.
मास	०	१	०	१	१	१	१	०	२
दिन	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

चंद्र के अन्तर में चंद्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.
मास	१	१	३	२	३	२	१	३	१
दिन	२०	५	०	२०	५	२५	५	१०	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

मंगल के अन्तर म मंगलादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
मास	०	२	१	२	१	०	२	०	१
दिन	२४	३	२६	६	२९	२४	१०	२१	५
घटी	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

राहु के अन्तर में राहु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.
मास	५	४	५	५	२	६	१	३	२
दिन	१२	२४	२१	३	३	०	२४	०	३
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

गुरु के अन्तर में गुरु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.
मास	४	५	४	१	५	१	२	१	४
दिन	८	२	१६	२६	१०	१८	२०	२६	२४
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

शनि के अन्तर में शनि आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.
मास	६	५	२	६	१	३	२	५	५
दिन	०	११	६	१०	२७	५	६	२१	२
घटी	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०

बुध के अन्तर में बुध आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	वृ.	श.
मास	४	१	५	१	२	१	५	४	५
दिन	२४	२९	२०	२१	२५	२९	३	१६	११
घटी	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०

केतु के अन्तर में केतु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.
मास	०	२	०	१	०	२	१	२	१
दिन	२४	१०	२१	५	२४	३	२५	६	२६
घटी	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०

मुख्यविषयपदानामकारादिकोशः

'ख'

'द'

'फ'

'ब'

'भ'

शुद्धि-पत्रम्

शुद्ध पाठ	अशुद्ध पाठ	पृष्ठ	पंक्ति
पुष्ट	निर्बल	७९१	६
शुक्र शनि लग्न में नहीं होने चाहिएँ	लग्न में हैं	८१५	
हूँ	हो	८३३	५
नासिका	नासिक	८६४	२२
गुणाढच	गणाढचा	६८८	१५
अर्थात्	अर्था	१०१७	३२
सव्य	अपसव्य	१०२८	१
सप्त वर्ग	मार्ग	१०३२	२
साधक	सप्तक	१०३७	१८
शक्त	शत्रु	१०४०	६
मंत्री	मंत्री	१०५०	१२
शत्रु	शत्र	१०६०	६
वियोनि	वयोनि	१०७३	१

लेखक की अन्य कृतियाँ

हस्तरेखाविज्ञान (शरीर लक्षण सहित) :—इसमें पाश्चात्य तथा भारतीय सिद्धान्तों के आधार पर हस्तरेखा, पुरुषलक्षण, स्त्रीलक्षण आदि सामुद्रिक शास्त्र समझाया गया है। रु० २०

अङ्कविद्या (ज्योतिष) :—जन्म की अंग्रेजी तारीख और मास के आधार पर भविष्यफल की सर्वप्रथम और सर्वाधिक प्रमाणित पुस्तक। रु० ५

सुगमज्योतिषप्रवेशिका :—पुस्तक में चार भाग हैं : (१) जन्मकुण्डली का गणित और फलित, (२) वर्षकुण्डलीविचार, (३) प्रश्नकुण्डली, (४) मुहूर्तविचार। रु० २०

त्रिफला (ज्योतिष) :—सुश्लोकशतक, शतमंजरी राजयोग तथा वेड़ाजातक—इन तीन फलित ज्योतिष के अप्राप्य संस्कृत ग्रंथों की हिन्दी में व्याख्या। शीघ्र

जातकादेशमार्गचन्द्रिका—दक्षिण भारत के प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ जातकादेशमार्ग की हिन्दी में व्याख्या। रु० १०

फलदीपिका भावार्थबोधनी—आज से प्राय: ४०० वर्ष पहले फलित ज्योतिष के इस अनुपम ग्रंथ की रचना श्री मंत्रेश्वर ने दक्षिण भारत में की थी और अब तक यह ग्रन्थ वहीं तक सीमित था। हिन्दी भाषा में व्याख्या सहित देवनागरी में मूल श्लोक, प्रथम बार प्रकाशित हुए हैं। बृहत्पाराशर, बृहज्जातक, जातकपारिजात, सर्वार्थचिन्तामणि आदि ग्रन्थों की भांति फलित ज्योतिष का यह अपने विषय का अनुपम ग्रन्थ है। दक्षिण भारत में प्रचलित फलित ज्योतिष के बहुत से नवीन सिद्धान्त इसमें दिये गये हैं, जिनका अध्ययन उत्तर भारत के पंडितों के लिए नवीन होगा क्योंकि यह सिद्धान्त उत्तर भारत में अब तक संस्कृत ग्रन्थों में भी उपलब्ध नहीं थे। श्रीरामानुजकृत फलित ज्योतिष ग्रन्थ—भावार्थरत्नाकर—भी हिन्दी में उपलब्ध नहीं है। उसके भी सारभूत ४५० फलितज्योतिष के योग इस ग्रन्थ में दे दिये गये हैं। ज्योतिष के प्रेमियों के लिए इसमें सर्वथा नवीन पाठ्य सामग्री प्रस्तुत है। रु० ४०.००

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली :: वाराणसी :: पटना